5९५

अहिर्बुध्न्यसंहिता

(श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गता)

'सरला' हिन्दीटीकोपेता

(द्वितीय भाग)

सम्पादकः व्याख्याकारश्च

डॉ. सुधाकर मालवीयः

।। श्रीः ।।

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला
120

—*—

अहिर्बुध्न्यसंहिता

(श्रीपाञ्चरात्रागमान्तर्गता)

'सरला' हिन्दीटीकोपेता

(द्वितीयो भागः)

सम्पादकः व्याख्याकारश्च
डॉ. सुधाकर मालवीयः
एम. ए. पीएच. डी., साहित्याचार्य
संस्कृत-विभाग : कला-संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

[redacted]

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहरनगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391, 41530902

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2007

मूल्य : 1200.00
(1-2 भाग, सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263, 2333371

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाषः 2420404

मुद्रक
ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

The
VRAJAJIVAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA
120

AHIRBUDHNYA-SAṂHITĀ
OF THE
PĀÑCARĀTRĀGAMA
With the Sarala Hindi Translation

Edited & Translated by

Dr. SUDHAKAR MALAVIYA
M. A., Ph. D. Sahityacarya
Department of Sanskrit : Arts Faculty,
Banaras Hindu University
Varanasi - 5

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI

Publishers:
© CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
38 U. A. Bungalow Road, Jawaharnagar
Post Box No. 2113
DELHI 110007
Telephone : 23956391

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37 / 117, Gopal Mandir Lane
Post Box No.1129
VARANASI 221001
Telephone : 2335263; 2333371

*

Sole Distributors :
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
CHOWK (Behind The Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 2420404

Computer Type-setters :
Malaviya Computers
Varanasi

Printers :
A. K. Lithographers
Delhi

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

मणिशेखरोपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का मात्र एक बार ध्यान करने पर अनेक जन्म के करोड़ पाप समूह विनष्ट हो जाते हैं, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

उक्तार्थानुवादः

नारदः—

भगवन् कथितं सर्वं स्वरूपं च गुणास्तथा ।
परिवारास्तथा मन्त्राः शस्त्रैरस्त्रैश्च दैवतैः ॥ १ ॥
शक्तिभिर्मण्डलैश्चित्रैः पद्मैर्बहुविधैरपि ।
एतैर्विशिष्टमाख्यातं यन्त्ररूपमनुत्तमम् ॥ २ ॥
सर्वेषामेव जन्तूनां वर्णानां परमेश्वर ।
क्षत्रियस्य विशेषेण रक्षार्थं यन्त्रमीरितम् ॥ ३ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने सुदर्शन का स्वरूप, गुण, परिवार मन्त्र तथा शस्त्रास्त्र देवता शक्ति मण्डल से विचित्र एवं अनेक प्रकार के पद्मों से युक्त अत्यन्त श्रेष्ठ यन्त्र का आख्यान किया । इतना ही नहीं, हे परमेश्वर ! आपने सभी जन्तुओं के लिए विशेष कर क्षत्रिय जाति की रक्षा के लिए उत्तम यन्त्र का निरूपण किया ॥ १-३ ॥

सुदर्शनप्रभावविषयकस्त्रिधा प्रश्नः

एतस्य यन्त्रराजस्य महिमा कथितः पुरा ।
प्रभावश्चक्ररूपस्य देवस्य किमयं स्मृतः ॥ ४ ॥
सुदर्शननृसिंहस्य किमु किं परिवारजः ।
तमिमं संशयं छिन्धि सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो ॥ ५ ॥

आपने पहले इस यन्त्रराज की महिमा कही है । क्या यह चक्र सुदर्शन देव का प्रभाव है? अथवा सुदर्शन नृसिंह दोनों का प्रभाव है? अथवा समस्त परिवार समूह का प्रभाव है? हे प्रभो ! यतः आप सर्वज्ञ हैं अतः मेरे इस संशय को दूर करिए ॥ ४-५ ॥

विस्तरेण तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

सुदर्शनप्रभावोऽयं संक्षेपात् कथितो मया।
विस्तारमस्य देवर्षे कथ्यमानमिमं शृणु॥ ६ ॥
सा भूमानं प्रति प्रायो महतां परिवारता।
न चेद्भूमास्य नास्त्येव परिवार्यत्वसम्भवः॥ ७ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—मैंने संक्षेप में कहा है कि यह सब सुदर्शन का प्रभाव है। अब हे देवेर्षे! मैं उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ आप उसे सुनिए॥ ६ ॥

जो भूमा होता है उसी के प्रति समस्त महान् परिवार बन जाते हैं। यदि कोई भूमा नहीं है तो उसके परिवारता की सम्भावना भी नहीं है॥ ७ ॥

सर्वस्यापि सुदर्शनात्मकत्वम्

ततश्चक्रमयं सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।

सुदर्शनस्यैव कालचक्रात्मकत्वम्

चक्रात्मानमनाद्यन्तं कालं प्रथमतः शृणु॥ ८ ॥

इसलिए जगत् के सभी स्थावर जङ्गम चक्रमय हैं। उनमें भी कालचक्र सर्वश्रेष्ठ है, अनादि है और अनन्त है उसे सुनिए॥ ८ ॥

कालचक्रस्वरूपनिरूपणम्

त्रिनाभियुक्तं षण्नेमि पञ्चारं चक्रमव्ययम्।
संवत्सरमयं यत् तत् कालचक्रमिति स्मृतम्॥ ९ ॥

तीन नाभि वाला छः नेमियों से युक्त और पाँच अरों वाला चक्र अव्यय (अविकारी) है। संवत्सरमय होने के कारण उसे कालचक्र भी कहते हैं॥ ९ ॥

सर्वस्यापि कालचक्रवशवर्तित्वम्

तद्वशे वर्तते विश्वं चेतनाचेतनात्मकम्।

परमात्मा कालचक्रप्रवर्तकः

परिवर्तयते देवस्तदेतच्चक्ररूपधृत्॥ १० ॥

यह सारा चेतना चेतनात्मक जगत् उसी काल चक्र के आधीन है। वही काल चक्र का रूप धारण कर संसार को ऊपर नीचे परिवर्त्तित करता रहता है॥ १० ॥

जगच्चक्रनिरूपणम्

अव्यक्तादिविशेषान्ततत्त्वरूपैररैर्वृतम्।
चतुर्विंशतिसङ्ख्याकैः पुरुषात्मकनेमियुक्॥ ११ ॥

परमात्मनस्तत्प्रेरकत्वम्

जगच्चक्रमिति ख्यातं तच्च प्रेरयति स्वयम्।

परमात्मनो नाभिचक्रप्रेरकत्वम्

स्थीयते द्वादशारेण नाभिचक्रेण देहिनः ॥ १२ ॥
शरीरं तच्च तेनैव प्रेर्यते चक्ररूपिणा ।

अव्यक्त से लेकर विशेष पर्यन्त २४ तत्त्वात्मक अरों से युक्त जो पुरुषात्मकनेमि से जुड़े हुये हैं वह दूसरा संसार चक्र है । इस जगच्चक्र को स्वयं परमात्मा प्रेरित करते हैं । वह समस्त प्राणियों में द्वादशार युक्त नाभिचक्र के रूप में प्रतिष्ठित है, जो जीवमात्र के शरीर में बारह अरों वाले नाभिचक्र के रूप में प्रतिष्ठित है, वही परमात्मा स्वरूपी चक्र सारे शरीर का प्रेरक है ॥ ११-१३ ॥

परमात्मनः सर्वप्रेरकत्वनिगमनम्

अतः प्रेरयिता देवः समस्तस्य जनार्दनः ॥ १३ ॥
सुदर्शनवपुः श्रीमाननादिप्रभवाप्ययः ।

इसलिए वह परमात्मा जनार्दन ही सुदर्शन रूप शरीर से इस जगत् के स्रष्टा, स्थापक तथा संहारकर्त्ता बनकर सबको प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं ॥ १३-१४ ॥

तस्यैव जगत्सर्गस्थितिसंहारहेतुत्वम्

ज्ञानस्वरूपो भगवान् पूर्णषाड्गुण्यविग्रहः ॥ १४ ॥
स एव सर्वभूतानां स्रष्टा पालयितान्तकः ।

तस्यैव शिवरूपधरस्य शैवैराराध्यत्वम्

स एव शिवरूपेण शैवैराराध्यते प्रभुः ॥ १५ ॥

वही भगवान् ज्ञानस्वरूप हैं, पूर्णषाड्गुण्य विग्रहवान् हैं, वही समस्त प्राणियों के स्रष्टा, पालन करने वाले एवं संहारकर्त्ता हैं और वही भगवान् शिवरूप में शैवों के द्वारा आराधित किये जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

तस्यैव ब्रह्मरूपेण जगत्स्रष्टृत्वम्

स एव ब्रह्मरूपेण सृजत्येतच्चराचरम् ।

तस्यैव स्वांशरूपेण जगत्पालकत्वम्

स एव पालयत्येतद् विष्णुर्भूत्वा जनार्दनः ॥ १६ ॥

वही प्रभु ब्रह्म बन कर इस चराचर जगत् की सृष्टि करते हैं और वही जनार्दन विष्णु बन कर इसका पालन करते हैं ॥ १६ ॥

तस्यैव रुद्ररूपेण संहर्तृत्वम्

स एव रुद्ररूपेण संहरत्यखिलं जगत् ।

तस्यैव बुद्धरूपत्वम्

बुद्धात्मना च बौद्धानां स एव जगति स्थितः ॥ १७ ॥

वही रुद्र बनकर सारे संसार के संहारकर्त्ता हैं और बौद्धों के लिए बुद्ध बनकर इस जगत् में स्थित रहते हैं ॥ १७ ॥

तस्यैव दिगम्बररूपत्वम्

स एव शाम्बराणां च निरावरणरूपधृत् ।

तस्यैव जिनरूपत्वम्

स एव चार्वाकमते जिनेश्वरवपुर्धरः ॥ १८ ॥

वही शाम्बरों के लिए आवरणरहित नङ्गे रूप को धारण करता हैं और वही चार्वाकों के मत से जिनेश्वर का रूप धारण कर स्थित हैं ॥ १८ ॥

तस्यैव यज्ञपुरुषरूपत्वम्

स एव याज्ञिकानां च यज्ञपूरुषसंज्ञकः ।
मीमांसकैः स एवायमुपास्यत्वेन चोद्यते ॥ १९ ॥

याज्ञिकों के लिए वही यज्ञस्वरूप हैं जो मीमांसकों के मत से सर्वथा उपास्य हैं ॥ १९ ॥

कापिलमते तस्यैव पुरुषरूपत्वम्

कापिलैः पुरुषत्वेन स एवाख्यायते विभुः ।

सर्वस्वरूपत्वात् तस्यैव सर्वफलप्रदत्वम्

उपास्यत्वेन ये प्राहुर्यं यं तत्तद्वपुर्धरः ॥ २० ॥
तेषां मनीषितं सर्वं स एवाशु प्रयच्छति ।

देवादिरूपधारणादपि चक्ररूपधारणं भगवतः प्रियतमम्

एतेषामेव देवानां स्वतनूनां जनार्दनः ॥ २१ ॥
परं प्रीणाति भगवांश्चक्ररूपधरो हरिः ।

तत्र हेतुनिरूपणम्

स्वसमाश्रितरक्षायां परेषां च निबर्हणे ॥ २२ ॥

कपिल (सांख्य) मत वाले उसी को पुरुष रूप में प्रतिपादन करते हैं । इस प्रकार एक उसी तत्त्व को भिन्न-भिन्न रूपों से लोगों ने अपना उपास्य स्वीकार किया है और वही उपास्य रूप से तत्तच्छरीर धारण कर अपने उपासकों के सारे मनोरथ को पूर्ण करते हैं । किन्तु इन-इन देवताओं की अपेक्षा उन जनार्दन को चक्ररूप धारण कर अपने आश्रितों की रक्षा तथा शत्रुओं के निबर्हण (= दमन) करने में उन्हें अतीव प्रसन्नता होती है ॥ २०-२२ ॥

इदमेव वपुर्धत्ते सुदर्शनमयं हरिः ।
रहस्यमेतत् कथितं भक्तोऽसीति तपोधन ॥ २३ ॥

हे तपोधन ! विष्णु को सुदर्शनमय स्वरूप धारण करने का यही रहस्य है । आप हमारे भक्त हैं इसलिए यह सारा रहस्य हमने आपसे कहा ॥ २३ ॥

तत्रेतिहासोदाहरणम्

पुरावृत्तं सुरमुने शृणुष्व गदतो मम ।
दुर्धर्षो नाम राजर्षिर्धार्मिको दृढविक्रमः ॥ २४ ॥

अब हे मुने ! मैं पूर्व का जो इतिहास आपसे कह रहा हूँ उसे सुनिए । दुर्धर्ष नाम के एक राजर्षि थे जो बड़े धार्मिक और पराक्रमी थे ॥ २४ ॥

प्रमगन्दसुतः श्रीमान्नैचाशाखपुरे वसन् ।
धर्मतः पालयामास सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ २५ ॥

उनके पिता का नाम प्रमगन्द था, वह नैचाशाख पुर में रहते हुये धर्मपूर्वक सप्तद्वीपवती पृथ्वी का पालन करते थे ॥ २५ ॥

वत्सला नाम तस्याभून्महिषी वरवर्णिनी ।
सा तस्य जनयामास मणिशेखरमात्मजम् ॥ २६ ॥

उन दुर्धर्ष की पत्नी का नाम वत्सला था जो अत्यन्त रूपवती थी उसने दुर्धर्ष द्वारा मणिशेखर नामक पुत्र उत्पन्न किया ॥ २६ ॥

सोऽप्यवस्थामतिक्रम्य प्रथमां मणिशेखरः ।
रमणीयाकृतिः शूरः प्राप्तविद्यः परंतपः ॥ २७ ॥
सम्प्राप्तयौवनः श्रीमान् प्राचीं भार्यामविन्दत ।
सर्वलोकाधिपत्यार्हमेनं दुर्धर्षणः सुतम् ॥ २८ ॥
निधाय राज्ये तत्रैव जगाम तपसे वनम् ।
पितेव पालयामास स समुद्रवतीं महीम् ॥ २९ ॥

धीरे-धीरे वह मणिशेखर अपनी बाल्यावस्था का अतिक्रमण कर आकृति से सुन्दर, वीर, विद्वान् तथा शत्रुओं को जीतने वाला हुआ ॥ २७ ॥

युवावस्था प्राप्त कर उसने प्राची नाम की भार्या प्राप्त की । तदनन्तर दुर्धर्ष अपने पुत्र को राज्य पालन के योग्य देख कर उसे सारा राज्य प्रदान कर स्वयं तपस्या के लिए वन चले गये । मणिशेखर भी जिस प्रकार पिता पुत्र का पालन करता है उसी प्रकार अपनी प्रजाओं का पालन करने लगा ॥ २८-२९ ॥

प्राच्यां पुत्राः समभवंस्तस्य सप्त महात्मनः ।
पालयत्यवनीं तस्मिन् निखिलां मणिशेखरे ॥ ३० ॥
तस्मिन् काले समभवत् सर्वप्राणिभयङ्करः ।
विकटाक्ष इति ख्यातो ब्रह्मदत्तवरो बली ॥ ३१ ॥
महासुरेण तेनैव पीडिता सकला मही ।
तत्पुत्रैस्तस्य पौत्रैश्च प्रपौत्रैः पूरिता मही ॥ ३२ ॥

उस महात्मा राजा को प्राची नामक पत्नी से सात पुत्र उत्पन्न हुये। इस प्रकार मणिशेखर के सारी पृथ्वी के पालन करने में संलग्न रहने पर, सम्पूर्ण प्राणियों को भय देने वाला, ब्रह्मदेव द्वारा वरदान प्राप्त कर, महा बलवान् विकटाक्ष नामक महान् असुर हुआ, जो सारी पृथ्वी को दुःख देने लगा। उसके पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रों से पृथ्वी परिपूर्ण हो गयी॥ ३०-३२॥

तेऽसुराः सर्वभूतानि पीडयन्ति स्म भीषणाः।
विकटाक्षसमाज्ञप्ता भीमरूपाः सहस्रशः॥ ३३॥
कांश्चिद्विद्रावयन्ति स्म कांश्चिज्जघ्नुस्तपस्विनः।
द्विजातीनां मुनिश्रेष्ठ यज्ञव्यासेधमाचरन्॥ ३४॥
सर्वेषामेव वर्णानां तत्तदाश्रमवासिनाम्।
अबाधिषत कर्माणि विहितानि यथातथम्॥ ३५॥

वे सभी असुर महा भयानक थे और सारे प्राणिमात्र को दुःख देते रहते थे इस प्रकार विकटाक्ष की आज्ञा से सहस्रों राक्षस महाभयानक रूप धारण कर किसी को अपने स्थान से भगा देते थे। किसी का वध कर देते थे। द्विजातियों के यज्ञ के प्रारम्भ होने पर अधम आचरण करते थे। सभी वर्णों के सभी आश्रमवासियों के तत्तद्विहित कर्मों में बाधा करते रहते थे॥ ३३-३५॥

पृथिव्यां यानि रत्नानि धनानि विपुलानि च।
स्वस्मै प्रदापयामास विकटाक्षो महासुरः॥ ३६॥

पृथ्वी मण्डल में जितने भी रत्न और जितने भी विपुल धन थे उन्हें आहूत कर वह विकटाक्ष अपने सगे सम्बन्धियों को प्रदान कर देता था॥ ३६॥

ततः सम्पीडिताः सर्वाः प्रजास्तेन दुरात्मना।
व्यजिज्ञपंस्तद् वृत्तान्तं मणिशेखरभूभुजे॥ ३७॥

तदनन्तर उस दुरात्मा द्वारा सतायी जा रही सभी प्रजाओं ने अपना सारा दुःख मणिशेखर राजा से निवेदन किया॥ ३७॥

क्रोधेन महताविष्टो राजा राजीवलोचनः।
अभियोद्धुं मनश्चक्रे विकटाक्षं महासुरम्॥ ३८॥

यह सुनकर कमलनेत्र महात्मा मणिशेखर राजा ने क्रोध में भरकर महाभयानक उस विकटाक्ष महासुर से युद्ध करने का विचार किया॥ ३८॥

समानीय ततः सर्वान् सैनिकान् समनह्यत।
तस्य सन्नाहमालोक्य मन्त्रिणस्तस्य सङ्गताः॥ ३९॥

उस राजा ने अपने सारे सैनिकों को बुलाया और सबको युद्ध में तैयार होने की आज्ञा दी। उसकी इस प्रकार की युद्ध की तैयारी देखकर मन्त्रीगण वहाँ उपस्थित हो गए॥ ३९॥

इदमूचुरवध्यत्वं तस्य सेनाभियोगतः ।
पुरा दुरात्मावृणुत तपःसन्तोषिताद्विधेः ॥ ४० ॥
ये मामभिमुखायाताः शत्रवस्तैरवध्यताम् ।
एवमस्त्विति तेनोक्ते विकटाक्षोऽतिदर्पितः ॥ ४१ ॥

उन लोगों ने राजा के पास जाकर सेना के द्वारा उसका अवध्यत्व सूचित किया और यह भी कहा कि उस दुरात्मा ने तपस्या द्वारा ब्रह्मदेव को प्रसन्न कर यह वरदान प्राप्त किया है कि जो भी शत्रु युद्धस्थल में मेरे सामने आवे, उससे मेरा वध न हो । ब्रह्मदेव के द्वारा 'एवमस्तु' ऐसा कहे जाने पर वह विकटाक्ष अत्यन्त अहङ्कार से परिपूर्ण हो गया है ॥ ४०-४१ ॥

ततः प्रभृत्यजय्योऽभूच्छत्रुभिः सम्मुखागतैः ।
तस्मात् त्वमपि संनाहमुपसंहर तं प्रति ॥ ४२ ॥

उसी वरदान के प्रभाव से वह सामना करने वाले अपने शत्रुओं के द्वारा अजेय है । इसलिए हे राजन् ! आप भी उससे लड़ने की सारी रण सज्जा बन्द करिए ॥ ४२ ॥

ततः स शुश्रुवान् वाक्यं मन्त्रिभिः समुदीरितम् ।
ततः संग्रामसंनाहाद् विरराम महीपतिः ॥ ४३ ॥

जब मन्त्रियों के द्वारा राजा ने सारी बातें सुन ली, तब वह अपनी सारी युद्ध की तैयारी से विरत हो गया ॥ ४३ ॥

ततः क्रतुं समाहूय पुरोधसमनागसम् ।
मन्त्रयामास नृपतिस्तेन मन्त्रविदा समम् ॥ ४४ ॥

फिर उसने अपने पुण्यकर्मा पुरोहित जिसका नाम क्रतु था, उन्हें बुलाया और उन मन्त्रवेत्ता के साथ एकान्त में मन्त्रणा करने लगा ॥ ४४ ॥

विकटाक्षस्य वृत्तान्तं सर्वमाख्याय तत्त्वतः ।
परैरजय्यतां चास्य युद्धे सम्मुखवर्तिभिः ॥ ४५ ॥

राजा ने विकटाक्ष का वह सारा वृत्तान्त पुरोहित से निवेदन किया जिस प्रकार वह सामने से लड़ने वाले शत्रुओं से अजेय बना था ॥ ४५ ॥

येनोपायेन भगवन् जेष्यामस्तं दुरासदम् ।
ब्रूहि तं सकलाः स्वस्था भवेयुर्मामिकाः प्रजाः ॥ ४६ ॥

हे भगवन् ! हम किस प्रकार उस महासुर पर विजय प्राप्त करें, जिससे यह हमारी सारी प्रजा उसके उपद्रव से रहित हो जावे, वह मुझसे कहिए ॥ ४६ ॥

एवमुक्तस्तदा तेन भूभुजा स पुरोहितः ।
चिन्तयित्वा चिरायैतदुवाच मणिशेखरम् ॥ ४७ ॥

राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर पुरोहित ने बहुत देर तक सोच-विचार करने के पश्चात् राजा मणिशेखर से कहा ॥ ४७ ॥

सत्यं न शक्यते जेतुं युद्धे स वरदर्पितः ।
भगवन्तमृते विष्णुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ४८ ॥

महाराज ! आप ठीक कह रहे हैं । वह वर प्राप्ति से अभिमानी सचमुच युद्ध में अपराजेय है । उसे जीतने वाले शङ्खचक्रगदाधारी एकमात्र विष्णु ही हैं ॥ ४८ ॥

नीलजीमूतसङ्काशं पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
अप्रमेयं जगन्नाथमाश्रितार्तिविनाशनम् ॥ ४९ ॥
उत्तुङ्गमङ्गलगुणं दैत्यचक्रप्रमर्दनम् ।
नास्त्युपायान्तरं लोके तत्समं जगतीपते ॥ ५० ॥
अतस्तं शरणं गच्छ सर्वभावेन भूपते ।
चक्ररूपधरं देवं भक्तरक्षणदीक्षितम् ॥ ५१ ॥
तत्राप्त्युपायं जानाति दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
तत्प्रसादात् तमसुरं संहर्तुं सकलं क्षमम् ॥ ५२ ॥
तमृषिं सर्वभूतानां भीषणं गच्छ साम्प्रतम् ।

नीलमेघ के समान श्याम, कमल के समान विशाल नेत्र, अप्रमेय, संसार के स्वामी, अपने आश्रितों की पीड़ा को दूर करने वाले, सर्वथा उत्कृष्ट मङ्गलगुणों से युक्त तथा दैत्य समुदाय का वध करने वाले उन विष्णु के समान और कोई देव इस जगत् में नहीं हैं । अत: हे जगतीपते ! आप सर्वात्मना उन विष्णु के शरण में जाइये क्योंकि उस दैत्य के विनाश का कोई और उपाय नहीं है । वे देवचक्र सुदर्शन का रूप धारण करने वाले हैं जो अपने भक्त की पीड़ा को दूर करने का व्रत लिए हुये हैं । उन चक्र सुदर्शन रूपधारी विष्णु की प्राप्ति का उपाय एकमात्र मुनिसत्तम दुर्वासा जानते हैं । आप उन विष्णु को प्रसन्न करिए । फिर तो सारे असुर समूह के नाश में आप समर्थ हो जाएंगे । अत:, हे राजन् ! आप समस्त प्राणियों के लिए महाभयङ्कर उन महर्षि दुर्वासा के पास शीघ्रातिशीघ्र जाइए ॥ ४९-५३ ॥

एवमेवेति निश्चित्य राजा परमधार्मिकः ॥ ५३ ॥

राजा भी बड़ा धार्मिक था । उसने भी निश्चय कर लिया कि ऐसा ही करना चाहिए ॥ ५३ ॥

निर्जगाम पुरात् तस्मात् सार्धं तेन पुरोधसा ।
हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्यन्तं महामुनिम् ॥ ५४ ॥
वसानं वल्कले शुभ्रे शुभ्रयज्ञोपवीतिनम् ।
जटाजिनधरं शान्तं ज्वलत्पावकसंनिभम् ॥ ५५ ॥
तं तथावस्थितं राजा जगाम सपुरोहितः ।

स मुनिस्तौ मुनिश्रेष्ठो दृष्ट्वा राजपुरोहितौ ॥ ५६ ॥
तौ समभ्यर्च्य विधिना स्वागतं व्याजहार ह ।
इमं देशमनुप्राप्तौ किमर्थं वनगोचरम् ॥ ५७ ॥

तदनन्तर राजा अपने पुरोहित को साथ लेकर अपने नगर से बाहर हिमालय पहाड़ के शिखर पर चल पड़ा जहाँ वे महामुनि शुभ्र वल्कल एवं शुभ यज्ञोपवीत धारण किये तपस्या कर रहे थे । वे जटा तथा अजिन धारण किये हुये थे । वह परम शान्त थे और देदीप्यमान अग्नि के समान भासित हो रहे थे । उस अवस्था में उन्हें तपस्या करते देख राजा अपने पुरोहित के साथ वहाँ जा पहुँचे । तदनन्तर उन मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा मुनि ने राजा और पुरोहित को अपने आश्रम में आया देख सविधि उनकी अर्चना की और उनका स्वागत किया । फिर पूछा आप लोगों ने इस घोर जङ्गल के इस प्रदेश में क्यों पदार्पण किया है ॥ ५४-५७ ॥

भवन्तौ लक्षये साक्षाद् ब्रह्मक्षत्रे सविग्रहे ।
प्रमगन्दसुतं वीरं जाने त्वां मणिशेखरम् ॥ ५८ ॥
सप्तद्वीपवती पृथ्वी तव वश्येति शुश्रुम ।
सर्वेष्वङ्गादिधर्मेषु भवतः किमनामयम् ॥ ५९ ॥
प्रजाः पालयसे सर्वाः स्वधर्मस्था महीपते ।
क्रतुं पुरोहितं लब्ध्वा भवतः किं न सेत्स्यति ॥ ६० ॥

मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ब्रह्म और क्षत्र दोनों तेज शरीर धारण किये यहाँ आये हैं । ये प्रमगन्द के पुत्र दुर्धर्ष के लड़के मणिशेखर हैं । इन्हें मैं भली प्रकार जानता हूँ। मैंने सुना है कि यह सप्त द्वीपवती पृथ्वी इनके वश में है । अच्छा राजन् आपका शरीरादि तथा धर्म उपद्रवरहित तो है न? हे राजन् ! क्या आप अपनी प्रजाओं को धर्म मार्ग में रखकर उनका ठीक-ठीक पालन तो करते हैं? अथवा क्रतु जैसे पुरोहित को प्राप्त कर आपकी कौन सी मनोकामना है जो पूर्ण न हो? ॥ ५८-६० ॥

अनूचानो मुनिः श्रेयान् सर्वेषां च तपस्विनाम् ।
शान्तो दान्तः शुचिः श्रीमान् सत्यवादी दृढव्रतः ॥ ६१ ॥
धर्मज्ञः सर्वशास्त्रज्ञः सर्वकर्मसु कोविदः ।
कर्मठः शीलसम्पन्नो यायजूको निरामयः ॥ ६२ ॥
कृपानुरक्तः सर्वेषु समबुद्धिः समाधिमान् ।
दैष्टिकः परमोदारो धृतिमान् राजसत्कृतः ॥ ६३ ॥
सर्वैरनुमतः शश्वद् भक्तिमान् पुरुषोत्तमे ।
षण्णां समयधर्माणामभिज्ञो नयकोविदः ॥ ६४ ॥
दयालुरभिजातश्च साधकः सर्वमन्त्रवित् ।
अन्यैश्च सद्गुणैर्युक्तः पुरोहित इति स्मृतः ॥ ६५ ॥

ईदृशोऽयं क्रतुः साक्षाद् बृहस्पतिरिवापरः ।
अनेन सर्वकार्याणि कुरुष्व मणिशेखर ॥ ६६ ॥
तथापि कैश्चिदरिभिः परिभूत इवागतः ।
आख्याहि सर्वं नृपते किमागमनकारणम् ॥ ६७ ॥

वेदज्ञ, सभी तपस्वियों का श्रेय चाहने वाला, मुनिवृत्ति का आश्रय लेने वाला, शान्त, दान्त-शुचि, श्रीमान्, सत्यवादी दृढ़व्रत धर्मज्ञ, सर्वशास्त्रज्ञ, सभी कर्मों में निपुण, कर्मठ, शीलवान्, याज्ञिक, निर्दोष, कृपाशील, समदर्शी, समाधि लगाने वाला अतीतानागत का वक्ता, परमोदार, धैर्यवान्, राजसत्कृत, सबसे पूजित, पुरुषोत्तम में भक्ति रखने वाला, छः प्रकार के सन्धिविग्रहादि को जानने वाला, नीतिज्ञ, दयालु, उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाला, साधक, मन्त्रवेत्ता इसी प्रकार के अन्यान्य सद्गुणों से युक्त पुरोहित को होना चाहिए। ये क्रतु इस प्रकार के सभी गुणों से युक्त तो हैं ही बुद्धि में भी बृहस्पति के समान हैं। अतः हे राजन्! मणिशेखर! आप इनकी सहायता से अपना सारा कार्य सम्पादन करिए। फिर भी हे राजन्! आप अपने किसी शत्रु से पराभूत हो गए हैं ऐसा मुझे मालूम पड़ रहा है। अच्छा अब अपने आगमन का कारण बताइए कि यहाँ आप कैसे पधारे हैं? ॥ ६१-६७ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा विरराम तपोधनः ।
अथ क्रतुर्मुनिश्रेष्ठः प्राह दुर्वाससं प्रति ॥ ६८ ॥

इतना कह लेने के पश्चात् महातेजस्वी, तपोधन, दुर्वासा शान्त हो गए। तब मुनिश्रेठ क्रतु ने दुर्वासा से कहा ॥ ६८ ॥

राजकार्यमशेषेण समागमनकारणम् ।
स्वराज्यं विकटाक्षेण पीड्यमानं दुरात्मना ॥ ६९ ॥
बलं महासुरस्यास्य दुर्जयत्वमरातिभिः ।
प्रजापतेर्वरप्राप्तिं तत्सन्ततिविजृम्भणम् ॥ ७० ॥

हम लोगों का कुछ राजकार्य है, उसी के लिए आपके यहाँ आना हुआ है। दुरात्मा विकटाक्ष के कारण इनका स्वराज्य पीड़ित हो रहा है। यह महान् असुर बहुत ही बलवान् है। वह अपने शत्रुओं के द्वारा दुर्जय है। उसे प्रजापति ब्रह्मा के द्वारा अवध्यत्व का वरदान प्राप्त है तथा उसकी पुत्र पौत्रादि सन्ततियों का अत्यधिक अभ्युदय भी है ॥ ६९-७० ॥

एवं बहुविधं तस्य चेष्टितं लोकगर्हितम् ।
व्याहृत्य प्रणिपत्यैनमुवाच विनयान्वितः ॥ ७१ ॥

इस प्रकार वह राक्षस (वरोत्सिक्त तथा वंशवृद्धि के कारण) सारे लोक को पीड़ित कर रहा है। इतना कह कर क्रतु ने महामुनि दुर्वासा को प्रणाम किया फिर विनयपूर्वक कहा ॥ ७१ ॥

ब्रूहि तस्य जयोपायं त्वामयं शरणं गतः ।

त्वमापदः परित्राहि राजानं धर्मवत्सलम् ॥ ७२ ॥

हे महाराज ! उस विकटाक्ष के विजय का उपाय आप बताइये । ये राजा एतदर्थ आपकी शरण में आए हैं । ये राजा बड़े ही धर्मवत्सल हैं । अतः इस आपत्ति से आप इन राजा की रक्षा करे ॥ ७२ ॥

परित्रातान्यनेनैव भुवनानि तपोधन ।
एवमुक्त्वा मुनिवरं प्रणिपत्य पुरः स्थितौ ॥ ७३ ॥

हे तपोधन ! इन राजा ने भुवन का परित्राण किया है । इतना कह लेने के पश्चात् दोनों ही दुर्वासा के सामने चुप-चाप स्थित हो गए ॥ ७३ ॥

कृपया परया वीक्ष्य षड्वर्णं मन्त्रमुत्तमम् ।
सौदर्शनं तयोः प्रादाच्चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ७४ ॥

तब दुर्वासा ने अत्यन्त कृपापूर्वक उनकी ओर देख कर छः वर्णों वाला (ॐ क्ष्रौं सहस्रार) सुदर्शन का उत्तम मन्त्र राजा को प्रदान किया, जो धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थों को देने वाला है । मन्त्र देने के पश्चात् दुर्वासा ने राजा से इस प्रकार कहा ॥ ७४-७५ ॥

अनेन साधयाभीष्टमेतेनैव पुरोधसा ।
पुरोधा एव राज्ञां हि दृष्टादृष्टार्थसाधकः ॥ ७५ ॥

हे राजन् ! आप अपने इन पुरोहित की सहायता लेकर अपना अभीष्ट साधन करिए । क्योंकि पुरोहित ही राजा के दृष्टार्थ तथा अदृष्टार्थ का साधक होता है ॥ ७५ ॥

विशेषेणास्य देवस्य प्रतिष्ठाराधनादिषु ।
वैगुण्यमस्य तत् सर्वमपराधात् पुरोधसः ॥ ७६ ॥

विशेष कर इन सुदर्शन देव के प्रतिष्ठा और आराधना आदि कार्यों में पुरोहित ही सभी अपराध तथा वैगुण्य से राजा का रक्षक होता है ॥ ७६ ॥

तथा साद्गुण्यमस्यैव राज्ञः कार्येषु भूपते ।
अन्यैः पौरोधसैः कार्यं कार्यमेतस्य तच्च वै ॥ ७७ ॥

इसी प्रकार सद्गुण युक्त अन्यान्य राजाओं की रक्षा अन्य उनके पुरोहितों को भी करनी चाहिए क्योंकि यही उनका कार्य है ॥ ७७ ॥

इत्युक्त्वा तौ तदा प्राह पुरावृत्तं महामुनिः ।
वाराहं रूपमास्थाय भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ ७८ ॥
उज्जहार भुवं कल्पे वाराहे सलिलात् ततः ।
तदाह परमप्रीता देवं देवी वसुन्धरा ॥ ७९ ॥

इतना कह कर महामुनि दुर्वासा ने पूर्वकाल में होने वाली घटना का वर्णन किया कि भगवान् पुरुषोत्तम विष्णु ने जब वराहावतार धारण किया था, तब उन्होंने उस वराह

रूप से इस पृथ्वी का उद्धार जल से बाहर निकाल कर किया था। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर देवी वसुन्धरा ने वराहरूपधारी भगवान् विष्णु से कहा ॥ ७८-७९ ॥

प्रियार्थमनुरक्तानां सदा भूमण्डले त्वया।
वर्तितव्यं जगन्नाथ प्रियां तनुमुपेयुषा ॥ ८० ॥

हे जगन्नाथ! आप इस भूमण्डल में अपने भक्तों का उद्धार करने के लिए उनको प्रिय लगने वाला शरीर धारण कर उनका प्रिय करते रहना ॥ ८० ॥

एवमुक्तस्तया देव्या तदा प्रभृति केशवः।
सालग्रामाह्वये पुण्ये न्यवसन्मण्डले भुवः ॥ ८१ ॥

उन देवी के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उसी समय से भगवान् केशव इस पृथ्वी मण्डल के सालग्राम नामक पवित्र स्थान में निवास करते हैं ॥ ८१ ॥

सुदर्शनवपुः श्रीमान् भगवान् भक्तवत्सलः।
अद्यापि देशमाहात्म्याद् भक्तानामनुकम्पया ॥ ८२ ॥

वे भक्त वत्सल भगवान् आज भी उस देश के माहात्म्य को बढ़ाने के लिए तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए श्रीमान् सुदर्शन का रूप धारण कर वहाँ निवास करते हैं ॥ ८२ ॥

भुवः प्रार्थनया तत्र नित्यं संनिहितो हरिः।
अत्र तप्तं तपो यत् तत् सहस्रगुणितं भवेत् ॥ ८३ ॥

हे राजन्! इस प्रकार पृथ्वी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उस शालग्राम नामक स्थान में भगवान् सन्निहित हैं, जहाँ की गई तपस्या सहस्रगुनी फलवती होती है ॥ ८३ ॥

मनुष्याः पशवस्तत्र क्रिमयश्च पतत्त्रिणः।
ये मृताः शङ्खचक्राङ्कास्ते भवन्ति न संशयः ॥ ८४ ॥

वहाँ पर मरने वाले मनुष्य, पशु, क्रिमि तथा पक्षीगण भी शङ्ख, चक्र के चिह्न से संयुक्त हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ८४ ॥

भगवान् पुण्डरीकाक्षः सुदर्शनवपुर्धरः।
संनिधत्ते सदा तत्र सन्मङ्गलगुणार्णवः ॥ ८५ ॥

वहाँ स्वयं सन्मङ्गलरूप गुणों के समुद्र भगवान् पुण्डरीकाक्ष सुदर्शन रूप धारण कर निवास करते हैं ॥ ८५ ॥

तद्देशवासिनो मर्त्याः सुरास्तिर्यञ्च एव च।
तरवश्चाचलाः सर्वे चक्रमुद्राङ्कितास्तदा ॥ ८६ ॥

उसी समय से उस स्थान में रहने वाले मनुष्य, देवता, पक्षीगण, वृक्ष एवं सभी (पर्वत आदि) अचल पदार्थ भी चक्रमुद्रा से अङ्कित रहते हैं ॥ ८६ ॥

सरस्वत्यास्तटे पुण्ये सालग्रामे जनार्दनम्।

चक्ररूपं समाराध्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ ८७ ॥

हे राजन् ! पुण्य सरस्वती नदी के तट पर रहने वाले उस सालग्राम नामक स्थान में पूर्वोक्त विधि से आप भी उन चक्ररूपी जनार्दन की आराधना करिए ॥ ८७ ॥

तत्प्रसादात् सपत्नांस्त्वं जहि दुष्टविचेष्टितान् ।
ततो निष्कण्टकां भूमिं पालयैनां पुरा यथा ॥ ८८ ॥

आराधना द्वारा उन्हें प्रसन्न कर आप अपने दुष्ट चेष्टा वाले शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त करिए । फिर जैसे पहले पालन करते थे, उसी प्रकार इस निष्कण्टक पृथ्वी का पालन करिए ॥ ८८ ॥

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो राजानं सपुरोहितम् ।
उपरराम भगवान् दुर्वासा यमिनां वरः ॥ ८९ ॥

संयमशीलों में सर्वश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ भगवान् दुर्वासा, पुरोहित तथा राजा से इतना कह कर चुप हो गए ॥ ८९ ॥

ततः प्रणम्य तं राजा पुरोधाश्चापि जग्मतुः ।
जैत्रं विमानमारुह्य नैचाशाखपुरं प्रति ॥ ९० ॥

फिर पुरोहित एवं राजा दोनों दुर्वासा को प्रणाम कर अपने विजयशील विमान पर चढ़कर नैचाशाख पुर में चले आये ॥ ९० ॥

सालग्रामं ततो गत्वा भगवन्तं जनार्दनम् ।
सम्भृत्य सर्वसम्भारांश्चक्ररूपं जगत्पतिम् ॥ ९१ ॥
पुरोधसैव नृपतिरर्चयामास मन्त्रतः ।

फिर वहाँ से चक्ररूपी जनार्दन की आराधना के योग्य समस्त अर्चा सामग्री ले कर सालग्राम नामक स्थान में जा कर राजा ने पुरोहित के द्वारा मन्त्रपूर्वक सालग्राम की आराधना की ॥ ९१-९२ ॥

अर्चनेन जपेनैव ध्यानेन च महीपतिः ॥ ९२ ॥
तोषयामास मासेन भक्त्या परमया हरिम् ।
आविर्बभूव स तदा चक्ररूपी महीपतेः ॥ ९३ ॥

वहाँ जगतीपति उस राजा ने अर्चना से, जप से तथा ध्यान से मात्र एक महीने में ही अपनी उत्कट भक्ति के द्वारा हरि को प्रसन्न कर लिया । फिर प्रसन्न हुये भगवान् जनार्दन राजा के सामने साक्षात् चक्ररूप में प्रकट हो गए ॥ ९२-९३ ॥

गदामुसलशङ्खारिधनुःपाशाङ्कुशाम्बुजान् ।
अष्टाभिर्बाहुभिर्दिव्यैर्बिभ्रत् पिङ्गललोचनः ॥ ९४ ॥

गदा, मुशल, शङ्ख, अरि, धनुष, पाश, अङ्कुश तथा कमल उनके आठ दिव्य बाहुओं में विराज रहा था, उनके नेत्र पीले वर्ण के थे ॥ ९४ ॥

ऊर्ध्वपिङ्गलकेशाढ्यो रक्तवर्णो महाद्युतिः ।
दंष्ट्राकरालवदनः पङ्कजासनसंश्रितः ॥ ९५ ॥

उनके पिङ्गल वर्ण के केश ऊपर की ओर उठे हुये थे । शरीर का वर्ण रक्त था, जिससे महान् प्रकाश प्रगट हो रहा था । उनका मुख भीषण दाँतों के कारण बड़ा भयानक लग रहा था तथा वे कमल के आसन पर बैठें हुये थे ॥ ९५ ॥

रक्ताम्बरधरो दृप्तः सर्वभूषणभूषितः ।
दिव्यमालाधरोरस्कः सस्मितं समुदैक्षत ॥ ९६ ॥

लाल वर्ण का अम्बर धारण किये हुये वे गर्व से परिपूर्ण लग रहे थे और सर्वाभरणभूषित थे । उनके वक्षःस्थल पर दिव्य माला विराज रही थी और वे सस्मित देख रहे थे ॥ ९६ ॥

समुदियाय ततो हरिवक्षसः
प्रतिहताखिललोकविलोचनम् ।
वलयिताचिररोचिरिवाम्बरात्
परमचक्रमथैन्द्रमतिद्युति ॥ ९७ ॥

इस प्रकार के रूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल से समस्त लोक की दृष्टियों को प्रतिहत करने वाला, इन्द्र धनुष के समान अमित प्रभावशाली, परम चक्र इस प्रकार प्रकट हुआ, जिस प्रकार आकाश से अत्यन्त देदीप्यमान गोलाकार विद्युत्पुञ्ज उत्पन्न हो रहा हो ॥ ९७ ॥

प्रथममेकमथो दश तच्छतं
दशशतक्रमतो नियुतायुते ।
भवदथो बहुधा सकलं नभः
कलितचक्रमभूदतिभीषणम् ॥ ९८ ॥

पहले तो वह एक, फिर दश, फिर सौ, फिर दस सौ, फिर लाख, फिर दस लाख, इस प्रकार क्रमशः उत्पन्न होने वाले चक्रों से सारा आकाश मण्डल परिपूर्ण होकर भयानक दिखाई पड़ने लगा ॥ ९८ ॥

युगपद् विकटाक्षदानवं
विनिहत्याखिलबान्धवैः सह ।
तदिहाविषयं व्यतिष्ठत
क्षणमाप्लुत्य ययौ सुदर्शनः ॥ ९९ ॥

फिर वह चक्र उत्पन्न होते ही विकटाक्ष दानव तथा उसके समस्त परिवार का एक साथ वध कर क्षणभर आकाश में दिखाई पड़ा पश्चात् अन्तर्धान हो गया ॥ ९९ ॥

शशास पृथ्वीं ससमुद्रकाननां
जिताखिलद्वीपवतीं सपत्तनाम् ।

यथा शचीशस्त्रिदिवं सदैवतं
पवित्रकीर्तिर्मणिशेखरस्तथा ॥ १०० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां मणिशेखरोपाख्यान-
निरूपणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २०४८ ॥

* * *

बन्धु बान्धव सहित विकटाक्ष दानव के मारे जाने पर पवित्र कीर्त्ति वह राजा मणिशेखर समुद्र कानन युक्त तथा नगरों से युक्त पृथ्वी का पालन इस प्रकार करने लगे जिस प्रकार इन्द्रदेव देवताओं के सहित स्वर्ग का पालन करते हैं ॥ १०० ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के मणिशेखरोपाख्याननिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३३ ॥

* * *

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म-जन्मान्तरों के अनेक करोड़ों पापों को नष्ट कर देता है हम उन सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वलोकनमस्कृत ।
उक्तं चक्राद्विनिष्क्रान्तमस्त्रजातमिह प्रभो ॥ १ ॥
तेषां स्वरूपं मन्त्राणां सर्वेषां वक्तुमर्हसि ।
विना त्वां न हि पश्यामि वेत्तारं कमपीश्वर ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे सर्व धर्मज्ञ ! हे सर्वलोकनमस्कृत ! हे भगवन् ! हे प्रभो ! आप पहले कह आये हैं कि समस्त अस्त्रसमूह सुदर्शन चक्र से उत्पन्न हुये हैं । अब उन सभी अस्त्रों के सभी मन्त्रों का मुझे निर्देश कीजिये क्योंकि, हे ईश्वर ! आपको छोड़कर अन्य कोई इन मन्त्रों का ज्ञाता नहीं है ॥ १-२ ॥

तदुत्तरकथनाय तेषां गुह्यतमत्वाख्यानम्

अहिर्बुध्न्यः—

महर्षे यत् त्वया पृष्टमेतद् गुह्यतमं परम् ।
सुदुर्लभमनाख्येयं कस्मैचित् सर्वसाधकम् ॥ ३ ॥
तथापि तव वक्ष्यामि भक्तोऽसीति महामुने ।
त्वयाप्येतन्न दातव्यं सुरासुरसमर्चितम् ॥ ४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महर्षे ! आप ने जो पूछा है—वह अत्यन्त गोपनीय है । अत्यन्त दुर्लभ है । सर्वसाधक उन मन्त्रों को किसी से कहना भी नहीं चाहिए तथापि हे

महामुने ! आप मेरे भक्त हैं, इसलिए आपसे कहता हूँ। किन्तु आपको भी देवता एवं असुरों से समर्चित इन मन्त्रों को किसी से नहीं कहना चाहिए ॥ ३-४ ॥

१. ब्रह्मास्त्रम्

फान्तं वह्निसमायुक्तं व्योम हालासमन्वितम्।
मेषद्वयं दन्तयुतं हालाहलमतः परम् ॥ ५ ॥
घनाद्यं वायुपूर्वं च दन्तयुक्तमथान्तिमम्।
सरसं चर्क्षपर्यायं भान्तं भृगुमतः परम् ॥ ६ ॥
अम्बरं वायुसंयुक्तमरिमर्दनमप्यतः।
प्रदीप्तमथ वक्तव्यं परमं च पदं ततः ॥ ७ ॥
तत्ते पदे प्रयोक्तव्ये गायत्र्या मध्यमं ततः।
पदत्रयं प्रयोक्तव्यमेतद् ब्रह्मास्त्रमीरितम् ॥ ८ ॥

वह्नि (र) से समायुक्त फान्त (प) व्योम (ह) जो हाला समन्वित हो इसके बाद दन्त (ओ) से संयुक्त दो मेष (त्र) इसके बाद हालाहल, इसके बाद ...प्रदीप्तं, इसके बाद परमं तत्ते भर्गो देवस्य धीमहि—यह ब्रह्मास्त्र कहा गया है ॥ ८ ॥

२. दण्डचक्रम्

जीवः पञ्चमवर्गादिश्चतुर्थाद्योऽन्तिमान्वितः।
भृगुः सदीर्घो दण्डाद्यो मेषो यष्ठ्यपराह्वयः ॥ ९ ॥
आत्मने च पदं तत्र चक्रायेति पदं ततः।
वर्मान्त एष मन्त्रस्तु दण्डचक्रमितीष्यते ॥ १० ॥

'आत्मने चक्राय कवचाय हुं'—यह दण्डचक्र है ॥ ९-१० ॥

३. कालचक्रम्

वारुणं मायया युक्तं वान्तं वारुणसंयुतम्।
यूपान्तं वह्निना युक्तं मोऽथ साग्निरथात्रियुक् ॥ ११ ॥
धान्तं कालात्मनेत्येतच्चक्रायेति पदं ततः।
फडन्त एष मन्त्रस्तु कालचक्रः प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥

माया (ई) से संयुक्त वारुण (व), वारुण (व) से संयुक्त वान्त (ल), वह्नि (र) से युक्त यूप (?) अग्नि (रं) अभि (द) से युक्त म धान्त (न) फिर कालात्मने चक्राय नमः ॥ ११-१३ ॥

४. धर्मचक्रम्

मोन यक्राच नेत्मर्मा तथा ध नमयेति च।
निलखीत्यपिचाकारो व्युत्क्रमेण प्रदृश्यते ॥ १३ ॥
धर्मचक्रमिमं मन्त्रं विदुः पूर्वे महर्षयः।

तेरहवें श्लोक को व्युत्क्रम से पढ़ने पर 'पाति अखिल नियमन धर्मात्मने चक्राय नमः' यह धर्मचक्र मन्त्र बनता है जिसे प्राचीन महर्षियों ने कहा है ॥ १३-१४ ॥

५. विष्णुचक्रम्

तारपूर्वं च हृदयं भगाद्यन्तौ वनादिमः ॥ १४ ॥
चण्डीशयुक्त आषाढस्तीव्रतेजस इत्यपि ।
पर्यायं लक्षसङ्ख्याया आरेति च पदं ततः ॥ १५ ॥
परमत्र प्रयोक्तव्यं भिन्धीति च पदं ततः ।
भीषयेत्यपि वक्तव्यं विष्णुचक्रमिदं विदुः ॥ १६ ॥

पूर्व में तार (ॐ), तदनन्तर हृदय (नमः) भगादि अन्त में व, फिर चण्डीश (ए) से युक्त आषाढ (त), फिर तीव्रतेजसे, फिर लक्षसङ्ख्या का पर्याय शतसहस्र, फिर आर, फिर परं, फिर भिन्धि, फिर भीषय पद यह विष्णुचक्र कहा जाता है। मन्त्र का स्वरूप— 'ॐ नमः भगवते तीव्रतेजसे शतसहस्रार परं भिन्धि भीषय' ॥ १४-१६ ॥

६. इन्द्रचक्रम्

यषशो कं तथा नीवानदा वन्नपिरूमहि ।
मिन्नेलज्वेति तारं च इन्द्रचक्रमिदं स्मृतम् ॥ १७ ॥

सत्रहवें श्लोक को उल्टा पढ़ने से इस प्रकार इन्द्रचक्र मन्त्र बनता है—'ॐ ज्वलन्नेमि हिमरूपिन् अवदानवान् कं शोषय' ॥ १७ ॥

७. वज्रास्त्रम्

तारं चतुर्मुखः स्वङ्गनाथवान् दीर्घसंयुतः ।
पिनाकी दीर्घसंयुक्तो जलाद्यं मायि सोमराट् ॥ १८ ॥
फलान्तं भीषणपदं दम्भोले इत्यपि क्रमात् ।
वर्मास्त्रयुक्तं विज्ञेयं वज्रास्त्रमिदमुत्तमम् ॥ १९ ॥

तारं (ॐ) चतुर्मुख (ज) दीर्घ (आ) से संयुक्त स्वङ्ग नाथ, फिर दीर्घ संयुक्त पिनाकी (ल) फिर जलाद्यं (?) मायि (ई) सोमराट् जो फलान्त (प) हो, इसके बाद भीषण दम्भोले कवचाय हुं ॥ १८-१९ ॥

८. त्रिशूलम्

हृत्पूर्वं वह्निमायायुगाषाढो मायया बकः ।
वह्निर्भृगुः सचण्डीशः प्रयोक्तव्यस्ततः परम् ॥ २० ॥
अथ शूलवरायेति भीमरूपपदं तथा ।
दारयेति पदं तत्र मारयेति पदं ततः ॥ २१ ॥
भीषयेति शिरोऽन्तं च त्रिशूलमिदमीरितम् ।

पूर्व में हृदय (नमः), फिर वह्नि माया से युक्त आषाढ़ (त) फिर माया (इ) से युक्त बक (श) फिर वह्नि (र) चण्डीश (ए) से युक्त भृगु (स), फिर शूलवराय, फिर भीमरूप,

फिर दारय, तदनन्तर मारय भीषय, तदनन्तर 'शिर (नमः) पद का उच्चारण करना चाहिए। मन्त्र का स्वरूप—'शूलवराय भीमरूप दारय मारय भीषय नमः'। यह त्रिशूलास्त्र कहा गया है ॥ २०-२२ ॥

९. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम्

क्रोधी दण्डी च चण्डीशवीरान्तं वृश्चिकादिमम् ॥ २२ ॥
आषाढयुक् सचण्डीशो हुं फड् ब्रह्मशिरः स्मृतम् ।

क्रोधी (क), दण्डी (न), फिर वृश्चिक, फिर वीरान्त चण्डीश आषाढ़ (त) से युक्त चण्डीश (ख), फिर हुं फट् ॥ २२-२३ ॥

१०. ऐषीकास्त्रम्

हास्वा पक्षि यवद्रावि न्यंसैरप मरेति च ॥ २३ ॥
पकारं व्युत्क्रमेणेदमैषीकं परमं स्मृतम् ।

परम परसैन्यं विद्रावय क्षिप स्वाहा—यह श्रेष्ठ ऐषीकास्त्र कहा गया है ॥२३-२४॥

११. मोदकी

भृगुः क्रोधी पिनाकी च सानन्तो मित्र इत्यपि ॥ २४ ॥
सन्तापनान्ते माया स्यान्मोदकान्ते च तां न्यसेत् ।
कवचास्त्रयुतो मन्त्रो मोदकी स्याद् गदाह्वया ॥ २५ ॥

भृगु (स), क्रोधी (क) एवं अनन्त (आ) के सहित पिनाकी (ल), फिर मित्र, इसके बाद सन्तापन, फिर मोदक, उसके अन्त में माया (ह्रीं), फिर कवचास्त्र (कवचाय हुं) यह गदा मोदकी नामक अस्त्र है ॥ २४-२५ ॥

१२. शिखरी

लोहितश्च भुजङ्गेशो भृगुर्भौतिकसंयुतः ।
मुण्डः सवाली खड्गीशो दीर्घयुक्तश्च पावकः ॥ २६ ॥
उमेशो मायया युक्तः शिखरीति पदं ततः ।
ततो भेदिनि फट् चैव शिखरी स्याद् गदाह्वया ॥ २७ ॥

लोहित 'प', फिर भुजङ्गेश (र), फिर भौतिक ऐ से संयुक्त भृगु (स), मुण्ड (न), वाली (य), दीर्घयुक्त खड्गीश, फिर पावक (र), इसके बाद माया (इ) से युक्त उमेश (ण), इसके बाद 'शिखरि' पद, फिर 'भेदिनि', तदनन्तर हुं फट् यह गदा शिखरी नामक अस्त्र है ॥ २६-२७ ॥

१३. धर्मपाशास्त्रम्

वप्रान्तमाद्यं चण्डस्य मण्डपे मध्यमं ततः ।
दुर्वृत्तेति पदं तत्र गजपर्यायमप्युत ॥ २८ ॥
द्विरावृत्तं बन्धयेति धर्मपाशमिदं विदुः ।

आदि में चण्डस्य, इसके बाद वप्रान्त मण्डपे मध्यमपद, इसके बाद 'दुर्वृत्त' पद, इसके बाद गजपर्याय 'करिण', फिर बन्धय पद की दो बार आवृत्ति यह धर्मपाश अस्त्र है ॥ २८ ॥

१४. कालपाशास्त्रम्

अत्रिर्मायान्वितः श्वेतः ससूक्ष्मेशोऽथ पावकः ॥ २९ ॥
षष्ठस्वरसमायुक्तो लोहितश्च ततः क्रमात् ।
विष्टम्भयेति पदं द्विरावृत्तमतः परम् ॥ ३० ॥
वर्मान्त एष मन्त्रस्तु कालपाश इतीरितः ।

माया (इ) से समन्वित अत्रि (द), फिर श्वेत (फ), सूक्ष्मेश (य) से संयुक्त पावक (र), तदनन्तर षष्ठ स्वर (ऊ) से समायुक्त लोहित (प), इसके बाद 'विष्टम्भय' पद की दो बार आवृत्ति अन्त में वर्म कवचाय हुं यह कालपाश नामक अस्त्र है । मन्त्र का स्वरूप—'दिफयत्र(?) रिपु विष्टम्भय विष्टम्भय कवचाय हुं ॥ २९-३१ ॥

१५. वरुणपाशास्त्रम्

तुन्दिलेति पदं पूर्वं सर्वेति च पदं ततः ॥ ३१ ॥
वारणेति ततो घोररूपेति च पदं क्रमात् ।
वर्म फट् चेति मन्त्रोऽयं वारुणं पाशमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

पूर्व में 'तुन्दिल' पद, इसके बाद 'सर्व' पद, फिर 'वारण', फिर 'घोररूप' पद के बाद कवचाय हुं, यह मन्त्र सर्वश्रेष्ठ वारुण पाश कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप—तुन्दिल सर्व वारण घोररूप कवचाय हुं ॥ ३१-३२ ॥

१६. आद्योऽशनिः

लोहितश्चैव वह्निश्च कूर्मः साषाढकं विषम् ।
भारभूतियुतः क्रोधी ततश्च मतिपश्चिमः ॥ ३३ ॥
अथ हस्तापरं नाम शोषयेति द्विरुच्चरेत् ।
अशनिद्वितयादाद्यमिमं मन्त्रं विदुर्बुधाः ॥ ३४ ॥

लोहित (प), वह्नि (र), कूर्म (च), आषाढ़ (त) के सहित विष (ळ), भारभूति (ॠ) से युक्त क्रोधी (क), इसके बाद 'मतिपश्चिम' पद, इसके बाद हस्त का अन्य नाम (कर), फिर दो बार शोषय, दो अशनिमन्त्रों में यह प्रथम अशनिमन्त्र है, ऐसा बुद्धिमान् लोग कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप—परतळकृ मतिपश्चिम कर शोषय शोषय ॥ ३३-३४ ॥

१७. अन्योऽशनिः

यषभी णरदानोमरप इत्यपरोऽशनिः ।

'पर मनोदारण भीषय' यह द्वितीय अशनि नामक अस्त्र है ॥ ३५ ॥

१८. पैनाकास्त्रम्

अमरेशोऽथ खान्तोऽग्निसंयुक्तो दण्ड इत्यपि ॥ ३५ ॥

अङ्कुशो भिन्धि भिन्धीति पैनाकममितद्युति ।

अमरेश (ॐ), खान्त (क), जो अग्नि (र) से संयुक्त हो, फिर दण्ड (न) जो अङ्कुश (ॠ) से संयुक्त हो और इसके बाद भिन्धि भिन्धि । यह महातेजस्वी पैनाकास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ कर नृ भिन्धि भिन्धि' ॥ ३५ ॥

१९. नारायणास्त्रम्

विष्णुर्दण्डी पुनश्चाद्यो भुजङ्गो दीर्घसंयुतः ॥ ३६ ॥
आषाढो मायया युक्तः सुदर्शनपराह्वयः ।
दारणेति पदं तत्र विश्वमूर्ते इति क्रमात् ॥ ३७ ॥
वर्मास्त्रे च तथा ज्ञेये नारायणमिदं स्मृतम् ।

विष्णु (अ), दण्डी (न), फिर आद्य (अ), फिर दीर्घ से संयुक्त भुजङ्ग (र), फिर माया (इ) से युक्त आषाढ़ (व), फिर सुदर्शन पर पद, तदनन्तर दारण पद, फिर विश्वमूर्त्ते कवचाय हुं फट् यह नारायणास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'अन अरा इव सुदर्शन पर दारण विश्वमूर्त्ते कवचाय हुँ फट्' ॥ ३६-३७ ॥

२०. पाशुपतास्त्रम्

सपिनाकी बको बिन्दुर्महामायासमन्वितः ॥ ३८ ॥
लोहितोऽथ बकश्चायं पञ्चमस्वरसंयुतः ।
कवचास्त्रे प्रयोक्तव्ये एतत् पाशुपतं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

पिनाकी (ल) के सहित बक (श), जो बिन्दु एवं महामाया (ई) से समन्वित हो । इसके बाद लोहित (प), फिर पञ्चम स्वर (उ) से समन्त्रित बक (श)। इसके बाद 'कवचास्मया फट्' यह पाशुपतास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ल शीं पशु कवचाय हुँ फट्' ॥ ३८-३९ ॥

२१. आग्नेयास्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं बहुवर्णाय चेत्यथ ।
वृत्तपिङ्गलशब्दं च लोचनेति ततः क्रमात् ॥ ४० ॥
विश्वामित्रपदं चापि तथा प्रशमनेति च ।
दहेति शोषयेत्येवं प्रयुञ्ज्याद् भीषयेति च ॥ ४१ ॥
एतदाग्नेयमत्युग्रं सुरासुरसुपूजितम् ।

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), फिर बहुवर्णाय यह पद, फिर वृत्तपिङ्गललोचन विश्वामित्र प्रशमन दह शोषय भीषय । यह अत्यन्त उग्र आग्नेयास्त्र है जो देवों एवं असुरों से पूजित है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः बहुवर्णाय वृत्तपिङ्गललोचन विश्वामित्र प्रशमन दह शोषय भीषय' ॥ ४०-४१ ॥

२२. दयितास्त्रम्

बकश्च सूक्ष्मश्चण्डश्च भुजङ्गो दीर्घदण्डवान् ॥ ४२ ॥

व्योम खड्गीशसंयुक्तं वाली प्रक्षेपणेति च ।
वर्मान्तमेतं मन्त्रं तु दयितं परिचक्षते ॥ ४३ ॥

बक (श), सूक्ष्म (य), चण्ड (ख), दीर्घ दण्ड (न) से युक्त भुजङ्ग (र), खड्गीश (व) से युक्त व्योम (ह), फिर वाली (य), इसके बाद 'प्रक्षेपण' पद, अन्त में वर्मान्त (कवचाय हुम्) कहे यह दयित मन्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'श य ख ना र व ह य प्रक्षेपण कवचाय हुँ ॥ ४२-४३ ॥

२३. वायव्यास्त्रम्

वालिनं दण्डसहितं त्रिरावृत्तं विनिर्दिशेत् ।
यक्षरक्षःपदे चैव पिशाचादीनिति क्रमात् ॥ ४४ ॥
अमित्रांश्चेति च पदं ब्रूयाद् दूरमतः परम् ।
द्विरावृत्तं ततः कुर्यादुत्सारयपदं क्रमात् ॥ ४५ ॥
वायव्यमेतद् विख्यातं त्रैलोक्ये सर्ववन्दितम् ।

दण्ड (न) के सहित वाली (य), इसकी ३ आवृत्ति । यक्षरक्षः पिशाचादीन् अमित्रांश्च दूरमुत्सारय-उत्सारय, यह वायव्यास्त्र है जो त्रैलोक्य वन्दित है । मन्त्र का स्वरूप—'नय नय नय यक्षरक्षः पिशाचादीन् अमित्रांश्च दूरमुत्सारय उत्सारय ॥ ४४-४५ ॥

२४. हयशिरोऽस्त्रम्

व्योम दण्डयुतं व्योम वाली शीताद्यमक्षरम् ॥ ४६ ॥
श्वेतो वह्नियुतो दीर्घो भुजङ्गो दीर्घसंयुतः ।
आषाढोऽथ महामायासंयुतो मुण्डमण्डितः ॥ ४७ ॥
कवलीकुर्विति ब्रूयादयं हयशिरोमनुः ।

दण्ड (न) से युक्त व्योम (ह), व्योम (ङ) फिर फिर शीताद्यम् वह्नि (र) से युक्त दीर्घ श्वेत (र्ष), दीर्घ से संयुक्त भुजङ्ग र महामाया (इ) से मण्ड (न्) संयुक्त से आषाढ़ (त), इसके बाद 'कवली कुरु' यह हयशिरा नामक मन्त्र है ॥ ४६-४८ ॥

२५. क्रौञ्चास्त्रम्

नपन्तासरपेत्येष फडन्तः क्रौञ्च ईरितः ॥ ४८ ॥

व्याकुलिताक्षर में मन्त्र प्रतिपादित है—'पर सन्तापन हुँ फट्' यह क्रौञ्च संज्ञक मन्त्र कहा गया है ॥ ४८ ॥

२६. प्रथमा शक्तिः

णिरदाविरप तैंमूप्तदी व्युत्क्रमतो मनुः ।
वर्मान्त एष शक्तिभ्यामाद्यः सर्वारिभीषणः ॥ ४९ ॥

व्याकुलिताक्षर में मन्त्र प्रतिपादित है—'दीप्तमूर्ते·परविदारणि कवचाय हुँ' यह सभी शत्रुओं को मार डालने वाला आद्यशक्ति मन्त्र कहा गया है ॥ ४९ ॥

२७. द्वितीया शक्तिः

नेसेतप्रो र्णिककुशं र्तेमूत्रव इतीरितः ।
व्युत्क्रमेण हुमन्तोऽयं शक्तिभ्यामपरो मनुः ॥ ५० ॥

व्याकुलिताक्षर में मन्त्र प्रतिपादित है—'वज्रमूर्ते शङ्कुकर्णि प्रोतसेने कवचाय हुँ' यह समस्त अरियों को कँपा देने वाला द्वितीय शक्ति मन्त्र है ॥ ५० ॥

२८. कङ्कालास्त्रम्

शिवोत्तमः सबिन्दुश्च क्रोधी दीर्घान्वितोऽनलः ।
भान्तो दीर्घसमायुक्तो वाली फडिति चान्ततः ॥ ५१ ॥
कङ्काल एष कथितो मन्त्रः सर्वभयङ्करः ।

शिवोत्तम (घ) जो सबिन्दु हो, इसके बाद क्रोधी क, फिर दीर्घयुक्त अनल र, फिर दीर्घ समायुक्त भान्त (मा), फिर वाली (य), इसके बाद फट् यह कङ्काल नामक सर्वभयङ्कर अस्त्र है ॥ ५१ ॥

२९. मुसलास्त्रम्

चण्डाद्यन्तौ क्रमान्त्यस्य रूपाद्यन्तौ ततः परम् ॥ ५२ ॥
आवर्तयेद् घातयेति तदेतन्मुसलं स्मृतम् ।

'चण्डरूप चण्डरूप घातय घातय' यह मुसलास्त्र है ॥ ५२ ॥

३०. कापालास्त्रम्

चण्डो भुजङ्गश्चात्रिश्च बको वह्निसमायुतः ॥ ५३ ॥
मुण्डो द्विगण्डो मायी मा मेषद्वयमतः परम् ।
खड्गीशो भौतिकयुतो वह्निश्चण्डीशसंयुतः ॥ ५४ ॥
अस्त्रान्त एष मन्त्रः स्यात् कापालमतिभीषणम् ।

चण्ड (ख), भुजङ्ग (र), अत्रि (द), वक (श), वह्नि (र) से समायुक्त मुण्ड (न्), माया (ई) से युक्त द्विगण्ड (भ), फिर मेष द्वय (मम), भौतिक ऐ से युक्त खड्गीश (व), चण्डीश (ख) से युक्त वह्नि (र) अस्त्राय फट् यह कापालकास्त्र है ॥ ५३-५५ ॥

३१. कङ्कणी

अत्रिः सदीर्घो वह्निश्च मायया तु समन्वितः ॥ ५५ ॥
आषाढोऽनन्तसहितो वह्निर्दीर्घसमन्वितः ।
आद्यश्चतुर्थवर्गस्य चण्डीशेन समन्वितः ॥ ५६ ॥
दमयेति द्विरावृत्त्या मनुरेष तु कङ्कणी ।

दीर्घ के सहित अत्रि (द), माया (इ) से संयुक्त वह्नि (र), अनन्त (आ) से युक्त आषाढ (त), फिर दीर्घ से युक्त अग्नि (र), इसके बाद चतुर्थ वर्ग का आदि (त) जो चण्डीश (ए) से युक्त हो इसके बाद 'दमय' पद की दो आवृत्ति—यह कङ्कणी अस्त्र है ॥ ५५-५६ ॥

३२. वैद्याधरास्त्रम्

हृदयं प्रथमं न्यस्य भगेति च पदं ततः ॥ ५७ ॥
वतीत्येतदपि ब्रूयान्महामाये इति क्रमात् ।
कवचास्त्रे प्रयोक्तव्ये एतद्वैद्याधरं परम् ॥ ५८ ॥

प्रथम हृदय (नमः) का उच्चारण करे, फिर 'भग' पद का, इसके बाद 'वति' पद का, तदनन्तर महामाये, फिर कवचायास्त्राय फट् यह विद्याधरास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'नमः भगवति महामाये कवचायास्त्राय फट्' ॥ ५७-५८ ॥

३३. असिरक्तास्त्रम्

खण्डिताद्यरिपर्यायं पदं शक्ते इति क्रमात् ।
वर्मान्तमसिरक्ताख्यमस्त्रमेतदुदाहृतम् ॥ ५९ ॥

'खण्डित' इसके बाद अरि का पर्याय (शत्रु), फिर शक्ते इस क्रम से पढ़ने के बाद वर्मान्त (कवचाय हुं) यह असिरक्ताख्य नामक अस्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'खण्डितशत्रुशक्ते कवचाय हुँ' ॥ ५९ ॥

३४. गान्धर्वास्त्रम्

क्रोधी पिनाकिसंयुक्तो दण्डभौतिकसंयुतः ।
मोहयेति द्विरभ्यस्य मनुर्गान्धर्व इष्यते ॥ ६० ॥

पिनाकी (ल) से संयुक्त क्रोधी (क), फिर दण्ड (न) जो कि भौतिक (ऐ) से संयुक्त हो, इसके बाद 'मोहय' पद का दो बार उच्चारण करना चाहिए । यह गान्धर्व मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'कलने मोहय मोहय' ॥ ६० ॥

३५. प्रस्थापनास्त्रम्

पञ्चान्तकः सदण्डः स्यादथो गणपते अपि ।
लोकेत्यनन्तरं ब्रूयादमित्रानित्यनन्तरम् ॥ ६१ ॥
प्रस्थापयेत्यथाभ्यस्य प्रस्थापनमुदाहृतम् ।

दण्ड (न) के सहित पञ्चान्तक (ग), इसके बाद गणपते, फिर 'लोके', फिर अमित्रान् प्रस्थापय प्रस्थापय । यह प्रस्थापनास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'गन गणपते लोके अमित्रान् प्रस्थापय प्रस्थापय' ॥ ६१ ॥

३६. प्रशमनास्त्रम्

लोहितः सानलो जीवो महामायासमन्वितः ॥ ६२ ॥
अत्रिर्द्विरण्डः पञ्चारिर्लान्तो मायी तलादिमः ।
मायारूपिणि चेत्येतत् पदमन्ते प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥
एतत् प्रशमनं नाम सर्वशत्रुनिवारणम् ।

अनल (र) के सहित लोहित (प), इसके बाद जीव, इसके बाद महामाया (ई) से

संयुक्त अत्रि (द), फिर द्विरण्ड, पञ्चारि, लान्त (व), मायी (ई), इसके बाद तल, फिर मः, इसके बाद मायारूपिणी पद का प्रयोग करना चाहिए। यह प्रशमनास्त्र है जो समस्त शत्रुओं का विनाशक है ॥ ६३ ॥

३७. सौर्यास्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं परायेति पदं ततः ॥ ६४ ॥
परेति पदमुच्चार्य तेजःपदमनन्तरम्।
निबर्हणाय चेत्येतत् फडन्तं सौर्यमुच्यते ॥ ६५ ॥

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), इसके बाद 'पराय' पद, फिर पर शब्द का उच्चारण कर 'तेजः' का उच्चारण करे, फिर 'निबर्हणाय', इसके बाद हुं फट्। यह सौर्यास्त्र है ॥ ६४-६५ ॥

३८. दर्पणास्त्रम्

अत्रिर्दण्डी च खड्गीशो मायया च समन्वितः।
अत्रिः सदीर्घो वह्निश्च मायी चाषाढकः स्मृतः ॥ ६६ ॥
अत्रिर्लोहितयुक्तश्च वह्निर्वर्म च फट् ततः।
दर्पणास्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वारिबलमर्दनम् ॥ ६७ ॥

अत्रि (द), दण्डी (न), खड्गीश (व) जो माया (ई) से समन्वित हो, अत्रि (द) जो दीर्घ वह्नि (र) हो, इसके बाद (र) माया (इ) से युक्त आषाढ (त), फिर अत्रि (द) जो लोहित (प) एवं वह्नि र से युक्त हो, इसके बाद वर्म (कवचाय), इसके बाद (हुं फट्) यह सर्वारिबल मर्दन नामक अस्त्र है ॥ ६६-६७ ॥

३९. शोषणास्त्रम्

बको दन्ती च शुक्राद्यो मायायुक्तस्तलादिमः।
वैरीति मानसेत्येतत् प्रयोज्यं वर्म चान्ततः ॥ ६८ ॥
एतच्छोषणमित्युक्तं विश्वारातिक्षयङ्करम्।

बक (श), दन्ती (ओ), शुक्राद्य (ष) माया (ई) से युक्त तलादि मः, फिर वैरी मानस, अन्त में वर्म (कवचाय हुं) इसे शोषणास्त्र कहा जाता है, जो समस्त बैरियों का क्षय करने वाला है ॥ ६८ ॥

४०. सन्तापनास्त्रम्

आषाढो दीर्घसंयुक्तो लोहितो माययान्वितः ॥ ६९ ॥
आषाढो लोहितो वह्निर्भृगुर्भौतिकसंयुतः।
मुण्डयुक्तं सवालि स्याद् भृगुराकाश एव च ॥ ७० ॥
स्त्रमूर्ते इति च न्यस्य सन्तापयपदं ततः।
आवर्तयेदिमं मन्त्रं सन्तापनमुदाहृतम् ॥ ७१ ॥

दीर्घ से संयुक्त आषाढ (त), माया (इ) से युक्त लोहित (प), फिर आषाढ़ (त), फिर लोहित (प), तदनन्तर वह्नि (र), फिर भौतिक (ऐ) से संयुक्त भृगु (स), फिर मुण्डयुक्त वाली (य), फिर भृगु, तदनन्तर आकाश (ह), फिर समूर्ते फिर दो बार सन्तापय पद । इसे सन्तापनास्त्र कहते हैं ॥ ६९-७१ ॥

४१. विलापनास्त्रम्

भृगुभौतिकसंयुक्तः सवह्निर्दण्डसंयुतः ।
महाकालः सदीर्घः स्याद् वाली दीर्घान्वितस्ततः ॥ ७२ ॥
आत्मने तु पदं पश्चात् फडन्तः स्याद्विलापनम् ।

भृगु (स) जो भौतिक (ऐ) से युक्त वह्नि (र) तथा दण्ड (न) से युक्त हो, इसके बाद दीर्घ युक्त महाकाल (मा), फिर दीर्घयुक्त वाली (य), फिर आत्मने, फिर हुं फट्—यह विलापनास्त्र है ॥ ७२ ॥

४२. मदनास्त्रम्

हुं येमाहामरर्वादु व्युत्क्रान्तं मदनं स्मृतम् ॥ ७३ ॥

'दुर्वार महामाये हुम्' यह मदनास्त्र है ॥ ७३ ॥

४३. कंदर्पदयितास्त्रम्

चलगण्डमथो व्योम सामराधीश्वरं ततः ।
महाकालः सदन्तः स्याद् व्योम मेषस्ततः परम् ॥ ७४ ॥
मायाविन्निति च ब्रूयादस्त्रायेति पदं ततः ।
फडन्त एष मन्त्रस्तु कंदर्पदयितं स्मृतम् ॥ ७५ ॥

चलगण्ड (व) व्योम (ह) अमराधीश्वर (ऊ) के सहित हो, सदन्त (ओ) के सहित महाकाल (म), फिर व्योम (ह) फिर मेष (न) इसके बाद मायाविन् फिर अस्त्राय फट्, यह कन्दर्पदयितास्त्र है ॥ ७४-७५ ॥

४४. पैशाचास्त्रम्

निहमोरप इत्येष व्युत्क्रान्तः सशिरोमनुः ।
पैशाचमिदमाख्यातमखिलारिविमर्दनम् ॥ ७६ ॥

'परमोहनि नमः' यह पैशाचास्त्र है जो समस्त शत्रुओं का मर्दन करने वाला है ।

४५. तामसास्त्रम्

अजेश्वरं त्रिरावृत्तं सदण्डं प्रथमं पठेत् ।
तिमिरेति पदं ब्रूयाद्ध्वस्तपर्यायमेव च ॥ ७७ ॥
प्रतिसैन्यं पदं पश्चात् संवृण्विति समभ्यसेत् ।
एतत् तामसमित्युक्तमस्त्रं सर्वारिमोहनम् ॥ ७८ ॥

दण्ड (न) के साथ अजेश्वर की तीन आवृत्ति (झं झं झं) फिर 'तिमिर' पद इसके

बाद हस्त का पर्याय (कर), इसके बाद 'प्रतिसैन्य' पद, इसके संवृणु पद की आवृत्ति यह तामसास्त्र है । जिससे सारे शत्रु मोहित हो जाते हैं ॥ ७७-७८ ॥

४६. सौमनास्त्रम्

विष्णुर्दन्ती महाकालः शिवोत्तममतः परम् ।
शक्ते इति पदं पश्चात् परस्तम्भन इत्यतः ॥ ७९ ॥
वर्मास्त्रे च ततो ब्रूयादेतत् सौमनमुच्यते ।

विष्णु (अ) दन्ती (ओ) के सहित महाकाल (म), फिर शिवोत्तम (द्य), फिर शक्ते परस्तम्भन कवचाय हुं अस्त्राय फट् यह सौमनास्त्र है ॥ ७९ ॥

४७. संवर्तास्त्रम्

भुजङ्गो दण्डवान् पश्चाद्रिपूनिति पदं वदेत् ॥ ८० ॥
क्षिपेति द्विः शिरोऽन्तं स्यात् संवर्तमिदमुत्तमम् ।

भुजङ्ग (र) जो दण्डवान् (न्) से युक्त हो, इसके पश्चात् (रिपून्), फिर क्षिप की दो बार आवृत्ति (क्षिप क्षिप), इसके बाद शिर (नमः) यह संवर्त्तास्त्र है ॥ ८० ॥

४८. मौसलास्त्रम्

तिग्मेति वृत्ते इति च पदे पूर्वं पठेत् क्रमात् ॥ ८१ ॥
भिन्धीति च द्विरभ्यस्तं शिरोऽन्तं मौसलं स्मृतम् ।

'तिग्म' इसके बाद 'वृत्ते' इन दो पदों को क्रमशः पढ़ लेने के बाद 'भिन्धि' इस पद का दो बार उच्चारण करे । फिर नमः कहे । यह मौसलास्त्र है ॥ ८१ ॥

४९. सत्यास्त्रम्

तारं प्रणामपर्यायं परमार्थाय इत्यथ ॥ ८२ ॥
रिपूनिति पदं ब्रूयाज्जहीत्येतद् द्विरभ्यसेत् ।
सत्यमस्त्रमिदं प्रोक्तं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ ८३ ॥

तार (ॐ), फिर प्रणाम का पर्याय (नमः), इसके बाद 'परमार्थाय' पद, फिर 'रिपून्' पद, तदनन्तर 'जहि' इसको दो बार पढ़े । यह सत्यास्त्र है । जो समस्त शत्रुओं का विनाशक है ॥ ८२-८३ ॥

५०. मायाधरास्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं देवायेति पदं वदेत् ।
मायात्मने इति पदं पठित्वा तदनन्तरम् ॥ ८४ ॥
फडन्त एष मन्त्रस्तु मायाधरमुदीरितम् ।

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), इसके बाद 'देवाय' यह पद, फिर 'मायात्मने' पढ़ कर 'हुं फट्' यह मायाधरास्त्र कहा जाता है ॥ ८४ ॥

५१. घोरास्त्रम्

शिवोत्तमः सदण्डश्च पुनश्चायं सदन्तकः ॥ ८५ ॥
वह्निस्ततो भुजङ्गः स्यादङ्घ्रीशेन च संयुतः ।
लोहितो दीर्घयुग्वाली चण्डायेति पदं वदेत् ॥ ८६ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु घोरमस्त्रमुदीरितम् ।

शिवोत्तम (घ) सदण्ड (न) के साथ, फिर सदन्त (ओ) के सहित, फिर वह्नि (र), भुजङ्ग (र), जो अङ्घ्रीश (ऊ) से समन्वित हो, फिर दीर्घयुग् लोहित (प), फिर वाली (य), तदनन्तर 'चण्डाय' यह पद, तदनन्तर 'नमः' पद का उच्चारण करे । यह घोरास्त्र कहा जाता है ॥ ८५-८६ ॥

५२. रत्यस्त्रम्

भृगुरौद्रद्विकं रेफं द्विः कृत्वा प्रादिकान् पुनः ॥ ८७ ॥
शिवोत्तमं ससत्यं च भुजङ्गेशस्ततः परम् ।
आषाढोऽमरयुङ्मेषं रत्यस्त्रं च पवित्रकम् ॥ ८८ ॥

भृगु (स) रौद्रद्विक् ङ को दो बार, फिर दो र को उच्चारण करे, फिर प्रादिक, फिर शिवोत्तम घ्, जो ससत्य (ऋ) हो, इसके बाद भुजङ्गेश (र), इसके बाद अमरेश, उनसे युक्त आषाढ़ (त) । यह परम पवित्र रत्यस्त्र कहा गया है ॥ ८७-८८ ॥

५३. अघोरास्त्रम्

चटं वीप्स्य पुनः प्रादिं क्रोधीशं व्योम चाभ्यसेत् ।
वारुणं च तथा कालं द्विर्वामनसबिन्दुकम् ॥ ८९ ॥
मीनमावृत्य मेषं च आषाढं लोहितं पुनः ।
शक्त्याधिकमघोरास्त्रं वर्मास्त्रान्तमुदीरितम् ॥ ९० ॥

च ट को दो-दो बार उच्चारण करे, फिर प्रादि, तदनन्तर क्रोधीश (क), फिर व्योम (ह), फिर वारुण (व), फिर काल (म) दो बार बिन्दु सहित, वामन (व), फिर मीन (ध) की आवृत्ति, तदनन्तर मेष न, आषाढ़ (त), फिर लोहित (प), तदनन्तर 'शक्त्यात्मक', फिर वर्मान्त (कवचाय हुम्) यह अघोरास्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'चट चट (?प्रादि) क ह व मं मं वध वध न त प शत्त्यात्मक कवचाय हुँ' ॥ ८९-९० ॥

५४. सौमास्त्रम्

भृगुं सानुग्रहाधीशं दण्डिनं प्रथमं पठेत् ।
द्विषन्तं पदमुच्चार्य तत उद्वेजयेति च ॥ ९१ ॥
अन्त्यं द्विरभ्यसेदेतत् सौमास्त्रमिदमीरितम् ।

भृगु (स), फिर अनुग्रह (ओ) के सहित दण्डी (न), फिर 'द्विषन्त' पद, तदनन्तर उद्वेजय पद की दो बार आवृत्ति । यह सौमास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सनो द्विपन्त उद्वेजय उद्वेजय' ॥ ९१ ॥

५५. त्वाष्ट्रास्त्रम्

प्रणवं हृदयं पूर्वं भृगुस्तेनैव संयुतः ॥ १२ ॥
क्रोधी पिनाकी मेषश्च मायया च समन्वितः ।
महाकालद्वयं साग्निदीर्घयुक्तं ततः परम् ॥ १३ ॥
भारभूतियुगाषाढो मीनो दीर्घसमन्वितः ।
धाम्ने इति पदं ब्रूयात् परायेति पदं ततः ॥ १४ ॥
एतत् त्वाष्ट्रं समाख्यातं सर्वलोकनमस्कृतम् ।

प्रथम प्रणव (ॐ), फिर हृदय (नम:), फिर उसी से संयुक्त भृगु (स), फिर क्रोधी (क), पिनाकी (ल), फिर माया (इ) से समन्वित मेष (न), इसके बाद दो महाकाल (म), अग्नि जो दीर्घ से संयुक्त हो, फिर भारभूति (ऋ) से युक्त आषाढ़ (त), तदनन्तर दीर्घ से समन्वित मीन (छ), फिर 'धाम्ने' यह पद, इसके बाद 'पराय'। यह त्वाष्ट्र मन्त्र कहा जाता हैं जो सर्वलोक से नमस्कृत है ॥ १२-१४ ॥

५६. दारुणास्त्रम्

विष्णुर्दण्डी पुनश्चाद्यो भुजङ्गो दीर्घसंयुतः ॥ १५ ॥
आषाढो मायया युक्तो ज्वलनो बिन्दुसंयुतः ।
चतुर्मुखश्च क्रोधीशः फडन्तः स्यात्तु दारुणम् ॥ १६ ॥

विष्णु (इ), दण्डी (न), फिर आद्य (अ), फिर दीर्घ से संयुक्त भुजङ्ग (र), फिर माया (इ) से संयुक्त आषाढ़ (त), फिर बिन्दु से संयुक्त ज्वलन, फिर चतुर्मुख (ज), फिर क्रोधीश (क), फिर 'हुं फट्' यह दारुणास्त्र है ॥ १५-१६ ॥

५७. भगास्त्रम्

विपक्षादिममध्यान्तान् पठेद् विभजनेति च ।
प्रवृत्तायेति च पदं भगेति तदनन्तरम् ॥ १७ ॥
आत्मने इति निर्दिश्य भगास्त्रं तत् फडन्तिमम् ।

आदि में, विपक्ष मध्य में, मध्यान्त, इसके बाद विभजन, फिर प्रवृत्ताय भगात्मने, उसके अन्त में फडन्त (हुं फट्) यह भगास्त्र कहा जाता है ॥ १७ ॥

५८. शीतेष्वस्त्रम्

बकस्त्रिमूर्तिसहित आषाढश्च शिखी ततः ॥ १८ ॥
पिनाकी खड्गिको मायी लोहितश्च तथोपरि ।
संवर्तकः सदण्डश्च क्षिपेति द्विः पठेत् ततः ॥ १९ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु शीतेषुरभिधीयते ।

बक (श) जो त्रिमूर्ति (ई) से युक्त हो, इसके बाद आषाढ (व), फिर शिखी (फ), फिर पिनाकी (ल), खड्गिक (व) माया से संयुक्त लोहित (प), फिर संवर्त्तक क्ष जो

सदण्ड (न) के साथ हो इसके बाद दो बार क्षिप पद, अन्त में शिर नमः पढ़े। यह शीतेषु अस्त्र है ॥ ९८-९९ ॥

५९. मानवास्त्रम्

लोहितश्च भुजङ्गश्च दीर्घो वाल्यथ लोहितः ॥ १०० ॥
अग्निर्भान्तश्च वाली च सवह्निर्दीर्घसंयुतः।
अत्रिर्दीर्घसमायुक्तो भेदिने इति च क्रमात्।
भीमरूपाय चेत्युक्त्वा नमोऽन्तं मानवं स्मृतम् ॥ १०१ ॥

लोहित (प), भुजङ्ग (र) जो दीर्घ हो, इसके बाद वाली (य), फिर लोहित (प) फिर अग्नि (र), फिर भान्त (म), फिर वह्नि और दीर्घ से समन्वित वाली (य), तदनन्तर दीर्घ से युक्त अत्रि (द), इसके बाद 'भेदिने' यह पद, फिर 'भीमरूपाय' कह कर अन्त में नमः कहे। यह मानव मन्त्र कहा गया है ॥ १००-१०१ ॥

६०. रौद्रास्त्रम्

दहेति द्विरभ्यस्य पूर्वं प्रचण्ड-
प्रयोगं विधायाथ रूपेति पश्चात्।
ततो रुद्रधाम्ने इति न्यस्य पश्चा-
च्छिरोवृत्तमेतत् परं रौद्रमाहुः ॥ १०२ ॥

'दह' पद का दो बार उच्चारण करे, इसके बाद पूर्व 'प्रचण्ड' पद का प्रयोग कर 'रूप' पद कहे, फिर 'रुद्रधाम्ने' ऐसा कहकर शिरोवृत्त (नमस्कार) कहे। यह रौद्रास्त्र कहा जाता है ॥ १०२ ॥

६१. प्रस्वापनास्त्रम्

अत्रिस्त्रिमूर्तिसहितोऽथ शिवोत्तमश्च-
साग्निर्भृगुस्त्वमरनायकसप्रयुक्तः ।
सुप्त्यन्तिमः करिपदं च ततः प्रयोज्यं
मायात्मिके इति फडन्तमसौ मनुः स्यात् ॥ १०३ ॥
प्रस्वापनं तदिदमाहुरशेषवैरि
सेनासमस्तपरिमोहनकारि मुख्यम्।
इत्थं समस्तपरमास्त्रसमुद्धृतिस्तु
तत्त्वान्मया विरचिता परमेष्ठिसूनो ॥ १०४ ॥

अत्रि (द) जो त्रिमूर्ति (इ) से युक्त हो, इसके बाद शिवोत्तम घ, फिर अग्नि (र) के सहित भृगु (स), इसके बाद अमरनायक (ऊ), सुप्तिकारि, फिर मायात्मिके (ह्रीं), तदनन्तर हुं फट्। इसे प्रस्वापन मन्त्र कहते हैं। जो समस्त वैरियों की सेना को मोहन करने वाले मन्त्रों में प्रमुख है। हे श्रीनारद ! इस प्रकार मैंने तत्त्वों से पूर्ण समस्त परमास्त्रों का उद्धार विरोचित कर कहा ॥ १०४ ॥

तारं सद्योजातमाषाढमन्ते
खड्गेशानं भौतिकेनैव युक्तम्।
वह्निं मायासंवृतं तत्र चोक्त्वा
हृत्पर्यायं वर्म फट् चान्ततः स्यात्॥ १०५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां ब्रह्मास्त्रादिमन्त्रस्वरूपनिरूपणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २१५३ ॥

* * *

तार (ॐ) इसके बाद 'सद्योजात' (ओं) से संयुक्त आषाढ़ (त), फिर भौतिक (ऐ) से संयुक्त खड्गेशान (व), माया (इ) से युक्त वह्नि (र) इतना कह कर हृदय का पर्याय (नमः) कहे, इसके अन्त में हुं फट् कहे ॥ १०५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के ब्रह्मास्त्रादिमन्त्र स्वरूप निर्णय नामक चौंतीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३४ ॥

* * *

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

संहारास्त्रस्वरूपनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी किया गया ध्यान जन्म-जन्मान्तरों के अनेक करोड़ों पापों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

संहारास्त्रस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

भगवन् पूर्वमाख्यातं संहारास्त्राण्यशेषतः ।
सुदर्शनस्यापराङ्गान्निर्जग्मुरिति चेश्वर ॥ १ ॥
तेषां स्वरूपविज्ञाने वर्तते मे कुतूहलम् ।
वक्तुमर्हस्यशेषेण यदि सानुग्रहो मयि ॥ २ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आप पहले कह चुके हैं कि समस्त संहारास्त्र सुदर्शन के अपराङ्ग से उत्पन्न हुये हैं । हे ईश्वर ! उनके स्वरूप को जानने के लिए मुझे बहुत कुतूहल हो रहा है । अतः यदि आप मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं तो उन सभी के स्वरूपों का वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् परमं गुह्यं पुरा नारायणेरितम् ।
भक्तोऽसीति तव स्नेहाद् वक्ष्यामि शृणु नारद ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! यह प्रश्न तो बहुत गोपनीय है । इसे तो श्रीनारायण ने मुझे बताया है । आप मेरे भक्त हो अतः स्नेह वश आपसे कहता हूँ ॥ ३ ॥

१. सत्यवदस्त्रम्

लोहितोऽग्निसमायुक्तः खड्गीशो भारभूतिमान् ।

आषाढयुग्मं मुण्डश्च मायी स्यात् खड्गनायकः ॥ ४ ॥
साग्न्याषाढयुगं पश्चात् क्रोधीशं निर्दिशेत् ततः ।
परमेष्ठिन्निति ब्रूयादथो ऋतमिति क्रमात् ॥ ५ ॥
पिबेति सशिरोमन्त्रः सत्यवानिति विश्रुतः ।

लोहित (प) जो अग्नि (र) से संयुक्त हो खड्गीश (व) भारभूतिमान् (ऋ) आषाढ़ युग्म (त्त जो) मुण्ड (न) मायी (इ) से संयुक्त हो (व) खड्गनायक (?) अग्नि (रेफ) सहित आषाढ़युक् (त), इसके बाद क्रोधीश (क), इसके बाद 'परमेष्ठिन्' ऋतं पिब' शिर (नमः) के सहित यह मन्त्र सत्यवान् कहा जाता है ॥ ४-६ ॥

२. सत्यकीर्त्यस्त्रम्

तारं ततश्च हृदयं सत्यधाम्न इति क्रमात् ॥ ६ ॥
शमयेति द्विरावृत्तं सत्यकीर्त्तिरिति स्मृतम् ।

तार (ॐ), के बाद हृदय (नमः), फिर 'सत्यधाम्ने', फिर 'शमय' पद की दो आवृत्ति (शमय शमय) । यह सत्यकीर्त्ति मन्त्र है ।

मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः सत्यधाम्ने शमय शमय' ॥ ६ ॥

३. धृष्टास्त्रम्

अत्रिः सामरनाथश्च साग्निः पञ्चान्तकः स्मृतः ॥ ७ ॥
महाकालश्च मज्जा च साग्निश्चोमापतिस्तथा ।
प्रसादयेत्यथाभ्यस्तं धृष्टमस्त्रमिदं विदुः ॥ ८ ॥

अत्रि (द) जो अमरनाथ (इ) से युक्त हो, अग्नि (र) के सहित पञ्चान्तक (ग), इसके बाद महाकाल (म), इसके बाद मज्जा (?), फिर अग्नि (र) के सहित उमापति (ण), इसके बाद 'प्रसादय प्रसादय' कहे । यह धृष्टमन्त्र कहा गया है ॥ ७-८ ॥

४. रभसास्त्रम्

क्रोधी पिनाकी मायी स्यात् खड्गी मायासमन्वितः ।
अत्रिः पिनाकी मुण्डश्च दीर्घयुक्तो रसस्तथा ॥ ९ ॥
अग्निर्द्विरण्डश्च भृगुर्दीर्घो वाली ततः परम् ।
नमोऽन्त एष मन्त्रस्तु रभसः परिकीर्तितः ॥ १० ॥

क्रोधी (क) पिनाकी (ल) जो मायी (इ) से युक्त हो, खड्गी (?), माया (ई) के सहित (व), फिर अत्रि (द), फिर पिनाकी (ल), फिर मुण्ड फिर दीर्घयुक्त रस (?), अग्नि (र) द्विरण्ड (?) फिर भृगु (स जो) दीर्घ के सहित हो, फिर वाली (य) इसके अन्त में नमः यह रभस मन्त्र कहा जाता है ॥ ९-१० ॥

५. प्रतीहारतरास्त्रम्

तारं शिरोयुतं मन्त्रं प्रतीहारतरं विदुः ।

६. पराङ्मुखास्त्रम्

लोहितो वह्निसंयुक्तः स्तुतेति च पदं ततः ॥ ११ ॥
स्तोभात्मने इति ब्रूयात् पराङ्मुख इति क्रमात् ।
आयेति च हृदन्तं तु पराङ्मुखमुदाहृतम् ॥ १२ ॥

तार (ॐ) शिरो युतं (नमः) यह प्रतीहारास्त्र मन्त्र कहा जाता है । लोहित (प) जो वह्नि (र) से संयुक्त हो, इसके बाद 'स्तुत' पद, फिर 'स्तोभात्मने', फिर 'पराङ्मुखाय नमः' । यह पराङ्मुखास्त्र कहा जाता है ॥ ११-१२ ॥

७. अवाङ्मुखास्त्रम्

अमरेशस्तथात्रिश्च सवाल्याषाढनायकः ।
विद्रावणायेति पदमवेति तदनन्तरम् ॥ १३ ॥
नतेति च प्रयोक्तव्यं फलाय तदनन्तरम् ।
शिरोयुक्तमिमं मन्त्रं मन्त्रिणोऽवाङ्मुखं विदुः ॥ १४ ॥

अमरेश (उ), अत्रि (द), वाली (य) के सहित आषाढ़ नायक (त), इसके बाद 'विद्रावणाय' यह पद, इसके बाद 'अव', फिर 'नत' इस पद का प्रयोग करना चाहिए, फिर 'फलाय' पद, इसके बाद शिरोयुक्त (नमः) कहना चाहिए । इस मन्त्र को अवाङ्मुख मन्त्र कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

८. लक्षाक्षास्त्रम्

नियुतापरपर्यायं भेदिने इत्यनन्तरम् ।
निरासकेति चावृत्तं पदमायेति चेत्यथ ॥ १५ ॥
हृदयान्तमिमं मन्त्रं लक्षाक्षं परिचक्षते ।

नियुत का अपर पर्याय (दशलक्ष), इसके बाद 'भेदिने', फिर 'निरासकाय' पद की दो आवृत्ति (निरासकाय निरासकाय), इसके बाद हृदयान्त (नमः) यह पद उच्चारण करना चाहिए । इस मन्त्र का नाम 'लक्षाक्ष' कहा जाता है ॥ १५ ॥

९. विषमास्त्रम्

खड्गीशो मायया युक्तः कूर्मो मायासमन्वितः ॥ १६ ॥
आषाढो वह्निसहितो लोहितश्चाग्निसंयुतः ।
भृगुः सदीर्घो वह्निश्च मर्षयेति द्विरभ्यसेत् ॥ १७ ॥
एतद्विषममित्युक्तमस्त्रं परमदुर्जयम् ।

खड्गीश (व) जो माया (ई) से संयुक्त हो, इसके बाद कूर्म (च) जो माया (ई) से संयुक्त हो । फिर आषाढ़ (त) जो वह्नि (र) से संयुक्त हो । इसके बाद लोहित (प) जो अग्नि (र) से संयुक्त हो, इसके बाद भृगु (स) जो दीर्घ हो, इसके बाद अग्नि (र), इसके अनन्तर 'मर्षय' पद दो बार (मर्षय मर्षय) कहना चाहिए । इसे विषमास्त्र कहते हैं जो परम दुर्जय है ॥ १६-१७ ॥

१०. दृढनाभास्त्रम्

शान्तिं पदं न्यसेत् पूर्वं कुर्वित्येतदतः परम् ॥ १८ ॥
निबिडेति ततो न्यस्य गात्रशब्दं ततः परम् ।
विष्कम्भेति शिरोऽन्तं च दृढनाभमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

प्रथम 'शान्ति' पद का उच्चारण करे । इसके अनन्तर 'कुरु' शब्द का, पुनः 'निविड', तदनन्तर 'गात्र', इसके बाद 'विष्कम्भ' शब्द का, तदनन्तर शिरोऽन्त (नमः) शब्द का उच्चारण करे । इसे 'दृढनाभ' अस्त्र कहते हैं ॥ १८-१९ ॥

११. संहारकास्त्रम्

हास्वा यक्राचतसृवि मोन ओं व्युत्क्रमो मनुः ।
संहारकमिदं चास्त्रं विदुः पूर्वे महर्षयः ॥ २० ॥

'ॐ नमो विसृतचक्राय स्वाहा' पूर्व के महर्षियों ने इसे संहारास्त्र कहा है ॥ २० ॥

१२. दशाक्षास्त्रम्

खड्गीशो मायया युक्तस्तेन युक्तो बकस्तथा ।
वान्तो दीर्घसमायुक्त आषाढो मुण्ड एव च ॥ २१ ॥
दीर्घी खड्गेश्वरो वह्निरुमेशो दीर्घसंयुतः ।
वाली हृदन्तो मन्त्रोऽयं दशाक्षः परिपठ्यते ॥ २२ ॥

माया (ई) से युक्त खड्गीश (व) तथा उससे भी संयुक्त वक (श), इसके बाद वान्त (ल) वर्ण, इसके बाद दीर्घ से समायुक्त आषाढ़ (त), इसके बाद 'मुण्ड' पद, फिर दीर्घ वर्ण से संयुक्त खड्गेश्वर (व) और 'वह्नि' (र), फिर दीर्घ संयुक्त उमेश (ण), इसके बाद वाली (य), तदनन्तर हृत (नमः) कहना चाहिए । यह मन्त्र दशाक्ष के नाम से पढ़ा जाता है ॥ २१-२२ ॥

१३. दशशीर्षास्त्रम्

तारपूर्वं च हृदयं चलगण्डं ततो न्यसेत् ।
अम्बरं सामराधीशं वक्त्रायेति पदं ततः ॥ २३ ॥
वज्रवारणशब्दौ च आयान्तं शतवक्त्रकम् ।
शिवोत्तमः सदन्तः स्यादग्निदीर्घसमन्वितः ॥ २४ ॥
भृगुराषाढवान् साग्निः कर्त्तनायेति विन्यसेत् ।
दशेति च पदं पश्चाच्छीर्षायेति पदं ततः ॥ २५ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु दशशीर्षमुदाहृतम् ।

तारपूर्व हृदय (ॐ नमः) इसके बाद चलगण्ड (ब), इसके बाद अम्बर (ह), जो अमराधीश (उ) से युक्त हो, इसके बाद 'वक्त्राय' यह पद, फिर 'वज्र वारण' शब्द, फिर 'आयान्तं शतवक्त्रकम्', फिर सदन्त ओ से युक्त शिवोत्तम (द्य), फिर दीर्घसमन्वित्

अग्नि (र), फिर अग्नि (रेफ) सहित भृगु (स) जो आषाढ़वान् (त) से युक्त हो, फिर 'कर्त्तनाय' यह पद, इसके बाद 'दशशीर्षाय', फिर शिरोन्त (नमः) । यह मन्त्र 'दशशीर्ष' कहा जाता है ॥ २३-२५ ॥

१४. शतोदरास्त्रम्

तारं प्रणामपर्यायं लुप्तास्त्रेति पदं ततः ॥ २६ ॥
जालायेति प्रयोक्तव्यं बहूदरपदं ततः ।
आयेत्यन्ते प्रयोक्तव्यं शतोदरमिदं विदुः ॥ २७ ॥

तार (ॐ), इसके बाद प्रणाम का पर्याय (नमः), इसके बाद 'लुप्तास्त्र' पद, फिर 'जालाय', तदनन्तर 'बहूदराय' यह पद प्रयोग करना चाहिए । इसे लोग शतोदरास्त्र कहते हैं ॥ २६-२७ ॥

१५. पद्मनाभास्त्रम्

लोहितः पावकश्चैव नकुलीशस्ततः परम् ।
आषाढो मायया युक्तः प्रवृत्त इति च क्रमात् ॥ २८ ॥
नाशनायेत्यथाभ्यस्तं स्वस्त्यन्तं पद्मनाभकम् ।

लोहित (प), पावक (र), इसके बाद नकुलीश (ह), इसके बाद माया (ई) से युक्त आषाढ़ (त), इसके बाद 'प्रवृत्तनाशनाय' इस पद को दो बाद उच्चारण कर अन्त में 'स्वस्ति' पद कहे । यह पद्मनाभास्त्र मन्त्र है ॥ २८ ॥

१६. महानाभास्त्रम्

महाकालोऽम्बरं दीर्घं लोहितो दीर्घसंयुतः ॥ २९ ॥
बकः खड्गीश्वरो मायी नाशनायेति च न्यसेत् ।
चक्रात्मन इति ब्रूयात् स्वस्त्यन्तो मन्त्रनायकः ॥ ३० ॥
महानाभमिदं प्राज्ञा वदन्त्यखिलसाधकम् ।

महाकाल (म), तदनन्तर दीर्घ अम्बर (ह), फिर दीर्घ संयुत लोहित (प), फिर बक (श), खड्गीश्वर (व) जो माया (ई) से युक्त हो, इसके बाद 'चक्रात्मने' पद, इसके अन्त में 'स्वस्ति' पद का उच्चारण करे । इस मन्त्र नायक को प्राज्ञ लोग महानाभास्त्र मन्त्र कहते हैं जो समस्त कार्यों का साधक है ॥ २९-३० ॥

१७. दुन्दुनाभास्त्रम्

बकश्चैव महाकालो मायी चाषाढनायकः ॥ ३१ ॥
शूलायेति प्रयोक्तव्यं चण्डनाभाय चेत्यतः ।
स्वस्ति चैव द्विरभ्यस्तं दुन्दुनाभमिदं विदुः ॥ ३२ ॥

बक (श), माया (ई) से युक्त महाकाल (म), इसके बाद आषाढ़ नायक (त), फिर 'शूलाय', फिर 'चण्डनाभाय', इसके बाद दो बार 'स्वस्ति' पद का प्रयोग करना चाहिए । वह दुन्दुनाभास्त्र मन्त्र कहा गया है ॥ ३१-३२ ॥

१८. धृतिमाल्यस्त्रम्

मेषो मायी च साङ्घ्रीशो भृगुश्चैवात्रिरेव च ।
मायायुक्तस्तथाषाढो दीर्घदण्डसमन्वितः ॥ ३३ ॥
क्रोधी च सामरेशः स्याद् बको दीर्घसमन्वितः ।
वाली दीर्घसमायुक्तो निवारितपदं ततः ॥ ३४ ॥
तेजसे इति च ब्रूयात् स्वस्त्यन्तोऽयं महामनुः ।
धृतिमालीति विख्यातः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ ३५ ॥

माया (इ) से संयुक्त मेष (न), अङ्घ्रीश (ऊ) के सहित भृगु (स), फिर अत्रि (द) जो माया (इ) से युक्त हो, इसके बाद आषाढ (त) जो दीर्घ दण्ड (थ) से समन्वित हो, तदनन्तर अमरेश (उ) के सहित क्रोधी (क), फिर दीर्घसमन्वित बक (श), फिर दीर्घयुक्त वाली (य), इसके बाद 'निवारित' पद, फिर 'तेजसे' पद, उसके अन्त में स्वस्ति उच्चारण करे । यह महामन्त्र धृतिमाली नाम से विख्यात है जो सर्वत्र पूजित है ॥ ३३-३५ ॥

१९. रुचिरास्त्रम्

संवर्तकः सामरेशो मीनो बिन्दुसमन्वितः ।
मायी च क्षामयेत्येतदावृत्तं वृत्तिमान् मनुः ॥ ३६ ॥
द्विरावृत्तः प्रहरणं शं तनोतु पदं ततः ।
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु रुचिरः परिकीर्तितः ॥ ३७ ॥

अमरेश (उ) के सहित संवर्त्तक (क्ष), बिन्दु से युक्त मीन (घं), इसके बाद मायी (ई), फिर दो बार 'क्षामय' यह पद, इसके बाद दो बार 'प्रहरण' शब्द, इसके बाद 'शं तनोंतु' पद के अन्त में शिर (नमः) कहे । यह रुचिर मन्त्र कहा जाता है ॥ ३६-३७ ॥

२०. पितृसौमनसास्त्रम्

लोहिंतो मायया युक्त आषाढो भारभूतिमान् ।
देवसारेत्यतः पाठ्यं सर्वाभयपदं ततः ॥ ३८ ॥
प्रदेत्येतत् प्रयोक्तव्यं सर्वशान्तिकराय च ।
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु पितृसौमनसं स्मृतम् ॥ ३९ ॥

माया (इकार) से युक्त लोहित (प), पुनः भारभूति (ऋ) से युक्त आषाढ़ (त), इसके बाद 'देवसार' पद, फिर 'सर्वाभय' पद, फिर 'प्रद', इसके बाद 'सर्वशान्तिकराय', इसके अन्त में शिर (नमः) । यह पितृसौमनस नामक मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'पितृदेवसार सर्वाभयप्रद सर्वशान्तिकराय नमः' ॥ ३८-३९ ॥

२१. विधूतास्त्रम्

तारं तथा च हृदयं खड्गीशो मायया युतः ।
मीनश्चाङ्घ्रीशसंयुक्तं आषाढो दीर्घसंयुतः ॥ ४० ॥
चण्डो मायी पिनाकी चाप्याषाढो दीर्घसंयुतः ।

लोहितश्च करायेति पदं तत उदीर्य च ॥ ४१ ॥
परमेत्यथ धाम्ने च विधूतमिदमुत्तमम् ।

तार (ॐ), इसके बाद हृदय (नमः), माया (इकार) से युक्त खड्गीश (व), अङ्घ्रीश (ऊ) से युक्त मीन (ध), फिर दीर्घ से संयुक्त आषाढ़ (त), फिर माया (इ) से युक्त चण्ड (ख), फिर पिनाकी (ल), तदनन्तर दीर्घसंयुक्त आषाढ़ (त), फिर लोहित (प), फिर 'कराय' पद का उच्चारण कर 'परमधाम्ने' यह उच्चारण करना चाहिए । इस उत्तम मन्त्र का नाम विधूतास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः विधूताखिलतापकराय परमधाम्ने' ॥ ४०-४१ ॥

२२. मकरास्त्रम्

नमस्त्रुटितशब्दौ च पठित्वा प्रथमं ततः ॥ ४२ ॥
शस्त्रास्त्रशब्दौ चोच्चार्यं शक्तये इत्यनन्तरम् ।
शक्तिशालिन इत्युक्त्वा मकरायेति च क्रमात् ॥ ४३ ॥
प्रवृत्तास्त्रपदे चैव महार्णवपदं ततः ।
विभेदिन इति ब्रूयादेतन्मकरमुत्तमम् ॥ ४४ ॥

सर्वप्रथम 'नमस्त्रुटित' इन दो पदों को पढ़कर फिर 'शस्त्रास्त्र' शब्द का उच्चारण कर 'शक्तये', इसके अनन्तर 'शक्तिशालिने' पद, फिर 'प्रवृत्तास्त्रमहार्णव पद', फिर 'विभेदिने' पद कहे । यह सर्वोत्तम मकरास्त्र मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'नमस्त्रुटितशस्त्रास्त्रशक्तये शक्तिशालिने मकराय प्रवृत्तास्त्रमहार्णवविभेदिने' ॥ ४३-४४ ॥

२३. करवीरसमास्त्रम्

तारपूर्वं नमश्चोक्त्वा तिरस्कृतपदं ततः ।
गदाशब्दं समुच्चार्य वीर्यायेति ततः पठेत् ॥ ४५ ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु करवीरसमं स्मृतम् ।

पूर्व में तार (ॐ) और नमः इतना कह कर 'तिरस्कृत' पद, फिर 'गदा' शब्द का उच्चारण कर 'वीर्याय' इतना पढ़े, अन्त में शिर (नमः) पढ़े । यह करवीरसमास्त्र मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ॐ नमः तिरस्कृत गदावीर्याय नमः' ॥ ४५ ॥

२४. धनास्त्रम्

तारं प्रणामपर्यायं लोहितं वह्निसंयुतम् ॥ ४६ ॥
आषाढोऽनन्तसंयुक्तो लोहितो मीन एव च ।
मुण्डः शिवं कुरुपदं द्विरावृत्तं धनं स्मृतम् ॥ ४७ ॥

तार (ॐ) फिर प्रणामपर्याय (नमः), फिर वह्नि (र) से संयुक्त लोहित (प), तदनन्तर अनन्त (आ) से संयुक्त आषाढ़ (त), तदनन्तर लोहित (प), फिर मीन (ध), फिर मुण्ड (न), फिर 'शिवं कुरु' को दो बार पढ़ना चाहिए । 'ॐ नमः प्रतापधन शिवं कुरु शिवं कुरु'—यह धनास्त्र मन्त्र है ॥ ४७ ॥

२५. धान्यास्त्रम्

वेतवाजीर्तरापेति व्युत्क्रमेण समीरितम् ।
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु धान्यमित्युच्यते बुधैः ॥ ४८ ॥

व्युत्क्रम करके पठित 'परार्त्तजीवातवे नमः'—इस मन्त्र को बुद्धिमान् लोग धान्यास्त्र मन्त्र कहते हैं ॥ ४८ ॥

२६. ज्यौतिषास्त्रम्

लोहितो वह्निसंयुक्तश्चण्डाद्यन्तौ ततः क्रमात् ।
बको मुण्डः समायी स्यात् सवह्निर्लोहितस्तथा ॥ ४९ ॥
बको विषं ततो मुण्डो मायी प्रकटितेति च ।
अथ विश्वं पदं चोक्त्वा ततः प्रशमयेति च ॥ ५० ॥
द्विरभ्यस्तमिमं मन्त्रं ज्यौतिषं परिचक्षते ।

वह्नि (र) से संयुक्त लोहित (प), इसके बाद चण्डादि (क) अन्त में, फिर बक (श) मायी (ई) से युक्त मुण्ड, वह्नि (र) के साथ लोहित (प), बको (श), विषं (?), 'मुण्डो मायी प्रकटित' (?) फिर विश्वं पद कहकर 'प्रशमय' पद का दो बाद उच्चारण करे, इसको ज्यौतिषास्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'प्रचण्ड चण्ड प्रकटित(?)विश्वं प्रशमय प्रशमय' ॥ ४९-५१ ॥

२७. कृशनास्त्रम्

क्रोधी पिनाकी मायी स्यादाषाढं च ततः परम् ॥ ५१ ॥
क्रोधी चानन्तसहितो बकयुग् दीर्घमग्निमत् ।
मुण्डो वाली शिरोऽन्तश्च कृशनं समुदाहृतम् ॥ ५२ ॥

क्रोधी (क), पिनाकी (ल), मायी (ई), इसके बाद आषाढ़ (त), फिर अनन्त (आ) सहित क्रोधी (क), फिर दो बार बक (श) जो दीर्घ एवं अग्नि (र) से युक्त हो, फिर मुण्ड (न), फिर वाली (य), इसके बाद शिरोऽन्त (नमः) । यह कृशन मन्त्र कहा गया है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'कलिताकाशशरानय नमः' ॥ ५१-५२ ॥

२८. नैराश्यास्त्रम्

मायी खड्गी शिखी चैव महामायी पिनाकवान् ।
कृतचक्रेति शब्दौ च चक्रायेति च निर्दिशेत् ॥ ५३ ॥
वषडन्तमिमं मन्त्रं नैराश्यं परिचक्षते ।

मायी (इ), खड्गी (व), शिखी (फ), इसके बाद महामायी (ई), पिनाकी (ल), सहित 'कृतचक्र', फिर 'चक्राय' उच्चारण कर अन्त में 'वषट्' शब्द का उच्चारण करे, इसे नैराश्यास्त्र मन्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'विफंलीकृतचक्र चक्राय वषट्' ॥ ५३-५४ ॥

२८. विमलास्त्रम्

खड्गेशः प्रथमं मायी चाषाढो दीर्घवह्निमान् ॥ ५४ ॥
भृगुश्च मायासंयुक्त आषाढो दीर्घसंयुतः ।
मायी चण्डः पिनाकी च सानन्तोऽतः परं क्रमात् ॥ ५५ ॥
भृगुः साषाढदीर्घाग्निर्वाली च तदनन्तरम् ।
विमलायेति चोच्चार्य शिरोऽन्तं विमलं स्मृतम् ॥ ५६ ॥

प्रथम माया (ई) से युक्त खड्गेश (व), दीर्घ वह्नि (र) से युक्त आषाढ़ (त), माया (ई) से संयुत भृगु (स), दीर्घ से युक्त आषाढ़ (त), फिर माया (इ) से संयुक्त चण्ड (स्व), अनन्त (आ) के सहित पिनाकी (ल), इसके बाद भृगु (स), फिर आषाढ़ (त) और दीर्घाग्नि (र), फिर वाली (य), फिर 'विमलाय' का उच्चारण कर अन्त में शिर (नमः) का उच्चारण करे । यह विमलास्त्र मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'वित्रासिताखिलासत्राय विमलाय नमः' ॥ ५४-५६ ॥

३०. योगन्धरास्त्रम्

भृगुर्लान्तः सवह्निश्च मायाशब्दं पठेत् ततः ।
मयास्त्रायेति च पदं तमोबर्हण इत्यपि ॥ ५७ ॥
मूर्तये इति निर्दिश्य योगं चेति ततः पठेत् ।
धरायेति पदं चापि महते इत्यनन्तरम् ॥ ५८ ॥
भीषणायेति च ब्रूयादभ्यस्तं हृदयं ततः ।
योगन्धरमिदं प्रोक्तमस्त्रं निखिलवन्दितम् ॥ ५९ ॥

भृगु (स), सवह्नि लान्त (वर), फिर माया शब्द, फिर 'मयास्त्राय' 'तमोबर्हण' पद, फिर 'मूर्त्तये' का उच्चारण कर 'योगन्धराय' पद, इसके बाद 'महते' पद, फिर 'भीषणाय' यह पढ़े, इसके बाद हृदय को दो बार (नमो नमः) पढ़े । इसे योगन्धरास्त्र मन्त्र कहते हैं जो सबसे वन्दित है ।

मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सर्वमायी मयास्त्राय तमोबर्हणमूर्त्तये योगन्धराय महते भीषणाय नमो नमः' ॥ ५७-५९ ॥

३१. विनिद्रास्त्रम्

मुण्डो मायी तथाकाश आषाढश्च ततः परम् ।
मेषो मायायुतोऽत्रिश्च सदीर्घाग्निस्ततः परम् ॥ ६० ॥
मुद्रायेति शिरोऽन्तोऽयं विनिद्रमभिधीयते ।

मुण्ड (?), मायी (ईकार के सहित) आकाश (ह), इसके बाद आषाढ़ (त), फिर मेष (न) जो माया (ई) से युक्त हो, अत्रि (द) जो दीर्घ सहित अग्नि (र) से युक्त हो, फिर 'मुद्राय' इसके अन्त में शिर (नमः) । इसे विनिद्रास्त्र मन्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'निहतनिद्रा मुद्राय नमः' ॥ ६० ॥

३२. नैद्रास्त्रम्

विषमग्न्यनिलोपेतं सषष्ठस्वरबिन्दुकम् ॥ ६१ ॥
पिण्डमेतच्छिरोऽन्तं च नैद्रमस्त्रविदो विदुः ।

अग्नि (र), अनिल (य) से युक्त विष (?), बिन्दु के सहित षष्ठस्वर (ॐ), फिर 'पिण्डम्' अन्त में शिर 'नमः' कहे । इसे नैद्रास्त्र कहते हैं । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'रय ? ॐ पिण्डं नमः' ॥ ६१ ॥

३३. प्रमथनास्त्रम्

प्रथमं तारमुच्चार्य हृदयं च ततः परम् ॥ ६२ ॥
विषं ततश्च दण्डीशं मायया च समन्वितम् ।
आषाढं च बकं चैव पठित्वा तदनन्तरम् ॥ ६३ ॥
ततः क्रोधी च साषाढश्चण्डीशेन समन्वितः ।
प्रसादयेत्यथावृत्तमस्त्रं प्रमथनं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

प्रथम तार (ॐ) उच्चारण कर फिर हृदय 'नमः' का उच्चारण करे । फिर विष् इसके बाद माया (ई) संयुक्त दण्डीश (न), फिर आषाढ़ (त) फिर बक (श) पढ़ने के बाद चण्डीश (ए) से संयुक्त आषाढ़ (त) सहित क्रोधी (क) इसके बाद दो बार प्रसादय पद । यह 'ॐ नमः विषधीत शतेक्त प्रसादय प्रसादय' प्रमथनास्त्र मन्त्र है ॥ ६२-६४ ॥

३४. सार्चिर्माल्यस्त्रम्

वरुणेन समायुक्तो दीर्घयुक्तश्चतुर्मुखः ।
ततः पिनाकी सानन्तो लान्तो मायी ततः परम् ॥ ६५ ॥
ज्वालान्तो मायया युक्तः पिनाकी च ततः परम् ।
आद्यं चतुर्थवर्गस्य महासीति पठेत् ततः ॥ ६६ ॥
शक्त इत्यपि वक्तव्यं महामहस इत्यपि ।
मर्षयेति द्विरभ्यस्तं सार्चिर्मालिरयं मनुः ॥ ६७ ॥

वरुण (व) से युक्त दीर्घयुक्त चतुर्मुख (ज), इसके बाद अनन्त (आ) से युक्त पिनाकी (ल), माया (ई) से युक्त लान्त (व), फिर ज्वाला (?) इसके बाद माया (ई) से युक्त पिनाकी (ल), इसके बाद चतुर्थवर्ग का आदि (त), फिर महासीति फिर शक्त, फिर महामहस । फिर दो बाद 'मर्षय', यह सार्चिमाली अस्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'वाजालवी?लीत महासीति शक्त महामहसे मर्षय मर्षय ॥ ६५-६७ ॥

३५. कामरूपास्त्रम्

हास्वा नञ्जभरञ्चासरपत्तवृप्र इत्यपि ।
रस्वा इति व्युत्क्रमेण कामरूपमिदं स्मृतम् ॥ ६८ ॥

व्युत्क्रम से पठित 'स्वारप्रवृत्त परसञ्चार भञ्जन स्वाहा' यह कामरूपास्त्र है ॥ ६८ ॥

३६. कामरुच्यस्त्रम्

ओं नमो इत्युपक्रम्य मुण्डो मायासमन्वितः ।
तृतीयस्वरसंयुक्तश्चण्डो रान्तस्ततः परम् ॥ ६९ ॥
कबन्धेति पदं ब्रूयात् सन्धानायेति चान्ततः ।
शिखान्तोऽयं कामरुचिर्मन्त्रः पूर्वैः समीरितः ॥ ७० ॥

नमो से आरम्भ कर माया समन्वित मुण्ड (न), फिर तृतीय स्वर (इ) से संयुक्त चण्ड (ख), इसके बाद रान्त (ल), फिर 'कबन्ध' पद, तब अन्त में 'सन्धानाय', फिर शिखान्त (शिखायै वौषट्) लगावे । इसे पूर्व के लोगों ने कामरुचि नामक अस्त्र मन्त्र कहा है ।

मन्त्र का स्वरूप—'नमो निखिल कबन्ध सन्धानाय शिखायै वौषट्' ॥ ६९-७० ॥

३७. मोहनास्त्रम्

भौतिकं दण्डसंयुक्तमङ्कुशं च ततो वदेत् ।
मोहवारिणिशब्दं च शिरोऽन्तं मोह उच्यते ॥ ७१ ॥

भौतिक (ऐ) जो दण्ड (थ) से संयुक्त हो, इसके बाद अङ्कुश (?) कहे । इसके बाद 'मोहवारिणि', इसके अन्त में शिर (नमः) कहे । यह मोहनास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'ऐंक्रौंमोहवारिणि नमः' ॥ ७१ ॥

३८. आवरणास्त्रम्

खड्गीशो दीर्घसंयुक्तो वह्निर्मायासमन्वितः ।
आषाढश्च महाकालो व्योम दीर्घान्वितं ततः ॥ ७२ ॥
महाकालश्च सानन्तो वाली चण्डीशसंयुतः ।
शिरोऽन्तोऽयं महामन्त्रः प्रोक्तमावरणं बुधैः ॥ ७३ ॥

दीर्घ से संयुक्त खड्गीश (ध), माया (इ) से समन्वित वह्नि (र), फिर आषाढ़ (त), महाकाल (म), तदनन्तर दीर्घयुक्त व्योम (ह), इसके बाद अनन्त (आ) के सहित महाकाल (म), चण्डीश (ए) से संयुक्त वाली (य), इसके अन्त में शिर (नमः) कहे । इसको बुद्धिमानों ने आवरण नामक महामन्त्र कहा है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'धारित महामाये नमः' ॥ ७२-७३ ॥

३९. जृम्भकास्त्रम्

द्विरण्डौ द्वौ क्रमान्न्यस्य सदण्डौ चतुराननम् ।
मुण्डमुच्चार्य परतः स्वस्तीति पदमुद्धरेत् ॥ ७४ ॥
शिरोऽन्तोऽयं महामन्त्रो जृम्भकः परिकीर्तितः ।

दण्ड (ञ) के सहित दो द्विरण्ड (भ ?) का क्रमशः उच्चारण कर चतुरानन (ज), इसके बाद 'मुण्ड' का उच्चारण करे । तदनन्तर 'स्वस्ति' पद का उच्चारण कर अन्त में

शिर (नमः) कहे । इसे जृम्भक नामक महामन्त्र कहा जाता है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'भञ्ज भञ्जन स्वस्ति नमः' ॥ ७४ ॥

४०. सर्वनाभकास्त्रम्

चण्डोऽनन्तसमायुक्तो मायी चात्रिस्ततः परम् ॥ ७५ ॥
आद्यश्चतुर्थवर्गस्य सेनापदमनन्तरम् ।
जीवातव इति ब्रूयाच्छिरोऽन्तं सर्वनाभकम् ॥ ७६ ॥

अनन्त (आ) से संयुक्त चण्ड (ख), इसके बाद माया (ई) से संयुक्त अत्रि (द), फिर चतुर्थवर्ग का आद्यक्षर (त), इसके बाद सेना पद, फिर 'जीवातवे' इस पद को कह कर अन्त में शिर (नमः) का उच्चारण करे । यह सर्वनाभक नामक मन्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'खादीत सेना जीवातवे नमः' ॥ ७६ ॥

४१. भृशाश्वतनयास्त्रम्

वेगाद्यन्तौ क्रमादुक्त्वा विश्वाद्यं च ततः परम् ।
जितशब्दमथोच्चार्य वैनतेयाय इत्यपि ॥ ७७ ॥
शिरोऽन्तोऽयं मनुः प्रोक्तो भृशाश्वतनया इति ।

आदि अन्त में क्रमशः वेग शब्द का उच्चारण कर इसके बाद 'विश्वाद्यं' पद, फिर 'जित' शब्द का उच्चारण कर 'वैनतेयाय' पद का उच्चारण करे । इसके अनन्तर शिर (नमः) पद का । यह भृशाश्वतनय नामक अस्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'वेग विश्वाद्यं वेगजित वैनतेयाय नमः' ॥ ७७ ॥

४२. सन्धानास्त्रम्

भृगुश्च वरुणः साग्निर्मुण्डो मायी ततः क्रमात् ॥ ७८ ॥
खड्गीशः साग्निदीर्घश्च लोहितोऽथ उमापतिः ।
शं कुर्विति द्विरभ्यस्तो मन्त्रः सन्धानमुच्यते ॥ ७९ ॥

भृगु (स), अग्नि (र) के सहित वरुण (व), फिर माया (इ) से युक्त मुण्ड (न), फिर खड्गीश (व) जो अग्नि (र) तथा दीर्घ से युक्त हो, उसके बाद लोहित (प), फिर उमापति (ण) इसके बाद दो बार 'शं कुरु' कहे । यह मन्त्र सन्धानास्त्र है । मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सर्व निर्वापण शं कुरु शं कुरु' ॥ ७८-७९ ॥

४३. वारुणास्त्रम्

भृगुर्लान्तोऽग्निसहितो दण्डेन च समन्वितः ।
भृगुर्व्योमाथ जीवश्च वरुणेन समन्वितः ॥ ८० ॥
शिरोऽन्त एष मन्त्रस्तु वारुणं परिकीर्तितम् ।

भृगु (स) जो लान्त (व) और अग्नि (र) से तथा दण्ड (अनुस्वार) संयुक्त हो, फिर भृगु (स), व्योम (ह), वरुण (व) से समन्वित जीव (?), इसके अन्त में शिर (नमः) पद

का उच्चारण करे। यह मन्त्र वारुणास्त्र नाम से प्रसिद्ध है। मन्त्र का स्वरूप इस प्रकार है—'सर्वं सह .... नमः' ॥ ८० ॥

अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वजिज्ञासया नारदेनाहिर्बुध्न्यस्तुतिः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश सर्वलोकनमस्कृत ॥ ८१ ॥
सर्वाध्यक्षाप्रमेयात्मन्नचिन्त्यज्ञानगोचर ।
त्वामाश्रित्य सुराः सर्वे लभन्ते काङ्क्षितं फलम् ॥ ८२ ॥
त्वत्तः सर्वं समुद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
त्वयैव पालितं सर्वं संहृतं च महेश्वर ॥ ८३ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन्! हे देवेश! हे लोकनमस्कृत! हे सर्वाध्यक्ष! हे अप्रमेयात्मन्! हे अचिन्त्यज्ञानगोचर! आपका आश्रय प्राप्त कर सभी देवता अपना अभीष्ट प्राप्त करते हैं। हे भगवन्! यह समस्त स्थावरजङ्गमात्मक जगत् आपसे ही उत्पन्न हुआ है। हे महेश्वर! यह जगत् आप ही से पालित है और आप ही से संहार को प्राप्त होता है ॥ ८१-८३ ॥

त्वमादिः सर्वजगतामनादिस्त्वं जगन्मय ।
पुरुषस्त्वं त्वमव्यक्तो व्यक्तस्त्वं विश्वभावन ॥ ८४ ॥
यज्ञस्त्वमिज्यो यष्टा त्वमग्नयस्त्वं त्वमाहुतिः ।
वषट्कारस्त्वमोंकारो वेदवेद्यस्तथा भवान् ॥ ८५ ॥
त्वत्त एव च भूतानि प्रवर्तन्ते महेश्वर ।
करणं कारणं कर्ता कार्यं कर्म फलं विभो ॥ ८६ ॥
त्वमेव भूतं भव्यं च भवच्च परमेश्वर ।
निर्गुणस्त्वं जगत्सृष्टौ जुषमाणो गुणानसि ॥ ८७ ॥
अणीयसामणीयांस्त्वं महांश्च त्वं महीयसाम् ।
अनुरक्तस्त्वयीशान प्रयाति परमां गतिम् ॥ ८८ ॥
अपरक्तो व्रजत्येव निरयं विकृतिर्न ते ।
कलाकाष्ठामुहूर्तादिकालश्च त्वं कलात्मकः ॥ ८९ ॥

हे जगन्मय! आप इस जगत् के आदि हैं, परन्तु स्वयं अनादि हैं। आप ही अव्यक्त पुरुष हैं और हे विश्वभावन! आप ही अग्नियाँ हैं, आप ही आहुति हैं, आप ही वषट्कार और ओङ्कार हैं तथा वेदवेद्य भी आप ही हैं। हे महेश्वर! समस्त जीव आप ही से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। हे विभो! आप ही करण, कारण, कर्त्ता, कार्य और कर्मफल भी हैं। हे परमेश्वर! आप ही भूत, भव्य तथा भवत् हैं और आप निर्गुण भी हैं। किन्तु जगत् की सृष्टि में प्रवृत्त होने से सगुण भी हैं। आप अणुओं में परमाणु हैं, महत्तरों से भी महान् हैं। हे ईशान! जो लोग अनुरागपूर्वक आपकी भक्ति करते हैं वे मोक्ष प्राप्त कर

लेते हैं। किन्तु जो आप में अनुरागपूर्वक भक्ति नहीं करते वे घोर नरक में जाते हैं। हे देव! आप में कोई विकार नहीं है। आप ही कला, काष्ठा एवं मुहूर्त्तादि काल हैं और कलात्मक हैं॥ ८४-८९॥

सर्वदा सर्वभूतेषु निवसन्नपि शङ्कर।
न लिप्यसे तद्विकारैः पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ ९०॥
करामलकवत् सर्वं सर्वदा कलयस्यतः।
प्रोक्तवानसि सर्वास्त्रस्वरूपं पृच्छतो मम॥ ९१॥

हे शङ्कर! आप समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में सर्वदा निवास करते हुये भी उसके विकार से उसी प्रकार लिप्त नहीं होते जिस प्रकार कमल का पत्ता जल में रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता। आपको सारा ज्ञान करामलकवत् भासित होता है। मैंने जो पूछा था कि सर्वास्त्र का स्वरूप क्या है उसका उत्तर आपने दिया॥ ९०-९१॥

अस्त्राणां मूर्तत्वामूर्तत्वप्रश्नः

किमेषां मूर्तयः सन्ति किं वामूर्तान्यमूनि वै।
छेत्तुमर्हसि देवेश तमिमं संशयं विभो॥ ९२॥

अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन अस्त्रों की कोई मूर्ति है अथवा ये सभी बिना मूर्ति के हैं? हे विभो! आप मेरे इस संशय को दूर करे॥ ९२॥

तेषां मूर्तत्वप्रतिपादनम्

अहिर्बुध्न्यः—

तेषां भवन्ति गात्राणि भीमरूपाणि नारद।
वक्रभीषणदंष्ट्रोग्रमुखत्रस्तजनानि वै॥ ९३॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद! उन अस्त्रों के शरीर महा भयानक होते हैं। टेढे एवं भयावने दाँतों के कारण उनके उग्रमुख से त्रस्त हुए जन भयान्वित हो जाते हैं॥ ९३॥

भीषिताघूर्णितारक्तवृत्तनेत्रयुतानि वै।
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशकेशभीमानि नारद॥ ९४॥
कानिचिद्धूम्रवर्णानि भास्कराभानि कानिचित्।
कानिचिच्छुक्लवर्णानि वह्निकल्पानि कानिचित्॥ ९५॥
महापरिघसङ्काशभीमरूपैः करैः परैः।
यथास्वं धृतशस्त्राणि महान्ति बलवन्ति च॥ ९६॥
वेगवन्ति प्रमाथीनि वैरिदर्पद्रुहाणि च।
उपासितानि सततं सुरासुरवरैरपि॥ ९७॥
एवंभूतान्यधिष्ठाय गात्राण्यस्त्राणि नारद।
विचरन्ति यथाकाममकुतोभीतिमन्ति च॥ ९८॥

वे भयदायी घूरते हुये रक्त वर्ण वाले गोले गोले नेत्रों से युक्त रहते हैं। हे नारद!

उनके केश भयानक और विद्युत्पुञ्ज के समान चमकीले होते हैं। किसी का शरीर धूम्रवर्ण तो किसी का शरीर सूर्य के समान रक्त वर्ण होता है। किसी का शरीर शुक्ल वर्ण तो किसी का शरीर अग्नि के वर्ण का होता है। वे अपने परिघा के समान विशाल विशाल भयानक हाथों में स्वयं महान् एवं बलवान् ऐसे शस्त्र धारण किये रहते हैं जो वेगवान्, प्रमाथी एवं शत्रुओं के दर्प का विनाश करने वाले होते हैं। बड़े-बड़े देवता तथा असुर के द्वारा जिनकी उपासना की जाती है। हे नारद! वे अस्त्र इस प्रकार के शरीर धारण कर अपनी इच्छानुसार घूमते रहते हैं। उनको किसी का भय नहीं रहता (= अकुतोभय) है ॥ ९८ ॥

अकलितमहिमानि भीषणानि
ज्वलितवपूंषि समुद्यतायुधानि।
अविहतगमनानि चास्त्रमुख्या-
न्यनवरतं भुवनेषु सञ्चरन्ति ॥ ९९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां संहारास्त्रस्वरूप-
निरूपणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २२५२ ॥

* * *

हे नारद! उनकी महिमा को कोई कह नहीं सकता। वे महा भयानक होते हैं। आयुधों से समुद्यत रहने के कारण उनका शरीर देदीप्यमान रहता है। उन अस्त्रमुख्यों का गमन बेरोक-टोक अप्रतिहत गति से चलता रहता है और वे निरन्तर सारे जगत् में घूमते हैं ॥ ९९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के संहारास्त्र
निरूपण नामक पैंतीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३५ ॥

* * *

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

राज्ञां सुदर्शनयन्त्राराधनविधानकेशवादि-गुणप्रधानभाववव्यवस्थापनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का मात्र एक बार किया गया ध्यान साधक के जन्म-जन्मान्तर में किये गए अनेक करोड़ों पाप समूहों को नष्ट करता है, हम सुदर्शन के उस दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

सौदर्शनयन्त्रस्य पूर्वापराङ्गध्यानार्चनप्रकारप्रश्नः तदुत्तरकथनम्

नारदः—

भगवन् कथिताः सर्वे सर्वास्त्राणां महौजसाम् ।
प्रवर्तकास्तथा मन्त्रास्तथैव च निवर्तकाः ॥ १ ॥
एतच्च कथितं सर्वं सर्वज्ञेन त्वया पुरा ।
सौदर्शनं महायन्त्रमर्चनीयं महात्मभिः ॥ २ ॥
उक्तेनैव प्रकारेण चतुर्वर्गफलार्थिभिः ।
राजा चेदर्चयेदेतत् सौदर्शनमुखं परम् ॥ ३ ॥
उभयं चास्य यन्त्रस्य मुखमाराधयेदिति ।
कथमस्यापराङ्गं च ध्यायेत् कुर्याच्च वा कथम् ॥ ४ ॥
छेत्तुमर्हसि सन्देहमिमं मम महेश्वर ।

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने समस्त तेजस्वी अस्त्रों के प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक अस्त्रों को कहा । इतना ही नहीं प्रसङ्गतः आपने यह भी कहा कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप चतुर्वर्ग चाहने वाले महात्माओं को सुदर्शन महायन्त्र की उक्त विधि से अर्चना करनी चाहिए । राजा को सौदर्शन मुख नामक यन्त्र की अर्चना करनी चाहिए अथवा इस यन्त्र के उभयमुख की आराधना करनी चाहिए । अतः हे भगवन् ! इस मन्त्र का अपराङ्ग क्या है? कैसे इसे बनाना चाहिए? और किस प्रकार इसका ध्यान एवं अर्चना करनी चाहिए? मेरे इस सन्देह को, हे महेश्वर ! आप निवृत्त करे ॥ १-४ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

एवं ध्यात्वार्चयेद्राजा यन्त्रमेतन्महाद्युति ॥ ५ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! राजा इस प्रकार ध्यान कर महातेजस्वी इस यन्त्र की अर्चना करे ॥ ५ ॥

तत्र पूर्वाङ्गे यन्त्रमध्ये सुदर्शनध्यानम्

यन्त्रमध्ये महात्मानं पुरुषं भीमलोचनम् ।
ऊर्ध्वपिङ्गलकेशाढ्यं ज्वलद्दंष्ट्रोज्ज्वलाननम् ॥ ६ ॥
तिष्ठन्तमष्टभिर्युक्तं भुजैः परमशोभनैः ।
चक्राब्जमध्ये तिष्ठन्तमवष्टभ्य महद्धनुः ॥ ७ ॥
समभङ्गमुदाराङ्गं रक्ताम्बरधरं विभुम् ।
शङ्खचक्राब्जमुसलपाशाङ्कुशगदाधरम् ॥ ८ ॥
सर्वाभरणसंयुक्तं पुष्पमालाविभूषितम् ।

जिनके केश ऊपर की ओर उठे तथा पिङ्गल वर्ण के हैं, चमकते जाज्वल्यमान दाँतों से ज्वाला युक्त मुख वाले, अत्यन्त शोभायुक्त आठ हाथों वाले अपने महान् धनुष् को पृथ्वी पर टेक कर उसके सहारे चक्र कमल के मध्य खड़े, उदार अङ्गों वाले रक्ताम्बर धारण किये हुये शङ्ख, चक्र, कमल, मुसल, पाश, अङ्कुश और गदा अपने हाथों में लिए सर्वाभरणभूषित, पुष्पमाला से विभूषित, पूर्वाङ्ग वाले, यन्त्र के मध्य में भयानक नेत्र वाले ऐसे महात्मा पुरुष सुदर्शन का ध्यान करे ॥ ६-८ ॥

परितः केशवादिद्वादशमूर्तिध्यानम्

सुदर्शनमिमं ध्यात्वा परितश्चिन्तयेत् ततः ॥ ९ ॥
तिष्ठतो यदि वासीनान् केशवादीन् सविग्रहान् ।
उक्तेनैव प्रकारेण भूषणैरायुधैर्युतान् ॥ १० ॥
प्रधानभूतान् परमान् यथाकामनिवेशितान् ।

इस प्रकार सुदर्शन के स्वरूप का ध्यान कर उसके चारों ओर खड़े-खड़े अथवा बैठे हुये विग्रह युक्त ऊपर कहे गए भूषणों एवं आयुधों से युक्त केशवादि का ध्यान करे (द्र० २६-४६) । ये सभी यन्त्र के प्रधान भूत हैं और यथाकाम तत्तत्स्थानों पर निविष्ट किये गए हैं ॥ ९-११ ॥

ततो विष्ण्वादिषोडशमूर्तिध्यानम्

ततः षोडशभिर्देवैर्विष्ण्वाद्यैरायुधान्वितैः ॥ ११ ॥
मूर्तिमद्भिश्च सोद्योगैः सर्वाभरणसंयुतैः ।
एतैः पञ्जरितं ध्यायेद्यन्त्रराजमनुत्तमम् ॥ १२ ॥

विष्णु आदि षोडश मूर्तियों का ध्यान—इसके बाद विग्रहवान् उद्योग में सर्वदा निरत, सर्वाभरणभूषित, षोडश देवताओं से युक्त विष्णु आदि का ध्यान करे । इन सभी के भीतर सर्वश्रेष्ठ यन्त्रराज का ध्यान करना चाहिए ॥ ११-१२ ॥

परितो मूर्तिमत्संहारास्त्रध्यानम्

परितस्तान्यपि ध्यायेन्मूर्तिमन्ति महान्ति च।
संहारास्त्राणि सर्वाणि साञ्जलीन्यद्भुतानि च॥ १३ ॥
अकुतोभयशालीनि शक्तिमन्ति समन्ततः।

इसके बाद चारों ओर मूर्ति धारण करने वाले महान् संहार कारक अद्भुत उन सभी संहारास्त्रों का ध्यान करे जो अञ्जलि बाँधे हुये हैं और अकुतोभय तथा सर्वशक्तिमान् हैं॥ १३-१४ ॥

ततो मूर्तिमत्प्रवर्तकास्त्रध्यानम्

ततः प्रवर्तकान्येवं ध्यायीतास्त्राणि नारद॥ १४ ॥
मूर्तान्यत्तुमिवाशेषभुवनान्युज्ज्वलानि च।

हे नारद ! उन संहारास्त्रों के बाद प्रवर्त्तक अस्त्रों का ध्यान करे। जो विग्रह धारण किये हुये, सारे भुवनों को लीलने के लिए उद्यत के समान हैं और स्वप्रकाश युक्त हैं।

ततो नारसिंहध्यानम्

एवं चक्रक्रमेणैतदभिध्यायोपरि स्मरेत्॥ १५ ॥
दधानं नारसिंहस्य वपुर्नारायणं परम्।
मूलकोशं परं देवमधोभागेऽथ चिन्तयेत्॥ १६ ॥
यन्त्रं चक्राकृति श्रीमद् दीप्तनेमिसमन्वितम्।
नेमेरस्य चतुर्दिक्षु महाज्वालां विचिन्तयेत्॥ १७ ॥
चक्रकौमोदकीशार्ङ्गखड्गहस्तान् स्मरेत् क्रमात्।
एवमेकमुखं ध्यायेद्यन्त्रस्यास्य महाद्युतेः॥ १८ ॥

इस प्रकार चक्र के क्रम से इतने का ध्यान कर सबसे ऊपर नृसिंह रूप धारण किये हुये नारायण का स्मरण करे, जो सृष्टि के मूलकोश देवता हैं। इसके बाद उनके अधोभाग में अत्यन्त श्रीसंयुक्त दीप्त नेमि वाले चक्राकृति यन्त्र का स्मरण करे। इस चक्र की नेमि के चारों ओर जलती हुई महती ज्वाला का स्मरण करे, इसके बाद चक्र, कौमोदकी गदा, शार्ङ्ग एवं खड्ग हाथों में लिए आयुध पुरुषों का स्मरण करे। इस प्रकार परम प्रकाशक इस यन्त्र के एक मुख का ध्यान करना चाहिए॥ १५-१८ ॥

अपराङ्गध्यानम्

अपराङ्गं महामन्त्रैः सर्वतः समलङ्कृतम्।
अन्तस्तारं समारभ्य यदि वा विष्णुपञ्जरम्॥ १९ ॥
पूर्वोक्तं तद्विना मूर्तेस्तत्तन्मन्त्रसमुच्चयम्।

इसके बाद महामन्त्रों से समलङ्कृत अपराङ्ग का ध्यान करना चाहिए। अन्तः तार (ॐ) से आरम्भ कर विष्णुपञ्जर पर्यन्त मन्त्र पहले कहा जा चुका है जो मूर्ति के बिना केवल तत्तन्मन्त्रों का समुच्चय मात्र है॥ १९ ॥

अपराङ्गे सर्वास्त्राणां मन्त्रमात्रध्यानम्

यथास्थानं स्मरेत् तस्य पर्यन्ते चिन्तयेत् ततः ॥ २० ॥
सर्वसंहरणास्त्राणां मन्त्रानेव च केवलम् ।
तदनन्तरमन्येषामस्त्राणां च प्रवर्तकम् ॥ २१ ॥
मन्त्रजालमभिध्याय सुनेमि सुरपूजितम् ।
महायन्त्रं महाशक्ति चक्ररूपमनुत्तमम् ॥ २२ ॥
उक्तैर्विशेषणैर्जुष्टं सर्वकामैकसाधनम् ।
अस्य चक्रस्य मध्ये यद्वर्तते पुरुषः परः ॥ २३ ॥
तस्मान्निगद्यते लोके चक्रवर्तीति सूरिभिः ।

तदनन्तर उस अपराङ्ग में जिसका जहाँ स्थान है उस स्थान पर चारों ओर सभी संहार कारक मन्त्रों का केवल स्मरण करे । इसके बाद अन्य अस्त्रों के प्रवर्त्तक मन्त्र का स्मरण करे । इस प्रकार तत्तन्मन्त्र समूहों का ध्यान कर सुन्दर नेमि वाले महाशक्तिमान् चक्ररूपधारी सर्वश्रेष्ठ यन्त्र का स्मरण करे जो उक्त विशेषण से विशिष्ट एवं सभी कामनाओं की प्राप्ति का एकमात्र साधन है । ऐसे चक्र रूप यन्त्र के मध्य में उस सर्वश्रेष्ठ पुरुष का निवास है इसलिए विद्वान् लोग उन्हें चक्रवर्त्ती कहते हैं ॥ २०-२३ ॥

एतद्यन्त्राभ्यर्चनाद्राज्ञां चक्रवर्तित्वलाभः

तस्मादभ्यर्चयेदेतद्यो राजा भक्तिसंयुतः ॥ २४ ॥
सोऽचिरेणैव कालेन चक्रवर्तित्वमाप्नुयात् ।

इस कारण जो राजा भक्ति से संयुक्त होकर इस यन्त्र की पूजा करता है वह अल्प काल में ही चक्रवर्त्तित्व प्राप्त कर लेता है ॥ २४ ॥

अन्यैरपि राजहितैषिभिरेतदर्चनं कार्यम्

राजा वा राजभृत्या वा मन्त्रिणो वाथवा परे ॥ २५ ॥
राज्ञां हितैषिणः सर्वे पूजयेयुरिदं परम् ।

चाहे राजा हो चाहे राजा का भृत्य हो चाहे राजा का मन्त्री हो राजा के हित की इच्छा करने वाले सभी को इस यन्त्र का पूजन करना चाहिए ॥ २५ ॥

अन्येषामपि श्रीकामानामेतदभ्यर्चनम्

अन्ये च ये तु विपुलां श्रियमिच्छन्ति मानवाः ॥ २६ ॥
तैर्नित्यमर्चनीयं स्यादिदं सर्वार्थसाधकम् ।
राज्ञामेव विशेषेण यदेतत् समुदीरितम् ॥ २७ ॥
तद्राजव्यतिरेकेण ये निर्दिष्टास्तु मानवाः ।
तेषां विभूतिर्महती राज्ञा सम्पत्स्यते ध्रुवम् ॥ २८ ॥
लोहैर्वा शिलया वापि यो हि निर्माय पूजयेत् ।
विपुलां श्रियमाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ २९ ॥

आरोग्यं चाश्नुते सर्वे तद्वंश्या दीर्घजीविनः ।

जो मनुष्य महाश्री की इच्छा करते हैं उन्हें इस मन्त्र का अर्चन करना चाहिए, क्योंकि यह सर्वार्थसाधक है । मैंने पूर्व में जो कहा है कि राजा को ही विशेष रूप से इसकी अर्चना करनी चाहिए उसका अर्थ यह है कि जिसका राज्य चला गया हो वे मानव यदि इसकी पूजा करे तो उन राजाओं को अवश्य ही महती विभूति प्राप्त होती है । जो लोहे अथवा पत्थर से इस यंन्त्र का निर्माण कर इसका पूजन करता है उसे महान् लक्ष्मी तो प्राप्त होती ही है वह दीर्घायुष्य तथा आरोग्य भी प्राप्त करता है । उसके वंश में होने वाले सभी दीर्घजीवी होते हैं ॥ २६-३० ॥

द्विमुखयन्त्रार्चने मन्त्रोपदेष्टुर्ब्राह्मणस्यैवाधिकारः

परं मन्त्रोपदेष्टैव ब्राह्मणो द्विमुखं यजेत् ॥ ३० ॥
ज्ञानेन तपसा शक्त्या सोढुं तस्योभयात्मनः ।
स एव शक्नुयात् तस्य प्रभावं परमं मुने ॥ ३१ ॥

हे महामुने ! दूसरों को इस मन्त्र का उपदेश करने वाला ही इस द्विमुख यन्त्र की उपासना करे क्योंकि इस उभयात्मा यन्त्र के परम प्रभाव को वही अपने ज्ञान से, अपनी तपस्या से और अपनी शक्ति से सहन करने में समर्थ है ॥ ३०-३१ ॥

आदित्यमण्डलाक्ष्यादिस्थानां पुरुषाणामभिन्नत्वम्

योऽसावादित्यबिम्बस्थः पुरुषो दृश्यते परः ।
हिरण्मयो य एवान्तरक्षिण्यपि च दृश्यते ॥ ३२ ॥
सोऽप्ययं नाभिचक्रस्य मध्ये यो वर्तते पुमान् ।

आदित्य मण्डल रूप बिम्ब में रहने वाला जो हिरण्मय पर पुरुष दिखाई पड़ता है, जो नेत्र के भीतर भी प्रकाश रूप से विद्यमान् है, वही पर पुरुष परमात्मा नाभिचक्र के मध्य में विद्यमान् है ॥ ३२-३३ ॥

तस्यैव कालचक्रादिप्रवर्तकत्वम्

योऽयं कालाख्यचक्रस्य प्रेरकः पुरुषोऽव्ययः ॥ ३३ ॥
युगचक्रस्य नेतारमेनमेव विदुर्बुधाः ।
एनं महर्षयोऽप्याहुर्जगच्चक्रप्रवर्तकम् ॥ ३४ ॥

जो अव्यय पुरुष कालनामक चक्र का प्रेरक है । वही इस युगचक्र का भी वहन करने वाला है बुद्धिमान् लोग ऐसा ही कहते हैं । महर्षिगण भी इन्हें ही जगच्चक्र का प्रवर्त्तक कहते हैं ॥ ३३-३४ ॥

विमाने संस्थाप्य तस्यैव समभ्यर्चनमैहिकामुष्मिकफलसाधकम्

सर्वलोकैककर्तारं सर्वलोकैकसाक्षिणम् ।
एनं विमाने संस्थाप्य चक्रवर्तिनमव्ययम् ॥ ३५ ॥
यः पूजयति तस्यायं लोकश्चामुष्मिको भवेत् ।

सभी लोक के निर्माता, सभी लोक के साक्षी एवं अव्यय इन चक्रवर्त्ती पुरुष को विमान पर स्थापित कर जो साधक पूजा करता है उसके लिए यही लोक स्वर्ग जैसा हो जाता है ॥ ३५ ॥

विमानकरणारम्भस्यापि महाफलकत्वम्

सुदर्शनविमानं यः प्रारभेत महामुने ॥ ३६ ॥
इह सर्वानवाप्यार्थान् विष्णुलोकं स यास्यति ।

हे महामुने ! जो सुदर्शन विमान का निर्माण करता है वह इस लोक के समस्त अर्थों को प्राप्त कर बाद में विष्णु लोक को प्राप्त करता है ॥ ३६ ॥

विमानकरणार्थस्य कर्षणस्यापि सर्वसम्पत्साधनत्वम्

सुदर्शनविमानस्य कर्षणं यः करोति वै ॥ ३७ ॥
तस्यामित्रा विनश्यन्ति सन्ति सर्वाश्च सम्पदः ।

जो सुदर्शन विमान को खींचता है । उसके सारे शत्रु विनष्ट हो जाते हैं तथा उसे सारी सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है ॥ ३७ ॥

आरब्धापरिसमाप्तस्यापि विमानकरणस्यान्ततो मुक्तिसाधनता

अरभ्यायतनं मध्ये विच्छित्त्या विघ्नितो यदि ॥ ३८ ॥
स सार्वभौमः सकलान् भुक्त्वा भोगान् महीतले ।
पुनश्च भक्तश्चक्रस्य शेष निर्वर्तयिष्यति ॥ ३९ ॥
अन्ते वैकुण्ठमासाद्य विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ।

जो सुदर्शन के आयतन का आरभ कर विच्छित्ति (= आलस्य) वशात् विघ्न में पड़ जाता है वह इस पृथ्वी में सभी भोगों को भोगने वाला सार्वभौम हो जाता है । इसके बाद पुनः जन्म लेकर सुदर्शन का भक्त हो चक्र के शेष भाग को पूर्ण करता है और अन्त में वह वैकुण्ठ पुरी प्राप्त कर विष्णु सायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ ३८-४० ॥

साङ्गप्रतिष्ठादिकर्तुः फलपरम्परानिरूपणम्

विमानं परमं कृत्वा प्रतिष्ठाप्य सुदर्शनम् ॥ ४० ॥
ब्राह्मणान् वेदविदुषो वैष्णवान् द्वादशावरान् ।
तच्छेषभूतांस्तत्रैव प्रतिष्ठाप्य च शक्तितः ॥ ४१ ॥
पर्याप्तजीवनान् कृत्वा दत्त्वा भूमिमठादिकान् ।
नित्यं योऽभ्यर्चयत्येनं देवं भूतिसमन्वितम् ॥ ४२ ॥
तस्य प्रतिदिनं भूतिरमर्यादा विवर्धते ।
नीरोगता दीर्घमायुर्लभ्यते नात्र संशयः ॥ ४३ ॥
जन्मान्तरे सार्वभौमो जनित्वा सकलां भुवम् ।
भुक्त्वा कालेन महता तदनन्तरजन्मनि ॥ ४४ ॥

त्रिविष्टपपतिर्भूत्वा भुङ्क्ते चैन्द्रपदं चिरम् ।
ततः क्रमेण लब्ध्वायं तत्तल्लोकेशतां गतः ॥ ४५ ॥
तदन्ते परमं धाम वैष्णवं प्रतिपद्यते ।

जो मनोहर विमान निर्माण कर उसमें सुदर्शन देव को प्रतिष्ठित करता है इतना ही नहीं वेदज्ञ विष्णु दीक्षा सम्पन्न बारह से अधिक ब्राह्मणों को और उनके शेषभूतों (सेवक गणों) को भी अपनी शक्ति के अनुसार वहाँ स्थापित कर उनके जीवन संरक्षण के लिए भूमि एवं मठ आदि का दान करता है और अपने वैभव के अनुसार नित्य सुदर्शन देव की अभ्यर्चना करता है उसका ऐश्वर्य निःसीम होकर प्रतिदिन बढ़ता रहता है । वह नीरोगता तथा दीर्घायुष्य प्राप्त करता है इसमें संशय नहीं । फिर जन्म लेकर वह सार्वभौम होता है और सारी पृथ्वी का बहुत काल तक भोग कर उसके बाद वाले जन्म में स्वर्ग का मालिक बन कर इन्द्रपद का उपभोग करता है । इस प्रकार क्रमशः तत्तल्लोकों का ईश्वर बनकर अन्त में वैष्णव धाम चला जाता है ॥ ४०-४६ ॥

सुदर्शनपुरुषमनाराधयतो नृपत्वं दुर्लभम्

देवमेनमनाराध्य न कश्चिज्जायते नृपः ॥ ४६ ॥

बिना सुदर्शन की आराधना किये कोई राजा नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥

एतदाराधनतारतम्यात् फलतारतम्यम्

एतदाराधनस्यैव तारतम्येन नारद ।
भोगायुषोस्तारतम्यमश्नुते नृपतिर्ध्रुवम् ॥ ४७ ॥

राजा इन्हीं चक्रसुदर्शन की तारतम्य रूप से आराधना कर तारतम्य से प्राप्त होने वाले भोग एवं आयुष्य का उपभोग करता है यह निश्चित है ॥ ४७ ॥

तस्माद्राज्ञामन्येषां चैतदाराधनावश्यकता

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन राजैवैनं समर्चयेत् ।
जात्यायुर्भोगकामाश्च ये चान्ये भुवि मानवाः ॥ ४८ ॥
तेऽप्येतत्पूजया सर्वं काङ्क्षितं प्राप्नुवन्ति च ।

इसलिए केवल राजा ही अपनी सारी शक्ति लगा कर इन सुदर्शन देव की आराधना करे, जिससे उन्हें उत्तमोत्तम जाति, आयु, भोग तथा काम प्राप्त होता रहे । इसके अतिरिक्त पृथ्वी में जो अन्य मानव हैं वे भी इनकी पूजा से अपना अभिलषित प्राप्त करते हैं ॥४८॥

शेषिणः केशवादेः शेषभूतं सुदर्शनं प्रति परिवारतादिकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

सिद्धं सुदर्शनं विष्णोः शेषमायुधसंज्ञितम् ॥ ४९ ॥
कथमस्य परीवाराः केशवाद्याः समीरिताः ।
विष्ण्वाद्या मूर्तिभेदाश्च कथं वा पञ्जरीकृताः ॥ ५० ॥

कथं वा भगवन्मन्त्राः परिवारत्वमागताः ।
इमं च संशयं देव च्छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥ ५१ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे महाराज ! जब यह विष्णु का आयुधभूत उनका शेष (सेवक) सुदर्शन सिद्ध है । तब आप केशवादि को उनका परिवार कैसे कहते हैं? उनके विष्णु आदि मूर्ति भेद किस प्रकार उन्हें अपने में पञ्जरित करते हैं? इतना ही नहीं, हे भगवन् ! मुझे बताइये कि ये मन्त्र किस प्रकार उनके परिवार कोटि में आते हैं? हे देव ! इस समय हमारे इस संशय को दूर कीजिये ॥ ४९-५१ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु तात महाप्राज्ञ रहस्यमिदमुत्तमम् ।
त्वदृते शक्नुयात् प्रष्टुमिममर्थं न कश्चन ॥ ५२ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे तात ! हे महाप्राज्ञ ! यह बहुत बड़ा रहस्य है । आपके अतिरिक्त और कोई ऐसा प्रशन करने में समर्थ नहीं है, अतः इस रहस्य को सुनिए ॥५२॥

भगवत इव तत्सङ्कल्परूपस्य सुदर्शनस्याप्यनादित्वापरिच्छेद्यत्वे

यथा नारायणो देवः पुरुषः पुष्करेक्षणः ।
अनादिरपरिच्छेद्यस्तथायमपि नारद ॥ ५३ ॥

हे नारद ! जिस प्रकार कमलनयन महापुरुष नारायण देव अनादि एवं अपरिच्छेद्य हैं उसी प्रकार यह सुदर्शन भी अनादि अपरिच्छेद्य है ॥ ५३ ॥

तदुपपादनाय परमात्मशक्तेर्द्वेधा विभागः

द्वे शक्ती तस्य विद्येते विष्णोः सर्वार्थसाधने ।
प्रधानभूते याभ्यां तु वहत्येष जगद्धुरम् ॥ ५४ ॥

विष्णु के सभी कार्यों को पूर्ण करने के लिए प्रधानभूत दो ही शक्तियाँ हैं जिससे वे संसार की धुरी का सञ्चालन करते हैं ॥ ५४ ॥

तत्रेच्छारूपिण्याः शक्तेर्लक्ष्मीरूपत्वम्

एका त्विच्छात्मिका तस्य तथान्या तु क्रियात्मिका ।
प्रथमा परमा लक्ष्मीर्जगत्त्रातुः कुटुम्बिनी ॥ ५५ ॥

एक उनकी इच्छात्मिका शक्ति है तथा दूसरी क्रियात्मिका शक्ति है । जगत् का त्राण करने वाले उन महाविष्णु की कुटुम्बिनी महालक्ष्मी उनकी प्रथमा इच्छात्मिका शक्ति हैं ।

क्रियारूपायाः शक्तेः सुदर्शनरूपत्वम्

तत्त्वविद्भिरिदं प्रोक्तं द्वितीयेह सुदर्शनम् ।

इसके बाद इन सुदर्शन को तत्त्ववेत्ता लोग उनकी क्रियात्मिका दूसरी शक्ति कहते हैं ॥ ५६ ॥

ताभ्यां शक्तिभ्यां विना भगवतोऽप्यकिञ्चित्करत्वम्

तस्माल्लक्ष्म्या विना देवः सङ्कल्पेन प्रभुर्हरिः ॥ ५६ ॥
अनेनापि विना कर्तुं किञ्चिन्नार्हति केशवः ।

यद्यपि समर्थ भी हरि लक्ष्मी के बिना संकल्प से सृष्टि कर सकते हैं । किन्तु इनके बिना केशव सृष्टि नहीं करते ॥ ५६-५७ ॥

तस्य शक्तिद्वयस्य सृष्टिस्थितिसंहाराद्युपकरणत्वम्

अनेन सर्वं सृजति देवोऽनेनैव पाति च ॥ ५७ ॥
अनेन संहृतिं देवो विश्वस्यान्ते करोति च ।
अनेन दानवान् दैत्यान्निहन्ति मधुसूदनः ॥ ५८ ॥
क्रियतेऽनेन तत्कर्म सर्वं सर्वगतेन वै ।

रक्षकं परमात्मानं प्रति शक्तिद्वयस्यापि रक्ष्यकोट्यन्तर्भावः

तस्मात् सर्वात्मना चैनं स्वबुद्ध्या परिरक्षति ॥ ५९ ॥

देवदेव विष्णु इन महालक्ष्मी रूप शक्ति से जगत् की सृष्टि करते हैं । उसका पालन करते हैं तथा अन्त में इसका संहार करते हैं । दूसरी शक्ति चक्रसुदर्शन से वे मधुसूदन दैत्यों का विनाश करते हैं । किं बहुना सब में व्याप्त रहने वाले इस सुदर्शन से वे सारा कार्य सम्पादन करते हैं ।

इसलिए परमात्मा विष्णु रक्षक रूप से सब प्रकार इन दोनों शक्तियों की अपनी बुद्धि के अनुसार रक्षा करते हैं ॥ ५९ ॥

विशिष्य लक्ष्म्या अपि रक्ष्यकोट्यन्तर्भावप्रतिपादनम्

यथा स्वं स्वामिना रक्ष्यं रक्ष्यते स्वयमेव हि ।
एवं सर्वस्य जननीं लक्ष्मीं लक्ष्मीधरः स्वयम् ॥ ६० ॥
चतुर्धा व्यूह्य चात्मानं स्वभूतां परिरक्षति ।

जिस प्रकार स्वामी द्वारा रक्षा योग्य सम्पत्ति का संरक्षण स्वयं स्वामी द्वारा ही किया जाता है उसी प्रकार जगन्माता लक्ष्मी की स्वयं लक्ष्मीधर रक्षा करते हैं । वे अपने को चार व्यूह में विभक्त कर अपनी सम्पत्ति की रक्षा करते हैं ॥ ६० ॥

अतः केशवादीनां परिवारत्वादिकल्पनाया युक्तत्वम्

तत् केशवादिमूर्तीनां परिवारत्वकल्पना ॥ ६१ ॥
विष्ण्वादीनां च मूर्तीनां पञ्जरत्वं च युज्यते ।

सर्वेषामपि मन्त्राणां रक्षकत्वं च साम्प्रतम् ॥ ६२ ॥

इसी प्रकार सुदर्शन की रक्षा के लिए भी केशवादि मूर्तियों के परिवारत्व की कल्पना है और विष्ण्वादि मूर्तियों के भी पञ्जरत्व की कल्पना युक्त ही है। इसी प्रकार सभी मन्त्र भी उनके रक्षक हैं ॥ ६१-६२ ॥

प्रकारान्तरेणापि गुणप्रधानभावोपपादनम्

अथवा भगवानेव स्वयं चक्रस्वरूपधृत्।
अवस्थित इति प्राज्ञैः कथ्यते पुरुषोत्तमः ॥ ६३ ॥

अथवा स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ही चक्ररूप धारण कर स्थित हैं ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥ ६३ ॥

प्रतित्रेतायुगं देवः साधुत्राणकृते हरिः।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताद्यात्मना स्वयम् ॥ ६४ ॥
चतुर्धावस्थितस्तद्वच्चक्रात्मा हरिरेव हि।
गुणप्रधानभावस्तु रामादेरिव युज्यते ॥ ६५ ॥

वे भगवान् ही प्रत्येक त्रेतायुग में साधुओं की रक्षा के लिए राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न एवं भरतादि रूपों में अपने को चार विभाग में विभक्त कर अवतरित होते हैं। उसमें चक्रात्मा स्वयं भगवान् विष्णु हैं। इनमें जैसे राम प्रधान हैं शेष क्रमशः गौण हैं इसी प्रकार यहाँ पर भी विष्णु प्रधान हैं एवं केशवादि गुणप्रधान हैं ॥ ६४-६५ ॥

तदात्मनैव चात्मानं रक्षत्येव जनार्दनः।
स्वमूर्तिरक्षणे स्वेन विनान्यन्न भवेद्यतः ॥ ६६ ॥

एतद्रहस्यश्रवणादेरपि क्रमशः परमपुरुषार्थसाधनत्वम्

य इदं शृणुते परिपृच्छति वा
पठति स्मरतीह नरः सततम्।
विपुलामिह भूतिमवाप्य परा-
मथ याति पदं परमं स हरेः ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां राज्ञां सुदर्शनयन्त्रा-
राधनविधानकेशवादिगुणप्रधानभावव्यवस्थापनं
नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २३१९ ॥

* * *

भगवान् जनार्दन अपनी रक्षा अपने से ही करते हैं। अपनी मूर्ति की रक्षा में उनके बिना अन्य कोई समर्थ नहीं है ॥ ६६ ॥

जो सतत् इसका श्रवण करता है, पूछता है, पढ़ता है, स्मरण करता है, वह साधक पुरुष इस लोक में सर्वथा निष्कलङ्क सर्वश्रेष्ठ विभूति प्राप्त कर अन्त में विष्णु पद में मिल जाता है ॥ ६७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के राजाओं के
सुदर्शन यन्त्राराधन का विधान एवं केशवादि गुणप्रधान भाव व्यवस्थापन
नामक छत्तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३६ ॥

* * *

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

न्यासापरपर्यायप्रपत्तिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।।

विनायकं वाग्देवीं च नत्वा विद्येश्वरं गुरुम् ।
अहिर्बुध्न्यसंहितायाः कुर्वे टीकां मनोरमाम् ।।

जिसके अरा का एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूह को नष्ट कर देता है हम उन सुदर्शन चक्र के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

उक्तानुवादपूर्वकं सुदर्शनस्य षोडशभुजत्वप्रयोजनादिप्रश्नः

नारदः—

आख्यातं भवता सर्वं भगवन् परमेश्वर ।
सौदर्शनस्य यन्त्रस्य मन्त्रस्य स्वस्य च प्रभो ।। १ ।।
अस्त्राणां चापि माहात्म्यं स्वरूपं लक्षणं तथा ।
आराधनं च योगश्च स्वभावश्च विशेषतः ।। २ ।।

प्रथम अध्याय में कहे गए श्लोक का अनुवादपूर्वक सुदर्शन के १६ भुजाओं के प्रयोजन का जिज्ञासा विषयक प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे परमेश्वर ! हे प्रभो ! आपने सुदर्शन से सम्बन्धित यन्त्र-मन्त्र और स्वयं उससे उत्पन्न अस्त्रों का माहात्म्य स्वरूप एवं लक्षण का वर्णन किया तथा साथ ही उसके आराधन की विधि, योग तथा विशेष रूप से स्वभाव का भी वर्णन किया ।। १-२ ।।

भुजैः षोडशभिर्वेति प्रोक्तं रूपोपवर्णने ।
तत् कदा केन कर्तव्यं किमर्थं कीदृशं वद ।। ३ ।।

सुदर्शन के स्वरूप का वर्णन करते हुये आपने पूर्व में यह भी कहा कि उनकी १६ भुजायें हैं तो बताइये कि उनका निर्माण कब, किसके द्वारा, किस प्रकार और किसलिए करना चाहिए? ।। ३ ।।

राज्ञामत्याहितादिनिवारणं षोडशभुजत्वस्य प्रयोजनम्

अहिर्बुध्न्यः—

परैरभिभवे प्राप्ते राज्ञां बलसमन्वितैः ।
नगरेषु प्रदग्धेषु राज्ञां विद्राविते बले ॥ ४ ॥

सोलह भुजाओं का प्रयोजन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—अत्यन्त बलवान् शत्रु से जब राजा पराभव प्राप्त करे । उसका नगर जला दिया जाय अथवा उसकी सेना शत्रु द्वारा भगा दी जाय ॥ ४ ॥

उपरुद्धेषु भोगेषु तत्तद्विषयवासिनाम् ।
पीड्यमाने परबलैरित्थं राष्ट्रे महामुने ॥ ५ ॥
स्थितावनुपपन्नायां राज्ञोऽव्युच्छिन्नवैरिणः ।
कारयेत् षोडशभुजं सुदर्शनमवारितम् ॥ ६ ॥

उसके राज्य में रहने वाली प्रजाओं की जब भोग सामग्री (अन्न पानादि) रोक दी जाय । हे महामुने ! इस प्रकार जब शत्रुओं के द्वारा राष्ट्र पीड़ित होने लगे और भयङ्कर स्थिति के कारण जब राजा अपने शत्रु का पराभव करने में असमर्थ हो जाये तब स्थिति को बिगड़ती देख, बिना कुछ सोचे वह राजा निश्चित रूप से षोडश भुजा युक्त सुदर्शन यन्त्र का निर्माण करे ॥ ५-६ ॥

षोडशभुजसुदर्शनविग्रहवर्णनम्

अपारमपरिच्छेद्यमवाङ्मनसगोचरम् ।
रक्तवर्णमुदाराङ्गं पीतकौशेयवाससम् ॥ ७ ॥
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशैः केशैरूर्ध्वमुखैर्युतम् ।
पिङ्गलाघूर्णमानोग्रनेत्रत्रितयभीषणम् ॥ ८ ॥
दष्टाधरस्फुटालक्ष्यदंष्ट्रानिष्ठ्यूतपावकम् ।
क्वणत्किङ्किणिजालेन काञ्चीदाम्ना विराजितम् ॥ ९ ॥
नितम्बलम्बिनोपेतं ज्वलत्कौक्षेयकेण च ।
दधानं किङ्किणीमालां त्वलिमालानिनादिताम् ॥ १० ॥
आपादलम्बिनीं दिव्यां मुक्तारत्नाचितां तथा ।
झणज्झणितमञ्जीरशोभमानपदाम्बुजम् ॥ ११ ॥

सोलह भुजा युक्त सुदर्शन के विग्रह (शरीर) का वर्णन—हे नारद ! यद्यपि सुदर्शन का विग्रह अपार, अपरिच्छेद्य तथा वाणी एवं मन से अगोचर है । फिर भी उसके विग्रह का वर्णन करता हूँ । जिनके शरीर का वर्ण रक्त एवं कोमल है और पीताम्बर से सुशोभित है । विद्युत समूहों के समान ऊपर की ओर उठे हुये पीले-पीले चमकदार जिनके केश हैं । अत्यन्त भयङ्कर पीले-पीले अपने तीनों उग्र नेत्रों से जो शत्रुओं की ओर घूर-घूर कर देख रहे हैं । अपनी दाँतों से अधर को दबाये हुये वह स्पष्ट रूप से अग्नि की ज्वाला उगल रहे

हैं। क्षुद्र घण्टिकायें जिसमें बज रही हैं, ऐसा काञ्चीदाम जिनके कटिभाग में विराज रहा है। जलती हुई कौक्षेय (तलवार) जिनके शरीर में नितम्बपर्यन्त लटक रही है। जिस पर भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं ऐसी किङ्किणी की माला जिन्होंने धारण कर रखी है। इसी प्रकार मोतियों एवं रत्नों से गूँथी गई दिव्य माला जिनके पैरों तक लटक रही है। जिनके चरण कमलों में मञ्जीर का झण-झण शब्द हो रहा है ॥ ७-११ ॥

हारकेयूरताटङ्कमुकुटैरुपशोभितम् ।
अन्यैर्मणिमयैश्चित्रैर्भूषणैः समलङ्कृतम् ॥ १२ ॥
क्रमेण चक्रपरशुकुन्तदण्डाङ्कुशानि च ।
शस्त्राणि शतवक्त्राणि खड्गशक्ती च बिभ्रतम् ॥ १३ ॥
करैरूर्ध्वमुखैर्दीर्घैर्दक्षिणैरष्टभिः परैः ।
वामैः शङ्खधनुःपाशहलवज्राणि च क्रमात् ॥ १४ ॥
गदामुसलशूलानि भीमान्येतानि बिभ्रतम् ।
स्वसमाश्रितशत्रूत्थक्रोधेन महतावृतम् ॥ १५ ॥
भुग्नभ्रूकुटिलं वक्त्रं धारयन्तं विभीषणम् ।
प्रत्यालीढविशेषेण तिष्ठन्तं दीप्तिमालिनम् ॥ १६ ॥
कालाग्निरुद्ररूपेण संहरन्तमिदं जगत् ।
एवं सुदर्शनं ध्यायेत् कालात्मानं महाद्युतिम् ॥ १७ ॥

हार, केयूर, कर्णफूल मुकुट तथा अन्य प्रकार के मणिमय चित्र-विचित्र भूषणों से जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुशोभित हो रहे हैं। जो अपनी ऊपर की ओर उठी हुई विशाल-विशाल दाहिनी आठ भुजाओं में क्रमशः १. चक्र, २. परशु, ३. कुन्त, ४. दण्ड, ५. अङ्कुश, ६. शतमुख वाले शस्त्र, ७. खड्ग तथा ८. शक्ति धारण किए हैं। इसी प्रकार ऊपर की ओर उठाये गए अपनी वाम आठ भुजाओं में क्रमशः १. शङ्ख, २. धनुष, ३. पाश, ४. हल, ५. वज्र, ६. गदा, ७. मुसल और ८. शूल धारण किये हुये हैं। अपने शरणागत भक्तों के शत्रु पर जो महान् क्रोध की मुद्रा में स्थित हैं। क्रोध से टेढ़ी भ्रुकुटी होने के कारण जिनका मुख-मण्डल अत्यन्त भयानक दिखाई पड़ रहा है। जो प्रत्यालीढ (वीरता की एक विशेष मुद्रा) मुद्रा में अत्यन्त तेजस्वी हो रहे हैं तथा कालाग्नियुक्त अपने रुद्र रूप से जगत का संहार कर रहे हैं (ऐसे सुदर्शन) के स्वरूप का ध्यान करना चाहिए ॥ १२-१७ ॥

यथोक्तसुदर्शनध्यानस्य निःसापत्यसाधनता

राजा तद्ध्यानमात्रेण निःसपत्नो भवेत् क्षणात् ।
न क्वाप्युपस्थितिस्तेषां सपत्नानां महीतले ॥ १८ ॥
नश्यन्ति शत्रवस्तत्र यत्र यत्र च विद्रुताः ।

राजा द्वारा इस प्रकार उपर्युक्त कालात्मा एवं महातेजस्वी सुदर्शन यन्त्र का ध्यान करना—उनके ध्यान मात्र से ही वह राजा क्षणमात्र में शत्रु से रहित हो जाता है। बहुत

क्या पृथ्वी मण्डल में कहीं भी उसके शत्रु टिक नहीं सकते । सभी जहाँ-तहाँ भाग जाते हैं और विनष्ट हो जाते हैं ॥ १८-१९ ॥

सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां शत्रुपराभवादिः

एवमेनमनाराध्य राजानोऽमितविक्रमाः ॥ १९ ॥
सपत्नैरभिभूयन्ते निःश्रीकाश्च भवन्ति वै ।

अत्यन्त पराक्रमी राजा भी यदि इस प्रकार के सुदर्शन की आराधना न करे तो वह राजा शत्रुओं से पराभूत तो होता ही है वह शोभा एवं लक्ष्मी से भी विहीन हो जाता है ॥ १९-२० ॥

योगेन न्यासेन वा सुदर्शनाराधनस्यैहिकामुष्मिकफलसाधनता

य एनं पूजयेद्भक्त्या पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥ २० ॥
बाह्येन चान्तरेणापि योगाख्येन महामुने ।
न्यासेन वा सुखी सोऽत्र परत्र च न संशयः ॥ २१ ॥

हे महामुने ! जो भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त कही गई विधि से बाह्य एवं आन्तरिक योग रूप कर्म से सुदर्शन की पूजा करते हैं अथवा उनमें अपने को न्यास (धरोहर) रूप में स्थित कर देते हैं वे इस लोक और परलोक में सुखी हो जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ २०-२१ ॥

उक्तानुवादपूर्वकं न्यासाख्यप्रपत्तिस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

बाह्य आभ्यन्तरश्चापि मम योगः पुरोदितः ।
न्यासाख्यं साधनं प्रोक्तं तन्मे ब्रूहि महेश्वर ॥ २२ ॥

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने पूर्व में बाह्य तथा आन्तरिक योग के स्वरूप का वर्णन किया । इसके अतिरिक्त जो आपने न्यास रूप साधन की बात कही है उसका विधान मुझे बताइये ॥ २२ ॥

न्यासस्य परमरहस्यत्वख्यापनम्

अहिर्बुध्न्यः—

एतन्महोपनिषदं देवानां गुह्यमुत्तमम् ।
अभीष्टार्थप्रदं सद्यः सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २३ ॥
अवाच्यमेतत् सर्वस्मै नाभक्ताय कदाचन ।
भक्तोऽसि मे स्थिरश्चेति वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ २४ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह न्यास बहुत बड़ा उपनिषद् है । इसे देवतागण भी नहीं बताते, गुप्त रखते हैं । यह सद्यः मनोरथ की पूर्ति करता है और सारे पापों को विनष्ट कर देतां है । इसे जैसे-तैसे सभी से नहीं कहना चाहिए । विशेषकर जो अपना भक्त न हो

उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिए। आप हमारे निश्चित रूप से भक्त हैं इसलिए हित की कामना से आपसे न्यास का वर्णन कर रहा हूँ ॥ २३-२४ ॥

न्यासस्य सर्वफलसाधनत्वोपपादनम्

यद्येन कामकामेन नासाद्यं साधनान्तरैः।
मुमुक्षुणा यत् सांख्येन योगेन न च भक्तितः ॥ २५ ॥
प्राप्यते परमं धाम यतो नावर्तते पुनः।
तेन तेनाप्यते तत्तन्न्यासेनैव महामुने ॥ २६ ॥
परमात्मा च तेनैव साध्यते पुरुषोत्तमः।

जब मनोरथकर्त्ता को अपने मनोरथ की पूर्ति साधनान्तर से असम्भव दिखाई पड़े तब जो परमधाम मुमुक्षु लोग ज्ञान, योग तथा भक्ति से प्राप्त करते हैं और जहाँ जा कर पुनः जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं, हे महामुने! वह धाम उन-उन न्यासों के द्वारा साधक स्वयं प्राप्त कर लेता है। किं बहुना? परमात्मा पुरुषोत्तम भी उसी न्यास के द्वारा प्राप्त हो जाते हैं ॥ २५-२७ ॥

प्रपत्तेः षडङ्गानि

षोढा हि वेदविदुषो वदन्त्येनं महामुने ॥ २७ ॥
आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा ॥ २८ ॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।

हे महामुने! इस प्रपत्ति (= शरणागति) को वेदज्ञ लोग छः भेद बताते हैं। (१) अनुकूल रहने का सङ्कल्प, (२) प्रतिकूल का वर्जन, (३) रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास, (४) वे ही हमारे रक्षक हैं, ऐसी दृढ़ भावना, (५) आत्मनिक्षेप (अपने को उसी में समर्पण कर देना) और (६) कार्पण्य (दैन्य)—यही छः शरणागति के भेद हैं ॥ २७-२९ ॥

न्यासप्रकरणे शरणशब्दस्य साधनवाचित्वम्

उपाये गृहरक्षित्रोः शब्दः शरणमित्ययम् ॥ २९ ॥
वर्तते साम्प्रतं चैष उपायार्थैकवाचकः।

यद्यपि शरण शब्द (१) उपाय (२) गृह (३) रक्षक अर्थ का वाचक है किन्तु न्यास के विषय में यह एक मात्र उपाय (साधन) का ही वाचक है ॥ २९-३० ॥

प्रपत्तिलक्षणम्

अहमस्म्यपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगतिः ॥ ३० ॥
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः।
शरणागतिरित्युक्ता सा देवेऽस्मिन् प्रयुज्यताम् ॥ ३१ ॥

हे प्रभो! मैं सभी प्रकार के अपराधों का आलय (स्थान) हूँ, अकिञ्चन हूँ और

अगति हूँ । अत: आप ही उपाय बन कर मेरा उद्धार कीजिये । इस प्रकार की प्रार्थना बुद्धि शरणागति कही गई है । इसी प्रकार की शरणागति बुद्धि का इन सुदर्शन में प्रयोग करना चाहिए ॥ ३०-३१ ॥

सुदर्शनप्रपत्तौ मन्त्रविशेषकथनम्

भगवन् सर्वविजयिसहस्रारापराजित ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि श्रीकरं श्रीसुदर्शनम् ॥ ३२ ॥

हे भगवन् ! हे सर्वविजयि ! हे सहस्रार ! हे अपराजित ! आप महालक्ष्मी देने वाले हैं और श्रीसम्पन्न एवं सुदर्शन हैं । मैं आपके शरणागत हूँ ॥ ३२ ॥

अनेन मन्त्रेण प्रपन्नस्य फलोत्पत्तिप्रतिबन्धकसकलदुरितनिवृत्तिः

अनेनैव प्रपन्नस्य भगवन्तं सुदर्शनम् ।
तस्यानुबन्धाः पाप्मानः सर्वे नश्यन्त्यसंशयम् ॥ ३३ ॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर सुदर्शन की शरण में गए हुये शरणागत के समस्त प्रतिबन्धक पाप अपने आप नष्ट हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥ ३३ ॥

प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वम्

कृतान्यनेन सर्वाणि तपांसि तपतां वर ।
सर्वे तीर्थाः सर्वयज्ञाः सर्वदानानि च क्षणात् ॥ ३४ ॥
कृतान्यनेन मोक्षश्च तस्य हस्ते न संशयः ।

हे तपस्वियों में श्रेष्ठ श्रीनारद ! जो साधक सुदर्शन का शरणागत हो गया उसने सभी तप कर लिए । सभी तीर्थों एवं सभी यज्ञों का सम्पादन कर लिया । किं बहुना? क्षण मात्र में सभी प्रकार के दान भी कर लिए और मोक्ष तो उसके हस्तगत हो ही गया इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४-३५ ॥

न्यासमात्रेण तपोयज्ञादिसिद्धिकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

कथं तपांसि यज्ञाश्च तीर्थदानानि सर्वशः ॥ ३५ ॥
तस्यैव न्यासमात्रेण सिध्यन्ते तद्वद प्रभो ।

श्रीनारद ने कहा—हे प्रभो ! सुदर्शन में अपने को न्यस्त कर देने मात्र से किस प्रकार सभी प्रकार के तप, यज्ञ और तीर्थ एवं दानों का फल प्राप्त हो जाता है? उसे आप हमें बताइये ॥ ३५-३६ ॥

तदुत्तरकथने न्यासस्य सर्वतपोऽतिरिक्ततपस्त्वकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

यानि निःश्रेयसार्थानि चोदितानि तपांसि वै ॥ ३६ ॥

तेषां तु तपसां न्यासमतिरिक्तं तपः श्रुतम् ।

अहिर्बुध्न्य ने कहा—परलोक फल वाले जितने भी तप श्रुति में कहे गए हैं उनसे कहीं अधिक फल देने वाला यह न्यास रूप तप है जो सर्वपेक्षया अधिक श्रेष्ठ है ॥ ३६-३७ ॥

नमःशब्देन कृतात्मन्यासस्य स्वध्वरत्वोपपादनम्

समित्साधनकादीनां यज्ञानां न्यासमात्मनः ॥ ३७ ॥
नमसा योऽकरोद् देवे स स्वध्वर उदीरितः ।

समिधादि से अनुष्ठीयमान सभी यज्ञों का फल तो उस पुरुष को उसी समय प्राप्त हो जाता है जब वह सुदर्शन में शरणागत होकर एक बार 'नमः' शब्द का प्रयोग कर देता है इसी को स्वध्वर भी कहते हैं ॥ ३७-३८ ॥

न्यासस्य परमधर्मत्वे प्रमाणप्रदर्शनम्

यागसाधनभूतेन स्वात्मना वेद्यमीश्वरम् ॥ ३८ ॥
अयजत् तानि धर्माणि प्रथमानीति नः श्रुतम् ।

यज्ञ रूप साधन से साध्य रूप ईश्वर वेद्य है । किन्तु जिसने अपने को ही परमात्मा में न्यस्त कर यज्ञ अनुष्ठित किया, वही सबसे बड़ा धर्म है क्योंकि 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' ऐसा श्रुति भी कहती है ॥ ३८-३९ ॥

न्यासस्य सर्वयज्ञसमत्वम्

यज्ञरूपधरं देवं यजते स्वात्मनैव यः ॥ ३९ ॥
तेन सर्वे कृता यज्ञा भवन्तीह महात्मना ।

जिस महात्मना ने अपने आपको समर्पित कर यज्ञरूपधारी देव की आराधना की, उस महात्मा ने सभी यज्ञ अनुष्ठित कर लिए ॥ ३९-४० ॥

न्यासस्य यज्ञत्वनिर्वहणाय यज्ञाङ्गपौष्कल्यनिरूपणम्

यज्ञरूपधरस्यास्य शरीरं वेदिरिष्यते ॥ ४० ॥
आस्यमाहवनीयाग्निर्हृदयं दक्षिणानलः ।
अथास्य गार्हपत्याग्निरुदरं श्रुतिचोदितम् ॥ ४१ ॥
यजमानो मनस्तत्त्वं बुद्धिः पत्नी प्रकीर्तिता ।
स्वाश्रितप्रत्यनीका ये पशवस्ते प्रकीर्तिताः ॥ ४२ ॥
लोमानि बर्हिषस्त्वस्य जीवं हव्यं प्रचक्षते ।
सवनानि शिरोमध्यगात्रपादाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥
दश यज्ञायुधान्यस्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाण्यपि ।
ऋत्विजः षोडश भुजा देवस्यास्य महामुने ॥ ४४ ॥

भक्तरक्षणसङ्कल्पो दीक्षा देवस्य नारद ।
ऋग्यजुःसामघोषोऽस्य भूषणाराव इष्यते ॥ ४५ ॥
सदस्या भूषणान्यस्य दया देवस्य दक्षिणा ।

न्यास के यज्ञत्व के निर्वाह के लिए सुदर्शन में समस्त यज्ञाङ्गों की स्थिति का रूपक द्वारा विस्तार पूर्वक वर्णन—यज्ञरूप धारण करने वाले इस सुदर्शन की शरीर वेदी है । मुख आहवनीयाग्नि है, हृदय दक्षिणाग्नि है, उदर श्रुति प्रतिपादित गार्हपत्याग्नि है । मनस्तत्त्व यजमान है, बुद्धि यजमानपत्नी है । अपने आश्रित रहने वाले जितने भी भक्त हैं वे ही यज्ञपुरुष के पशु हैं । इसके समस्त लोम (= बाल) कुशा हैं । जीव द्रव्य कहा गया है । सुदर्शन के शिर मध्यगात्र तथा पाद यज्ञ के सवन हैं । पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ यज्ञपुरुष के दश आयुध हैं । हे महामुने ! उसकी सोलह भुजायें ऋत्विज हैं, भक्तों की रक्षा का सङ्कल्प उसकी दीक्षा है । उसके भूषण से होने वाले शब्द ऋग्यजुः तथा सामवेद के उद्घोष हैं, समस्त आभूषण यज्ञपुरुष के सदस्य हैं और उसकी दया ही दक्षिणा है ॥ ४०-४६ ॥

जुहूर्ध्रुवा स्रुवश्चैव प्राशित्रहरणं तथा ॥ ४६ ॥
मेक्षणोपभृतौ वेद इडापात्री तथैव च ।
दारुपात्रं च योक्त्रं च चमसः सृष्टिरेव च ॥ ४७ ॥
पिष्टोद्वपन्याज्यस्थाल्याविध्मप्रव्रश्चनं तथा ।
मदन्तीत्यस्य शस्त्रेषु चक्राद्येषु समाश्रिताः ॥ ४८ ॥

जुहू, ध्रुवा और स्रुवा तथा प्राशित्रहरण, मेक्षण, उपभृत स्नान, इडापात्री, दारुपात्र, योक्त्र, चमस और सृष्टि, पिष्टोद्वपनी, आज्यस्थाली तथा इध्मप्रव्रश्चन, मदन्ति—इन शस्त्रों में चक्रादि समाश्रित है ॥ ४६-४८ ॥

प्रपन्नस्य कृतकृत्यत्वनिगमनम्

एवं रूपं तमभ्यर्च्य प्रक्षीणाशेषपातकः ।
अनुष्ठितक्रतुशतो भवेदेष न संशयः ॥ ४९ ॥

प्रपन्न के सर्वथा कृतकृत्य का निगमन—इस प्रकार के यज्ञरूप सुदर्शन की आराधना से प्रपन्न पुरुष का पातक प्रक्षीण हो जाता है । फिर उसे सैकड़ों यज्ञों के अनुष्ठान का फल अपने आप प्राप्त हो जाता है इसमें संशय नहीं ॥ ४९ ॥

यथोक्तक्रमेण सुदर्शनमनाराधयतां क्लेशप्राप्तिनिगमनम्

एवं बहुविधै रूपैरुपेतं तं सुदर्शनम् ।
कृत्वा तमप्रतिष्ठाप्य राजानो मन्त्रिणोऽपि वा ॥ ५० ॥
विनष्टसम्पदः सद्यः परिभूताश्च शत्रुभिः ।
अर्चनाभावतो राज्याद् भ्रष्टाश्चिरमुपद्रुताः ॥ ५१ ॥

इस प्रकार से बहुत रूपों (मन्त्र-यन्त्र एवं शस्त्र को धारण कर) से युक्त उन सुदर्शन की प्रतिष्ठा न करने से राजा अथवा उसके मन्त्रीगण सद्यः शत्रु से पराभूत होकर दरिद्र हो जाते हैं और विपत्ति से बहुत काल तक उपद्रुत रहते हैं ॥ ५०-५१ ॥

सुदर्शनमनाराधयतां राज्ये
ब्रह्महत्यादिदोषोत्पत्तिः

स्वराज्यं ब्रह्महत्यादिदोषैर्दुष्येन्महामुने ।
समिदित्यस्य ऋग्वेदश्रुतिराह दयावती ॥ ५२ ॥

हे महामुने ! सुदर्शन की आराधना न करने वाले राजाओं का अपना राज्य ब्रह्महत्यादि दोष से दूषित हो जाता है (यहाँ ५२वें श्लोक का उत्तरार्ध ३७ श्लोक) पूर्वार्ध के रूप में मुद्रित करना चाहिए—जिसका अर्थ इस प्रकार है—यज्ञ की समिधा साधन होती है प्रकृत यज्ञ में आत्मनिवेदन ही समिधा है । इस प्रकार की समिधा की बात को दयावती ऋग्वेद की ऋचा भी प्रतिपादन करती है शेष ३७ श्लोक में देखिये ॥ ५२ ॥

सुदर्शनमनाराधयतां राज्ञां
प्रजानुरागाभावः

अनभिध्यानतो ह्यस्य विश्वे विषयवासिनः ।
अपरक्ताश्च जायन्ते महाराजे कृतागसि ॥ ५३ ॥

सुदर्शन का ध्यान न करने वाले राजा के राज्य में रहने वाली प्रजायें उसके इस प्रकार के अपराध से उसमें अनुराग नहीं करतीं ॥ ५३ ॥

राज्ये सुदर्शनानाराधनात् प्रजानामपि
बहुदुःखभागिता

अश्रद्दधानाश्चैतस्मिन्निह जन्मनि दुःखिनः ।
प्रेत्याधोऽधः पतन्त्येव नाप्नुवन्ति सुखं क्वचित् ॥ ५४ ॥

सुदर्शन में श्रद्धा न रखने वाली प्रजायें इस लोक में दुःख तो प्राप्त करती ही हैं, मरने के बाद भी वे नरक में जाती हैं और कहीं भी उन्हें सुख नहीं प्राप्त होता ॥ ५४ ॥

सुदर्शनसमाराधनस्य सर्वफलावाप्तिसाधनतानिगमनम्

तद्यज्ञरूपं सुसमाश्रितानां
रक्षाविधाने कृतदीक्षमीशम् ।
सुभीषणं षोडशबाहुयुक्तं
स्वशत्रुपक्षक्षपणप्रवृत्तम् ॥ ५५ ॥
यथोक्तरूपं धृतसर्वशस्त्र-
मुपेतमस्त्रैरपि मूर्तिमद्भिः ।
पटे लिखित्वा शिलयाथवार्चां
विधाय लोहैरुत बिम्बमस्य ॥ ५६ ॥

समर्चयेद्यो नृपतिः प्रतिष्ठां
विधाय भक्त्याथ सुदर्शनेशम् ।
क्षणेन सिध्यन्ति मनीषितानि
विपक्षनाशश्च भवेदमुष्य ॥ ५७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां न्यासापरपर्यायप्रपत्तिनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २३७६ ॥

* * *

अपने आश्रित भक्तों की रक्षा करने का दीक्षा ग्रहण करने वाले, यज्ञरूप धारण करने वाले, षोडश बाहुओं से युक्त, अत्यन्त भीषण तथा अपने शत्रु पक्ष के विनाश में प्रवृत्त रहने वाले, उपर्युक्त (३७.७.१६) स्वरूपों वाले सम्पूर्ण मूर्तिमान शस्त्रों और अस्त्रों को धारण करने वाले, भगवान् सुदर्शन को वस्त्र पर, शिला अथवा लोहे से लिख कर उनके बिम्ब की प्रतिष्ठा कर जो राजा उनकी भक्तिपूर्वक अर्चना करते हैं उनके सभी मनोरथ क्षण भर में पूर्ण हो जाते हैं तथा उनके सम्पूर्ण शत्रुओं का नाश हो जाता है ॥ ५५-५७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के न्यासापरपर्यायप्रपत्ति निरूपण नामक सैंतीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३७ ॥

* * *

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

ज्वरादिरोगनिवृत्त्युपायविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद्दिव्यं भर्गों देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने पर साधक के अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूह को नष्ट कर देता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

उक्तानुवादपूर्वकं रोगमोचनोपायप्रश्नः

नारदः—

आख्यातं भवता राज्ञां परेभ्यो रक्षणं परम् ।
तथैव सर्वें सर्वज्ञ पुरुषार्थाः समीरिताः ॥ १ ॥
तत्साधनानि चान्यच्च प्रसङ्गात् समुदीरितम् ।
इदं त्विदानीं भगवन् व्याख्याहि मम पृच्छतः ॥ २ ॥
राज्ञां तत्सचिवानां च तथान्येषां नृणामपि ।
रोगाः क्रूरतरास्तेषां पुरुषार्थविरोधिनः ॥ ३ ॥
सम्भवन्ति हि तेषां तु मोचनं केन सिध्यति ।

ऊपर कहे गए कथनों का अनुवाद करते हुये रोगों से छुटकारा पाने के विषय में श्रीनारद का प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने शत्रुओं से राजाओं की रक्षा का उपाय कहा । हे सर्वज्ञ ! उसी प्रकार आपने सभी पुरुषार्थों का भी निरूपण किया । प्रसङ्ग से प्राप्त होने वाले पुरुषार्थों के साधन तथा अन्य भी बातें कहीं । अब हे भगवन् ! मैं जो पूछ रहा हूँ उसकी व्याख्या कीजिये । राजाओं के एवं उनके मन्त्रियों के तथा अन्य मनुष्यों के पुरुषार्थ के शत्रु और अत्यन्त कष्टकारक जो रोग होते हैं उनसे छुटकारा पाने का उपाय क्या है? ॥ १-४ ॥

रोगोत्पत्ति तद्विनाशकारणकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

साधु पृष्टं मुने रोगा जायन्ते येन दुःसहाः ॥ ४ ॥

शृणु येनैव नश्यन्ति तद् वक्ष्यामि तवाधुना ।

रोगों की उत्पत्ति तथा उनसे छुटकारा पाने का उपाय—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुने ! आप ने यह उचित प्रश्न किया है । अब जिस कारण से मनुष्यों को दु:सह रोग उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार उनका विनाश होता है उसको सुनिए । मैं आपसे अभी कह रहा हूँ ॥ ४-५ ॥

प्राकृतप्रलये एकाकिनः परमपुरुषस्य रमणाभावः

प्राकृते सर्वलोकस्य सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे ॥ ५ ॥
ब्रह्मायुषि परिक्षीणे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
सर्वभूतेषु भूतादौ प्रलीनेषु महामुने ॥ ६ ॥
भूतादाविन्द्रियादौ च तैजसे महति स्थिते ।
ततो महति याते तु प्रकृतिं बुद्धिलक्षणे ॥ ७ ॥
तथा च पुरुषे तस्यां प्रलीने पञ्चविंशके ।
तस्यामपि प्रलीनायां पुरुषे पुष्करेक्षणे ॥ ८ ॥
स एव सर्वं संहृत्य स्वस्मिन् परमपूरुषः ।
भगवान् पुण्डरीकाक्षः परमात्मा जगन्मयः ॥ ९ ॥
एकाकी स तदा नैव रमते स्म सनातनः ।

प्राकृत प्रलयकाल में अकेले होने से परमात्मा का मनोरञ्जन नहीं हो पाया इसका कथन—सम्पूर्ण लोकों का जब प्राकृत प्रलय प्राप्त हो गया । ब्रह्मा की आयु बीत गई । स्थावरजङ्गमात्मक सारा जगत् नष्ट हो गया । हे महामुने ! उस समय सारे प्राणिसमूह पञ्चमहाभूत में, पञ्चमहाभूत इन्द्रियों में, इन्द्रियाँ बुद्धि में बुद्धि महत्तत्व में, महत्तत्व प्रकृति में तथा २५ तत्त्वों वाली प्रकृति पुरुष में लीन हो गई । तदनन्तर परमात्मा जगन्मय पुण्डरीकाक्ष सनातन परम पुरुष भगवान् सबको अपने में समेट लेने के कारण अकेला रहा और अकेले रहने के कारण उसका मनोरञ्जन नहीं हुआ ॥ ५-१० ॥

लीलार्थं पुनः सृष्टिः

स लीलार्थं पुनश्चेदमसृजत् पुष्करेक्षणः ॥ १० ॥

लीला के लिए पुन: सृष्टि—तब कमलनेत्र उन परमात्मा ने अपनी लीला (मनोरञ्जन) के लिए पुन: इस विश्व की सृष्टि की ॥ १० ॥

नामरूपव्याकरणम्

स पूर्वं नामरूपाणि चक्रे सर्वस्य सर्वगः ।

नामरूपात्मक सृष्टि का निर्माण—उन सर्वात्मा ने सर्वप्रथम नामरूपात्मक सृष्टि का निर्माण किया ॥ ११ ॥

लीलोपकरणभूतप्रकृत्या परमात्मनो रमणम्

लीलोपकरणां देवः प्रकृतिं त्रिगुणात्मिकाम् ॥ ११ ॥

मायासंज्ञां पुनः सृष्ट्वा तया रेमे जनार्दनः ।

तदनन्तर लीलोपकरणभूत प्रकृति में परमात्मा का रमण । फिर उन देवाधिदेव जनार्दन ने लीलोपकरणभूत त्रिगुणात्मिका प्रकृति की, जिसको माया भी कहते हैं, सृष्टि की और उसी में रमण किया ॥ ११-१२ ॥

प्रकृत्या जीवपरयोः स्वरूपप्रच्छादनम्

सा तु सर्वाणि भूतानि तत्तच्छक्तिसमन्विता ॥ १२ ॥
मोदयन्ती च तन्वाना स्वस्यां भोग्यधियं तथा ।
वर्तते जीवपरयोः स्वरूपाच्छादनाय सा ॥ १३ ॥

प्रकृति के द्वारा जीव और परमात्मा का स्वरूप प्रच्छादन—उन-उन शक्तियों से समन्वित होकर वह प्रकृति (माया) सभी प्राणियों को अपने शरीर में भोग्य बुद्धि उत्पन्न कर उसी से उन्हें प्रसन्न करने लगी । इस प्रकार जीव और परमात्मा के स्वरूप को उसने प्रच्छादित कर लिया ॥ १२-१३ ॥

प्रकृतिपारवश्याज्जीवस्य संसरणम्

तथा विवशमेतत्तु संसरत्यखिलं जगत् ।

उस प्रकृति के कारण ही जीव को शरीर में आत्मा का भ्रम हो जाता है ॥ १४ ॥

प्रकृतेर्देहात्मभ्रमहेतुत्वम्

तयैव प्रथमं देहे करोत्यात्मधियं नरः ॥ १४ ॥

प्रकृति के कारण ही जीव को शरीर में आत्मा का भ्रम हो जाना—जीव को प्रकृति के कारण ही देह में सर्वप्रथम आत्मा का भ्रम पैदा होता है ॥ १४ ॥

ततः शरीरसम्बन्धिपुत्रादौ ममतां गतः ।

पुनः उसी का अपने स्व आत्मीय पुत्रादि में ममता उत्पन्न करना—फिर उसी के द्वारा ममत्व उत्पन्न होने के कारण वह शरीर सम्बन्धी पुत्रादि में स्वत्व की भावना करता है ॥ १५ ॥

अहङ्कारममकारोत्थवासनादार्ढ्यम्

ततोऽहङ्कारजास्तस्य ममतोत्थाश्च वासनाः ॥ १५ ॥
भवन्ति देहे पुत्रादौ दृढबद्धाश्चिरं मुने ।

जीव में अहङ्कार तथा ममता की वासना का दृढ होने लगना—इस प्रकार शरीर में अहङ्कार तथा पुत्रादि में ममत्व के कारण जीव में अहङ्कार तथा ममता की वासना दृढ़ होने लगती है । तदनन्तर हे मुने ! अहङ्कार एवं ममता से उत्पन्न हुई वासनायें देह में एवं पुत्रादि में दृढ़ता के साथ आबद्ध हो जाती हैं । इस प्रकार अहङ्कार एवं ममता से उत्पन्न वासनायें राग तथा द्वेष के कारण पुण्य और पाप का हेतु बन जाती हैं ॥ १५-१६ ॥

तदुत्थवासनानां रागद्वेषद्वारा पुण्यपापहेतुत्वम्

ततः स्वदेहे पुत्रादावुपकार्यपकारिषु ॥ १६ ॥

रागद्वेषौ च भवतस्ताभ्यां सर्वं विचेष्टते ।
कपूयरमणीये च तदुत्थे संचिनोत्ययम् ॥ १७ ॥

इस प्रकार अहङ्कार एवं ममता से उत्पन्न वासनाओं का राग तथा द्वेष के कारण-पुण्य और पाप का हेतु बन जाना—तदनन्तर स्वदेह में, स्वपुत्र में, उपकारी में और अपकारी में राग-द्वेष उत्पन्न होने लगता है । उसी कारण जीव कर्म में प्रवृत्त हो जाता है और पुण्य एवं पाप उसी के फलस्वरूप अर्जित करता है ॥ १६-१७ ॥

ततो जात्यायुर्भोगरूपकर्मविपाकप्राप्तिः

तद्विपाकानथाप्नोति जात्यायुर्भोगलक्षणान् ।

पुण्य और पाप के फलस्वरूप जीव को जाति, आयु और भोग लक्षण कर्म विपाक प्राप्त होता है—उसी पुण्य पाप कर्म के फलस्वरूप उसे जाति, आयु और भोग लक्षण कर्म विपाक प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

प्रारब्धकर्मफलोपभोगायैव शरीरसृष्टिः

अतः फलोपभोगार्थमुभयेषां च कर्मणाम् ॥ १८ ॥
प्रारब्धानामिदं सृष्टं शरीरं च शरीरिणः ।

प्रारब्ध कर्म के फलोपभोग के लिए ही शरीर की प्राप्ति होना—जीव के शरीर की सृष्टि पुण्य-पापात्मक प्रारब्ध कर्मोपभोग के लिए ही हुई है ॥ १८-१९ ॥

रोगाणां पापजन्यत्वम्

पाप्मभ्य एव जायन्ते प्रारब्धेष्वामयास्तनौ ॥ १९ ॥
नानाविधा दुःखवरा भुज्यन्ते देहिनापरे ।

कर्मोपभोग के लिए प्राप्त शरीर में पापकर्म से रोग का उत्पन्न होना—प्रारब्धवशात् शरीर में रोगों की उत्पत्ति पाप के कारण होती है । देही (जीव) जिसके कारण नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त करता है ॥ १८-२० ॥

तत्र प्रथमं ज्वरशान्त्युपायः

ज्वराभिभूते नृपतौ सचिवेऽन्यजनेऽथवा ॥ २० ॥
महासुदर्शनं यन्त्रं कथितं मन्त्रकोविदैः ।
गुडूचीराज्यसंसिक्ताश्चतुरङ्गुलसम्मिताः ॥ २१ ॥
मन्त्रेणानेन जुहुयात् सहस्रं ज्वलितेऽनले ।
चक्राम्बुजं च विन्यस्य स्थण्डिले शालितण्डुलैः ॥ २२ ॥
तत्र पात्रं निधायाज्यं प्रस्थपूर्णं निधाय च ।
तस्यां पलप्रमाणेषु तन्तुष्वारोप्य दीपिकाम् ॥ २३ ॥
तत्राप्येनं समावाह्य मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।
ततः पश्चिमभागे तु स्थण्डिले मण्डिते शुचौ ॥ २४ ॥
आस्तीर्य कलमांस्तत्र न्यसेन्माहेन्द्रमण्डलम् ।

तन्मध्ये षडरं चक्रं मध्ये तारं च विन्यसेत् ॥ २५ ॥
तन्तुजालेन संवेष्ट्य नवकुम्भं सुशोभनम् ।
चन्द्रचन्दनकाश्मीरमिश्रैरापूर्य वारिभिः ॥ २६ ॥
तद्बहिश्चन्दनाद्यैस्तमर्चयेदक्षतैरपि ।
रत्नानि पञ्च पद्मं च दूर्वां हाटकमेव च ॥ २७ ॥
श्यामाकं विष्णुपर्णीं च देवीं चान्तर्विनिक्षिपेत् ।
मध्ये कुम्भं समावेष्ट्य क्षौमेण नवमालया ॥ २८ ॥
तं तारमध्ये संस्थाप्य साध्यनामयुते शुभे ।
पूर्णचन्द्रमभिध्यायंस्तत्र चावाहयेत् प्रभुम् ॥ २९ ॥

अब सर्वप्रथम ज्वररोग की शान्ति का उपाय कहते हैं—जब राजा अथवा राजमन्त्री अथवा अन्य जन ज्वर से अभिभूत हों तो मन्त्रवेत्ताओं ने उसकी शान्ति के लिए महासुदर्शन यन्त्र का उपाय बताया है । चार-चार अङ्गुल की गुडूची (गुरुच) लेकर उसे घी में डुबो कर जलती हुई अग्नि में एक सहस्र बार हवन करे । फिर स्थण्डिल (= वेदी) पर शालि (साठी) धान्य से चक्राकार कमल का निर्माण करे । उसे किसी पात्र में स्थापित कर, उसमें एक प्रस्थ घी डालकर, फिर उसमें एक पल प्रमाण की बत्ती बनाकर दीपक जलावे । फिर इसी चक्रसुदर्शन मन्त्र से सुदर्शन का आवाहन करे । उसके पश्चिम भाग में अलङ्कृत तथा पवित्र उसी स्थण्डिल पर अक्षत बिछाकर महेन्द्र मण्डल का निर्माण करे। उस महेन्द्र मण्डल में छः अरों वाला चक्र तथा उसके भी मध्य में प्रणव को स्थापित करे। इसके बाद किसी नवीन घड़े को रक्षासूत्र से लपेट कर उसे कपूर, चन्दन एवं केशर मिश्रित जल से पूर्ण करे । उसके बाहर चन्दनादि एवं अक्षतादि से उसकी अर्चना करे । पुनः उस कुम्भ में पञ्चरत्न, कमल, दूर्वा, सुवर्ण, यामाक, विष्णुपर्णी एवं सहदेवी डाल देवे । कुम्भ का मध्य भाग रेशमी वस्त्र तथा नवीन माला से आवेष्टित कर देवे । फिर उसे प्रणव के बीचो-बीच स्थापित करे तथा उसके ऊपर साध्य (जिसका रोग शमन करना हो) का नाम लिखे । फिर उस कुम्भ पर पूर्ण चन्द्रमा के समान ध्यान करते हुये सुदर्शन का आवाहन करे ॥ २०-२९ ॥

तं धूपदीपमाल्याद्यैः समभ्यर्च्य यथाविधि ।
शाल्यन्नं दधिमध्वाज्यसर्वव्यञ्जनसंयुतम् ॥ ३० ॥
हृद्यं साज्यं गुडं दद्याद् देवाय हविरुत्तमम् ।
बलिं ततो हरेद् दिक्षु विदिक्षु च समाहितः ॥ ३१ ॥
शाल्यन्नैः श्वेतपुष्पैश्च धूपदीपादिभिस्तथा ।
दिक्पालानां ततो दद्यात् क्षेत्रेशायापि नारद ॥ ३२ ॥

तदनन्तर शास्त्रानुसार धूप, दीप तथा माल्यादि से उनकी पूजा कर साठी का भात, जो दही, मधु, घृत आदि सभी प्रकार के व्यञ्जनों से पूर्ण हो उसे तथा घृतमिश्रित गुड़ एवं अन्य पदार्थ देवाधिदेव को हविरूप में प्रदान करे । तदनन्तर सावधान होकर

दिशाओं एवं विदिशाओं (दिशा का मध्य भाग) में श्वेतपुष्प, धूप एवं दीपादि से युक्त शालि अन्न की बलि देवे। तदनन्तर हे नारद! दिक्पालों को तथा क्षेत्रेश (भैरव) को बलि प्रदान करे॥ ३०-३२॥

आसने प्राङ्मुखं साध्यमुपवेश्याथ सज्वरम्।
दर्पणं तस्य संस्थाप्य पुरस्तात् प्रतिबिम्बितम्॥ ३३॥
कुम्भमादाय मन्त्रेण दर्पणं सोऽभिषेचयेत्।
सद्य एव ज्वरान्मुक्तो भवेन्मेघादिवोडुराट्॥ ३४॥
अथ द्विजेभ्यो विद्वद्भ्यो वैष्णवेभ्यो विशेषतः।
निष्कत्रयं हिरण्यस्य द्रोणं चाज्यस्य गां तथा॥ ३५॥
कर्पूरं चन्दनं चापि वासांसि विमलान्यपि।
एतानि दद्यादेकस्मै मुने ब्रह्मविदेऽथवा॥ ३६॥
ततः स्वस्थो भवेत् सद्यो यावज्जीवं न संशयः।
एषा चिकित्सा प्रकृतिर्व्याधीनां मात्रया भिदा॥ ३७॥

तदनन्तर ज्वर वाले रोगी को पूर्वाभिमुख आसन पर बैठा कर उसके आगे शीशा इस प्रकार रखे जिसमें उसकी परछाईं पड़ती रहे। फिर उस घड़े को हाथ में लेकर उसके जल से मन्त्रपूर्वक दर्पण को अभिषिक्त करे। ऐसा करने से रोगी इस प्रकार ज्वरमुक्त हो जाता है जैसे मेघमण्डल से चन्द्रमा। तदनन्तर वह रोगी ब्राह्मणों, विद्वानों एवं वैष्णवों को तीन-तीन निष्क वाली सुवर्ण की दक्षिणा और एक-एक द्रोण घी तथा गौ प्रदान करे तथा किसी एक ब्रह्मवेत्ता विद्वान् को कपूर, चन्दन एवं नाना प्रकार के श्वेत वस्त्र प्रदान करे। ऐसा करने से रोगी यावज्जीवन स्वस्थ होकर जीवित रहता है, इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार सभी प्रकार के रोगों की चिकित्सा करनी चाहिए। किन्तु उसकी प्रक्रिया में थोड़ा-थोड़ा भेद है॥ ३३-३७॥

राजयक्ष्मशान्तिः

राजयक्ष्माभिभूते तु नृपादौ मुनिसत्तम।
मध्वक्ताभिरपामार्गसमिद्भिः खादिरेऽनले॥ ३८॥
मन्त्रेणानेन जुहुयात् सहस्रं मन्त्रवित्तमः।
ततः प्रतीच्ये दिग्भागे पूर्ववत् कल्पितेऽनले॥ ३९॥
आढकाज्याभिपूर्णायां पात्र्यां द्विपलतन्तुषु।
आरोप्य दीपिकां पश्चाद् देवमावाह्य मन्त्रतः॥ ४०॥
ततः पाश्चात्त्यभागे तु भारशालिपरिष्कृते।
स्थण्डिले मण्डिते शुद्धे कृत्वा माहेन्द्रमण्डलम्॥ ४१॥

राजयक्ष्मा की शान्ति का उपाय—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुनिसत्तम! जब राजा आदि राजयक्ष्मा रोग से अभिभूत हों तो मधु मिश्रित अपामार्ग (चिचिढी) की समिधा से खदिर से जलती हुई अग्नि में हवन करे। मन्त्रवेत्ता इसी मन्त्र से एक हजार आहुति प्रदान

करे। उसके पश्चिम दिशा में पूर्ववत् स्थापित अग्नि में आढक परिमाण की घृतपूर्व पात्री में दो पल डोरे की बत्ती बनाकर दीपक जलावे। तदनन्तर मन्त्र द्वारा देव का आवाहन करे। फिर उसके पश्चिमभाग में एक भार बिछाये गए शाली से परिष्कृत, कुङ्कुमादि से सुशोभित एवं मण्डित स्थण्डिल पर महेन्द्र मण्डल का निर्माण करे ॥ ३८-४१ ॥

पूर्ववत् षडरं चक्रं विन्यस्यारेष्वमुष्य च।
मन्त्रवर्णानि विन्यस्य साध्यनाम च तारके ॥ ४२ ॥
पूर्ववन्मन्त्रितं कुम्भं तत्र संस्थाप्य मण्डले।
आवाह्य देवमभ्यर्च्य पूर्ववच्चक्ररूपिणम् ॥ ४३ ॥
हविश्च पायसं दद्यात् खण्डमध्वाज्यसंयुतम्।
बलिं च पूर्ववत् कुर्यात् पायसेन विशेषतः ॥ ४४ ॥
गुरुक्षेत्रेशविघ्नेशदुर्गादिक्पालकान् प्रति।

उस महेन्द्र मण्डल पर छः अरों वाला चक्र स्थापित कर उसके अरों में मन्त्र के वर्णों को लिख कर प्रणव पर साध्य (रोगी) का नाम लिखे। तदनन्तर उसी मण्डल पर पूर्ववत् (द्र० ३८.२६-२८) नवीन कुम्भ स्थापित कर चक्ररूपी देवता का आवाहन कर उनकी पूजा करे। गुरु, क्षेत्रेश, विघ्नेश, दुर्गा और दिक्पालों को खाँड़, मधु एवं आज्य से संयुक्त पायस रूप हवि प्रदान करे और पूर्ववत् बलि करे, विशेष कर पायस की बलि उत्तम है ॥ ४२-४५ ॥

प्रावृत्य कम्बलेनैनं साध्यं प्राङ्मुखमासने ॥ ४५ ॥
आसीनं मन्त्रतः कुम्भवारिभिश्चाभिषेचयेत्।
अन्वहं दर्पणाविष्टं स्नापयेच्छायया पुनः ॥ ४६ ॥
निष्कद्वयं हिरण्यस्य द्विनिष्कं रजतं तथा।
कम्बलं स्वधृतं वस्त्रं तिलानां द्रोणमेव च ॥ ४७ ॥
कमण्डलुं कांस्यपात्रं छत्रं चोपानहौ तथा।
एकस्मै ब्राह्मणायैव विदुषे चास्तिकाय वै ॥ ४८ ॥
दद्यादेतानि सर्वाणि सर्वसत्कारपूर्वकम्।
प्रयोक्तारं धनैरेवमभ्यर्च्य प्रयतो भवेत् ॥ ४९ ॥
सद्यस्तस्मान्महारोगाद् विमुक्तो नात्र संशयः।

फिर रोगी को कम्वल ओढ़ाकर पूर्वाभिमुख आसन पर बिठावे और कलश के जल से उसे अभिषिक्त करे। फिर दर्पण में आविष्ट उसके प्रतिबिम्ब को प्रतिदिन उसकी छाया से स्नान करावे। सोने के दो निष्क तथा रजत (= चाँदी) के दो निष्क, कम्बल, स्वयं धारण किए गए वस्त्र, द्रोण परिमाण में तिल, कमण्डल, कांस्यपात्र, छत्र तथा उपानह ये सभी वस्तुयें किसी एक आस्तिक विद्वान् ब्राह्मण को सत्कारपूर्वक प्रदान करे तथा इस क्रिया के प्रयोग करने वाले ब्राह्मण को धन से सन्तुष्ट कर स्वयं नियमपूर्वक रहे। ऐसा करने से रोगी महारोग से विमुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ४५-५० ॥

प्रमेहरोगशान्तिः

एवं प्रमेहरोगेण गृहीते च महामुने ॥ ५० ॥
सहस्रं जुहुयान्मन्त्री मन्त्रेणानेन बैल्वकैः ।
माषौदनं हविर्दद्याद् बलिं चानेन कारयेत् ॥ ५१ ॥
अभिषेकं स्वयं कुर्यादन्यत् पूर्ववदाचरेत् ।
दद्याद् द्रोणं च माषाणां रजतं पञ्चनिष्ककम् ॥ ५२ ॥
एकं चानुडुहं सद्यो नीरोगः स्यान्महामुने ।

प्रमेह रोग की शान्ति का उपाय—हे महामुने ! प्रमेह रोग से गृहीत होने पर इसी प्रकार मन्त्रवेत्ता बिल्ब की लकड़ी से एक सहस्र बार हवन करे । माष और ओदन की हवि प्रदान करे तथा इसी से बलि भी प्रदान करे । अभिषेक स्वयं करे अन्य तथा सारी विधि पूर्ववत् करे । एक द्रोण परिमाण में माष (= उरद की दाल), पाँच निष्क रजत और एक बैल का दान करे । ऐसा करने से, हे महामुने ! रोगी तत्क्षण निरोग हो जाता है ॥ ५०-५२ ॥

उदररोगशान्तिः

तथौदरैर्महारोगैर्गुल्मशूलादिभिश्चिरम् ॥ ५३ ॥
अभिभूतेषु मर्त्येषु वक्ष्ये प्रतिविधिं शृणु ।
पूर्ववत् कुम्भमभ्यर्च्य सुदर्शननिषेवितम् ॥ ५४ ॥
तत्पूर्वभागे प्रज्वाल्य ज्वलनं कुण्डमध्यमे ।
समिद्भिरार्कैर्जुहुयादाज्याक्तैर्द्विसहस्रकम् ॥ ५५ ॥
तिलैश्च जुहुयात् तद्वन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।
ततः कुम्भोदकं स्पृष्ट्वा सहस्रं च जपेन्मनुम् ॥ ५६ ॥
ततो हरेद् बलिं मन्त्री दिक्पालानां यथाक्रमम् ।
भूतप्रेतपिशाचानां क्षेत्रेशस्यापि नारद ॥ ५७ ॥
शुक्लौदनैः शुक्लपुष्पैः पिष्टैः शुक्लध्वजैरपि ।
कुम्भाधिवासितं देवं पूजयेद् विधिवत् ततः ॥ ५८ ॥
हविर्निवेदयेच्छुद्धैरोदनैः कल्पितं बहु ।
शर्करामधुदध्याढ्यं सर्वव्यञ्जनसंयुतम् ॥ ५९ ॥
ततः कुम्भोदकं किञ्चिदादायानेन मन्त्रितम् ।
पाययेद्रोगिणं मन्त्री मन्त्रोच्चारणपूर्वकम् ॥ ६० ॥

उदर रोग की शान्ति का उपाय—इसी प्रकार गुल्म शूल आदि उदर रोगों से चिरकाल तक गृहीत होने पर उसके प्रतीकार का उपाय कहता हूँ । हे महामुने ! उसे सुनिए । पूर्ववत् सुदर्शन प्रतिष्ठापित कुम्भ की अर्चना करे उसके पूर्व भाग में मध्यम कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित कर आज्यसिक्त मन्दार की समिधा से दो सहस्र सङ्ख्या में हवन करे । फिर इसी मन्त्र से उसी प्रकार दो सहस्र की सङ्ख्या में तिल का हवन करे । फिर कुम्भ का जल स्पर्श कर एक हजार की सङ्ख्या में उसी मन्त्र का जप करे । फिर मन्त्रवेत्ता क्रमानुसार

दिक्पालों की भूत-प्रेत-पिशाच और क्षेत्रेश को बलि प्रदान करे। शुक्ल ओदन, शुक्ल पिष्ट तथा शुक्ल ध्वज से कुम्भाधिवासित सुदर्शन देव की विधिपूर्वक पूजा करे। तदनन्तर ऐसे सफेद चावल का भात प्रचुर परिमाण में हवि (नैवेद्य) प्रदान करे जो शर्करा, मधु, दही तथा सभी प्रकार के व्यञ्जनों से परिपूर्ण हो फिर थोड़ा सा कलश का जल ले कर इस मन्त्र से अभिमन्त्रित कर रोगी को मन्त्र का उच्चारण करते हुये पिला देवे ॥ ५३-६० ॥

ततः कुम्भोदकेनैव प्राङ्मुखं स्नापयेद् बुधः।
तर्पयेद् ब्राह्मणान् सप्त यथाशक्ति समाहितः॥ ६१ ॥
गुरुं बहुधनैर्वस्त्रैर्भूषणैर्धान्यराशिभिः।
सर्वे तस्यौदरा रोगा विनश्यन्ति न संशयः॥ ६२ ॥
ततः स्वस्थो भवेन्मर्त्यो देववन्मोदतेऽनिशम्।

उसी कुम्भ के जल से पूर्वमुख स्थित रोगी को मन्त्रवेत्ता बुद्धिमान् स्नान करा देवे। तदनन्तर रोगी सावधानी से अपनी शक्ति के अनुसार सात ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करे। गुरु को बहुत धन, वस्त्र, भूषण तथा धान्य राशि देकर सन्तुष्ट करे। ऐसा करने से उसके सारे उदर रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। फिर तो वह रोगी मनुष्य स्वस्थ होकर देवता के समान सर्वथा प्रसन्न होकर निवास करता है ॥ ६१-६३ ॥

अपस्माररोगशान्तिः

अपस्माराभिभूते तु नरे प्रतिविधिं शृणु॥ ६३ ॥
भूतले गोमयालिप्ते समे मङ्गलसंयुते।
तिलभारद्वयं तत्र प्रस्तीर्य चतुरश्रकम्॥ ६४ ॥
द्विहस्तसम्मितं तत्र यन्त्रं सौदर्शनं न्यसेत्।
पूर्वोक्तेन प्रकारेण विनैवाखिलमूर्तिभिः॥ ६५ ॥
सुदर्शनं नृसिंहं च विना मन्त्राभिसंहितम्।
सौदर्शनं महायन्त्रं मध्ये पूर्वोक्तवर्त्मना॥ ६६ ॥
प्रणिधायोदकुम्भं तु तन्तुभिः परिवेष्टितम्॥ ६७ ॥
पूर्वेण मण्डलं वह्निं निधाय विधिवत् ततः।
अनेन मनुना कुर्याद् द्विसहस्रं तिलाहुतीः॥ ६८ ॥

अपस्मार-शान्ति का उपाय—हे नारद! अपस्मार से अभिभूत होने वाले रोगी को स्वस्थ होने का उपाय सुनिए। गोमय से उपलिप्त माङ्गलिक द्रव्यों से युक्त समतल भूमि पर दो भार तिल चौकोर प्रसारित करे। उस पर दो हाथ लम्बा सुदर्शन यन्त्र स्थापित करे। उस पर अन्य देवताओं की मूर्ति न रहे। इसी प्रकार बिना मन्त्र के सुदर्शन तथा नृसिंह को भी स्थापित करे। उन दोनों के मध्य में पूर्वोक्त क्रम से सुदर्शन महायन्त्र को स्थापित करे। फिर रक्षा सूत्र में परिवेष्टित पूर्वोक्त पञ्च रत्नादि द्रव्यों से संयुक्त (द्र० ३८.२७-२९) कम्बलाच्छादित जल-कलश स्थापित करे। तदनन्तर उस मण्डल से बाहर पूर्व दिशा में विधिपूर्वक अग्नि स्थापित कर इसी मन्त्र से दो हजार तिलाहुती प्रदान करे ॥ ६३-६८ ॥

ततः कुम्भं स्पृशन्मन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जपेन्मन्त्राभिपूतेन वारिणानेन मन्त्रवित् ॥ ६९ ॥
ग्रहाभिभूतमासीनं प्राङ्मुखं चाभिषेचयेत् ।
ततो मुक्तग्रहस्तेन क्षणेनैव सुखी भवेत् ॥ ७० ॥
सर्वे चान्ये ग्रहास्तं तु न क्षमन्ते हि वीक्षितुम् ।
धनधान्यैश्च वासोभिः स गुरुं पूजयेत् ततः ॥ ७१ ॥
यस्मिन् यन्त्रे तु यद् द्रव्यं तच्च तस्मै निवेदयेत् ।
ब्राह्मणांस्तर्पयेत् पश्चादष्टौ तिलसुवर्णकैः ॥ ७२ ॥
रजतैश्चापि महिषीं साधकाय निवेदयेत् ।
ततः स्वस्थो भवेन्मर्त्यो देववन्मोदते भुवि ॥ ७३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां ज्वरादिरोगनिवृत्त्युपाय-विधानं नाम अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥
॥ आदितः श्लोकाः २४४९ ॥

* * *

फिर कुम्भ का स्पर्श करते हुये एक हजार आठ बार इस मन्त्र का जप करे । तदनन्तर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण उस कुम्भ के पवित्र जल से ग्रहाभिभूत, पूर्वाभिमुख बैठे हुये उस रोगी का अभिषेक करे । ऐसा करने से रोगी सभी ग्रहों से मुक्त हो जाता है और क्षणमात्र में सुखी हो जाता है । इस प्रकार की शान्ति से युक्त रोगी को अन्य ग्रह आँख उठाकर देख भी नहीं सकते । तदनन्तर ग्रहमुक्त हुआ रोगी धन-धान्य और वस्त्रों से गुरु की पूजा करे । उस यन्त्र में जो द्रव्य दिया गया हो उसे गुरु को समर्पित करे । आठ ब्राह्मणों को तिल तथा सुवर्ण एवं रजत (चाँदी) द्वारा सन्तुष्ट करे । मन्त्रवेत्ता साधक को महिषी (= भैंस) प्रदान करे । फिर तो मनुष्य स्वस्थ होकर इस पृथ्वी में देवता की तरह प्रसन्न हो जाता है ॥ ६९-७३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के ज्वरादिरोग से निवृत्ति के उपाय नामक अड़तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३८ ॥

* * *

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

सर्वफलसाधनभूतमहाभिषेकविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप-समूह को नष्ट कर देता है, हम उन सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

केन प्रयोगेण सर्वार्थसिद्धिरिति प्रश्नः

नारदः—

भगवन् ब्रूहि सर्वज्ञ येनैकेनैव कर्मणा ।
सर्वरोगा विनश्यन्ति केन सर्वे च शत्रवः ॥ १ ॥
केन सर्वार्थसिद्धिः स्याज्जगत् केन वशं भवेत् ।
विभूतिर्विमला केन प्राप्यते कर्मणा वद ॥ २ ॥

किसी एक प्रयोग का अनुष्ठान करने से भी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं इस विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे सर्वज्ञ ! किस एक कर्म के अनुष्ठान से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं? किस एक कर्म से सारे शत्रु नष्ट हो जाते हैं? किस एक कर्म से सभी प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं? किस एक कर्म से सारा संसार वश में हो जाता है तथा किस एक क्रिया के अनुष्ठान से शुद्ध विभूति प्राप्त हो जाती है? उसे हमें बताइये ॥ १-२ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

श्रूयतां चावधानेन गुह्यमेतन्महामुने ।
येनैकेन प्रयोगेण सर्वार्थाः सम्भवन्ति हि ॥ ३ ॥

उक्त प्रश्न का समाधान—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे महामुने ! यह बहुत रहस्य की बात है । अतः सावधान होकर इसे सुनिए । जिस एक ही कर्म के अनुष्ठान मात्र से सारे प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं उसे मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥

महाभिषेकाख्यकर्मविधिः

राज्ञश्च मन्त्रिणां चैव सर्वेषामधिकारिणाम् ।
पदात् स्वस्मादुपारोढुकामानां परमं पदम् ॥ ४ ॥
अन्येषां लौकिकानां च यत् किञ्चिद् वाञ्छतां तथा ।
कार्यं महाभिषेकाख्यं कर्म सर्वार्थसाधकम् ॥ ५ ॥

महाभिषेकाख्य कर्म के विधान का निरूपण—राजा को, मन्त्री को, सभी अधिकारियों को तथा अपने पद से समुन्नत पद पर अधिरूढ होने की इच्छा करने वालों को, इसी प्रकार अन्य लौकिक प्रयोजन की सिद्धि के लिए तथा जिस किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करने वालों को महाभिषेकाख्य कर्म करना चाहिए । क्योंकि यही सर्वार्थसाधक एकमात्र उपाय है ॥ ४-५ ॥

तदङ्गतया स्थानादिविशेषविधिः

वासुदेवालयोद्यानमण्डपे मन्दिरेऽथवा ।
समे पवित्रिततले मङ्गलाष्टकसंयुते ॥ ६ ॥
विकीर्य कलमांस्तत्र नवभाराभिसम्मितान् ।
माहेन्द्रमण्डलं न्यस्य बाह्यतो जातिपुष्पकैः ॥ ७ ॥
मध्ये सौदर्शनं यन्त्रमुक्तेनैव तु वर्त्मना ।
विन्यसेद् गन्धपुष्पैश्च तन्मध्ये च सुशोभनम् ॥ ८ ॥
तन्मध्ये विन्यसेन्मन्त्री यन्त्रबिम्बमनुत्तमम् ।
तस्याग्रे मूलमन्त्रेण कुम्भं तन्तुपरिष्कृतम् ॥ ९ ॥
आवाहयेद् गन्धतोये नवरत्नसमन्वितम् ।
चन्दनागुरुकर्पूरकाश्मीरक्षोदमण्डितम् ॥ १० ॥
अक्षतैश्च परिक्षिप्तं शुद्धक्षौमाभिवेष्टितम् ।
गन्धवत्कुसुमाकीर्णं धूपदीपसमन्वितम् ॥ ११ ॥
मुखान्तरे तथा कार्ये कुम्भकुण्डे स्वलङ्कृते ।
प्रतिष्ठाप्याष्टदिग्भागे पूर्णकुम्भानलङ्कृतान् ॥ १२ ॥
आचक्रायेतिमन्त्राद्यैरग्निप्राकारकान्तकैः ।
प्रागादि विन्यसेन्मन्त्रैः प्रत्येकं पूजयेत् ततः ॥ १३ ॥

सर्वप्रथम तदङ्गतया स्थानादि का निरूपण—श्रीकृष्ण के मन्दिर के उद्यानमण्डप में अथवा मन्दिर में, जहाँ की पृथ्वी समतल हो और जहाँ आठ प्रकार के मङ्गल (सवत्सा गौ आदि) विद्यमान हों वहाँ पर परिमाण में नौ बार चावल फैला कर उसको बाहर से जाती पुष्प से घेर कर उपर्युक्त रीति से महेन्द्र मण्डल के मध्य में सुदर्शन यन्त्र का गन्ध एवं पुष्प के साथ निर्माण करे । उसके मध्य में मन्त्री साधक उत्तम यन्त्रबिम्ब को बनाए और उसके आगे मूल-मन्त्र से रक्षातन्तु से परिष्कृत किये हुये कलश को

स्थापित करे। जिसमें सुगन्धित द्रव्य, जल, नवरत्न, चन्दन, अगरु, कर्पूर और केशर का चूर्ण डाला गया हो, उसके ऊपर अक्षत का पूर्णपात्र रख कर शुद्ध रेशमी वस्त्र द्वारा परिवेष्टित करे और सुगन्धित पुष्प की माला से समाकीर्ण कर धूप तथा दीप प्रदान करे। कुम्भ के मुख को अच्छी प्रकार अलङ्कृत करे। तदनन्तर उस कुम्भ के आठों दिशाओं में आठ कुम्भों को अलङ्कृत कर उसे प्रतिष्ठापित करे। अग्नि के प्राकार से मनोहर 'आचक्राय स्वाहा' आदि मन्त्रों से पूर्व दिशादि के क्रम से न्यास कर उनका पूजन करे॥ ६-१३॥

प्रागादिदिक्षु मध्ये चाग्निकुण्डविधिः

सर्वत्र कुम्भप्राग्भागेष्वग्निकुण्डानि विन्यसेत्।
प्रासादलक्षणं कुण्डं मध्ये कुर्यात् स्वलङ्कृतम्॥ १४॥

प्रागादि दिशाओं में अग्निकुण्ड की विधि—सर्वत्र आठों दिशाओं में स्थापित कलशों के पूर्व भाग में अग्निकुण्ड निर्माण करावे, मध्य कलश के पूर्व भाग में प्रासाद लक्षण कुण्ड का निर्माण कर उसे अलङ्कृत करे॥ १४॥

प्रागाद्यग्निकुण्डानां लक्षणकथनम्

प्राच्यां दिशि चतुष्कोणमाग्नेय्यां तु त्रिकोणकम्।
याम्ये त्वर्धेन्दुसङ्काशं नैर्ऋत्यां योनिसन्निभम्॥ १५॥
वारुण्यां पद्मसङ्काशं वायव्यामष्टकोणकम्।
वृत्तमुत्तरदिग्भागे चैशान्यां तु षडस्रकम्॥ १६॥

पूर्वादि दिशाओं में निर्माण किये जाने वाले अग्निकुण्डों के लक्षण—पूर्व दिशा में चतुष्कोण अग्निकुण्ड, आग्नेयकोण में त्रिकोण अग्निकुण्ड, दक्षिण में अर्द्धचन्द्राकार अग्निकुण्ड, नैर्ऋत्य दिशा में योनि लक्षण अग्निकुण्ड, पश्चिम दिशा में पद्माकार अग्निकुण्ड, वायव्य में अष्टकोणात्मक अग्निकुण्ड, उत्तर दिशा में वृत्ताकार अग्निकुण्ड तथा ईशान कोण में षडस्र कुण्ड का निर्माण करावे॥ १५-१६॥

दिशां होमेषु वैष्णवर्त्विग्वरणम्

वैष्णवानृत्विजश्चाष्टौ दिशां होमेषु योजयेत्।
मध्ये तु साधको मन्त्री जुहुयाज्ज्वलितेऽनले॥ १७॥

होम के लिए प्रत्येक दिशा में वैष्णव ऋत्विजों का वर्णन—दिशाओं में होम के लिए आठ वैष्णव ऋत्विजों का वरण करे तथा मध्य में साधक मन्त्रवेत्ता स्वयं जलती हुई अग्नि में हवन करे॥ १७॥

होमे द्रव्यसङ्ख्ययोर्विधिः

प्रत्येकं जुहुयादाज्यैरष्टोत्तरसहस्रकम्।

होम में द्रव्य तथा सङ्ख्या का प्रमाण कथन—प्रत्येक दिशाओं में घृत से एक हजार आठ हवन करे॥ १८॥

होमे मन्त्रविधिः

सर्वत्र मूलमन्त्रेण जुहुयाद् ध्यानपूर्वकम् ॥ १८ ॥

होम के लिए मन्त्र कथन—साधक सभी दिशाओं में मूल मन्त्र से ध्यानपूर्वक हवन करे ॥ १८ ॥

कुम्भाभिमन्त्रणविधिः

होमान्ते देवमभ्यर्च्य सर्वकुम्भेषु साधकः ।
स्पृष्ट्वा तु ताञ्जपेन्मन्त्रं साध्यनामपुटीकृतम् ॥ १९ ॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु सर्वत्र विधिवत् ततः ।
निवेशयेन्महायन्त्रसम्मुखं साध्यमासने ॥ २० ॥

कुम्भों के अभिमन्त्रण की विधि—उपर्युक्त प्रकार से हवन कर लेने के पश्चात् साधक प्रत्येक कुम्भ पर देवाधिदेव सुदर्शन का पूजन करे । फिर उसे स्पर्श कर साध्य (रोगी अथवा अन्य आपद्ग्रस्त) नाम को मन्त्र से सम्पुट कर विधानपूर्वक एक हजार आठ बार सर्वत्र प्रत्येक कुम्भों पर जप करे । तदनन्तर महायन्त्र के सामने आसन पर साध्य को बिठावे ॥ १९-२० ॥

प्रथमं प्रागादिकुम्भजलैरभिषेकः

ततो भेरीनिनादैश्च शङ्खकाहलनिस्वनैः ।
सहितं स्नापयेदेनं प्राच्याद्यैः कुम्भवारिभिः ॥ २१ ॥

क्रमशः पूर्वादि दिशाओं के कलश जल से अभिषेक का कथन—तदनन्तर भेरी शब्द तथा शङ्ख ध्वनि करते हुये पूर्वादि दिशाओं में स्थित कलश के जल से साध्य को स्नान करवावे ॥ २१ ॥

ततः पूर्णकुम्भजलेनाभिषेकः

पश्चान्मध्यममादाय पूर्णकुम्भं स्वलङ्कृतम् ।
तद्वारिणाभिषिच्यान्ते मन्त्रं मन्त्री जपेत् स्वयम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर पूर्णकुम्भ के जल से अभिषेक का कथन—आठों कलश से स्नान कराने के पश्चात् अच्छी प्रकार से अलङ्कृत मध्य स्थित पूर्णकुम्भ का जल लेकर उसी से मन्त्रवेत्ता आचार्य स्वयं मन्त्र का उच्चारण करते हुये साध्य को स्नान करवावे ॥ २२ ॥

यथोक्ताभिषेकेण सर्वकामावाप्तिः

ततस्तेनाभिषेकेण निर्धूताशेषकिल्बिषः ।
राजते हिमसंरोधान्निर्मुक्त इव भास्करः ॥ २३ ॥
सर्वे तमनघं कामा वृणते स्वयमेव हि ।
विना राजानमेतेन कुर्याच्चान्याभिषेचनम् ॥ २४ ॥
एवं महाभिषेके तु कृते पूर्णे महात्मना ।

यस्य यद् वाञ्छितं तस्य हस्तस्थं तन्न संशयः ॥ २५ ॥
आयुष्कामी तथायुष्यमारोग्यार्थी तदश्नुते ।
अर्थार्थी चार्थमाप्नोति पशुकामस्तथा पशून् ॥ २६ ॥
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति निर्गुणो गुणवान् भवेत् ।
कन्यार्थी लभते कन्यां जिगीषुर्जयमश्नुते ॥ २७ ॥
स्वपदं पदहीनस्तु पदार्थी परमं पदम् ।
अन्नकामश्च बह्वन्नं यशोऽर्थी चाश्नुते यशः ॥ २८ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन यद्यन्मनसि वर्तते ।
तत्तत् सद्यः समाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ २९ ॥

उक्त प्रकार के अभिषेक से साध्य की सारी कामनाओं का पूर्ण हो जाना—

ऊपर कही गई विधि से अभिषिक्त साध्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं जैसे कुहरे से ढका हुआ सूर्य उससे मुक्त होने पर सुशोभित होता है उसी प्रकार वह भी सुशोभित होता है। सम्पूर्ण कामनायें उस निष्पाप पुरुष को स्वयं वरण कर लेती हैं । इस प्रकार का अभिषेक राजा को छोड़कर अन्य लोगों का कहा गया है । विद्वान् पुरुष द्वारा इस प्रकार के महाभिषेक सम्पन्न कर दिये जाने पर जिसे जिस वस्तु की अभिलाषा होती है वह उसके करतल में स्वयं प्राप्त हो जाती हैं । इसमें संशय नहीं है । आयु चाहने वाला आयुष्य तथा आरोग्य चाहने वाला आरोग्य का फल भोगता है अर्थार्थी अर्थ प्राप्त करता है, पशु चाहने वाला पशु प्राप्त करता है, अपुत्र को पुत्र प्राप्त होता है, निर्गुण गुणवान् बन जाता है, कन्यार्थी को कन्या मिलती है, विजय लाभ चाहने वाले को विजय प्राप्त होती है, पदच्युत अपना पद प्राप्त करता है, परम पद चाहने वाले को परम पद मिल जाता है, अन्न चाहने वाले को पर्याप्त अन्न तथा कीर्त्ति चाहने वाले को कीर्त्ति प्राप्त होती है । इस विषय में बहुत क्या कहा जाय? मन में रहने वाले सारे मनोरथ सद्यः पूर्ण हो जाते हैं इसमें विचार की आवश्यकता नहीं ॥ २३-२९ ॥

अन्ते साधकार्चनविधिः

एवं कृताभिषेकस्तु पूर्णकामोऽथ मानवः ।
सुवर्णैर्बहुरत्नैश्च वस्त्रैर्माल्यानुलेपनैः ॥ ३० ॥
अर्चयेत् साधकं सम्यग् दद्याद्धेनुं सवत्सकाम् ।
तस्मै शिष्टं च यद् द्रव्यमभिषेकपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥
तच्च दद्यात् तथा पात्रीं पायसेनाभिपूरिताम् ।

अन्त में साधक द्वारा अर्चन विधि का वर्णन—इस प्रकार से अभिषिक्त तथा कृतकृत्य मनुष्य सुर्वण, अनेक प्रकार के रत्न एवं वस्त्र, माला तथा चन्दन द्वारा साधक (मन्त्रवेत्ता) की अच्छी प्रकार से पूजा करे । उसे सवत्सा गौ देवे और अभिषेक की सारी सामग्री तथा यज्ञ शेष सारा द्रव्य प्रदान करे । इतना ही नहीं पायस परिपूर्ण पात्री भी उसे प्रदान करे ॥ ३०-३२ ॥

ऋत्विजां ब्राह्मणानां च परितोषणविधिः

प्रत्येकं निष्कदानेन तोषयेदृत्विजोऽखिलान् ।
तर्पयेद् ब्राह्मणानन्यान् यथाशक्ति समाहितः ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सर्वफलसाधनभूत-महाभिषेकविधानं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २४८१ ॥

*

ऋत्विग् तथा ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करने की विधि—यजमान अपने समस्त ऋत्विजों को सुवर्ण निष्क देकर सन्तुष्ट करे । तदनन्तर समाहित होकर अन्य ब्राह्मणों का भी शक्ति के अनुसार सत्कार करे ॥ ३२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अस्त्रों
के जन्मनामनिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ३८ ॥

*

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

अस्त्रस्वरूपतच्छक्तिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी ध्यान करने से अनेक कोटि जन्मों के पाप समूह नष्ट हो जाते हैं, हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

उक्तानुवादपूर्वकमस्त्रसंस्थानतच्छक्तिस्वरूपप्रश्नः

नारदः—

भगवन् देवदेवेश विश्वामरवरार्चित ।
यद्यन्मया पुरा पृष्टं तत्त्वतस्तत् तदीरितम् ॥ १ ॥
दिव्यास्त्राणां तु सर्वेषां मन्त्ररूपाश्च मूर्तयः ।
कथिता भवता सम्यक् पृच्छतो मे सविस्तरम् ॥ २ ॥
किंसंस्थानान्यथास्त्राणि किं शक्तीनि परन्तप ।
मयि सानुग्रहं चेतस्तव चेद् वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

उक्तानुवादपूर्वक अस्त्र संस्थान तथा तच्छक्ति स्वरूप विषयक प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! समस्त देववरों से पूजित ! मैंने जो-जो आपसे प्रश्न किया । आपने उन सभी प्रश्नों को समाहित किया । मैंने जैसा पूछा था वैसे ही आपने सभी दिव्यास्त्रों के मन्त्रस्वरूपों को तथा उनकी मूर्तियों का सविस्तार वर्णन किया । अब हे परन्तप ! वे अस्त्र किस प्रकार के संस्थान वाले हैं और उनमें कौन-कौन सी शक्तियाँ हैं, यदि आपका मन मुझमें अनुग्रह से युक्त है तो उसे हमें बताइये ॥ १-३ ॥

तदुत्तरकथनाय तेषां परमगुह्यत्वख्यापनम्

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् परमं गुह्यमवाच्यमतिदुर्लभम् ।

उक्त प्रश्न का उत्तर देने के लिए प्रथम वे अस्त्र परम गुह्य हैं इसका कथन—

अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! इसका उत्तर अत्यन्त गुह्य है तथा अत्यन्त दुर्लभ होने के कारण वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता ॥ ४ ॥

अस्त्राणां स्वरूपेण प्रत्यक्षागोचरता

न चाविरासन्नस्त्राणि स्वस्वरूपेण कस्यचित् ॥ ४ ॥
सुरासुरैर्नियुज्यन्ते मन्त्ररूपेण तानि वै ।

कोई भी अस्त्र स्वरूपतः प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देते—आज तक कोई भी अस्त्र किसी के सामने प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं हुये । देवता एवं असुर उनका मन्त्र रूप से प्रयोग करते आये हैं ॥ ४-५ ॥

देवकार्यार्थमिन्द्रं प्रति कदाचित् तेषां गोचरता

एकदा वृत्रनिधने वासवस्य स्वरूपतः ॥ ५ ॥
आविर्बभूवुरेतानि सुरकार्यमिदं त्विति ।

देवताओं के कार्य के लिए कदाचित् वे अस्त्र इन्द्र को प्रत्यक्ष होते हैं—किसी समय वृत्र के वध काल में ये अस्त्र इन्द्र को स्वरूप से प्रत्यक्ष दिखाई पड़े थे, उसका कारण यह था कि उस समय उन्हें देव कार्य निष्पन्न करना था ॥ ५-६ ॥

मन्त्ररूपेणासाध्ये विषये तेषां स्वस्वरूपाविष्करणम्

मन्त्रस्वरूपैश्चासाध्ये विषये स्वस्वरूपतः ॥ ६ ॥
आविष्कुर्वन्ति चास्त्राणि भीषणानि परं मुने ।
एषां दर्शनमात्रेण विनश्यन्त्यरिसैनिकाः ॥ ७ ॥

जब मन्त्र द्वारा कोई कार्य असम्भव हो जाता है तब वे स्वरूपतः प्रगट होते हैं—हे मुने ! जब मन्त्र स्वरूप से कोई भी कार्य असाध्य होता है तब ये भीषण अस्त्र अपने को स्वरूपतः प्रगट करते हैं । फिर तो उनके दर्शन मात्र से सारे शत्रु सैन्य विनष्ट हो जाते हैं ॥ ६-७ ॥

भगवता तेषां स्वरूपेण धारणम्

चक्रस्वरूपी भगवांस्तानि धत्ते स्वरूपतः ।

उन अस्त्रों को मात्र भगवान् ही स्वरूपतः धारण करते हैं—चक्र रूपी भगवान् ही उन्हें स्वरूपतः धारण करते हैं ॥ ८ ॥

तत्स्वरूपतच्छक्तिकथनप्रतिज्ञा

स्वरूपाणि तथा तेषां शक्तीश्च कथयामि ते ॥ ८ ॥

अब उनके स्वरूप तथा उनकी शक्ति के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हैं—हे नारद ! अब उनके स्वरूपों को तथा शक्तियों को मैं आपसे कहता हूँ ॥ ८ ॥

१. नारायणास्त्रम्

शृणु नारायणास्त्रस्य स्वरूपं प्रथमं मुने ।

सहस्रधारमत्युग्रं सहस्रार्कसमप्रभम् ॥ ९ ॥
तैजसं विस्तृताग्रं तन्मोहिनीकुसुमोपमम् ।

१. नारायणास्त्र—हे मुने ! सर्वप्रथम आप नारायणास्त्र के स्वरूप को सुनिए । यह नारायणास्त्र सहस्रधाराओं से युक्त, उग्र तथा सहस्र सूर्य के समान कान्ति वाला है । तैजस है, अग्रभाग में विस्तार वाला है तथा मोहिनी के फूल के समान है वही नारायणास्त्र कहा गया है ॥ ९-१० ॥

२. पाशुपतास्त्रम्

प्रतिपच्चन्द्रसङ्काशमध्याष्टास्रविदीपितम् ॥ १० ॥
शतधारं तडिद्दीप्तमेतत् पाशुपतं मतम् ।

२. पाशुपतास्त्र—जो प्रतिपत् के चन्द्रमा के समान अदृश्य है, मध्य में आठ अस्रों (कोणों) से दीप्तिमान् है इसमें सौ धारायें हैं, जो बिजली के समान प्रकाशित रहती हैं इसे पाशुपतास्त्र कहते हैं ॥ १०-११ ॥

३. ब्राह्मास्त्रम्

सहस्रारसमायुक्तं विद्युत्पुञ्जोपमाकृति ॥ ११ ॥
प्रस्तरप्रतिमं मुष्टिग्राह्याग्रं ब्राह्ममीरितम् ।

३. ब्रह्मास्त्र—जिस अस्त्र में एक हजार अरे हों, जिसकी आकृति विद्युत्पुञ्ज के समान हो और जो सर्वथा पत्थर के समान हो तथा जिसका अग्रभाग मुट्ठी से पकड़ने योग्य हो उसे ब्रह्मास्त्र कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

४. ब्रह्मशिरोऽस्त्रम्

दंष्ट्राकरालं दष्टोष्ठं पिङ्गलाक्षं विभीषकम् ॥ १२ ॥
गृहीतपिङ्गकेशाग्रमेतद् ब्रह्मशिरो मतम् ।

४. ब्रह्मशिर नामक अस्त्र—जिसके दाढ़ कराल हों, जिसने अपने दाढों से ओष्ठ को दष्ट किया हो, जिसकी आँखें पीली तथा भयानक हों, जिसने अपने मस्तक पर पीले-पीले केशों को धारण किया हो वही ब्रह्मशिर नामक अस्त्र है ॥ १२-१३ ॥

५. विष्णुचक्रास्त्रम्

विष्णुचक्रमिति ख्यातं सहस्रारं सुदर्शनम् ॥ १३ ॥

५. विष्णुचक्रास्त्र—सहस्र अरों से युक्त सुदर्शन को ही विष्णुचक्र कहा जाता है ।

६. जृम्भणास्त्रम्

जृम्भणं त्वष्टवक्राङ्गं दण्डमेवं विदुर्बुधाः ।

६. जृम्भणास्त्र—बुद्धिमान् लोग आठ स्थान से टेढ़े अङ्ग वाले दण्डाकार अस्त्र को जृम्भणास्त्र कहते हैं ॥ १४ ॥

७. कालपाशास्त्रम्

भीमाकारं पाशमेव कालपाशमिति स्मृतम् ॥ १४ ॥

७. कालपाश नामक अस्त्र—अत्यन्त भयानक पाश ही कालपाश कहा जाता है ।

८. आग्नेयास्त्रम्

षट्कोणाग्रं ज्वलज्ज्वालमस्त्रमाग्नेयमुत्तमम् ।

८. आग्नेयास्त्र—जो अग्रभाग में छः कोणों वाला हो तथा जिससे जलती हुई ज्वाला निकल रही हो वह उत्तम आग्नेयास्त्र कहा जाता है ॥ १५ ॥

९. हयशिरोऽस्त्रम्

ज्वालाविलं वाजिवक्त्रमस्त्रं हयशिरो मतम् ॥ १५ ॥

९. हयशिरः नामक अस्त्र—जिसका मुख घोड़े के मुख के समान है और जो अपने मुख से सर्वदा ज्वाला उगल रहा हो—वह हयशिरः नामक अस्त्र है ॥ १५ ॥

१०. प्रस्वापनास्त्रम्

प्रस्वापनं कुवलयस्तबकस्तम्बसन्निभम् ।

१०. प्रस्वापनास्त्र—नीले कमल के गुच्छे के समान तथा स्तम्ब के आकार वाला प्रस्वापनास्त्र होता है ॥ १६ ॥

११. तामसास्त्रम्

सतोयतोयदप्रख्यं तामसास्त्रमुदीरितम् ॥ १६ ॥

११. तामस नामक अस्त्र—जलयुक्त बादल के समान तामसास्त्र का स्वरूप कहा गया है ॥ १६ ॥

१२. कालास्त्रम्

कालास्त्रं भीषणं दण्डं षष्टिघण्टासमाकुलम् ।

१२. कालास्त्र—कालास्त्र अत्यन्त भयानक होता है । उसका आकार दण्ड के समान तथा उसमें बँधे हुये ६० घण्टे बराबर शब्द करते रहते हैं ॥ १७ ॥

१३. दण्डचक्रास्त्रम्

आद्यन्तचक्रयुग्दण्डं दण्डचक्रमिति स्मृतम् ॥ १७ ॥

१३. दण्डचक्रास्त्र—जिसके आदि तथा अन्त में दो चक्र लगे हों उसे दण्डचक्रास्त्र कहा जाता है ॥ १७ ॥

१४. कालचक्रास्त्रम्

कालचक्रं चतुष्कोणं पर्यन्तस्थितराशिमत् ।

१४. कालचक्रास्त्र—कालचक्र चतुष्कोण के आकार वाला होता है । उसके अन्त में बारह राशियाँ घूमती रहती हैं ॥ १८ ॥

१५. धर्मचक्रास्त्रम्

धर्मचक्रं सुवृत्तं स्याद् दशयज्ञायुधाङ्कितम् ॥ १८ ॥

१५. धर्मचक्रास्त्र—धर्मचक्रास्त्र वृत्ताकार होता है और यज्ञ के समान ही उसके दश आयुध हैं ॥ १८ ॥

१६. शैवास्त्रम्

शैवं शतमुखाग्निस्तु दण्डवत् परिकीर्त्यते ।

१६. शैवास्त्र—जिसके सौ मुखों से अग्नि निकल रही हो और जो दण्डाकार हो उसे शैवास्त्र कहा जाता है ॥ १९ ॥

१७. शूलास्त्रम्

शूलं तु त्रिदलं प्रोक्तं तीक्ष्णधारं सुदण्डकम् ॥ १९ ॥

१७. शूलास्त्र—जिसमें तीन दल लगे हों और जिसकी धारा तीक्ष्ण हो तथा जिसका आकार दण्ड के समान हो वही शूलास्त्र कहा गया है ॥ १९ ॥

१८. परश्वस्त्रम्

परशू रौद्रमस्त्रं च तीक्ष्णधारं भयावहम् ।

१८. परशु अस्त्र—परशु रुद्र का प्रधान अस्त्र है । इसकी धारा महाभयानक और तीक्ष्ण है ॥ २० ॥

१९. त्रिशूलास्त्रम्

शूलत्रयाङ्कितमुखं त्रिशूलं दण्डवद् भवेत् ॥ २० ॥

१९. त्रिशूलास्त्र—जिसके अग्रभाग में तीन शूल लगे हों और जिसका आकार दण्ड के समान हो वही त्रिशूलास्त्र होता है ॥ २० ॥

२०. घोरास्त्रम्

घोरं नाराचरूपं स्यादस्त्रमाहुर्मनीषिणः ।

२०. घोरास्त्र—मनीषियों ने वाण के आकार वाले अस्त्र को घोरास्त्र कहा है ।

२१. अघोरास्त्रम्

कृष्णास्यं पिङ्गनयनं ज्वालाकेशोर्ध्वबन्धनम् ॥ २१ ॥
अघोरास्त्रमिदं प्रोक्तं नाम्ना चैवासिधारकम् ।

२१. अघोरास्त्र—काले वर्ण का, पीले-पीले नेत्रों वाला, केश के ऊर्ध्वभाग में ज्वाला बाँधे हुये अघोरास्त्र का स्वरूप है ॥ २१-२२ ॥

२२. सम्मोहनास्त्रम्

अस्त्रं सम्मोहनं नाम कमलं नालसंयुतम् ॥ २२ ॥

२२. सम्मोहनास्त्र—नाल (डण्डी) युक्त कमल के समान सम्मोहनास्त्र होता है ।

२३. ऐषीकास्त्रम्

ऐषीकं शरनालाभमस्त्रमाहुर्विचक्षणाः ।

२३. ऐषीकास्त्र—सरपत के नाल के समान ऐषीक अस्त्र होता है ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है ॥ २३ ॥

२४. ऐन्द्रचक्रास्त्रम्

वज्राङ्कितचतुष्कोणं नटाभममितद्युति ॥ २३ ॥
ऐन्द्रचक्राख्यमस्त्रं तत् परवैरिभयङ्करम् ।

२४. ऐन्द्रचक्रास्त्र—यह चतुष्कोण होता है । प्रत्येक कोण पर वज्र लगे रहते हैं यह नाटा होता है । इससे बहुत प्रकाश निकलता है । शत्रुओं के लिए यह अत्यन्त भयानक होता है ॥ २३-२४ ॥

२५. शुष्काशन्यस्त्रम्

सदा ज्वलितसर्वाङ्गं महिषाकृति भीषणम् ॥ २४ ॥
शुष्काशनिरिदं प्रोक्तमस्त्रमङ्गारसन्निभम् ।

२५. शुष्काशनि अस्त्र—इसके अङ्ग-अङ्ग से ज्वाला निकलती रहती है । यह भैंसे के आकार वाला किन्तु अत्यन्त भीषण होता है और अङ्गारे के समान जलता रहता है यही शुष्काशनि नामक अस्त्र है ॥ २४-२५ ॥

२६. आंर्द्राशन्यस्त्रम्

तादृशं शुक्लवर्णं तदार्द्राशनिरिति स्मृतम् ॥ २५ ॥

२६. आर्द्राशनि अस्त्र—ऊपर कही गई आकृति वाला किन्तु वर्ण से शुक्ल आर्द्राशनि नामक अस्त्र होता है ॥ २५ ॥

२७. पैनाकास्त्रम्

पैनाकमस्त्रं परमं धनुस्तक्षकसन्निभम् ।

२७. पैनाक अस्त्र—तक्षक नाग के समान आकृति वाले धनुष को पैनाकास्त्र कहा जाता है ॥ २६ ॥

२८. कङ्कालास्त्रम्

कङ्कालाख्यं भवेदस्त्रं पिशाचाकृति भीषणम् ॥ २६ ॥

२८. कङ्कालास्त्र—पिशाच की आकृति वाला महाभयानक कङ्काल नामक अस्त्र होता है ॥ २६ ॥

२९. कापालास्त्रम्

कपालमालिकामाहुः कापालास्त्रमनुत्तमम् ।

२९. कापालास्त्र—कपाल की माला के समान कापालास्त्र होता है । यह सर्वश्रेष्ठ अस्त्र है ॥ २७ ॥

३०. सौरास्त्रम्

सौरमस्त्रं समाख्यातं सूर्यबिम्बपरम्परा ॥ २७ ॥

३०. सौरास्त्र—सूर्य बिम्ब की परम्परा जिससे हो वह सौरास्त्र कहा जाता है।

३१. वरुणपाशास्त्रम्

अस्त्रं वरुणपाशाख्यं शीताकृति सुदारुणम्।

३१. वरुणपाशास्त्र—जिसकी आकृति अत्यन्त शीत हो और जो महाभयानक हो वह वरुण पाश होता है॥ २८॥

३२. सन्तापनास्त्रम्

लगुडं शङ्कुजालाढ्यं सन्तापनमिदं विदुः॥ २८॥

३२. सन्तापनास्त्र—लोहे के कीलों से सर्वत्र व्याप्त लगुडाकार को सन्तापनास्त्र कहा गया है॥ २८॥

३३. वारुणास्त्रम्

वारुणं जालकाकारं द्वात्रिंशच्छिद्रसंयुतम्।

३३. वारुणास्त्र—छिद्रों से युक्त जाल के आकार वाला वारुणास्त्र होता है॥२९॥

३४. धर्मपाशास्त्रम्

सर्वतत्त्वमयं दाम धर्मपाशमिति स्मृतम्॥ २९॥

३४. धर्मपाशास्त्र—सभी तत्त्वों से युक्त रस्सी को धर्मपाश कहा जाता है॥ २९॥

३५-३६. शक्तिद्वयास्त्रम्

शक्तिरेका प्रसिद्धैव शक्त्यन्तरमथोच्यते।
द्विशिरस्कैकनाला च दशघण्टाविभूषिता॥ ३०॥

३५-३६. शक्तिद्वयास्त्र—एक शक्ति तो लोक में प्रसिद्ध ही है। अब दूसरी शक्ति कहते हैं। जिसका नाल एक हो किन्तु शिर दो हों तथा जिसमें दश घण्टे बँधे हों उसे शक्तिद्वयास्त्र कहते हैं॥ ३०॥

३७. वायव्यास्त्रम्

वायव्यमस्त्रं सारङ्गः सशृङ्ग इव पठ्यते।

३७. वायव्यास्त्र—सींग से युक्त सारङ्ग (हरिण) के समान वायव्यास्त्र कहा गया है।

३८. मौसलास्त्रम्

मौसलं मुसलं प्रोक्तं विद्युद्दण्डमिवोज्ज्वलम्॥ ३१॥

३८. मौसलास्त्र—मुसल को ही मौशल कहते हैं। यह बिजली के डण्डे के समान उज्ज्वल होता है॥ ३१॥

३९. गान्धर्वास्त्रम्

गान्धर्वमस्त्रमादिष्टं वीणादण्डोपमाकृति।

३९. गान्धर्वास्त्र—यह आकृति से वीणादण्ड के समान होता है॥ ३२॥

४०. दर्पणास्त्रम्

दर्पणं दर्पणं प्रोक्तमस्त्रं पूर्णेन्दुसन्निभम्॥ ३२ ॥

४०. दर्पणास्त्र—दर्पण की आकृति वाला दर्पणास्त्र है, यह पूर्णचन्द्र के सदृश होता है ॥ ३२ ॥

४१. शोषणास्त्रम्

शोषणं विकटं शृङ्गमस्त्रं परविशोषणम्।

४१. शोषणास्त्र—शत्रुओं का शोषण करने वाला महा विकट शृङ्ग (सींग) के आकार का शोषण अस्त्र होता है ॥ ३३ ॥

४२. पैशाचास्त्रम्

पैशाचमस्त्रं परममुल्कामुखमुदाहृतम्॥ ३३ ॥

४२. पैशाचास्त्र—सर्वदा उल्का उगलने वाला तथा अत्यन्त विस्तृत पैशाचास्त्र कहा गया है ॥ ३३ ॥

४३. तेजःप्रभास्त्रम्

तेजःप्रभं स्मृतं प्रासप्रतिमं परदारणम्।

४३. तेजःप्रभास्त्र—शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला प्रास (भाले) के आकार का तेजःप्रभ अस्त्र होता है ॥ ३४ ॥

४४. ऐन्द्रास्त्रम्

ऐन्द्रमस्त्रं वज्ररूपं तेजसां निलयं स्मृतम्॥ ३४ ॥

४४. ऐन्द्रास्त्र—वज्र की आकृति वाले को ऐन्द्रास्त्र कहते हैं यह तेजस्विता का निधान है ॥ ३४ ॥

४५. विलापनास्त्रम्

अस्त्रं विलापनं नाम धाराधरमुदाहृतम्।

४५. विलापन अस्त्र—धाराधर (बादल) को ही विलापन अस्त्र कहा गया है।

४६. वैद्याधरास्त्रम्

वैद्याधरास्त्रमाहुस्तत् पुष्पमालां तु मोहिनीम्॥ ३५ ॥

४६. वैद्याधर अस्त्र—सबको मोहित करने वाली पुष्पमाला के समान वैद्याधर अस्त्र कहा गया है ॥ ३५ ॥

४७. कङ्कालास्त्रम्

अस्त्रं कङ्कालसंज्ञं स्यान्महाघण्टानिनादितम्।

४७. कङ्कालास्त्र—जिसमें महाघण्टा का शब्द निरन्तर होता रहता है वह कङ्काल अस्त्र कहा जाता है ॥ ३६ ॥

४८. मोदक्यस्त्रम्

मोदकी नाम परमा वल्लरी पुष्पशालिनी ॥ ३६ ॥

४८. मोदकी अस्त्र—मोदकी नामक अस्त्र श्रेष्ठ पुष्पशालिनी लता के समान कहा गया है ॥ ३६ ॥

४९. शिखरास्त्रम्

शिखरं नाम खट्वाङ्गमायुधं परिचक्षते ।

४९. शिखरास्त्र—खट्वाङ्ग नामक आयुध को शिखरास्त्र कहा जाता है ॥ ३७ ॥

५०. क्रौञ्चास्त्रम्

क्रौञ्चमस्त्रं महत् पक्षी क्रौञ्चाकृतिरिहोच्यते ॥ ३७ ॥

५०. क्रौञ्चास्त्र—क्रौञ्च की आकृति वाला पङ्खों से युक्त अत्यन्त महान् क्रौञ्च अस्त्र कहा जाता है ॥ ३७ ॥

५१. असिरत्नास्त्रम्

असिरत्नाह्वयं दिव्यमस्त्रं खड्गो महाद्युतिः ।

५१. असिरत्न नामक अस्त्र—अत्यन्त प्रकाश देने वाला खड्ग की आकृति से युक्त असिरत्न कहा गया है । वह दिव्य तेज:सम्पन्न होता है ॥ ३८ ॥

५२. प्रशमनास्त्रम्

अस्त्रं प्रशमनं नाम प्रोच्यते ध्वजसन्निभम् ॥ ३८ ॥

५२. प्रशमन अस्त्र—ध्वज के समान आकार वाला प्रशमन अस्त्र कहा गया है ।

५३. कन्दर्पदयितास्त्रम्

कन्दर्पदयितं चास्त्रमिक्षुः परमशोभनम् ।

५३. कन्दर्पदायितास्त्र—अत्यन्त शोभायुक्त इक्षु (ईख) ही कन्दर्पदायित अस्त्र है ।

५४. मदनास्त्रम्

मदनं चामरप्रख्यमस्त्रं परभयावहम् ॥ ३९ ॥

५४. मदनास्त्र—सदैव देवतुल्य मदन अस्त्र है । यह शत्रुओं के लिए महाभयानक हैं ॥ ३९ ॥

५५. सौमनास्त्रम्

सौमनं शिबिकाभं तदस्त्रमस्त्रविदो विदुः ।

५५. सौमन अस्त्र—अस्त्रवेत्ता लोगों ने सौमन को शिविका (पालकी) की आकार वाला बताया है ॥ ४० ॥

५६. सत्यास्त्रम्

स्थूलमुक्ताक्षमालेव सत्यास्त्रं सर्वसाधकम् ॥ ४० ॥

५६. सत्यास्त्र—मोटी-मोटी मुक्ताओं से गूँथी हुई माला के समान सत्यास्त्र कहा है। यह अस्त्र सर्वार्थसाधक है ॥ ४० ॥

५७. संवर्तकास्त्रम्

अस्त्रं संवर्तकं नाम महाशङ्खः प्रकीर्त्यते।

५७. संवर्त्तक अस्त्र—महाशङ्ख के समान संवर्त्तक अस्त्र कहा जाता है ॥ ४१ ॥

५८. मायाधरास्त्रम्

मायाधराह्वयं प्राहुरस्त्रं शाखिनमेव च ॥ ४१ ॥

५८. मायाधर नामक अस्त्र—अनेक शाखायुक्त वृक्ष के समान मायाधर अस्त्र कहा गया है ॥ ४१ ॥

५९. सोमास्त्रम्

सोमास्त्रमर्धचन्द्राभं सायकं सम्प्रचक्षते।

५९. सोमास्त्र—अर्द्धचन्द्राकार बाण को सोमास्त्र कहते हैं ॥ ४२ ॥

६०. त्वाष्ट्रास्त्रम्

त्वाष्ट्रमस्त्रं चैत्यसमं सदण्डमभिधीयते ॥ ४२ ॥

६०. त्वाष्ट्र अस्त्र—दण्ड से युक्त चैत्य के समान त्वाष्ट्र नामक अस्त्र कहा गया है।

६१. शीतेष्वस्त्रम्

शीतेषुर्नाम कुम्भास्या स्रवन्ती सरिदुत्तमा।

६१. शीतेषु अस्त्र—कुम्भ के समान मुख वाली प्रवहमान सरित् को शीतेषु कहते हैं।

६२. भगास्त्रम्

त्रिकोणं दण्डवद् विद्याद् भगास्त्रममितद्युति ॥ ४३ ॥

६२. भगास्त्र—त्रिकोण दण्डे के समान भगास्त्र कहा गया है। इसका प्रकाश कल्पना से बाहर है ॥ ४३ ॥

६३. सदामनास्त्रम्

सदामनं समाख्यातं चक्र निररमुच्यते।

६३. सदामन अस्त्र—बिना अरे वाले चक्र को सदामन अस्त्र कहा गया है ॥४४॥

६४. सत्यवदस्त्रम्

सत्यवत् तन्महाभूतं व्यात्ताननमिदं विदुः ॥ ४४ ॥

६४. सत्यवद् अस्त्र—महाभूत के समान सत्यवद् अस्त्र होता है। यह सर्वदा अपना मुख फैलाये रहता है ॥ ४४ ॥

६५. वारणास्त्रम्

वारणं नाम सर्पास्यं वारणं परमाङ्कुशम्।

६५. **वारणास्त्र**—साँप के मुख को वारण कहा गया है अथवा बहुत बड़े अङ्कुश को वारणास्त्र कहा गया है ॥ ४५ ॥

६६. धृष्टास्त्रम्

धृष्टं कबन्धमुदरं व्यात्ताननमुदाहृतम् ॥ ४५ ॥

६६. **धृष्टास्त्र**—कबन्ध एवं उदर को धृष्टास्त्र कहा गया है। यह सर्वदा अपना मुख फैलाये रहता है ॥ ४५ ॥

६७. भृशाश्वतनयास्त्रम्

भृशाश्वतनयं नाम द्विधारं क्रकचं स्मृतम् ।

६७. **भृशाश्वतनयास्त्र**—दोनों ओर की धारा वाले क्रकच (आरे) को भृशाश्वतनय नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ४६ ॥

६८. सत्यकीर्त्यस्त्रम्

सत्यकीर्तिस्तु मकरो व्यात्तवक्त्रोऽभिधीयते ॥ ४६ ॥

६८. **सत्यकीर्त्ति अस्त्र**—मुँह बाये हुये मकर को सत्यकीर्त्ति अस्त्र कहा गया है।

६९. मोहास्त्रम्

मोहः सर्पशिरो व्यात्तवक्त्रमस्त्रं विदुर्बुधाः ।

६९. **मोहास्त्र**—बुद्धिमानों ने सर्पशिर को मोह कहा है। यह सर्वदा मुख फैलाये रहता है ॥ ४७ ॥

७०. रभसास्त्रम्

रभसं तारसङ्काशमस्त्रं सर्वास्त्रसादनम् ॥ ४७ ॥

७०. **रभसास्त्र**—सभी अस्त्रों को काट देने वाला रभस अस्त्र कहा जाता है। यह तारे की आकृति का होता है ॥ ४७ ॥

७१. सर्वनाभास्त्रम्

सर्वनाभाह्वयं चास्त्रं कमण्डलुरिहोच्यते ।

७१. **सर्वनाभ अस्त्र**—कमण्डलु को सर्वनाभ नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ४८ ॥

७२. पराङ्मुखास्त्रम्

पराङ्मुखाह्वयं चास्त्रं पञ्चाननशिरो विदुः ॥ ४८ ॥

७२. **पराङ्मुख अस्त्र**—पाँच मुख और पाँच शिर वाले अस्त्र को पराङ्मुख अस्त्र कहते हैं ॥ ४८ ॥

७३. जृम्भकास्त्रम्

जृम्भकं नाम रक्ताक्षं त्रिपञ्जरमुदीर्यते ।

७३. **जृम्भण अस्त्र**—जिसके नेत्र रक्त हों और जो तीन पञ्जर से जकड़ा गया हो वह जृम्भक अस्त्र कहा जाता है ॥ ४९ ॥

७४. प्रतिहारास्त्रम्

प्रतिहाराख्यमस्त्रं तु कुन्तः परमभास्वरः ॥ ४९ ॥

७४. प्रतिहार अस्त्र—अत्यन्त चमकीला कुन्त (भाला) प्रतीहार नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ४९ ॥

७५. अवाङ्मुखास्त्रम्

ऋक्षास्यं भूतमुद्दिष्टमवाङ्मुखसमाह्वयम् ।

७५. अवाङ्मुख अस्त्र—ऋक्ष के समान मुख वाले भूत को अवाङ्मुख नामक अस्त्र कहा गया है ॥ ५० ॥

७६. धनास्त्रम्

धनाख्यमस्त्रं मुकुटसमानममितद्युति ॥ ५० ॥

७६. धनास्त्र—मुकुट के समान चमकीले आकार वाला धनास्त्र कहा गया है । इसका अपार प्रकाश होता है ॥ ५० ॥

७७. धान्यास्त्रम्

धान्यास्त्रमेतत् परमं शालिस्तबकबन्धनम् ।

७७. धान्यास्त्र—शाली (= धान) के गुच्छों को जिस अस्त्र में बाँधा जाता है उसे धान्यास्त्र कहा जाता है ॥ ५१ ॥

७८. महाभूतास्त्रम्

वृषाक्षं वृषवक्त्राङ्कं महाभूतं प्रचक्षते ॥ ५१ ॥

७८. महाभूतास्त्र—बैल की आँखों वाला और बैल के समान मुख वाला महाभूत अस्त्र कहा जाता है ॥ ५१ ॥

७९. कामरूपास्त्रम्

कामरूपं महास्त्रं तु प्रतिसूर्यकसन्निभम् ।

७९. कामरूप नामक अस्त्र—प्रतिसूर्यक के समान महान् कामरूप अस्त्र कहा गया है ॥ ५२ ॥

८०. दृढनाभास्त्रम्

दृढनाभाख्यमस्त्रं स्यान्नागो बहुफणान्वितः ॥ ५२ ॥

८०. दृढनाभ अस्त्र—अनेक फणों वाला नाग दृढ़नाभ नामक अस्त्र से पुकारा जाता है ॥ ५२ ॥

८१. कामरुच्यास्त्रम्

अस्त्रं कामरुचिर्नाम स्वस्तिकं परिचक्षते ।

८१. कामरुचि अस्त्र—स्वस्तिक की कामरुचि नामक अस्त्र संज्ञा है ॥ ५३ ॥

८२. सुनाभास्त्रम्

सुनाभं क्षुरिका तीक्ष्णा प्रोच्यतेऽस्त्रमनुत्तमम् ॥ ५३ ॥

८२. सुनाभ अस्त्र—तीक्ष्ण छुरी को सुनाभ अस्त्र कहा जाता है। यह सर्वश्रेष्ठ अस्त्र है ॥ ५३ ॥

८३. मकरास्त्रम्

मकरो नाम दिव्यास्त्रं दीपिकादण्डसन्निभम्।

८३. मकर अस्त्र—दीपिका दण्ड (जिस पर दीपक रखा जाता है भाषा में उसे दीयठ कहते हैं) के समान आकृति को मकरास्त्र कहते हैं। यह दिव्य अस्त्र है ॥ ५४ ॥

८४. दशाक्षास्त्रम्

दशाक्षमेतज्जानीयात् कौक्षेयकमवारितम् ॥ ५४ ॥

८४. दशाक्ष अस्त्र—अवारित (न रुकने वाली) कौक्षेयक (तलवार) को दशाक्ष अस्त्र समझना चाहिए ॥ ५४ ॥

८५. वेतालास्त्रम्

वृत्तिमन्तं चोष्ट्रमुखं वेतालमभिधीयते।

८५. वेताल नामक अस्त्र—ऊँट के समान मुख वाले वृत्तिमान को वेतालास्त्र कहा गया है ॥ ५५ ॥

८६. दशवक्त्रास्त्रम्

एकस्था दशवक्त्री तु दशवक्त्रमुदाहृतम् ॥ ५५ ॥

८६. दशवक्त्र अस्त्र—एक ही में दशमुख वाले को दशवक्त्र अस्त्र कहते हैं।

८७. रुचिरास्त्रम्

रुचिराख्यं भवेदस्त्रं हलं परमदारुणम्।

८७. रुचिरास्त्र—हल को रुचिर अस्त्र कहते हैं। सबको चीरने के कारण यह बड़ा कठोर होता है ॥ ५६ ॥

८८. दशकर्णास्त्रम्

दशवर्षा काकमुखी दशकर्णमुदीर्यते ॥ ५६ ॥

८८. दशकर्ण अस्त्र—काक के समान मुख वाली दशवर्षवयस्का को दशकर्णास्त्र कहा जाता है ॥ ५६ ॥

८९. योगन्धरास्त्रम्

योगन्धरं दिवाभीतव्यात्तवक्त्रमिति स्मृतम्।

८९. योगन्धर अस्त्र—दिन में ही भय के लिए मुख फैलाने वाले को योगन्धर अस्त्र कहते हैं ॥ ५७ ॥

९०. वारुणास्त्रम्

अमित्रघ्नं वारुणं स्यात् परास्त्रविनिवारणम् ॥ ५७ ॥

९०. वारुणास्त्र—शत्रु को नष्ट करने वाला वारुणास्त्र कहा गया है, यह शत्रुओं के अस्त्र को रोकने वाला है ॥ ५७ ॥

९१. अनिद्रास्त्रम्

अनिद्रमस्त्रमुन्निद्रकल्पकं कथयन्ति वै।

९१. अनिद्र अस्त्र—लोग अनिद्र उसको कहते हैं जिसका विकल्प उन्निद्र (निद्रा का अभाव) है ॥ ५८ ॥

९२. कुठारास्त्रम्

भेत्तारमस्त्रमाख्यातं कुठारं परभेदनम् ॥ ५८ ॥

९२. कुठार अस्त्र—जिस प्रकार कुठार किसी वस्तु को टुकड़े-टुकड़े कर देता है उसी प्रकार शत्रुओं का भेदन करने वाले अस्त्र को कुठारास्त्र कहा जाता है ॥ ५८ ॥

९३. शतोदरास्त्रम्

शतोदरास्त्रं भूतं स्याच्छतोदरसमन्वितम्।

९३. शतोदर अस्त्र—जिस भूत के सौ उदर हों वह शतोदर अस्त्र के नाम से पुकारा जाता है ॥ ५९ ॥

९४. सौमनसास्त्रम्

अस्त्रं सौमनसं नाम जपाकुसुममञ्जरी ॥ ५९ ॥

९४. सौमनस अस्त्र—जपा कुसुम की मञ्जरी को सौमनस अस्त्र कहा गया है।

९५. पद्मनाभास्त्रम्

पद्मनाभं महाभूतं पद्मालङ्कृतनाभिमत्।

९५. पद्मनाभ अस्त्र—कमलालङ्कृत नाभि वाला महाभूत पद्मनाभ नामक अस्त्र कहा जाता है ॥ ६० ॥

९६. महानाभास्त्रम्

महानाभाख्यमस्त्रं तु बको विकटकन्धरः ॥ ६० ॥

९६. महानाभ अस्त्र—जिसका कन्धा अत्यन्त विकट हो उस प्रकार के बक को महानाभ नामक अस्त्र से पुकारा जाता है ॥ ६० ॥

९७. ज्यौतिषास्त्रम्

ज्यौतिषं नाम परमं विमानमभिधीयते।

९७. ज्यौतिष अस्त्र—सर्वोत्कृष्ट विमान को ज्यौतिष अस्त्र कहा जाता है ॥ ६१ ॥

९८. क्षेपणास्त्रम्

क्रमणं क्षेपणं प्रोक्तं परास्त्रक्रमणं महत् ॥ ६१ ॥

९८. क्षेपणास्त्र—अतिक्रमण करने को क्षेपण कहते हैं। जो दूसरे के अस्त्रों का अतिक्रमण कर जांवे वह क्षेपण अस्त्र महान् कहा जाता है ॥ ६१ ॥

९९. त्रैराशिकास्त्रम्

त्रैराशिर्वानरमुखं सपक्षं नरपादवत् ।

९९. त्रैराशिक अस्त्र—इस अस्त्र का मुख बानर के मुख के समान होता है। इसके पङ्ख होते हैं और यह मनुष्य के पैर की आकृति वाला होता है ॥ ६२ ॥

१००. सार्चिर्माल्यस्त्रम्

सार्चिर्मालि महाभूतमेकपाद् बहुहस्तकम् ॥ ६२ ॥

१००. सार्चिर्माली अस्त्र—यह अस्त्र एक प्रकार का महाभूत है। इसका एक पैर होता है किन्तु यह बहुत हाथों वाला होता है ॥ ६२ ॥

१०१. विमलास्त्रम्

विमलास्त्रमिदं विद्यात् स्फाटिकाकारडोलिकाम् ।

१०१. विमलास्त्र—विमलास्त्र स्फटिक के आकार वाली डोली (= पालकी) के समान होता है ॥ ६३ ॥

१०२. धृतिकास्त्रम्

वराहसिंहमनुजकुक्कुरेभमुखैर्युतम् ।
भूतं पुराविदो ब्रूयुर्धृतिकास्त्रं सुदारुणम् ॥ ६३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां अस्त्रस्वरूपतच्छक्तिनिरूपणं नाम चत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

॥ आदितः श्लोकाः २५४४ ॥

* * *

१०२. धृतिक अस्त्र—जो भूत वराह, सिंह, मनुष्य, कुक्कुर तथा हाथी के समान मुख वाला हो उसे पुराविदों ने धृतिकास्त्र कहा है। यह बड़ा कठोर होता है ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के अस्त्रों के स्वरूप एवं उनकी शक्तियों का निरूपण नामक चालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४० ॥

* * *

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

स्वरूपतोऽस्त्रधारणतत्प्रयोजनप्रतिपिपादयिषया मधुकैटभसंहारवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूह नष्ट हो जाते हैं हम उन सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

भगवता अस्त्राणां स्वरूपतो धारणस्य कालविशेषप्रयोजनादिप्रश्नः

नारदः—

अस्त्राण्येतानि भगवन् कथितानि स्वरूपतः ।
तान्यधत्त स्वरूपेण देवः पूर्वमितीरितम् ॥ १ ॥
कस्मिन् कदा किमर्थं तत् कृतं विश्वेश्वर प्रभो ।
प्रश्नमेतं परिच्छिन्धि यदि सानुग्रहोऽसि मे ॥ २ ॥

भगवान् ने इन अस्त्रों को स्वरूपतः किस काल में धारण किया था और उसका प्रयोजन क्या था? एतद् विषयक श्रीनारद का प्रश्न—

श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! आपने स्वरूपपूर्वक इन अस्त्रों का वर्णन किया । आपने पूर्व में यह कहा था कि देवाधिदेव विष्णु ने स्वरूपतः इन अस्त्रों को धारण किया था । हे विश्वेश्वर प्रभो ! अब यह बताइये कि किस समय कब और किस कारण से उन्हें ऐसा करना पड़ा? यदि आप मुझ पर अनुग्रह रखते हैं तो कृपा कर मेरे इस प्रश्न का समाधान कीजिये ॥ १-२ ॥

पृष्टस्यार्थस्य परमगुह्यत्वख्यापनमुखेन तत्प्रतिवचनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

परमं ते प्रवक्ष्यामि गुह्यमत्यद्भुतं महत् ।
पृच्छते भक्तियुक्ताय परमात्मनि नारद ॥ ३ ॥

पूर्व में पूछे गए प्रश्न का उत्तर परम गुह्य बताकर पुनः उसका उत्तर देने की प्रतिज्ञा—

अहिर्बुध्न्य ने कहा—इसका उत्तर परम गुह्य है और अत्यन्त अद्भुत है तथा महान् है। आप परमात्मा में भक्ति रखते हैं, इसलिए आपके द्वारा पूछे जाने पर मैं इसका उत्तर दे रहा हूँ॥ ३॥

प्रलयावसाने भगवतः सिसृक्षोदयः

पुरा कल्पावसाने तु भगवान् पुरुषोत्तमः।
जगत्स्रष्टुं मनश्चक्रे लीलारससमुत्सुकः॥ ४॥

प्रलय के बाद भगवान् को पुनः सृष्टि की इच्छा का उदय—हे नारद! पूर्वकाल में जब प्रलय काल का अन्त हो गया। तब लीलारसबिहारी भगवान् ने पुनः जगत् की सृष्टि के लिए मन बनाया॥ ४॥

प्रकृतिपुरुषमहदादिविशेषान्तजगत्सृष्टिः

प्रथमं जनयामास प्रधानपुरुषौ स्वतः।
महदादि विशेषान्तं जनयित्वा ततो हरिः॥ ५॥

प्रकृति पुरुष तथा महत्तत्त्व से लेकर विशेषान्त सृष्टि—सर्वप्रथम उन्होंने प्रधान पुरुष को स्वयं उत्पन्न किया। तदनन्तर महत्तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त उन परमात्मा ने सृष्टि की॥ ५॥

अण्डोत्पादनपूर्वकं चतुर्मुखसृष्टिः

तैः सर्वैरण्डमुत्पाद्य तस्मिन् ब्रह्माणमासृजत्।

अण्डोत्पादनपूर्वक चतुर्मुख ब्रह्मदेव की सृष्टि—उन सभी उपकरणों से अण्ड उत्पादन किया। फिर उसी में ब्रह्मदेव की सृष्टि की॥ ६॥

प्रजासृष्ट्यर्थं चतुर्मुखाय वेदोपदेशः

प्रजाः सृजेति वेदांश्च तस्मै प्रादाज्जनार्दनः॥ ६॥

प्रजासृष्टि के लिए ब्रह्मदेव को वेद का उपदेश—उन भगवान् जनार्दन ने ब्रह्मदेव को प्रजा की सृष्टि की आज्ञा दी और उन्हें वेद भी प्रदान किया॥ ६॥

चतुर्मुखस्य प्रजासृष्ट्यारम्भः

ततः प्रजाः स विविधाः स्रष्टुं समुपचक्रमे।

तत्र बलदर्पितमधुकैटभोत्पत्तिः

एतस्मिन्नन्तरे दैत्यौ ब्रह्मसृष्टेरनन्तरम्॥ ७॥
बलवन्तौ तु तस्योर्वोर्जज्ञाते मधुकैटभौ।
मदोन्मत्तौ महाकायौ दानवौ बलदर्पितौ॥ ८॥

ब्रह्मा के द्वारा प्रजासृष्टि का आरम्भ—इसके बाद ब्रह्मा ने विविध प्रकार की प्रजा सृष्टि का प्रारम्भ किया और ब्रह्मसृष्टि प्रारम्भ होने के अनन्तर मधु और कैटभ नाम के दो

महाबलवान् दैत्य उनके ऊरू से उत्पन्न हुये। बलवान् दोनों दैत्य शरीर से विशाल तो थे ही मदोन्मत्त भी थे ॥ ७-८ ॥

मधुकैटभाभ्यां चतुर्मुखाद्वेदापहरणम्

तौ दृष्ट्वा सृष्ट्युपक्रान्तं ब्रह्माणममितद्युतिम्।
प्रविश्य मायया तस्माद्वेदाञ्जगृहतुस्तदा ॥ ९ ॥

मधुकैटभ के द्वारा वेदापहरण—उन्होंने महातेजस्वी ब्रह्मदेव को सृष्टि में संलग्न देख कर माया (छल) से उनसे वेदों का अपहरण कर लिया ॥ ९ ॥

वेदापहाराच्चतुर्मुखस्य सृष्ट्यसामर्थ्यम्

ततः स्त्रष्टुं प्रजाः सर्वा न शशाक प्रजापतिः।

वेद का अपहरण होने से ब्रह्मदेव में सृष्टि की असमर्थता—वेदों का अपहरण हो जाने से ब्रह्मदेव सृष्टि करने में असमर्थ हो गए ॥ १० ॥

निर्विण्णस्य चतुर्मुखस्य चिन्ताप्रकारः

परं निर्वेदमापन्नो बभूवाथ प्रजापतिः ॥ १० ॥
प्रजाः सृजेति भगवान् व्यादिदेश स मां हरिः।
न शक्यते विना वेदैः स्त्रष्टुं नानाविधाः प्रजाः ॥ ११ ॥
दानवाभ्यामिमे वेदा हृता मत्तोऽद्य मायया।
किमन्यत् कार्यमित्येष परां चिन्तामुपेयिवान् ॥ १२ ॥

ब्रह्मदेव का दुःखी होकर चिन्ता करना—इस प्रकार ग्लानि को प्राप्त कर प्रजापति बहुत दुःखी हुये और विचार करने लगे कि विष्णु ने मुझे प्रजाओं की सृष्टि की आज्ञा प्रदान की। किन्तु वेद के बिना नाना प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि असम्भव है। इधर इन दोनों दैत्यों ने माया (छल) से वेदों का अपहरण कर लिया। अब क्या करना चाहिए? इसलिए वे अत्यन्त दुःखी हुये ॥ ११-१२ ॥

कृतनिश्चयस्य चतुर्मुखस्य क्षीराब्धिगमनम्

ततो वेधा विनिश्चित्य मनसा कार्यमात्मनः।
क्षीराब्धेरुत्तरं तीरं जगाम कमलोद्भवः ॥ १३ ॥

तदनन्तर उनका क्षीरसमुद्र में विष्णु के पास जाने का निश्चय—फिर ब्रह्मदेव ने अपने मन में कर्त्तव्य का निश्चय कर क्षीरसागर में गमन किया ॥ १३ ॥

चतुर्मुखेन भगवतः स्तुतिः

तत्र तुष्टाव देवेशं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्।
ओं नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥ १४ ॥
असीमानन्दकन्दाय भूरिभूम्ने महात्मने।
अचिन्त्यशक्तिरूपाय बिभ्रते भुवनानि ते ॥ १५ ॥

असीमैश्वर्यवीर्याय तेजसां निधये नमः ।
विश्वान्तर्यामिणे तुभ्यं शुद्धसत्त्वैकमूर्तये ॥ १६ ॥
अनवद्याखिलाधारभूषणाय नमो नमः ।
शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गायुधधराय ते ॥ १७ ॥
श्रीमते पुष्कराक्षाय पुरुषाय नमो नमः ।
विष्वक्सेनमुखैर्दिव्यैः सेव्यमानाय सूरिभिः ॥ १८ ॥
दिव्यानन्दमयव्योमनिलयाय नमो नमः ।
सर्गोपसर्गरक्षाभिः क्रीडते जगतां सदा ॥ १९ ॥
महाविभूतये तुभ्यं नमो निखिलमूर्तये ।
स्वसमाश्रितवात्सल्यकृतव्यूहविभूतये ॥ २० ॥
विश्वविद्वेषिविध्वंसकृतदीक्षाय ते नमः ।
तापत्रयाभितप्ताघनाशनस्मरणाय ते ॥ २१ ॥
नमोऽचिन्त्यस्वरूपाय विष्णवे कर्मसाक्षिणे ।

चतुर्मुख ब्रह्मा के द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति—वहाँ जाकर उन्होंने पुण्डरी-काक्ष देवाधिदेव विष्णु की स्तुति की । शुद्धज्ञान स्वरूप प्रणवस्वरूप भगवान् विष्णु को नमस्कार है । असीम आनन्दकन्द, अपनी महिमा से महान्, महान् आत्मा से महान्, अचिन्त्य शक्तिस्वरूप, चतुर्दश भुवन धारण करने वाले, वीर्य एवं ऐश्वर्य से अपरिच्छेद्य, तेजों के निधान, विश्व के अन्तर्यामी, शुद्ध, सत्त्वैकमूर्ति, अनवद्य अखिलाधारभूषण-स्वरूप, शङ्ख-चक्र-गदा-खड्ग तथा शार्ङ्ग आयुध वाले, श्रीमान् पुष्कराक्ष परम पुरुष को हमारा बारम्बार नभस्कार है । विष्वक्सेनादि प्रमुख दिव्य देवताओं से सेवित, दिव्यानन्द स्वरूप एवं व्योम में निवास करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है । आप सृष्टि के सर्ग, उपसर्ग (संहार) तथा रक्षा द्वारा क्रीडा करने वाले हैं । महाविभूति स्वरूप आपको नमस्कार है; निखिलमूर्ति वाले आपको नमस्कार है; भक्तवत्सल चतुर्व्यूह विभूतिस्वरूप एवं विश्व के शत्रुओं के विनाश की दीक्षा लेने वाले आपको नमस्कार है । तापत्रय से अभितप्त जीवों के स्मरणमात्र से उनका पाप हरण करने वाले तथा कर्मसाक्षी अचिन्त्य-स्वरूप आप विष्णु को नमस्कार है ॥ १४-२२ ॥

भगवता चतुर्मुखाय दर्शनप्रदानम्

इति तस्य स्तुतिं श्रुत्वा भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ २२ ॥
आविर्बभूव पुरतः प्रसन्नः पद्मलोचनः ।

भगवान् विष्णु का चतुर्मुख को दर्शन देना—चतुर्मुख द्वारा की गई स्तुति को सुन कर पुरुषोत्तम कमलनेत्र भगवान् विष्णु प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रगट हो गए ॥ २२-२३ ॥

चतुर्मुखेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम्

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रणम्य परमाद्भुतम् ॥ २३ ॥
व्यजिज्ञपदमेयात्मा स्ववृत्तं विनयान्वितः ।

चतुर्मुख द्वारा स्ववृत्तान्त निवेदन—अद्भुतस्वरूप वाले विष्णु को देख कर ब्रह्मदेव ने विनयपूर्वक प्रणाम् करके अपना वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २३-२४ ॥

भगवता मधुकैटभस्मरणम्

एतं दानवयोः श्रुत्वा व्यतिक्रममरिन्दमः ॥ २४ ॥
मन्दं प्रहस्य भगवान् सस्मार मधुकैटभौ ।

भगवान् द्वारा मधुकैटभ का स्मरण—दानवों के द्वारा इस प्रकार का व्यतिक्रम सुनकर मन्द-मन्द मुस्कराते हुये भगवान् ने मधु-कैटभ का स्मरण किया ॥ २४-२५ ॥

मधुकैटभयोस्तत्रागमनम्

तौ तस्य स्मृतिमात्रेण द्वारमाजग्मतुस्तदा ॥ २५ ॥

मधुकैटभ का वहाँ पर उपस्थित होना—विष्णु के स्मरण करते ही दोनों दैत्य वहाँ उपस्थित हो गए ॥ २५ ॥

मधुकैटभौ प्रति भगवद्वचनम्

ततः समागतौ दृष्ट्वा तत्रैव बलदर्पितौ ।
मेघगम्भीरनिर्घोषमुवाच मधुसूदनः ॥ २६ ॥
युवाभ्यामाहृता वेदा मद्दत्ता ब्रह्मणो मुखात् ।
माययेति श्रुतं नैवं युज्यते कर्तुमत्र वै ॥ २७ ॥
तत् तस्मै सकला वेदा दीयन्तां परमेष्ठिने ।

मधुकैटभ से भगवान् की उक्ति—तदनन्तर उन बलवान् दैत्यों को अपने पास आया देख कर मधुसूदन ने मेघगम्भीर वाणी से उनसे कहा—'आप दोनों ने मेरे द्वारा ब्रह्मा को दिया हुआ वेद माया से चुरा लिया है, ऐसा हमने सुना है जो उचित नहीं । अतः आप लोग सारे वेदों को ब्रह्मा के पास ले जाकर वापस करिए ।'

भगवद्वचनतिरस्करणपूर्वकं मधुकैटभयोः प्रतिवचनम्

एवमुक्तौ भगवता दुर्मदान्धौ महासुरौ ॥ २८ ॥
प्रत्यूचतुरिमांस्तस्मै ददावो नैव सर्वथा ।
आवामेवाचिरात् सर्वाः स्त्रक्ष्यावो विविधाः प्रजाः ॥ २९ ॥
वेदैर्विनैव भगवन् किमत्र परमेष्ठिना ।

भगवान् की बातों की अवहेलना करते हुये मधुकैटभ का प्रत्युत्तर—भगवान् के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दुर्मद से अन्धे उन दोनों महान् असुरों ने कहा—'हम लोग किसी भी दशा में वेद नहीं दे सकते । हे भगवन् ! हमलोग बिना वेद की सहायता के ही समस्त प्रजाओं की सृष्टि कर लेंगे । ब्रह्मा की आवश्यकता ही क्या है?' ॥ २८-३० ॥

भगवता मधुकैटभयोर्हननाय विष्वक्सेनादेशनम्

स तयोर्वचनं श्रुत्वा कोपसंरक्तलोचनः ॥ ३० ॥

दुरात्मानौ तु तौ हन्तुं मतिं चक्रे जगत्पतिः ।
एतौ निहत्य दुर्दान्तौ पापावद्य मदोद्धतौ ॥ ३१ ॥
आदाय वेदानेतस्मै ब्रह्मणे प्रतिपादय ।
इति शेषाशनं देवो व्यादिदेश कृताञ्जलिम् ॥ ३२ ॥

भगवान् का मधुकैटभ का वध करने के लिए विष्वक्सेन को आदेश—उनकी बातों को सुनकर भगवान् क्रोध से आग बबूला हो गए । उनके नेत्र लाल हो गए । फिर उन जगत्पति ने असुरों को मारने का निश्चय कर लिया । तदनन्तर उन्होंने विष्वक्सेन को आज्ञा दी—'आप इन दोनों दुर्दान्त मदोद्धत एवं पापी राक्षसों का वध कर इन ब्रह्मदेव को वेद प्राप्त कराओ ।' इस प्रकार उन्होंने हाथ जोड़े हुये शेषाशन को आज्ञा दी ॥ ३०-३२॥

ततः समरसंनहनम्

स तथेति समानीय सर्वाः सेनाश्च वैष्णवीः ।
निर्जगाम ततो योद्धुं सन्नद्धौ तौ च दानवौ ॥ ३३ ॥
निर्मिमाते तदा सेनां महतीं तौ च मायया ।

तदनन्तर दोनों पक्षों की युद्ध की तैयारी—विष्वक्सेन ने 'तथास्तु' कहकर सारी विष्णु सेना एकत्रित की । फिर वह युद्ध के लिए निकल पड़ा । इधर दोनों दैत्यों ने भी युद्ध की तैयारी की । उन्होंने माया से बहुत बड़ी सेना का निर्माण कर लिया ॥३३-३४॥

द्वयोः सेनयोस्तुमुलसंग्रामः

उभयोः पक्षयोर्युद्धं तुमुलं समपद्यत ॥ ३४ ॥
अदृष्टमश्रुतचरमभूत् तत् समरं तदा ।

दोनों सेनाओं का परस्पर घोर संग्राम—तदनन्तर दोनों पक्षों में घमासान लड़ाई प्रारम्भ हो गई जैसी कभी न देखी गई और न कभी सुनी गई ॥ ३४-३५ ॥

विष्वक्सेनेन भगवत्सकाशे मधुकैटभयोरजय्यत्वनिवेदनम्

चिरेणाजय्यतां ज्ञात्वा दुष्टदानवयोर्युधि ॥ ३५ ॥
विष्वक्सेनस्तु देवाय न्यवेदयदवारितः ।

विष्वक्सेन का भगवान् के समीप मधुकैटभ का बे रोक-टोक निवेदन—युद्ध में उन दोनों को अजेय जानकर पुनः विष्वक्सेन ने जाकर भगवान् से निवेदन किया ॥३५-३६॥

भगवतः सर्वास्त्राणां स्वरूपतो धारणपूर्वकं युद्धाय निर्गमनम्

ततस्तु परमक्रुद्धो निर्जगाम जनार्दनः ॥ ३६ ॥
युध्यमानौ तु तौ दृष्ट्वा चक्ररूपी स्वयं हरिः ।
बिभ्रद् द्विषष्टिभिर्हस्तैस्तस्थौ दिव्यास्त्रसंहतिम् ॥ ३७ ॥

भगवान् का स्वरूपतः सभी अस्त्रों को धारण कर युद्ध के लिए प्रस्थान—तदनन्तर क्रुद्ध हुये जनार्दन ने स्वयं प्रस्थान किया और उन दानवों को युद्ध करते देख चक्र का रूप धारण कर ६२ भुजाओं से दिव्यास्त्र धारण कर युद्ध में डट गए ॥३६-३७॥

सर्वास्त्रस्वरूपधारिभगवद्रूपवर्णनम्

तं दृष्ट्वा परमक्रुद्धं सहस्रादित्यसन्निभम् ।
ज्वलद्भिरस्त्रैर्हस्ताग्रधार्यमाणैश्च वेष्टितम् ॥ ३८ ॥
पिङ्गलोर्ध्वमुखैः केशैरुपेतमतिभीषणम् ।
अण्डान्तव्याप्तवपुषं जपाकुसुमसन्निभम् ॥ ३९ ॥
पिङ्गलाघूर्णमानोग्रवृत्तनेत्रत्रयान्वितम् ।
भुग्नभ्रुकुटिसन्नद्धभीषणाननशोभितम् ॥ ४० ॥
दष्टोष्ठमुज्ज्वलद्दंष्ट्रानिर्यत्स्खलितपावकम् ।
महाजलधिसंकाश द्विषष्टिभुजपञ्जरम् ॥ ४१ ॥
रक्ताम्बरधर भीममालीढस्थितिमण्डितम् ।
हारकेयूरताटङ्ककटकादिविभूषणैः ॥ ४२ ॥
उपेतं किङ्किणीजालक्वणत्कारनिनादितम् ।
आश्चर्यरूपमतुलमेवंभूतं महाद्युतिम् ॥ ४३ ॥

सर्वास्त्रधारी भगवान् के स्वरूप का वर्णन—दैत्यों की सेनाओं ने क्रोध में भरे हुये सहस्रों आदित्य के समान तेजस्वी अपने हाथों के अग्रभाग में जलते हुये अस्त्रों को धारण कर, उनसे परिवेष्टित, पीले-पीले ऊर्ध्वमुख केशों से सुशोभित, सर्व ब्रह्माण्ड को अपने शरीर से आच्छादित किये हुये, जपा कुसुम के सदृश पीले-पीले घूरने वाले गोलाकार उग्र नेत्रों से युक्त, टेढ़ी-टेढ़ी चढ़ी हुई भ्रुकुटी से भीषण मुख वाले, ओष्ठ प्रान्त को चबाते हुये अपनी दाढ़ों से भयानक आग उगलने वाले और समुद्र के समान विशाल-विशाल ६२ भुजाओं रूपी पञ्जर से युक्त, रक्त वस्त्र धारण किये हुये, अत्यन्त भयानक, वीरासन से मण्डित, हार, केयूर, ताटङ्क तथा कटकादि विभूषणों से विभूषित कटिभाग में बँधी हुई काञ्ची क्षुद्र घण्टिकाओं से निनादित आभूषणों को धारण करने वाले तथा आश्चर्यमय रूप धारण किये हुये अमित तेजस्वी उन विष्णु को देखा ॥ ३८-४३ ॥

तद्रूपदर्शनाद् दैत्यसैन्यानां निःशेषं विलयः

कल्पान्तजृम्भिताम्भोधिकल्पास्ते दैत्यसैनिकाः ।
नेशुर्निरीक्ष्य निःशेषं शिष्टौ तौ दानवौ परम् ॥ ४४ ॥
आगच्छन्तौ सुसम्भ्रान्तौ दृष्ट्वा तावुद्यतायुधौ ।
प्राहिणोद् भीषणं चक्रं तद्वधाय महाद्युतिः ॥ ४५ ॥

उनके उस स्वरूप को देखते ही दैत्यों की सारी सेना का विनाश—प्रलयकालीन समुद्र के समान विशाल सभी दैत्य सेना उनके स्वरूप को देखते ही विनष्ट हो गई । मात्र वे दो ही असुर शेष रहे । फिर उन्हें सशस्त्र तथा आश्चर्यचकित होकर अपनी ओर आते देख कर भगवान् ने उनका वध करने के लिए प्रकाश युक्त महाभीषण चक्र चलाया ॥ ४४-४५ ॥

चक्रेण मधुकैटभयोः शिरश्छेदः

तयोश्चिच्छेद शिरसी तत्क्षणाच्चक्रमुत्तमम् ।

ताभ्यां वेदानुपादाय देवायैताञ्यवेदयत् ॥ ४६ ॥

चक्र द्वारा मधुकैटभ के शिरों का छेदन—तत्पश्चात् उस उत्तम चक्र ने तत्क्षण मधुकैटभ के शिरों का विच्छेदन कर दिया और उनके द्वारा चुराए गए वेदों को लेकर ब्रह्मदेव को प्रदान कर दिया ॥ ४६ ॥

ब्रह्मणे वेदप्रदानपूर्वकं भगवतस्तिरोधानम्

देवोऽपि ब्रह्मणे दत्त्वा पुनरन्तर्दधे हरिः ।

वेद प्रदान करने के पश्चात् भगवान् का तिरोधान—इस प्रकार भगवान् ने ब्रह्मदेव को वेद प्रदान किया और स्वयं अन्तर्ध्यान हो गए ॥ ४७ ॥

ब्रह्मणा यथापूर्वं प्रजासृष्टिः

लब्धवेदः पुनर्धाता प्रजाश्चक्रे यथापुरम् ।

उपसंहारः

इत्थं भगवतो रूपं चक्ररूपस्य चक्रिणः ॥ ४७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां स्वरूपतोऽस्त्रधारण-
तत्प्रयोजनप्रतिपिपादयिषया मधुकैटभसंहारवर्णनं
नाम एकचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २५९१ ॥

* * *

ब्रह्मदेव द्वारा पूर्वकल्पानुसार आनुपूर्वी सृष्टि—वेद प्राप्त करने के अनन्तर ब्रह्मदेव ने पूर्वकल्प की भाँति सृष्टि की । इस प्रकार भगवान् विष्णु के चक्ररूप का वर्णन किया गया ॥ ४७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के स्वरूपतः
अस्त्र धारण, उनके प्रयोजन, प्रतिपादित विषय एवं मधुकैटभ संहार का
वर्णन नामक एकतालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४१ ॥

* * *

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

काशिराजश्रुतकीर्त्त्युपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार भी ध्यान अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है । हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

अङ्गमन्त्राणामुत्पत्तिदेवताप्रयोजनशक्तिध्येयप्रश्नाः

नारदः—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वभूतनमस्कृत ।
श्रोतव्यं यद्यदस्माभिः श्रुतं तत् तदशेषतः ॥ १ ॥
इदं त्विदानीं पृच्छामि शंस मे मनसि स्थितम् ।
कुतोऽमुष्याङ्गमन्त्राणामुत्पत्तिः का च देवता ॥ २ ॥
किमर्थं कीदृशी शक्तिः किं ध्येयं ब्रूहि तत्त्वतः ।

अङ्ग मन्त्रों की उत्पत्ति, देवता-प्रयोजन और शक्ति तथा ध्येय विषयक प्रश्न— श्रीनारद ने कहा—हे सर्वधर्मज्ञ ! हे सर्वभूतनमस्कृत ! हे भगवन् ! जो हमें सुनने की इच्छा थी, उसे हमने पूर्णरूप से सुना । अब मैं अपने मन में रहने वाली जिन बातों को पूछ रहा हूँ उसे कहिये । इन अङ्ग मन्त्रों की उत्पत्ति कहाँ से हुई? इनके देवता कौन-कौन से हैं । इनके उत्पन्न होने का प्रयोजन क्या है? और इनकी शक्ति कैसी है? तथा ध्येय क्या है? इसे स्पष्ट रूप से कहिये ॥ १-३ ॥

पृष्टस्यार्थस्य गुह्यत्वख्यापनमुखेनोत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

श्रूयतामवधानेन तदेतद् गुह्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥

पूछे गए प्रश्नों के उत्तर को रहस्यमय बताकर उत्तर देना—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! यह यद्यपि रहस्यपूर्ण है फिर भी इसे मैं बताता हूँ, सावधानी से सुनिए ॥ ३ ॥

उत्पत्तिप्रश्नस्योत्तरम्

आथर्वणान्मया वेदान्महामन्त्रपरिष्कृतात् ।
समुद्धृतः षडर्णोऽयं कौस्तुभः सागरादिव ॥ ४ ॥
तथा तस्मादिमे मन्त्राः प्रोद्धृताः सकला मुने ।

सर्वप्रथम उत्पत्ति विषयक प्रश्न का उत्तर—महामन्त्रों से परिष्कृत अथर्ववेद से मैंने यह छः अक्षरों वाला चक्र सुदर्शन मन्त्र उसी प्रकार उद्धृत किया है, जिस प्रकार समुद्र से कौस्तुभ मणि । हे महामुने ! हमने उसी अथर्ववेद से अन्य सभी मन्त्रों को भी उद्धृत किया है ॥ ४-५ ॥

देवताप्रश्नस्योत्तरम्

स्वयमेवाङ्गमन्त्राणामपि देवः सुदर्शनः ॥ ५ ॥

देवता विषयक प्रश्न का उत्तर—इन सभी अङ्गमन्त्रों के देवता स्वयं सुदर्शन हैं ।

प्रयोजनशक्तिप्रश्नयोरुत्तरम्

सुदर्शनमहामन्त्रनिष्ठस्याङ्गावनं परम् ।
कार्यमेषां षडर्णेन तथामी समशक्तयः ॥ ६ ॥

प्रयोजन तथा शक्ति विषयक प्रश्न का उत्तर—षडर्ण सुदर्शन वाले महामन्त्र में निष्ठा रखने वालों के अङ्ग का संरक्षण ही इसका मुख्य प्रयोजन है तथा इनकी शक्तियाँ भी वैसी ही हैं ॥ ६ ॥

ध्येयप्रश्नस्योत्तरम्

एषामष्टभुजो देवः पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ।
ध्येयः सर्वं समाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७ ॥

ध्येय प्रश्न का उत्तर—इन मन्त्रों में आठ भुजा वाले सुदर्शन देव ही पूर्वोक्त विधि से ध्येय हैं । अतः आपके प्रश्नों का उत्तर बता दिया । अब क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ७ ॥

निवर्तकास्त्रप्रयोगावसरप्रश्नः

नारदः—

भगवन् परमोदार नित्यतृप्त दयानिधे ।
नित्यज्ञानक्रियैश्वर्यविश्वविज्ञानवारिधे ॥ ८ ॥
सुदर्शनमहायन्त्रमन्त्रशक्तिक्रियादिषु ।
यद् वक्तव्यं विशेषेण तदुक्तं भवता विभो ॥ ९ ॥
प्रवर्तकानामस्त्राणामुत्पत्तिः कथिता पुरा ।
स्वरूपशक्ती च तथा प्रयोगश्च महाद्युते ॥ १० ॥
निवर्तकानां तु पुनः कदा क्व विषये गुरो ।
प्रयोगः परमं मेऽत्र संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ११ ॥

निवर्त्तकास्त्र प्रयोग के काल के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे परमोदार ! हे नित्यतृप्त ! हे दयानिधे ! हे भगवन् ! हे नित्य-ज्ञान, क्रिया, ऐश्वर्य तथा विश्व विज्ञान के समुद्र ! आपने सुदर्शन महामन्त्र, मन्त्र-शक्ति और उसकी क्रिया (विधि) के विषय में जो कहना था उसे विशेष रूप से कहा, हे महाद्युते ! आप ने पूर्व में प्रवर्त्तक अस्त्रों की उत्पत्ति, उनका स्वरूप तथा उनकी शक्ति का भी वर्णन किया । हे गुरो ! अब निवर्त्तक अस्त्रों का प्रयोग कब और किस स्थान पर करना चाहिए । यह मेरा महान् संशय है । इसको आप दूर करने की कृपा करे ॥ ८-११ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

श्रूयतामवधानेन प्रयोगावसरं मुने ।
निवर्तकानामस्त्राणां सम्यक् कथयतो मम ॥ १२ ॥

इसका उत्तर कहने की प्रतिज्ञा—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे मुने ! निवर्त्तक अस्त्रों के प्रयोग का काल सावधान होकर सुनिए मैं उसे कहता हूँ ॥ १२ ॥

तत्प्रयोगावसरकथनम्

परप्रयुक्तैर्दिव्यास्त्रैरभिचारैश्च तत्कृतैः ।
महत्यभिभवे प्राप्ते तं विद्यात् तपसां निधे ॥ १३ ॥

निवर्त्तकास्त्र प्रयोग का काल कथन—जब शत्रुओं के द्वारा दिव्यास्त्र का प्रयोग किया जा रहा हो, अथवा उनके द्वारा अभिचार (मारण) का प्रयोग हो रहा हो, अथवा बहुत बड़ा पराभव प्राप्त हो, तब हे तपस्विन् ! निवर्त्तक अस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए ॥ १३ ॥

पराभिचाराभिभवज्ञानोपायप्रश्नः

नारदः—

पराभिचाराभिभवः कैर्लिङ्गैरवगम्यते ।
राज्ञां च मन्त्रिणां चैव तथान्येषां नृणामपि ॥ १४ ॥

शत्रुओं के द्वारा प्रयुक्त अभिचार (मारण) के ज्ञान के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! राजाओं को, मन्त्रियों को तथा अन्य जनों को शत्रुकृत अभिचार (मारण) का प्रयोग किन-किन लिङ्गों से ज्ञात करना चाहिए? ॥ १४ ॥

तज्ज्ञानोपायलिङ्गनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

लक्ष्यते लक्षणैरेतैर्नृपाणामाभिचारिकी ।
विकृतिः प्रस्तुताकाले दारुणा सर्वगोचरा ॥ १५ ॥
अकाण्ड एव नश्यन्ति वाजिवारणमन्त्रिणः ।
तीव्रामयपरीताङ्गः पीड्यते नृपतिः स्वयम् ॥ १६ ॥
पतन्त्यशनयस्तस्य विषये घोरदर्शनाः ।
अल्पसस्या वसुमती विनश्यन्ति गवां गणाः ॥ १७ ॥

भवन्ति तस्य विषये पुनः पुनरवग्रहाः ।
तीव्रामयगृहीताश्च महिष्यस्तस्य भूपतेः ॥ १८ ॥
प्रभवन्त्यहिवल्मीकाः प्रासादे द्वारि मण्डपे ।
निपतन्ति महोल्काश्च भृशं भीमस्वनान्विताः ॥ १९ ॥
मन्त्रिणश्च विरुध्यन्ते मत्सरेण परस्परम् ।
रजन्यां राजते भीममैन्द्रं धनुरनभ्रजम् ॥ २० ॥

अभिचार विषयक ज्ञान के लिङ्ग का निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिन-जिन लक्षणों से राजाओं को अभिचार का ज्ञान कर लेना चाहिए, वे लक्षण इस प्रकार हैं—अभिचार का समय आने पर सभी लोगों को दिखाई पड़ने वाली भयानक विकृति उत्पन्न होने लगती है। घोड़े, हाथी एवं मन्त्री अनायास अकाल में ही नष्ट होने लगते हैं। स्वयं राजा भयानक रोग से ग्रस्त होकर पीड़ा प्राप्त करने लग जाता है। उसके राज्य में भयानक विद्युत्पात होने लगता है। पृथ्वी की पैदावार कम हो जाती है। गौओं के समूह नष्ट होने लगते हैं। उसके देश में बारम्बार अवग्रह (= अनावृष्टि) होने लगते हैं। राजा की महिषियाँ (पट्टरानियाँ) भयानक रोग से ग्रस्त हो जाती हैं। उस राजा के अट्टालिकाओं, दरवाजे तथा मण्डप में अनायास सर्प तथा वल्मीक दिखाई पड़ने लगते हैं। भयानक शब्द करती हुई महान्-महान् उल्कायें बारम्बार गिरने लगती हैं। राजा के मन्त्रीगण परस्पर मत्सरता से ग्रस्त होकर आपस में विरोध करने लगते हैं। रात के समय बिना बादल से उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुष दिखाई पड़ने लगता है ॥ १५-२० ॥

इतस्ततो वह्निभयं नगरे जायते भृशम् ।
प्रविश्य गर्भभवनं क्रोष्टारश्चानिवारिताः ॥ २१ ॥
क्रोशन्ति सन्ध्ययोर्भीमा दीप्तायां दिशि विस्वरम् ।
रुन्धन्ति नगरं राज्ञः शत्रवो बलदर्पिताः ॥ २२ ॥
कृत्याकृत्यं न जानाति स्वयं स्तैमित्यमास्थितः ।
स्वप्नेऽपि पश्यत्यात्मानं मुण्डितं नीलवाससम् ॥ २३ ॥
रथेन गर्दभयुजा व्रजन्तं दक्षिणां दिशम् ।
इत्यादिलिङ्गैर्जानीयादभिचारं सपत्नजम् ॥ २४ ॥
पराभिचारजा कृत्या राजानं प्रविशेद्यदि ।
तां दृष्ट्वा क्षिप्रमेवासौ विनश्यति न संशयः ॥ २५ ॥
पुत्रांश्च मन्त्रिणश्चापि महिषीं नगरं तथा ।
ज्वालामालाविला कृत्या सर्वं नाशयति क्षणात् ॥ २६ ॥

जहाँ-जहाँ नगर में अग्नि से महान् भय होने लगता है दोनों सायङ्काल में तथा देदीप्यमान दिशाओं के रहने पर भी शृगाल प्रसूतिगृह में निर्भय होकर प्रविष्ट हो जाते हैं तथा भयानक रूप से ऊँचे-ऊँचे स्वरों में रोने लगते हैं, शत्रुगण बल से मदोद्धत होकर राजा की पुरी पर चढ़ाई कर देते हैं। वह राजा इतना किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है कि उसे

कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान ही नहीं रहता। स्वप्न में वह अपने को मुण्डित तथा काला वस्त्र धारण किये हुये देखता है और गदहे जुते हुए रथ से दक्षिण दिशा की ओर जाता है। इस प्रकार के चिह्नों से राजा को शत्रु द्वारा किये गए अभिचार की आशङ्का कर लेनी चाहिए। किं बहुना शत्रु के अभिचार से उत्पन्न हुई कृत्या यदि राजा के पास आ जाती है तो राजा उसे देखते ही विनष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं अग्नि से जाज्वल्यमान कृत्या, राजपुत्र, राजमन्त्री, राजमहिषी तथा उसके सारे राष्ट्र को क्षण मात्र में जला देती है ॥ २१-२६ ॥

पराभिचारनिवर्तनाय निवर्तकास्त्रधारिसुदर्शनप्रीणनम्

एवं पराभिचारेण पीडिते नृपतौ स्वयम्।
निवर्तकास्त्रसहितं भगवन्तं महाद्युतिम्॥ २७ ॥
चक्रस्वरूपिणं देवं भक्त्या सन्तोषयेत् ततः।
रजतेन सुवर्णेन शिलया ताम्रकेण वा॥ २८ ॥
सुदर्शनार्चां निर्माय पूजयेत् सनिवर्तकम्।
समालिख्य पटे वापि ध्यायेत् त्रैलोक्यपूजितम्॥ २९ ॥
एवं निर्माणतो ध्यानात् पूजया वन्दनेन वा।
प्रतिष्ठया वा स्तोत्रेण देवं सम्प्रीणयेन्नृपः॥ ३० ॥
एवमन्ये तथा कुर्युरमात्या वा नरा मुने।

शत्रुजन्य अभिचार को करने हेतु भगवान् सुदर्शन को प्रसन्न करना—इस प्रकार शत्रु के अभिचार से जब राजा स्वयं पीड़ित होने लगे तब निवर्त्तकास्त्र धारण करने वाले अमित तेजस्वी चक्रस्वरूपी भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना चाहिए। रजत से, सुवर्ण से, शिला से तथा ताँबे से निवर्त्तक युक्त सुदर्शन का निर्माण कर उनकी पूजा करनी चाहिए। यदि ऐसा न हो तो पट्ट पर ही त्रैलोक्यपूजित सुदर्शन का निर्माण कर उनका ध्यान करे। इस प्रकार निर्माण, ध्यान, पूजा, अभिवादन, प्रतिष्ठा अथवा स्तुति से राजा उन्हें प्रसन्न करे। हे मुने! यही क्रिया अन्यों को तथा अमात्यों को भी करनी चाहिए ॥ २७-३१ ॥

प्रीतेन सुदर्शनेन पराभिचारनिर्दहनम्

ततः प्रीतः स भगवाननादिनिधनो विभुः॥ ३१ ॥
अभिचारान् परकृतानाश्रितानुग्रहेण तु।
भस्मीकरोति स्मृत्यैव तत्प्रयुक्तान्यपि क्षणात्॥ ३२ ॥
दिव्यास्त्राण्युपसंहारैरस्त्रैर्वारयतीश्वरः।

सुदर्शन के प्रसन्न होने पर शत्रु के अभिचार का दहन—उपर्युक्त विधि से प्रसन्न हुये आदि मध्यान्तविहीन विभु सुदर्शन अपने आश्रितों पर अनुग्रह प्रदर्शित कर समस्त शत्रुजन्य अभिचारों को स्मरण मात्र से भस्म कर देते हैं। उसके दिव्यास्त्रों को अपने उपसंहारकारक अस्त्रों से दूर हटा देते हैं ॥ ३१-३२ ॥

परप्रयुक्तकृत्यायास्तत्प्रयोक्तुश्च विनाशनम्

परप्रयुक्तां कृत्यां तु सम्प्राप्तामति भीषणाम्॥ ३३ ॥

स्वयं निर्गत्य देवोऽसौ चक्ररूपी जगत्पतिः ।
भस्मसात् कुरुते तं च प्रयोक्तारं ततः परम् ॥ ३४ ॥

शत्रु प्रयुक्त कृत्या तथा अभिचार करने वाले शत्रु दोनों का विनाश—अत्यन्त भीषण शत्रुप्रयुक्त प्राप्त कृत्या को चक्ररूपी विष्णु स्वयं प्रगट हो कर उसका विनाश करते हैं। तदनन्तर अभिचारकर्त्ता का भी विनाश करते हैं ॥ ३३-३४ ॥

काशीराजेतिहासोदाहरणम्

तथैव काशीराजाख्यो वाराणस्यां वसन्नृपः ।
विश्वेश्वरं महादेवमर्चयित्वा समाहितः ॥ ३५ ॥
कृष्णोद्देशेन कृत्यां वै जनयामास मोहितः ।
सा समुत्पादिता कृत्या विकटा भीमदर्शना ॥ ३६ ॥
द्वारकां समनुप्राप्य कृष्णाभ्याशं ययौ तदा ।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वालामालाविलाननाम् ॥ ३७ ॥
प्रेषयामास भगवान् सुदर्शनमनुत्तमम् ।
सा तमापतितं दृष्ट्वा सहस्रादित्यसन्निभम् ॥ ३८ ॥
यथागतं प्रदुद्राव प्रयोक्तारं भयातुरा ।
स तां निहत्य तं चापि काशीराजं पुरीं तथा ॥ ३९ ॥
आजगाम पुनश्चक्रं विष्णुपार्श्वं महाद्युतिः ।

इस विषय में काशिराज के इतिहास का उदाहरण—काशिराज नामक राजा पूर्वकाल में वाराणसी में निवास करता था। उसने बड़ी सावधानी से विश्वेश्वर महादेव की अर्चना कर मोहवश कृष्ण के विनाश के उद्देश्य से कृत्या उत्पन्न की। उसके द्वारा उत्पन्न की गई, विकट तथा भीषण रूप में दिखाई पड़ने वाली वह कृत्या द्वारका में जाकर कृष्ण के सन्निकट पहुँची। ज्वालामाला से जलती हुई मुख वाली उस कृत्या को अपनी ओर आते देख भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र से उस पर प्रहार किया। सहस्रादित्य सन्निभ उस सुदर्शन को आते देख वह कृत्या भयभीत होकर जैसे आई थी उसी प्रकार उल्टे पाँव प्रयोगकर्त्ता काशिराज के पास भागी। फिर तो महाद्युति सुदर्शन ने कृत्या का वध किया और फिर काशिराज का भी वध किया। तदनन्तर काशीपुरी को भी विध्वस्त कर वह विष्णु के सन्निकट चला आया ॥ ३५-४० ॥

श्रुतकीर्त्युपाख्यानोदाहरणम्

एवमन्यत् पुरावृत्तमितिहासं शृणुष्व मे ॥ ४० ॥

श्रुतकीर्त्ति के उपाख्यान का उदाहरण—हे नारद! इसी प्रकार पूर्वकाल में हुये एक और इतिहास को मुझसे सुनिए। राजा श्रुतिकीर्त्ति धर्मपूर्वक सप्तद्वीपा वसुमती का पालन करता था ॥ ४० ॥

राज्ञा श्रुतकीर्त्तिना धर्मेण सप्तद्वीपमहीपरिपालनम्

सौराष्ट्राधिपती राजा श्रुतकीर्त्तिरिति श्रुतः ।

निवसन् भद्रशालायां नगर्यामरिमर्दनः ॥ ४१ ॥
गजाश्वरथसम्पन्नो बलवान् वासवोपमः ।
सुदर्शनमहामन्त्रनिष्ठः परमधार्मिकः ॥ ४२ ॥
सुदर्शने परां भक्तिमुद्वहन्नर्चनापरः ।
बुभुजे तत्प्रसादेन सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ ४३ ॥

सौराष्ट्र देश का अधिपति एक राजा श्रुतकीर्त्ति नाम से विख्यात था । वह प्रतापी राजा भद्रशाला नामक नगरी में निवास करता था । वह हाथी, घोड़े एवं रथ से सम्पन्न था और इन्द्र के समान बलवान् था । उस धार्मिक राजा की निष्ठा सुदर्शन मन्त्र में अधिक थी। वह उनमें पराभक्ति रखता था और उन्हीं का अर्चन करता था । उनकी कृपा से सप्तद्वीपा वसुमती का पालन करता था ॥ ४१-४३ ॥

लोकान्तरं जिगीषोस्तस्य सुदर्शनार्चनपूर्वकं स्वस्तिकाख्यगन्धर्वनगरगमनम्

जेतुं लोकान्तरं चक्रे श्रुतकीर्त्तिर्मनस्तदा ।
चतुरङ्गबलैर्युक्तः समभ्यर्च्य सुदर्शनम् ॥ ४४ ॥
कामगं स्यन्दनं चित्रमारुरोह महाबलः ।
ततः प्रतस्थे प्रथममन्तरिक्षं बलान्वितः ॥ ४५ ॥

अन्य लोकों को जीतने की इच्छा से उस राजा का सुदर्शन अर्चनपूर्वक स्वस्तिक नामक गन्धर्वनगर में गमन—तदनन्तर राजा श्रुतकीर्त्ति ने अन्य लोकों के जीतने की इच्छा की और उसने सुदर्शन की अर्चा की । फिर चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर वह महाबली मनोगामी चित्र नामक रथ पर सवार होकर सर्वप्रथम अन्तरिक्ष लोक की ओर चल पड़ा ॥ ४४-४५ ॥

स्वस्तिकनगरवर्णनम्

तत्र गन्धर्वनगरं विशालं स्वस्तिकाह्वयम् ।
वीणाविनोदनेनेत्थं पालितं परमद्युति ॥ ४६ ॥
स्वयंप्रवृत्तैः शस्त्रैश्च वार्यमाणारिसैनिकम् ।
बहिर्निरिन्धनेनैव वह्निना परिवेष्टितम् ॥ ४७ ॥
सुवर्णसालं परमं रत्नगोपुरमण्डितम् ।
मणिहर्म्यपरिक्षिप्तं गानस्वनसमाकुलम् ॥ ४८ ॥
विमानैस्तैजसैर्जुष्टं दिव्योपवनशोभितम् ।
सुवर्णपद्मसरसीसरिद्वापीनिषेवितम् ॥ ४९ ॥
सेवितं सुरनारीभिरप्सरोभिश्च सेवितम् ।
गन्धर्वैः किन्नरैः सिद्धैश्चारणैश्च सदा युतम् ॥ ५० ॥

स्वस्तिक नगर का वर्णन—उस अन्तरिक्ष लोक में स्वस्तिक नाम का एक विशाल

नगर है। उस परम प्रकाश युक्त नगर का वीणाविनोदन नामक राजा पालन करता था। उस नगर में शस्त्र अपने आप प्रयुक्त होकर शत्रुसेना को दूर भगा देते थे। वह नगर के बाहर से बिना इन्धन के जलने वाली अग्नि से परिवेष्टित था। उसमें सुवर्ण के सालवृक्ष थे। उसका गोपुर रत्नों से मण्डित था। माणिक्य निर्मित ऊँचे-ऊँचे भवन से युक्त तथा निरन्तर गाने के शब्दों से व्याप्त था। उसमें दिव्य तैजस विमान थे तथा दिव्योपवन से वह सुशोभित था। सुवर्ण के कमलों से युक्त वहाँ की वापियाँ, सरितायें तथा छोटी-छोटी तलैया थीं। देवाङ्गनायें एवं अप्सरायें वहाँ विहार करती थीं तथा गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध एवं चारण वहाँ निवास करते थे ॥ ४६-५० ॥

युयुत्सुना श्रुतकीर्त्तिना तन्नगरोपरोधः

एवंविधं पुरं राजा रुरोध बलदर्पितः।
वीणाविनोदनं योद्धुं महत्या सेनया तदा ॥ ५१ ॥

युद्ध की इच्छा वाले श्रुतकीर्त्ति द्वारा उस नगर का उपरोध करना—उस राजा ने बल के घमण्ड में आकर वीणाविनोदन से युद्ध करने की इच्छा से अपनी अपार सेना के साथ उस नगर को अवरुद्ध कर लिया ॥ ५१ ॥

गन्धर्वराजेन वाहिनीप्रेषणम्

श्रुत्वा गन्धर्वराजोऽपि मानुषैरुपरोधनम्।
प्रहस्य प्रेषयामास सिद्धगन्धर्ववाहिनीम् ॥ ५२ ॥

गन्धर्वराज द्वारा सेना भेजना—गन्धर्वराज ने मनुष्य द्वारा अपने नगर को अवरुद्ध होने की बात सुन कर हँसते हुये सिद्ध एवं गन्धर्वों की सेना उसका सामना करने के लिए भेजी ॥ ५२ ॥

तत्र तुमुलसंग्रामः

सा तेन बलिना राज्ञा युयुधे निशितैः शरैः।
प्रवृत्तं तन्महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥ ५३ ॥

वहाँ पर घनघोर संग्राम—वह सेना उस बलवान् राजा से तीखे-तीखे बाणों द्वारा युद्ध करने लगी। इस प्रकार लोमहर्षणकारी घनघोर संग्राम प्रारम्भ हुआ ॥ ५३ ॥

श्रुतकीर्त्तिना गन्धर्वसैन्यविद्रावणम्

ततो विद्रावयामास भूपतिर्लीलया बलम्।
गान्धर्वं तत् पुनः प्राप स्वपुरीं भयविह्वलम् ॥ ५४ ॥

श्रुतकीर्त्ति द्वारा गन्धर्व सेना का पराजय—तदनन्तर उस श्रुतकीर्त्ति ने देखते-देखते लीलापूर्वक गन्धर्वों की सेना भगा दी। जिससे भयविह्वल सभी गन्धर्व सेना अपनी पुरी को लौट आई ॥ ५४ ॥

क्रुद्धस्य गन्धर्वराजस्य स्वयं युद्धाय निर्गमनम्

तच्छ्रुत्वा परमक्रुद्धः स्वयं वीणाविनोदनः।

रथं महान्तमास्थाय निर्ययौ सह सैनिकैः ॥ ५५ ॥

क्रुद्ध हुये गन्धर्वराज का स्वयं रण के लिए प्रस्थान—अपनी सेना का पलायन सुन कर क्रुद्ध हुआ गन्धर्वराज वीणाविनोदन बहुत बड़े रथ पर सवार होकर सेना के साथ युद्ध भूमि की ओर चल पड़ा ॥ ५५ ॥

गन्धर्वराजश्रुतकीर्त्योरष्टदिनपर्यन्तं युद्धप्रवृत्तिः

ततस्तयोरभूद्युद्धं वृत्रवासवयोरिव ।
परस्परं निजघ्नुस्ते सैनिका विविधैः शरैः ॥ ५६ ॥
तत्र संछन्नमाकाशं शरौघैरुभयोरपि ।
जयः पराजयो वा स्यान्न तत्र समितौ तयोः ॥ ५७ ॥
एवमष्टदिनान्यासीदेकरूपं भयङ्करम् ।

गन्धर्वराज तथा श्रुतकीर्त्ति के बीच आठ दिन पर्यन्त निरन्तर युद्ध होना—

फिर तो उन दोनों में वृत्र और इन्द्र के समान युद्ध होने लगा । उनके सैनिक नाना प्रकार के बाणों से परस्पर प्रहार करने लगे । उभय पक्ष के सैनिकों के बाण प्रहार से सारा आकाश मण्डल आच्छन्न हो गया । उस लड़ाई में किसी की जय-पराजय नहीं हो रही थीं । इस प्रकार आठ दिन तक एक रूप से भयङ्कर युद्ध चलता रहा ॥ ५६-५८ ॥

भूपतिना गन्धर्वराजस्य धनुरादिच्छेदो बलविद्रावणं च

ततो गन्धर्वराजस्य धनुश्चिच्छेद भूपतिः ॥ ५८ ॥
ध्वजच्छत्रहयांश्चापि सायकैर्नतपर्वभिः ।
दिशः प्रस्थापयामास तदीयं सकलं बलम् ॥ ५९ ॥

गन्धर्वराज का धनुष कटकर गिरना और उसकी सेना का पलायन—तदनन्तर राजा ने तीखे-तीखे बाणों को चलाकर गन्धर्वराज के धनुष, ध्वज, छत्र तथा घोड़े नष्ट कर दिये और उसकी सारी सेना जहाँ-तहाँ दिशाओं में भगा दी ॥ ५८-५९ ॥

गन्धर्वराजस्य विषादः

शस्त्रैरजय्यमालोच्य नृपं गन्धर्वराडपि ।
पराजितं तु स्वबलं मनुजैर्विषसाद ह ॥ ६० ॥

गन्धर्वराज का विषाद—इधर गन्धर्वराज भी शस्त्रों से अजेय राजा को जानकर तथा मनुष्य द्वारा पराजित अपनी सेना को देख कर बड़ा दुःखी हुआ ॥ ६० ॥

गन्धर्वराजेन मानुषबले गान्धर्वास्त्रप्रयोगः

दिव्यास्त्रैः सूदयाम्येनमिति मत्वा महाद्युतिः ।
गान्धर्वमस्त्रं चिक्षेप स तस्मिन् मानुषे बले ॥ ६१ ॥

गन्धर्वराज द्वारा मानुषी सेना पर दिव्यास्त्र का प्रयोग—तब परमप्रतापी राजा ने विचार किया कि अब इस मानुषी सेना पर दिव्यास्त्र का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा सोचकर उसने गान्धर्व अस्त्र चला दिया ॥ ६१ ॥

तेन मानुषसैन्यविमोहनम्

तेनैव मोहिता सर्वा श्रुतकीर्तिवरूथिनी।
गान्धर्वास्त्रप्रभावेण तिष्ठत्येव च संयुगे॥ ६२ ॥
सुदर्शनप्रभावेण दिव्यास्त्रं नाप तं नृपम्।

उससे मानुषी सेना का मूर्च्छित होना—उस गान्धर्व अस्त्र से सारी की सारी श्रुतिकीर्त्ति की सेना मूर्च्छित हो गई। सुदर्शन के प्रभाव से एक मात्र राजा ही मूर्च्छित नहीं हुआ और न उस पर दिव्यास्त्र का कुछ प्रभाव ही पड़ा ॥ ६२-६३ ॥

तत्प्रतीकाराशक्तस्य श्रुतकीर्त्तेः पुरोधसि स्ववृत्तनिवेदनम्

श्रुतकीर्त्तिस्तदास्त्रेषु दिव्येष्वनभियोगतः॥ ६३ ॥
न शशाक प्रतीकर्तुं स्वपुरोधसमभ्ययात्।
वृत्तं विज्ञापयामास नृपस्तस्मै पुरोधसे॥ ६४ ॥

उसका प्रतीकार करने में असमर्थ राजा श्रुतकीर्त्ति का अपने पुरोहित से निवेदन करना—तब राजा श्रुतकीर्त्ति ने उस दिव्यास्त्र पर अपना कुछ भी प्रभाव न देख कर उसके प्रतीकार में असमर्थ हो कर अपने पुरोहित से सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ६३-६४ ॥

पुरोधसा सुदर्शनशरणवरणोपदेशपूर्वकं निखिलास्त्रमन्त्रोपदेशनम्

सोऽभ्यभाषत धर्मज्ञः परमास्त्रविशारदः।
श्रुतकीर्त्तेऽत्र मा भैषीस्तमेव शरणं व्रज॥ ६५ ॥
प्रणतार्त्तिहरं देवं सुदर्शनवपुर्धरम्।
दिव्यास्त्राणामशेषाणां प्रसूतिं परमेश्वरम्॥ ६६ ॥
एवंभूते महाचक्रे चतुःषष्ट्यरसंयुते।
नेमिद्वयान्विते देवं मध्ये ध्यायस्व भूपते॥ ६७ ॥
द्विषष्टिभुजमत्युग्रं संहारास्त्रधरं परम्।
एवं ध्यात्वा च जप्त्वैतं मन्त्रं सेनां विलोकय॥ ६८ ॥
इत्यस्त्रमन्त्रानखिलांस्तस्मा उपदिदेश सः।

पुरोहित द्वारा सुदर्शन की शरण में जाने का उपाय बताकर राजा को सम्पूर्ण मन्त्रों का उपदेश करना—तदनन्तर अस्त्रशास्त्र के वेत्ता धर्मज्ञ उस पुरोहित ने कहा—'हे श्रुतकीर्त्ति! आप इस गन्धर्वराज से भयभीत मत होइए, भगवान् की शरण का सहारा लीजिए।' सुदर्शन स्वरूपधारी वे देवाधिदेव प्रणतजनों के दु:खों का हरण करने वाले

हैं, वे परमेश्वर सभी दिव्यास्त्रों के जन्मदाता हैं । महाचक्ररूपी विष्णु का स्वरूप इस प्रकार है । उसमें ६४ अरे हैं एवं दो नेमियाँ है । वे प्रभु अपनी ६२ भुजाओं से संहारास्त्र को धारण किये हुये हैं । उसी के मध्यभाग में विष्णु का ध्यान करिए । इस प्रकार के चक्र का ध्यान कर आप उनके मन्त्र का जप करिए । फिर अपनी सेना की ओर देखना चाहिए । पुरोहित ने इस प्रकार राजा को अखिल मन्त्रों का उपदेश भी किया ॥ ६५-६९ ॥

तेन जातबलस्य श्रुतकीर्त्तेः पुनर्युद्धायागमनम्

प्रतिगृह्याखिलान् मन्त्रान् प्रवर्तकनिवर्तकान् ॥ ६९ ॥
पुनरेत्य च संग्रामं स राजा समितिञ्जयः ।

उसके प्रभाव से सामर्थ्य प्राप्त कर राजा का पुनः युद्धभूमि में प्रस्थान—राजा ने अपने पुरोहित से सारे प्रवर्त्तक एवं निवर्त्तक अस्त्र ग्रहण कर लिए और संग्राम में विजय की इच्छा से पुनः युद्धभूमि की ओर लौट पड़ा ॥ ६९-७० ॥

तेन स्वसैनिकमोहविमोचनम्

ध्यात्वा देवं जपन् मन्त्रं स्वसेनां समलोकयत् ॥ ७० ॥
ततः संज्ञामवाप्यासौ प्रावर्तत महाहवे ।

उसके द्वारा सैनिकों की मूर्च्छा का दूरीकरण—उसने देवाधिदेव चक्ररूपधारी विष्णु का ध्यान किया । फिर मन्त्र का जप कर अपनी सेना की ओर दृष्टि डाली । तदनन्तर सेना को जीवित कर पुनः युद्ध में प्रवृत्त हो गया ॥ ७०-७१ ॥

पुनर्युद्धे श्रुतकीर्त्तेर्विजयो गन्धर्वलोकवशीकरणं च

पुनः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि ॥ ७१ ॥
दिव्यास्त्रैः समरे राजा जित्वा वीणाविनोदनम् ।
तल्लोकं स्ववशं चक्रे चक्रवर्ती बलान्वितः ॥ ७२ ॥

पुनः श्रुतकीर्त्ति की विजय और गन्धर्वलोक का वशीकरण—तदनन्तर दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया । चक्रवर्त्ती उस प्रतापी राजा ने दिव्यास्त्र की सहायता से वीणाविनोदन गन्धर्वराज को जीत लिया और गन्धर्वलोक को अपने वश में कर लिया ॥ ७१-७२ ॥

ततः स्वपुरप्रत्यागमनम्

सत्कृतः सिद्धगन्धर्वैः किन्नरैश्चारणैरपि ।
भद्रशालां पुनः प्राप स्वपुरीं विजयश्रिया ॥ ७३ ॥
समेयिवाञ्शशासोर्वीं दिवं सुरपतिर्यथा ।

अपने नगर की ओर प्रस्थान—सिद्धों, गन्धर्वों, किन्नरों एवं चारणों से सत्कृत हुआ

राजा विजयश्री के साथ भद्रशाला नगरी में पुनः लौट आया और स्वर्ग में देवराज इन्द्र की तरह पृथ्वी का शासन करने लगा ॥ ७३-७४ ॥

सुदर्शनप्रभावाद्विस्मितस्य पुनः पुरोधसा सह मन्त्रणप्रकारः

सुदर्शनप्रभावस्य स्मृत्वा विस्मितमानसः ॥ ७४ ॥
पुरोधसमुपागम्य ज्वलन्तमिव पावकम् ।
मन्त्रयामास तेनैवं राजा राजीवलोचनः ॥ ७५ ॥

सुदर्शन के प्रभाव से विस्मित होकर राजा का पुनः पुरोहित से मन्त्रणा करना— हे कमलनेत्र ! वह राजा उस सुदर्शन का प्रभाव देखकर आश्चर्य में पड़ गया । फिर जलती हुई अग्नि के समान प्रदीप्त पुरोहित के पास जाकर उनके साथ मन्त्रणा में लग गया ॥ ७४-७५ ॥

स्वसम्पदो भगवत्प्रसादहेतुकत्वकथनम्

देवप्रसादाज्जगती ममेयं
समुद्रनेमिर्वशमागताद्य ।
लोकान्तरं चापि तथैव मन्ये
मयि प्रसादोन्मुख एव देवः॥ ७६ ॥

भगवान् की कृपा से सारी सम्पत्तियों का हेतुत्व—हे पुरोहितदेव ! भगवान् सुदर्शन देव की कृपा से समुद्रनेमी वाली यह सारी पृथ्वी मेरे वश में आ गई । इतना ही नहीं अन्य लोक भी मेरे वश में आ गया । इससे ज्ञात होता है कि देवाधिदेव मुझ पर प्रसन्न हैं ॥७६॥

भगवत्प्रसादात् स्वस्य मोक्षलाभे संशयाभावकथनम्

संसारभीतस्य ममापवर्गं
प्रदास्यते चक्रवपुर्धरोऽयम् ।
इत्यत्र शङ्का मम नास्ति काचि-
दतः परं देवमुपास्महे तु ॥ ७७ ॥

भगवान् की प्रसन्नता से मोक्ष लाभ—ये चक्ररूपधारी विष्णु भयानक संसार से भयभीत मुझे मोक्ष अवश्य प्रदान करेंगे । इसमें मुझे किसी प्रकार की शङ्का नहीं है । अतः मैं अब मात्र इन्हीं देव की उपासना करूँगा ॥ ७७ ॥

राजानं प्रति पुरोधसा सुदर्शनप्रतिष्ठापनाद्युपदेशः

इत्युक्तवन्तं नृपतिं पुरोधाः
कृताञ्जलिं प्राह महानुभावः ।
विमानमग्र्यं बहुवर्णकूटं
विधाय चक्रोपपदं ससाध्यम्॥ ७८ ॥

इह प्रतिष्ठाप्य सुचक्रमध्ये
द्विषष्टिबाहुं सनिवर्तकास्त्रम् ।
यथोक्तरूपं बहुभूषणाढ्यं
सुदर्शनं पूजय सर्वसिद्ध्यै ॥ ७९ ॥

राजा को पुरोहित द्वारा सुदर्शन की प्रतिष्ठा के लिए उपदेश—हाथ जोड़े इस प्रकार राजा के निवेदन करने पर महानुभाव पुरोहित ने कहा—हे राजन् ! नाना प्रकार के वर्णों से सुचित्रित उत्तम मन्दिर का निर्माण कर उसमें साध्यनाम सहित चक्र अर्थात् सुदर्शन चक्र को ६२ भुजाओं से तथा निवर्त्तक अस्त्रों के सहित बनवा कर उनकी प्रतिष्ठा करिए और उस प्रकार के रूप को नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित कर सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि के लिए उनकी पूजा करिए ॥ ७९ ॥

राज्ञा तथैवानुष्ठानम्

इत्येवमुक्तः प्रतिगृह्य मूर्ध्ना
स तस्य वाक्यं परमार्थयुक्तम् ।
अकारयत् कारयितव्यदक्ष-
स्तथैव तस्मिन्नगरे स राजा ॥ ८० ॥

राजा का वैसा ही अनुष्ठान करना—परमार्थ युक्त उन पुरोहित के द्वारा ऐसा कहे जाने पर राजा ने परमार्थयुक्त उनकी आज्ञा को शिर से धारण किया और निर्माण में कुशल कारीगरों को बुलाकर पुरोहित के कथनानुसार उसी प्रकार से मन्दिर आदि का निर्माण कराया और उसमें चक्र सुदर्शन को स्थापित किया ॥ ८० ॥

तदर्थं राज्ञा द्विजानां वृत्तिप्रकल्पनम्

शतं स विंशत्यधिकं द्विजांस्तु
समन्ततो देवनिकेतनात् सः ।
ततः प्रतिष्ठाप्य धनानि दत्त्वा
बहूनि बह्वीश्च भुवः स तेभ्यः ।
विभूतिमन्तं च विधाय देवं
मुमोद राजा समवाप्तकामः ॥ ८१ ॥

राजा द्वारा ब्राह्मणों को वृत्ति प्रदान करना—मन्दिर में प्रतिष्ठा करने के अनन्तर राजा ने उस देव मन्दिर से एक सौ बीस ब्राह्मणों को बहुत साधन तथा बहुत सी भूमि प्रदान की। फिर देवाधिदेव को अनन्त ऐश्वर्य से संयुक्त कर राजा अपने को कृत-कृत्य समझने लगा और प्रसन्नता व्यक्त की ॥ ८१ ॥

ततो भगवत्प्रसादाद्राज्ञः परमपुरुषार्थलाभः

महालये तत्र समर्च्य देवं
दिने दिने प्राप्तसमस्तकामः ।

ततोऽचिरेणैव विमुक्तसङ्गः
परं पदं प्राप च तत्प्रसादात्॥ ८२ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां काशीराजश्रुतकीर्त्युपाख्यानवर्णनं नाम द्विचत्त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २६७३ ॥

* * *

भगवान् की कृपा से राजा को परमपुरुषार्थ की प्राप्ति—उस राजा ने उस विशाल मन्दिर में प्रतिदिन अर्चना करते हुये अपनी सारी कामनायें पूर्ण की । फिर कुछ ही दिन के अनन्तर सारे संसार से नाता तोड़कर भगवत्प्रसाद से परम पद प्राप्त कर लिया ॥ ८२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के काशिराज
एवं श्रुतकीर्त्ति के उपाख्यान वर्णन नामक बयालीसवें अध्याय की
शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के
द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४२ ॥

* * *

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

जलन्धरवधोपायचिन्तनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक कोटि जन्म समूहों के पाप समूह को नष्ट करता है । हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

कृत्स्नस्य जगच्चक्रमयत्वकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

पृच्छामि त्वां पुनरिदं शंस मे सकलेश्वर ।
प्रोक्तमेतत् पुरा सर्वं जगच्चक्रमयं त्वया ॥ १ ॥
तत् कथं स्पष्टमाचक्ष्व कदा देवेन दर्शितम् ।
वेत्ता त्वमेव नान्योऽस्ति त्वदृते भुवनत्रये ॥ २ ॥

सारे संसार के चक्रमयत्व के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे सर्वेश्वर ! आपने जो कहा कि यह सब जगत् चक्रमय ही है, वह किस प्रकार सम्भव है? उसका स्पष्ट रूप से आख्यान कीजिए । उस जगत को चक्ररूप में भगवान् ने कब दिखाया? आप ही भुवनत्रय में इस रहस्य के ज्ञाता हैं, आपको छोड़कर कोई अन्य नहीं । इसलिए आपसे पूछ रहा हूँ ॥ १-२ ॥

अध्यायद्वयेन तदुत्तरकथनाख्यायिकाकथने प्रथमं देवादीनां धर्ममार्गप्रवर्तकत्वनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

सुराश्च मुनयः सर्वे मनुस्तत्सूनवस्तथा ।
राजानः सर्ववर्णाश्च धर्ममार्गप्रवर्तकाः ॥ ३ ॥

देवताओं का धर्ममार्ग प्रवर्त्तकत्व—अहिर्बुध्न्य ने कहा—सभी देवता मुनि, मनुगण, मनुपुत्र, राजा तथा सभी लोग वर्ण धर्ममार्ग के प्रवर्त्तक हैं ॥ ३ ॥

विमर्श—दो अध्याय में उत्तर कहने के लिए आख्यायिका कथन का उपक्रम करते हैं।

दानवादीनां धर्मविघातकत्वम्

तथैव दानवाः सर्वे भूतवेतालराक्षसाः।
क्रूरा नराश्च पशवो भीमरूपाश्च दस्यवः ॥ ४ ॥
तथैव चासुरीं प्राप्ता योनिमन्ये जना मुने।
एते सर्वे सदा धर्मविध्वंसं कुर्वते भृशम् ॥ ५ ॥

दानवों का धर्म विनाशकत्त्व—सभी दानव, भूत, बेताल, राक्षस, नीच प्रकृति के पुरुष, पशु, भयानक दस्यु, उसी प्रकार, हे मुने! आसुरी योनि में जन्म लेने वाले अन्य मनुष्य—ये सभी सदैव धर्म का अत्यन्त विध्वंस करने वाले हैं ॥ ४-५ ॥

पापिनां विनाशोपायचिन्तयाहिर्बुध्न्यस्य मेरुशिखरगमनम्

अतस्ते पापकर्माणः केन नश्येयुरित्यहम्।
परां चिन्तामुपारूढो मेरुकूटमुपागतः ॥ ६ ॥

पापियों के नाश हेतु अहिर्बुध्न्य का मेरु शिखर पर प्रस्थान—ये पापकर्मा किस प्रकार से विनष्ट होंगे? हे नारद! इस प्रकार की चिन्ता में निमग्न हुआ मैं मेरु शिखर पर चला गया ॥ ६ ॥

तत्र समाधिमास्थितस्य तस्य तेजोविशेषदर्शनम्

तस्मिन् समाधिमास्थाय समासीनस्य मे क्षणात्।
आविर्बभूव दुर्दर्शं महः परमभास्वरम् ॥ ७ ॥

समाधिस्थ अहिर्बुध्न्य को तेजोविशेष का दर्शन—उस मेरुशिखर पर समाधि लग जाने पर मुझे अत्यन्त दुर्दर्श परम भास्वर एक तेज दिखाई पड़ा ॥ ७ ॥

भीतिवशात् आथर्वणमन्त्रोच्चारणपूर्वकं पुनस्तद्दर्शनम्

ततस्तद्दर्शनान्मन्त्रमाथर्वणमुदैरयम्।
तमुच्चरन् महामन्त्रमद्राक्षं तन्महः पुनः ॥ ८ ॥

भयवश आथर्वण मन्त्र का उच्चारण करते हुये अहिर्बुध्न्य को पुनः उसी तेज को देखना—उस तेजो विशेष को देखते ही मैं आथर्वण मन्त्र का जप करने लगा। फिर भी बारम्बार मुझे वही तेज दिखाई पड़ने लगा ॥ ८ ॥

तेजोमध्ये सुदर्शनपुरुषसाक्षात्कारपूर्वकं प्रश्नः

तस्मिन् विदीप्ते महसि पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्।
ऊर्ध्वरेतं विरूपाक्षं सहस्रादित्यसन्निभम् ॥ ९ ॥
सहस्रारसमायुक्तचक्रमध्यस्थितं परम्।
ज्वालामालासुदुर्दर्शं सुदर्शनमनाकुलम् ॥ १० ॥

दृष्ट्वा कस्त्वं कुतः कस्येत्यपृच्छमकुतोभयम् ।

तेज के मध्य में सुदर्शन पुरुष का साक्षात्कार करने पर अहिर्बुध्न्य का उस विषय में प्रश्न—उस जाज्वल्यमान तेज के मध्य में कृष्ण पिङ्गल वर्ण का एक पुरुष मुझे दिखाई पड़ा जो ऊर्ध्वरिता, विरूपाक्ष, सहस्रों आदित्य के समान तेजस्वी तथा सहस्र अरों से युक्त चक्र के मध्य में स्थित था । वह ज्वालामाला से आवृत होने के कारण सुदुर्दर्श, मनोहर तथा धैर्यशाली था । उसे देखकर मैंने निर्भीक होकर पूछा—'आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं तथा किसके क्या हैं? ॥ ९-११ ॥

प्रीतेन भगवता स्वस्वरूपख्यापनम्

ततः प्रीतः स भगवानवदत् तेजसां निधिः ॥ ११ ॥
अहं सुदर्शनो नाम्ना ख्यातोऽद्य प्रभृतीश्वर ।
दुरालोको महालोको यत् तवाहं सुदर्शनः ॥ १२ ॥

प्रसन्न हुये भगवान् का स्व-स्वरूप का आख्यापन—तब महातेजस्वी उन भगवान् ने प्रसन्न होकर मुझसे कहा—'हे ईश्वर ! आज से मैं सुदर्शन नाम से पृथ्वी में ख्यात हो रहा हूँ । मैं दुरालोक एवं महालोक होकर भी आपके लिए सुदर्शन हूँ ।

वैकुण्ठात् स्वागमनस्याहिर्बुध्न्यानुजिघृक्षाहेतुकत्वादिकथनम्

वैकुण्ठधामनिलयस्त्वां द्रष्टुं समुपागतः ।
त्रिभावभावनायुक्तैरदृष्टचरमद्भुतम् ॥ १३ ॥
नित्यमन्तर्हितं गुह्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
प्रमथ्य मतिमन्थानादुद्धृतं वेदसागरात् ॥ १४ ॥
पीयूषमिव दुग्धाब्धेर्यत् त्वया परमेश्वर ।
अतो मन्त्रतनुः प्राप्तो भवन्तं किं करोमि ते ॥ १५ ॥
अन्तरं नैव पश्यामि तव दामोदरस्य च ।
अतो यथात्र वर्तेय तथैव त्वयि शङ्कर ॥ १६ ॥

वैकुण्ठ से अपने आने का उद्देश्य अहिर्बुध्न्य को बताना—मैं वैकुण्ठधाम में रहने पर भी आपको देखने के लिए आया हूँ क्योंकि त्रिभाव भावना वालों से भी अत्यन्त अदृष्ट, अद्भुत, नित्य अन्तर्हित, गुह्य तथा सर्वलोक नमस्कृत मेरे मन्त्र को अपने मतिरूपी मथानी से वेदसागर को मथ कर आपने इस प्रकार उद्धृत किया है, जिस प्रकार क्षीरसागर से अमृत निकाला गया था । इसी कारण मैं मन्त्रात्मक शरीर से आपके पास आया हूँ । कहिये आपका क्या उपकार करुँ? मुझे आप में तथा दामोदर श्रीकृष्ण में कोई अन्तर दिखाई नहीं पड़ता । इसलिए मैं जैसे उनमें वर्ताव करता हूँ, हे शङ्कर ! उसी प्रकार आपमें भी करूँगा ॥ १३-१६ ॥

ततोऽहिर्बुध्न्येन भगवति स्वाभिप्रेतनिवेदनम्

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् सहस्रादित्यसन्निभे ।

ततोऽहं विस्मितोऽवोचं तमप्रतिमतेजसम् ॥ १७ ॥
भूयांसो भुवने पापा धर्मव्यासेध(?)कारिणः ।
तेषां निग्रहमाकाङ्क्षन्नुपायैर्नाशयाम्यहम् ॥ १८ ॥
इति चिन्तापरे योगमास्थिते मयि मन्त्रराट् ।
त्वं चाविरासीस्तत्कार्यं निर्वृत्तमिति मे मतिः ॥ १९ ॥

अहिर्बुध्न्य द्वारा भगवान् से स्वाभिप्रेत कथन—सहस्रादित्य के समान अमित तेजस्वी जब वे महापुरुष ऐसा कह कर मौन हो गए तब मैंने उनसे कहा इस जगत् में बहुत से पापी धर्म के विनाश के लिए बद्ध परिकर हो गए हैं । मैं उनके निग्रह के उपाय की आकाङ्क्षा से आपके पास आया हूँ कि किस प्रकार से उनका विनाश हो? समाधि में स्थित हूँ, इसी अवस्था में आप मन्त्रराज का दर्शन हो गया । अब मुझे आशा हो गई कि मेरा यह कार्य सम्पन्न हो गया ॥ १७-१९ ॥

दैत्यादिविनाशनप्रार्थना

अतस्तैः पीड्यमानेषु साधुषु स्मृतिमात्रतः ।
आगन्तव्यं प्रयत्नेन साध्यं साधय च प्रभो ॥ २० ॥

अहिर्बुध्न्य द्वारा दैत्यादिकों के विनाश की प्रार्थना—अतः हे प्रभो ! उन अनधिकारियों के द्वारा सताये गए साधुओं के स्मरण करते ही आप उपस्थित हो जाँवें और अपने प्रयत्न से उनका मनोरथ पूर्ण करे ॥ २० ॥

भगवता तथेत्युक्ते स्वस्य कैलासगमनम्

तथेत्युक्त्वा गतः सोऽहमपि कैलासमन्वगाम् ।

अहिर्बुध्न्य का कैलासगमन—फिर तथास्तु कह कर भगवान् चले गए और मैं भी कैलास चला आया ॥ २१ ॥

अत्रान्तरे जलन्धरवधार्थमिन्द्रस्य मन्त्रालोचना

ततो जलन्धराख्येन दानवेन निपीडितः ॥ २१ ॥
वासवो मन्त्रयांच्चक्रे सह सर्वैर्मरुद्गणैः ।
शस्त्रैरस्त्रैरजय्यत्वं दानवस्य दुरात्मनः ॥ २२ ॥
निरीक्ष्य केन तं पापं नाशयामीत्यचोदयत् ।

जलन्धर के वध हेतु इन्द्र की मन्त्रणा—तदनन्तर जलन्धर नामक महासुर से निपीड़ित इन्द्र सभी देवताओं के साथ मन्त्रणा करने लगे । उन्होंने कहा—हे देवगणों ! यह दुरात्मा दानव सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से अजेय है । अतः किस प्रकार इसका विनाश करुँ? ॥ २१-२३ ॥

तत्र वायुना स्वाभिप्रायविनिवेदनम्

ततो वायुः समुत्थाय पुरंदरमथाब्रवीत् ॥ २३ ॥
सत्यमस्त्रैस्तथा शस्त्रैरजय्योऽयं महासुरः ।

धात्रा दत्तवरो दृप्तो बलवीर्यसमन्वितः ॥ २४ ॥
दिधक्षति जगत् सर्वं धूमकेतुरिवोत्थितः ।
सर्वलोकेश्वरे श्रीमत्यप्रमेये महाद्युतौ ॥ २५ ॥
देवदेवे महादेवे शङ्करे भूतभावने ।
तस्मिन्नत्याहितं तेन नृशंसेन सुरारिणा ॥ २६ ॥
तस्मिन् परमसंक्रुद्धो वर्तते तेन शङ्करः ।
अतस्तमभिगच्छामो वधार्थं दुष्टचारिणः ॥ २७ ॥
बृहस्पतिमुखेनैव तं देवं प्रार्थयामहे ।
स एव तत्र वक्तव्यं जानाति भगवानिति ॥ २८ ॥

वायु द्वारा स्वअभिप्राय निवेदन—सर्वप्रथम वायुदेव ने अपना अभिप्राय प्रकट किया, तब सभा में वायुदेव ने खड़े होकर इन्द्र से कहा—यह बात सत्य है कि वह महान् असुर शस्त्रास्त्रों से अजेय है । ब्रह्मा के वरदान से वह बहुत बलवान् तथा वीर्यवान् हो गया है जिससे वह उदय को प्राप्त होने वाले धूमकेतु के समान सारे जगत् को जला रहा है । किन्तु उस नृशंस दानव ने देवाधि-देव, भूतभावन महादेव शङ्कर का बहुत बड़ा अहित किया है । इसलिए भगवान् शङ्कर उसके विषय में अत्यन्त क्रुद्ध हैं । इस कारण उस दुष्ट दानव के वध के लिए शङ्कर जी के पास चलना चाहिये और उन देवाधिदेव से बृहस्पति द्वारा उनके वध की प्रार्थना करनी चाहिए । वही उसके वध का उपाय जानते हैं ॥ २५-२८ ॥

वायुवचनमङ्गीकृत्य शङ्करं गन्तुं शक्रेण बृहस्पतिप्रचोदनम्

विरते पवने तस्मिन् बाढमित्याह वासवः ।
बृहस्पतिमथासीनं ज्वलितानलसन्निभम् ॥ २९ ॥
अभ्यगच्छन्महातेजा भगवान् पाकशासनः ।
जलन्धरवधार्थं त्वमभिगच्छ पिनाकिनम् ॥ ३० ॥
स तस्मिन् परमक्रुद्धो निहनिष्यत्यसंशयम् ।
सुरकार्येषु सर्वेषु भवानेव परायणम् ॥ ३१ ॥
अतोऽभिगम्यतां देवः कैलासे चन्द्रशेखरः ।

वायु का वचन स्वीकार कर इन्द्र की बृहस्पति से शङ्कर के समीप चलने की प्रार्थना—इतना कह कर जब वायुदेव मौन हो गए तब इन्द्र ने 'तथास्तु' कहा । तदनन्तर जलती अग्नि के समान बैठे हुये बृहस्पति के समीप महातेजस्वी इन्द्रदेव गए और कहा—आप जलन्धर के वध के लिए पिनाकी शङ्कर के पास जाइये । वे उस पर क्रुद्ध हैं । अतः आप निश्चित रूप से उसका वध करेंगे । सभी देवताओं के कार्य के लिए मात्र आप ही सहायक हैं । अतः कैलास पर्वत पर जहाँ चन्द्रशेखर का निवास है वहाँ जाइये ॥ २९-३२ ॥

इन्द्रवचनात् बृहस्पतेः कैलासगमनम्

इत्युक्तवचने तस्मिन् पुरुहूते सुरेश्वरे ॥ ३२ ॥

तथेति तत् प्रतिश्रुत्य वाक्पतिः शक्रपूजितः ।
कैलासशिखरं प्रायात् प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ३३ ॥

इन्द्र की प्रार्थना पर बृहस्पति का कैलासगमन—इन्द्र द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उनसे पूजित 'बृहस्पति' तथास्तु कहकर बहुत प्रसन्नता के साथ कैलास शिखर पर गए ।

तत्र शङ्करदर्शनम्

तत्रासीनं सुरैः सार्धमास्थाने सुमनोहरे ।
मामप्सरःप्रयुक्ते तु नृत्ये विस्मितमानसम् ॥ ३४ ॥
सोऽपश्यदाराद्भगवानुद्यद्भास्करसन्निभः ।
प्रणिपत्य समुत्थाय मामस्तौषीत् स वाक्पतिः ॥ ३५ ॥

कैलास पर शङ्कर का दर्शन—उस कैलास पर देवताओं के साथ सुरम्य स्थान पर बैठे हुये मुझे उन्होंने देखा । वहाँ अप्सराओं के नृत्य को मैं साश्चर्य देख रहा था । तदनन्तर उदीयमान सूर्य के समान बृहस्पति ने मुझे प्रणाम किया और खड़े होकर मेरी स्तुति करने लगे ॥ ३४-३५ ॥

जलन्धरवधार्थं बृहस्पतिना शङ्करस्तुतिः

प्रसीद देवदेवेश प्रसीद जगतःपते ।
प्रसीद सर्वगीर्वाणपालनान्तकर प्रभो ॥ ३६ ॥
प्रसीद भगवन् देव प्रसीद सुरवन्दित ।
प्रसीद विश्वविज्ञानवारिधे परमेश्वर ॥ ३७ ॥
नमस्ते व्योमनिलय नमस्ते नागभूषण ।
नमः परमकल्याण नमस्त्रिपुरदारण ॥ ३८ ॥

जलन्धर के वध के लिए बृहस्पति द्वारा शिवस्तुति—हे देवदेवेश ! आप प्रसन्न हों । हे जगत्पते ! प्रसन्न हों, सभी देवताओं के पालन तथा संहार करने वाले आप प्रसन्न हों । विश्वविज्ञान के समुद्र परमेश्वर ! आप प्रसन्न हों । परम व्योम में रहने वाले आपको नमस्कार है । हे नागभूषण ! आपको नमस्कार है । परमकल्याणस्वरूप ! आपको नमस्कार है । त्रिपुरविदारण आपको नमस्कार है ॥ ३६-३८ ॥

त्वं धाता त्वं वषट्कारस्त्वं हविस्त्वं हुताशनः ।
सदसत्त्वं त्वमोंकारस्त्वमिन्द्रस्त्वं यमस्तथा ॥ ३९ ॥
त्वं पाशपाणिस्त्वं सोमो निर्ऋतिस्त्वं मरुत् तथा ।
त्वमादित्यो वसुश्च त्वं त्वं विश्वं विश्वतोमुख ॥ ४० ॥
त्वमव्यक्तं महांश्च त्वं त्वमहङ्कार एव च ।
भूतानि त्वं सुसूक्ष्माणि विद्याविद्ये तथा भवान् ॥ ४१ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन चराचरमिदं जगत् ।
त्वमेव भूतनाथेश सर्वकारणकारण ॥ ४२ ॥

आप धाता, वषट्कार, हवि तथा हुताशन हैं। आप सत् तथा असत् हैं। आप ओंकार हैं, इन्द्र और यम भी आप ही हैं; वरुण, सोम, निर्ऋति तथा वायु भी आप ही हैं; आदित्य, वसु, विश्व तथा विश्वमुख भी आप ही हैं; आप अव्यक्त हैं, महान् हैं और अहङ्कार हैं; आप पञ्चमहाभूत हैं; आप सूक्ष्म पञ्चतन्मात्रायें हैं तथा विद्या एवं अविद्या भी आप ही हैं, इस विषय में बहुत क्या कहें, हे भूतनाथेश! हे सर्वकारणों के कारण! चराचरात्मक सारा जगत् आप ही हैं॥ ३९-४२॥

क्षितिसलिलसमीरव्योमतेजःसहस्र-
द्युतिशशियजमानैः पूर्णदेहाय तुभ्यम्।
परममुनिमनोभिर्मृग्यमाणाय नित्यं
भवभयविनिहन्त्रे विश्वमूर्ते नमस्ते॥ ४३॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जलन्धरवधोपाय-
चिन्तन नाम त्रिचत्त्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

॥ आदितः श्लोकाः २७१६॥

* * *

पृथ्वी, जल, वायु, व्योम, तेज, सूर्य, चन्द्रमा और यजमान रूप से पूर्ण देह वाले आपको नमस्कार है। बड़े-बड़े मुनियों के मन द्वारा निरन्तर मृग्यमाण तथा संसार के भय को विनष्ट करने वाले आप विश्वमूर्ति को मेरा नमस्कार है॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जलन्धर के
वध का उपाय नामक तिरालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई॥ ४३॥

* * *

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

सुदर्शनस्वरूपप्रदर्शनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसके अरे का एक बार का भी ध्यान अनेक करोणों जन्मों के पापसमूहों को नष्ट कर देता है, हम उन सुदर्शन देव के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

स्तुतिप्रीतेन शङ्करेणागमनकारपाप्रश्नः

अहिर्बुध्न्यः—

इति स्तुवन्तं कुशलमाभाष्येदमवादिषम् ।
किमागमनकार्यं ते वद वाचस्पते इति ॥ १ ॥

बृहस्पति की स्तुति से प्रसन्न हुये शङ्कर का उनके आने का कारण पूछना—अहिर्बुध्न्य ने कहा—तदनन्तर उपरोक्त स्तुति से प्रसन्न हुये मैंने बृहस्पति के आने का कारण पूछा कि हे वाचस्पते ! आपके आने का क्या कारण है? ॥ १ ॥

बृहस्पतिना शङ्कराय सुरकार्यनिवेदनम्

इत्युक्तः सकलं प्राह समागमनकारणम् ।
शम्भो कृपानिधे देव श्रूयतामिदमादरात् ॥ २ ॥
सर्वलोकेषु सर्वेश तव सानुग्रह मनः ।
अतस्त्रिदशकार्यार्थं त्वामहं शरणं गतः ॥ ३ ॥

बृहस्पति का देवकार्यार्थ आने का कारण बताना—इस प्रकार पूछे जाने पर बृहस्पति ने अपने आने का सारा कारण कहा, हे शम्भो ! हे कृपानिधे देव ! मेरी बात आदरपूर्वक सुनिये । हे सर्वेश ! यतः सारे संसार पर ही आप सानुग्रह मन रखते हैं अतः देवताओं के कार्य के लिए आप के अनुग्रह की अपेक्षा रख आपकी शरण आया हूँ ॥ १-२ ॥

जलन्धर इति ख्यातो दानवो दुष्टचेष्टितः ।
अनिशं बाधते देवान् ब्रह्मदत्तवरो बली ॥ ४ ॥
अशक्तास्तद्वधे सर्वे सुराः सुरपतिस्तथा ।

मन्त्रयाञ्चक्रिरे सर्वे सम्भूयैतन्मरुद्गणाः ॥ ५ ॥
वरेण महता दृप्तो दुर्वारो रणमूर्धनि ।
महासुरो महादेवादृते नासौ विनश्यति ॥ ६ ॥
एवं सम्मन्त्र्य शक्रो मामवादीत् समरुद्गणः ।
महासुरवधोपायं भगवन्तं त्रिलोचनम् ॥ ७ ॥
अन्तरेण न पश्यामि तं गच्छ शरणं शिवम् ।
सुरकार्यार्थमेतत् त्वं प्रार्थयेथाः पिनाकिनम् ॥ ८ ॥
इत्युक्तः पुरुहूतेन त्वत्सकाशमिहागतः ।
तद्यथैते सुराः सर्वे सुखिनो निरुपद्रवाः ॥ ९ ॥
भवेयुः पार्वतीनाथ तथैवाशु विधीयताम् ।

जलन्धर नामक दैत्य ब्रह्मदेव का वरदान प्राप्त कर बहुत बलवान् हो गया है और देवताओं को पीड़ित कर रहा है । सभी देवता, किं बहुना इन्द्र ने भी उसके वध में असमर्थ होने के कारण एकत्रित होकर आपस में इस प्रकार मन्त्रणा की है कि यह दैत्य ब्रह्मदेव के वरदान से बलवान् होने के कारण युद्ध में हम लोगों से अजेय है अतः इसका वध महादेव को छोड़कर अन्य कोई भी नहीं कर सकता । इस प्रकार की मन्त्रणा कर इन्द्र ने मुझसे कहा—हे गुरो ! इस महासुर के वध का उपाय भगवान् शङ्कर के सिवाय और किसी के पास नहीं देख रहा हूँ । अतः आप शङ्कर की शरण में जाइये और देवताओं के इस कार्य को भगवान् शङ्कर के समीप जाकर प्रार्थना कीजिये । इन्द्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मैं आपके पास आया हूँ । जिस प्रकार ये सभी देवता उपद्रवरहित होकर सुखी हो जावें, हे पार्वतीनाथ ! आप वही उपाय करे ॥ २-१० ॥

शङ्करेण जलन्धरवधप्रतिज्ञा

इत्युक्तोऽहं तदा तेन चिन्तारूढोऽभवं मुने ॥ १० ॥
तदेतदभिवीक्ष्याहमवोचं वचसां पतिम् ।
जलन्धरमहं क्रूरं हनिष्ये पापकारिणम् ॥ ११ ॥

शङ्कर का जलन्धर वध के लिए प्रतिज्ञा करना—हे मुने ! बृहस्पति द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मैं विचार करने लगा । फिर विचार कर वाचस्पति से बोला—मैं उस महापापी क्रूरकर्मा जलन्धर का वध करुँगा ॥ १०-११ ॥

स्वस्य दैत्यनिग्रहसामर्थ्ये सुदर्शनप्रसादस्य हेतुत्वख्यापनम्

समाधिस्थस्य मे दृष्टः सुदर्शनवपुर्धरः ।
मन्त्रो मन्त्रविदां श्रेष्ठ सर्वमन्त्रसमुद्भवः ॥ १२ ॥
सर्वार्थसाधको नित्यः सर्वदुष्टभयङ्करः ।
सर्वत्राणप्रवीणोऽयं चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ १३ ॥
स्वविद्यारक्षणरतः परविद्यानिवारणः ।
आथर्वणोऽपि षट्कार्णः षट्कर्णश्रुत्यगोचरः ॥ १४ ॥

अदृश्यं महसः पुञ्जं दुर्निरीक्षं तदा मया।
मन्त्रमुच्चरता तस्मिंश्चक्रवर्ति सुदर्शनम्॥ १५ ॥

जलन्धर के वध में अपना सामर्थ्य प्रगट करते हुये उससे सुदर्शन के हेतुत्व का प्रतिपादन—हे मन्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ! मैं जब समाधिस्थ था तो सुदर्शन का शरीर धारण किये, सम्पूर्ण मन्त्रों के उत्पत्ति का स्थान सुदर्शन मन्त्र का मुझे साक्षात् हुआ। वह मन्त्र सर्वार्थसाधक और सभी दुष्टों के लिए भयङ्कर हैं। वह सभी की रक्षा करने में समर्थ है, चारों पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है, अपनी विद्या के रक्षण में निरत है तथा पर विद्या को दूर भगाता है। यह अथर्ववेद से निकला हुआ भी छः अक्षरों वाला है जो छः कानों में कहे जाने योग्य नहीं है। यह अदृश्य है, तेजों का पुञ्ज है और दुर्निरीक्ष्य है। सुदर्शन मन्त्र का जप करते हुये मैंने समाधि काल में उस प्रकार के चक्राकार भगवान् सुदर्शन का दर्शन किया॥ १२-१५ ॥

दृष्टं तेनैवमुक्तं च प्रीतोऽहं मनुदर्शनात्।
परमव्योमनिलयो भगवन्नित्यकिङ्करः॥ १६ ॥
कार्यं तवांशेनागत्य करिष्ये मन्त्रतः स्मृतः।
इत्युक्त्वासौ गतो देवः सुदर्शनवपुर्धरः॥ १७ ॥
तेनैव तं दुरात्मानमपनेष्यामि मा चिरम्।

तदनन्तर उन्होंने कहा—'आपके मन्त्र दर्शन (जप) से परमव्योम निवासी भगवान् का नित्य किङ्कर मैं प्रसन्न हूँ। जब आप मन्त्र द्वारा मेरा स्मरण करोगे तब मैं अंशरूप से अवतरित होकर आपका कार्य करुँगा।' इतना कह कर सुदर्शन रूपधारी वह तेजःपुञ्ज चला गया। अतः इस समय मैं उस सुदर्शन विद्या का सहारा लेकर अविलम्ब उस राक्षस का वध करूँगा॥ १६-१८ ॥

सौदर्शनविद्याग्रहणाय शङ्करं प्रति बृहस्पतेः प्रार्थना

इत्युक्तः परमप्रीतो बृहस्पतिरपि त्वरन्॥ १८ ॥
प्रणम्य च पुनः प्राह यदि सानुग्रहो मयि।
सौदर्शनीमिमां विद्यां देहि मे भगवन्निति॥ १९ ॥

सौंदर्शन विद्या प्राप्त करने के लिए बृहस्पति की शङ्कर से प्रार्थना करना—मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर बृहस्पति ने बड़ी शीघ्रता से मुझे प्रणाम किया और कहा—हे भगवन्! यदि आप मुझ पर कृपालु हैं तो उस सुदर्शन विद्या को मुझे भी प्रदान कीजिये॥ १८-१९ ॥

शङ्करेण तस्मै तदुपदेशः

ततोऽहं महते तस्मै विद्यां प्रादां महात्मने।

शङ्कर के द्वारा सुदर्शन मन्त्र का बृहस्पति को उपदेश—तब मैंने उस महान् महात्मा को वह विद्या प्रदान की।

लब्धविद्येन बृहस्पतिना हिमवत्तटे तत्पुरश्चरणम्

तां लब्ध्वा परमप्रीतो जगाम हिमवद्गिरिम्॥ २० ॥

तस्मिञ्जजाप भगवान् मन्त्रमेतमनुत्तमम् ।

विद्या प्राप्त करने के उपरान्त बृहस्पति का हिमालय गमन—बृहस्पति सुदर्शन विद्या को प्राप्त कर हिमालय पहाड़ की ओर चले गए और वहीं रह कर इस मन्त्र का जप करने लगे ॥ २०-२१ ॥

बृहस्पतिना सुदर्शनसाक्षात्कारः

ततोऽस्य सन्निधिं चक्रे परमाश्चर्यरूपधृत् ॥ २१ ॥
चक्रवर्ती स भगवान् सौम्यरूपः सुदर्शनः ।

बृहस्पति का सुदर्शन का साक्षात्कार करना—फिर विचित्र रूप धारण करने वाले चक्रवर्त्ती एवंसौम्य रूप वाले उन सुदर्शन ने बृहस्पति को दर्शन दिया ॥ २१-२२ ॥

विस्मितेन बृहस्पतिना तस्य द्विभुजत्वकारणप्रश्नः

तं दृष्ट्वा दीप्तवपुषं प्रसन्नं कुङ्कुमप्रभम् ॥ २२ ॥
द्विभुजं सर्वभूतानामनुग्रहकरं परम् ।
शङ्खचक्रधरं देवं दिव्यमाल्यविभूषितम् ॥ २३ ॥
पीतकौशेयवसनं नेत्रद्वयविराजितम् ।
आधारं सर्वशक्तीनामस्त्राणां च परंतपम् ॥ २४ ॥
तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः पप्रच्छ प्रणिपत्य सः ।
किमिदं भगवँल्लोके प्रथितोऽष्टभुजो भवान् ॥ २५ ॥
मनुष्यरूपसंस्थानः प्रादुरासीः पुरो मम ।

अत्यन्त विस्मित होकर बृहस्पति द्वारा दो भुजा धारण करने की जिज्ञासा विषयक प्रश्न—केशर के समान वर्ण वाले, देदीप्यमान, सर्वभूतों पर अनुग्रह दृष्टि रखने वाले, द्विभुज, शङ्ख एवं चक्र धारण करने वाले, दिव्य माला से विभूषित, पीताम्बर धारण किये हुए दो नेत्रों से विराजमान, सभी शक्तियों के तथा अस्त्रों के आधारभूत, शत्रुओं को ताप उत्पन्न करने वाले इस प्रकार के सुदर्शन को देखकर बृहस्पति आश्चर्य में पड़ गए। तदनन्तर प्रणाम कर उन्होंने पूछा—'हे भगवन् !' आप लोक में आठ भुजा वाले रूप से प्रसिद्ध हैं किन्तु मेरे सामने मनुष्य के समान दो भुजा धारण कर किस प्रकार प्रकट हुये हैं? ॥ २२-२६ ॥

सुदर्शनिन प्रतिवचनम्

श्रूयतामित्युपामन्त्र्य प्रत्युवाच सुदर्शनः ॥ २६ ॥

भगवान् सुदर्शन का उत्तर—तब सुदर्शन ने 'श्रूयताम्' ऐसा कहकर बृहस्पति को सम्बोधित करते हुये कहा ॥ २६ ॥

अनन्तेषु सौदर्शनव्यूहेषु चतुर्णां प्राधान्यम्

व्यूहाः सहस्रशः सन्ति मम क्लृप्ता यथेच्छया ।
तेषां प्रधानतो व्यूहाश्चत्वारो मम वाक्पते ॥ २७ ॥

अनन्त सुदर्शन के रूपों में केवल चार ही रूपों का प्राधान्य कथन—हे बृहस्पते !

ऐसे तो यथेच्छा परिकल्पित मेरे सहस्रों व्यूह हैं। किन्तु उनमें से केवल चार ही व्यूह प्रधान हैं ॥ २७ ॥

तेषां परिगणनम्

द्विभुजं प्रथमं विद्धि ततोऽष्टभुजमेव माम्।
ततः षोडशहस्तं तु मां द्विषष्टिभुजं ततः ॥ २८ ॥

उनकी सङ्ख्या—प्रथम द्विभुज व्यूह, तदनन्तर आठ भुजा वाला व्यूह, तदनन्तर १६ भुजा वाला व्यूह, उसके पश्चात् ६२ भुजा वाला व्यूह है ॥ २८ ॥

व्यूहान्तराणामुपासकानुग्रहार्थत्वम्

व्यूहान्तराण्यनेकानि तान्युपासककामतः।

ये व्यूह उपासकों के अनुग्रहार्थ हैं ऐसा कथन—ऐसे तो मेरे अनेक व्यूह हैं किन्तु वे उपासकों की इच्छा पर निर्भर हैं ॥ २९ ॥

व्यूहचतुष्टयस्य स्वाभाविकत्वं नित्यत्वं सात्त्विकत्वं च

स्वाभाविकमिदं रूपं नित्यमत्यन्तसात्त्विकम् ॥ २९ ॥
अपक्षयविनाशादिरहितं परमं मम।

अन्येषामुपासकानुग्रहार्थत्वनिगमनम्

अन्यान्यनुग्रहार्थानि मच्चित्तानामिति स्थितिः ॥ ३० ॥

मात्र चार व्यूह ही स्वाभाविक, नित्य और सात्त्विक हैं इसका प्रतिपादन—मेरे ये चार व्यूह ही स्वाभाविक, नित्य और सात्त्विक रूप वाले हैं। ये व्यूह सर्वदा एक रस हैं। उनका अपक्षय और विनाश नहीं होता। अन्य व्यूह अपने भक्त उपासकों के अनुग्रहार्थ हैं ॥ २९-३० ॥

स्वस्यात्यद्भुतरूपान्तरास्तित्वप्रतिपादनम्

अन्यद्विश्वमयं रूपमदृष्टं देवदानवैः।
अमीमांस्यममर्यादमचक्षुर्गोचरं स्वतः ॥ ३१ ॥
यथा देवो हृषीकेशस्तथाहमपि वाक्पते।

इसके अतिरिक्त सुदर्शन का एक और अद्भुतरूप के अस्तित्व का प्रतिपादन—हे वाक्पते! मेरा एक और विश्वमय व्यूह है, जिसे आज तक देव दानव नहीं देख पाये हैं, वह व्यूह अमीमांस्य (विचार से परे) मर्यादारहित और इन्द्रियों के प्रत्यक्ष से परे है। जैसे भगवान् का विश्वरूप है उसी प्रकार मेरा भी है ॥ ३१ ॥

बृहस्पतिना तद्रूपदर्शनप्रार्थना

इत्युक्तवन्तं तं देवं सुदर्शनवपुर्धरम् ॥ ३२ ॥
प्रणिपत्याब्रवीदेनं वाक्पतिर्वदतां वरः।
यत्ते विश्वमयं रूपमचाक्षुषमसीमकम् ॥ ३३ ॥
योगदृष्ट्या प्रपश्यामि तन्मे दर्शय साम्प्रतम्।

बृहस्पति द्वारा उस रूप के दर्शन करने की इच्छा प्रगट करना—सुदर्शन रूप धारण करने वाले उन देव ने जब ऐसा कहा तब महा वाग्मी बृहस्पति ने प्रणाम कर उनसे कहा—हे प्रभो ! इन्द्रियों के सर्वथा परे और मर्यादा से सर्वथा बाहर जो आपका रूप है उसे मैं योगदृष्टि से देखना चाहता हूँ अतः आप उसे दिखाने की कृपा करे ॥ ३२-३४ ॥

भगवता जगच्चक्रात्मकस्वस्वरूपप्रदर्शनम्

भगवानपि विश्वात्मा स्वकीयं रूपमूर्जितम् ॥ ३४ ॥
दर्शयामास गुरवे योगारूढाय नारद ।
स विस्मितमना देवं वीक्षाञ्चक्रे पुरः स्थितम् ॥ ३५ ॥

भगवान् का जगत् का चक्रात्मक रूप धारण कर बृहस्पति को प्रदर्शित करना—तब हे नारद ! उन चक्रस्वरूपधारी विश्वात्मा भगवान् ने अत्यन्त तेजस्वी अपना विश्वरूप, योगस्वरूप में स्थित उन बृहस्पति को दिखाया । उन्होंने अपने समक्ष स्थित उस विश्वरूप को आश्चर्यचकित होकर देखा ॥ ३४-३५ ॥

तद्रूपवर्णनम्

विश्वोदराक्रान्तसुभीमदेह-
मपूर्वरूपं करणातिदूरम् ।
समुद्यदूर्जत्करशृङ्गसङ्गि-
परःसहस्राद्भुतचक्रमालम् ॥ ३६ ॥
पदावलम्बिस्फुरदण्डमाला-
विराजमानं स्थितमात्मभूम्नि ।
युगान्तकालज्वलितार्कजाल-
रुचिप्रभोत्तुङ्गकिरीटशोभम् ॥ ३७ ॥
महार्णवावर्तविघूर्णमान-
पिशङ्गनेत्रं सुरसङ्घजुष्टम् ।
विशुद्धदंष्ट्रान्तरलग्नलोकं
जगद् ग्रसन्तं भ्रुकुटीकरालम् ॥ ३८ ॥
शशाङ्कतारागणकीर्णविष्णु-
पदाभहाराङ्कितवक्षसं तम् ।
समुद्यदुज्जृम्भितदीप्तिमाल-
महास्त्रजालं धृतसर्वशस्त्रम् ॥ ३९ ॥
तेजोमयं दीप्तिकणायमान-
युगान्तकालार्कशशाङ्कवह्निम् ।
स्वदेहसम्पूर्णदिगन्तराल-
मलक्षितव्योममहीतलं च ॥ ४० ॥

विश्वरूप का वर्णन—भयङ्कर देह धारण कर जिन्होंने सारे विश्व को अपनी कुक्षि में समेट लिया है। जिनका अपूर्व रूप इन्द्रियों से परे है, जो प्रखर किरणों से युक्त उदयाचल पर उदीयमान सूर्य के समान सहस्रों से भी अधिक अद्भुत चक्रमाला धारण किये हुये हैं, पैरों के सहारे लटकने वाली ब्रह्माण्डमाला से जो विराजमान तथा स्वयं आत्मविभूति में स्थित, जिनके किरीट की शोभा प्रलयकालीन जलते हुये सूर्य समूहों के समान देदीप्यमान है, जो अपने पीले-पीले नेत्रों से समुद्र के आवर्त्त के समान घूर रहे हैं, जो देवगणों से सेवित हैं, जिनके चमकते हुये दाँतों के मध्य में स्थित संसार को दंष्ट्रा से लपेट कर ग्रस रहे हैं, जिनकी भ्रुकुटी अत्यन्त कराल है, जो चन्द्रमा एवं तारागणों से आकीर्ण हैं, जिनका तेज इतना प्रचण्ड है कि युगान्तकालीन सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि उसके एक कण के समान मालूम पड़ते हैं। उन्होंने अपने शरीर में ही सारे दिग्-दिगन्तों को समेट लिया है। जिसमें न तो आकाश का पता है और न पृथ्वी का ही—ऐसे विश्वरूप का बृहस्पति ने दर्शन किया ॥ ३६-४० ॥

अदृष्टपूर्वरूपदर्शनात् बृहस्पतेर्मोहाधिगमः

झणज्झणत्कारितनूपुरादि-
विभूषणारावविकीर्णविश्वम् ।
अदृष्टपूर्वं परमप्रमेयं
निरीक्ष्य चामूमुहदादिदेवम् ।

उस अदृष्टरूप विश्वरूप के देखते ही बृहस्पति को मूर्च्छा की प्राप्ति—नूपुरादि विभूषणों के झणझणात्मक शब्दों से विश्व को व्याप्त करने वाले, अदृष्टपूर्व, पर तथा अप्रमेय आदिदेव के उस रूप को देखते ही बृहस्पति मोह को प्राप्त हो गए ॥ ४१ ॥

लब्धसंज्ञेन तेन सुदर्शनस्तुतिः

ततः स संज्ञां प्रतिलभ्य कृच्छ्रात्
तुष्टाव देवं धिषणो महात्मा ॥ ४१ ॥

मूर्च्छा हटने पर बृहस्पति की स्तुति—तदनन्तर बुद्धि के देवता साक्षात् महात्मा बृहस्पति कष्टपूर्वक मूर्च्छा से जागने पर देवाधिदेव की स्तुति करने लगे ॥ ४१ ॥

बृहस्पति कृता सुदर्शनस्य स्तुतिः

ओं नमो नमस्ते भगवन्नजय्य
सुदर्शन ज्ञानमयस्वरूप ।
सदा स्फुटाशेषसमस्तशक्ते
धृताखिलस्थावरजङ्गमाय ॥ ४२ ॥
अवार्यवीर्याय च भूरिधाम्ने
समस्तकल्याणगुणार्णवाय ।
विशुद्धतेजोमयमूर्तये ते
नमो नमश्चक्रवपुर्धराय ॥ ४३ ॥

नमो जयायातुलविक्रमाय
समाश्रितत्राणसुदीक्षिताय ।
सहस्त्रचक्राय सहस्त्रनाम्ने
नमः सहस्त्रारवपुर्धराय ॥ ४४ ॥
जगज्जनिस्थितिहरणैकहेतवे
भवार्णवोत्तरणसुनाविकाय ते ।
मरुद्गणप्रतिभटदैत्यदानव-
प्रमाथिने निभृतसुतेजसे नमः॥ ४५ ॥
मधुरिपुमनसो यथा यथा
प्रथमत एव मनीषितं विभो ।
तव पदसरसीरुहं यतो
जगति करोति मनीषितं तथा ॥ ४६ ॥

हे ज्ञानमय स्वरूप ! हे अजय्य भगवन् सुदर्शन ! आपको नमस्कार है, आपको नमस्कार है, अशेष समस्त शक्तियों से विराजमान स्थावर जङ्गमात्मक अखिल विश्व को धारण करने वाले, अप्रतिहत पराक्रम, महातेजस्वी, अनन्तकल्याण गुणगणों के समुद्र, विशुद्ध तेजोमय स्वरूप वाले, चक्रात्मक रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है आपको नमस्कार है । विजयी, अतुलनीय पराक्रम वाले, अपने आश्रितों के त्राण की दीक्षा ग्रहण करने वाले, सहस्र चक्र, सहस्र नाम तथा सहस्रों शरीर धारण करने वाले आपको नमस्कार है । इस जगत् के जन्म, स्थिति तथा विनाश में हेतुभूत, संसार रूपी समुद्र से पार करने के लिए उत्तम नाविक, देवताओं के शत्रु, समस्त दैत्य तथा दानवों का विनाश करने वाले तेज को धारण करने वाले आपको नमस्कार है । विष्णु और सोचे हुये मनोरथ के आगे-आगे विद्यमान, हे विभो ! आपका चरण कमल सारे मनोरथों को पूर्ण कर देने वाला है ॥ ४२-४६ ॥

स्मृतिध्वस्ताशेषाश्रितजनमहापापनिचय-
प्रवाहागाधाब्धिप्लवचरणपङ्केरुहयुग ।
त्वदीयार्चिर्वारांनिधिकणकृतात्माङ्गदिनकृ-
च्छशाङ्कस्वाहेशस्तुतपरमधाम्ने नम इदम् ॥ ४७ ॥
जगत्कालसंवर्तचक्रात्मने ते
चतुर्वक्त्रमुख्यामरेड्याय नित्यम् ।
नमो नित्यगोविन्दसेवारसाप्ता-
तुलानन्दसंदोहपूर्णात्मने स्तात् ॥ ४८ ॥
सकलसुरास्त्रमुख्यसततस्मृतनैकजनि-
प्रभृतिमहापदाननिकरश्रुतिहृष्टमनः ।
सकलसुरासुरेशमणिमौलिमरीचिघटा-
घटितपदारविन्दयुगलाय नमो भवते ॥ ४९ ॥

कलामुहूर्तनाडिकाद्युपाधिकालहीन ते ।
नमः क्षयर्द्धिजन्मनाशवर्जितात्ममूर्तये ॥ ५० ॥
वन्दे वरेण्यमपि वाङ्मनसातिभूमि-
मस्पृष्टहेयगुणमाश्रितवत्सलं त्वाम् ।
अक्षीणपुण्यजनलभ्यमशेषवन्द्यं
विद्यामयं परमभौतिकदिव्यदेहम् ॥ ५१ ॥

हे प्रभो ! स्मृति ध्वस्त एवं अनेक आश्रितों का सहारा देने वाला तथा महापाप समूह प्रवाह रूपी अगाध समुद्र से पार करने के लिए नाव स्वरूप आपका दोनों चरण कमल हैं । आपके तेज रूपी समुद्र ने जिन्हें कण बना दिया है, ऐसे सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेव के द्वारा स्तुत, परमधाम आपको हमारा नमस्कार है । जगत् के संहार के लिए कालसंवर्त्तक रूप चक्रात्मा वाले तथा ब्रह्मदेव आदि मुख्य-मुख्य देवताओं से भी संस्तुत आपको नित्य नमस्कार है । गोविन्द की सेवा रूपी रस से अतुलनीय आनन्दसंदोह को प्राप्त करने वाले, अतएव पूर्णात्मा आपको हमारा नमस्कार प्राप्त हो । सम्पूर्ण देवता के और असुरों में प्रधान लोगों से सर्वदा स्मरण किये जाने वाले, विशुद्धिकारक वेद मन्त्रों को सुनकर अनेक जन्म के लिए उस पर प्रसन्न रहने वाले आप, जिनके युगल पादारविन्द सम्पूर्ण देवता, असुर एवं ईश आदि के मौलिस्थ मुकुटों में लगी मणियों के प्रभासमूह से घृष्ट हो रहे हैं, उन्हें मेरा नमस्कार हो, कला, मुहूर्त नाडिकादि उपाधि वाले काल से रहित (अनन्त आयुः परिमाण वाले) आपको नमस्कार है । क्षय, वृद्धि तथा विनाश वाली अवस्थाओं से सर्वथा वर्जित आत्ममूर्ति आपको नमस्कार है । जो वरेण्य होते हुये भी वाङ्मन से परे हैं उन्हें नमस्कार है । हेय गुणों से सर्वथा रहित एवं शरणागतवत्सल आपको नमस्कार है, अक्षीण पुण्यवानों से उपलब्ध होने वाले, अशेष वन्द्य, विद्यामय, पर, अभौतिक दिव्य देह वाले आपको नमस्कार है ॥ ४७-५१ ॥

तद्रूपोपसंहरणप्रार्थना

त्वां तत्त्वतो न विदुरीश जगत्यमुष्मिन्
मर्त्येषु नैव विबुधेषु न चापरेषु ।
वेदाः परं विदुरतोऽप्युपसंहराद्य
रूपं भयावहमदृष्टचरं प्रसीद ॥ ५२ ॥

विश्वरूप के उपसंहार के लिए बृहस्पति की प्रार्थना—हे ईश ! इस जगत् में मनुष्यों में, देवताओं में तथा अन्यों में आपके स्वरूप को तत्त्वतः कोई भी नहीं जानता, केवल वेद ही एकमात्र आपके रूप को जानते हैं । अतः भयावह एवं पूर्व में कभी न देखे हुये इस रूप का हे देव ! उपसंहार करिए तथा मुझ पर प्रसन्न होइए ॥ ५२ ॥

सुदशनिनाष्टभुजेन भूत्वा स्वस्वरूपस्यातिगुह्यत्वकथनम्

इत्युक्तस्तेन गुरुणा भगवांश्चक्ररूपधृत् ।
आविर्बभूव तस्याग्रे तदा ह्यष्टभुजः प्रभुः ॥ ५३ ॥

प्रसन्नवदनः श्रीमान् व्याजहार गुरुं तदा।
तदेतद् दर्शितं रूपमदृष्टं देवदानवैः॥ ५४॥
सत्यं मां न परो वेत्ति विना देवं जनार्दनम्।

सुदर्शन द्वारा आठ भुजाओं का रूप धारण कर अपने विश्व रूप का अत्यन्त गुह्यत्व कथन—बृहस्पति के द्वारा ऐसा कहे जाने पर चक्र सुदर्शन रूपधारी भगवान् अपना विश्वरूप त्याग कर आठ भुजा वाला रूप धारण कर उनके आगे प्रगट हो गए। तदनन्तर प्रसन्नमुख हो बृहस्पति से इस प्रकार कहा—हे बृहस्पते! मैंने देव दानवों को दिखाई न पड़ने वाले अपने इस विश्वरूप को आपको दिखा दिया। यह बात सत्य ही है कि जनार्दन विष्णु के अतिरिक्त मेरे स्वरूप को तत्त्वतः कोई भी नहीं जानता॥ ५३-५५॥

सुदर्शनस्य भगवत्क्रियाशक्तिस्वरूपत्वनिरूपणम्

गुह्यमेतत् क्रियाशक्तिरहं देवस्य शार्ङ्गिणः॥ ५५॥
अतस्तत्कार्यमखिलं मयैव क्रियते मुने।
जगज्जन्मादि सकलमित्युक्त्वान्तरधीयत॥ ५६॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनस्वरूपप्रदर्शनं
नाम चतुश्चत्त्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥
॥ आदितः श्लोकाः २७७२॥

* * *

सुदर्शन का अपने को भगवान् की क्रियाशक्ति के रूप में बतलाना—यह बात सर्वथा गोपनीय है कि मैं विष्णु की क्रियाशक्ति हूँ। इसीलिए हे मुने! उनका जगत् जन्मादि सारा कार्य मैं ही सम्पन्न करता हूँ। इतना कह कर सुदर्शन अन्तर्धान हो गए॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शन-
स्वरूपप्रदर्शन नामक चौवालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई॥ ४४॥

* * *

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कुशध्वजोपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

अध्यात्मविद्यादिविषयकः प्रश्नः

नारदः—

भगवन्निदमाख्यातं पुरस्तात् परमेश्वर ।
अध्यात्मविद्याविद्या च परविद्या स्वरूपतः ॥ १ ॥
ताभिः किं साध्यते देव ताभिः किं वा निवर्त्यते ।
त्वमेवैतद्विजानासि तन्ममाचक्ष्व विस्तरात् ॥ २ ॥

अध्यात्म के विषय में श्रीनारद का प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे परमेश्वर ! हे भगवन् ! आपने पूर्व में अध्याम विद्या, अविद्या और परविद्या ये तीन विद्यायें कहीं थीं । हे देव ! अब मुझे उनका स्वरूप बताते हुये कहिये कि उनसे क्या सिद्ध होता है? तथा क्या निवृत्त होता है? केवल आप ही इस बात को जानते हैं । अतः विस्तार पूर्वक कहिये ॥ १-२ ॥

अविद्याकार्यनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

परमं गुह्यमेतत् ते कथयामि यथा शृणु ।
अविद्यया परं रूपं जीवात्मपरमात्मनोः ॥ ३ ॥
संछाद्यते तयोस्तत्त्ववेदनं तु निवर्त्यते ।

अविद्या के कार्य का निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—यह परम गुह्य (गोपनीय) है । फिर भी कहता हूँ, हे नारद ! सुनिए । अविद्या ने जीवात्मा तथा परमात्मा के रूप को आच्छादित कर रखा है । जब जीव को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब वह अविद्या से निवृत्त हो जाता है ॥ ३-४ ॥

अध्यात्मज्ञानकार्यनिरूपणम्

अध्यात्मयोगाधिगमात् परं ज्ञानं प्रजायते ॥ ४ ॥
निवर्त्यते तथानादिः संसारो बन्धनात्मकः ।

अध्यात्म ज्ञान का कार्य निरूपण—अध्यात्म योग के ज्ञान से परब्रह्मविषयक ज्ञान होता है । जब उसकी सिद्धि होने लगती है तब यह अनादि संसार, जिसका एक नाम बन्ध है, अपने आप निवृत्त हो जाता है ॥ ४-५ ॥

परविद्याकार्यनिरूपणम्

परस्वरूपविज्ञानादपुनर्भवलक्षणा ॥ ५ ॥
साध्यते परमा मुक्तिः सदानन्दफलानघ ।
अनादिकालसिद्धानि प्राक्तनान्यमुना मुने ॥ ६ ॥
भविष्याणि च कर्माणि निरस्यन्ते सवासनम् ।

पर विद्या के कार्य का निरूपण—हे निष्पाप ! परविद्या (ब्रह्म) का स्वरूपतः ज्ञान हो जाने पर जनन, मरण और क्लेशरहित सदानन्द फल वाली श्रेष्ठ मुक्ति की प्राप्ति होती है । हे मुने ! इस विद्या के सिद्ध हो जाने पर वासनावशात् अनादिकाल से सिद्ध पूर्वजन्मार्जित तथा भविष्य में होने वाले सारे कर्मों का अपने आप निरास हो जाता है ॥ ५-७ ॥

प्रारब्धकर्मणां भोगैकनाश्यत्वम्

न विनश्यति भोगेन विना प्रारब्धकर्म यत् ॥ ७ ॥
एतत् सर्वं समासेन भवतः कथितं मया ।

प्रारब्ध कर्म के भोग से ही नाश सम्भव है—किन्तु जो प्रारब्ध कर्म हैं, उनके भोग के बिना नाश सम्भव नहीं है । हे नारद ! हमने संक्षेप में आपके प्रश्नों का उत्तर दे दिया ।

प्रारब्धकर्मविनाशककर्मविशेषसदसद्भावप्रश्नः

नारदः—

प्रारब्धकर्म भगवन् नाश्यते केन कर्मणा ॥ ८ ॥
न विनश्यति वा किंस्विदेतत् केनापि कर्मणा ।

प्रारब्ध कर्म के विनाशक कर्म का सदसद्भाव विषयक प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! अब आप यह बताइये कि प्रारब्ध कर्म किस प्रकार के कर्म से नष्ट किये जाते हैं, अथवा यह किसी भी प्रकार के कर्म से कथंचित् विनष्ट नहीं होते? ॥ ८-९ ॥

तत्प्रतिविवक्षया कुशध्वजेतिहासोदाहरणम्

अहिर्बुध्न्यः—

त्रेतायुगे पुरावृत्तमितिहासमिमं शृणु ॥ ९ ॥
आसीत् कुशध्वजो नाम जनकेषु महीपतिः ।
ब्रह्मवित् परमोदारः प्रजापालनतत्परः ॥ १० ॥

उस उत्तर के विषय में कुशध्वज का इतिहास कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! त्रेतायुग में घटित इस इतिहास को सुनिए। पूर्वकाल में जनक के कुल में कुशध्वज नाम के राजा हुए। वे ब्रह्मवेत्ता, परम उदार तथा प्रजापालन में तत्पर थे ॥९-१०॥

कुशध्वजस्य महामोहेन भृशं पीडा

तस्य भूमण्डलं सर्वं शासतः पृथिवीपतेः ।
एकदा तु महामोहः प्रादुरासाङ्गतापनः ॥ ११ ॥
कल्पान्तरं भृशं तेन पीडितोऽपि महीपतिः ।
यास्यतीति स्वयं नैनं व्यजीगणदमित्रहा ॥ १२ ॥

कुशध्वज को महामोह से उत्पन्न अत्यन्त पीड़ा—समस्त भूमण्डल का शासन करते हुये एक बार उस राजा के अङ्ग को उतप्त करने वाला महामोह उत्पन्न हुआ। कल्पान्त तक उस महामोह से अत्यन्त पीड़ित होकर भी 'यह अवश्य चला जायगा' ऐसा विचार कर राजा उसकी उपेक्षा करते रहे ॥ ११-१२ ॥

उदासीनस्यापि तस्य मुहुर्मुहुः पीडातिशयः

पुनश्च पीडितस्तेन वारं वारं विशां पतिः ।

उसकी उपेक्षा करते रहने पर भी राजा को बारम्बार अत्यन्त पीड़ा होने लगना—तब राजा उस महामोह से बारम्बार पीड़ित रहने लगे ॥ १३ ॥

नितरां पीडितस्य तस्य चिन्ताप्रकारः

अचिन्तयत् तदा चेत्थमयमाकस्मिको बली ॥ १३ ॥
मुहुरध्यात्मनिरतं बाधते मामनाथवत् ।
न शाम्यति स्वयं केन कारणेनैतदागतम् ॥ १४ ॥

अत्यन्त पीड़ा से पीड़ित राजा का विचार करना—राजा ने विचार किया कि अकस्मात् प्राप्त होने वाला यह रोग महा बलवान् है, जो अध्यात्मनिरत मुझे भी अनाथ की तरह वारम्बार पीड़ा दे रहा है। यह आया हुआ रोग स्वयं शान्त क्यों नहीं हो रहा है? ॥ १३-१४ ॥

तस्य स्वकुलगुरुयाज्ञवल्क्याभिगमनम्

इति चिन्तापरो राजा जगाम गुरुमन्दिरम् ।
ब्रह्मघोषयुतं पुण्यं हविर्धूमाधिवासितम् ॥ १५ ॥
प्रविश्यान्तः समासीनमग्न्यगारे तपोनिधिम् ।
ब्रह्मविद्भिः परिवृतं विवस्वन्तमिवापरम् ॥ १६ ॥
याज्ञवल्क्यं कुलगुरुं ददर्श विनयान्वितः ।

उन राजा का अपने कुलगुरु याज्ञवल्क्य के पास जाना—ऐसी चिन्ता करते हुये राजा अपने कुलगुरु के घर गए जहाँ निरन्तर ब्रह्मघोष हो रहा था तथा पवित्र हविर्धूम से जो आश्रम सुगन्धित था। तदनन्तर उस विनयी राजा ने आश्रम के अन्दर प्रविष्ट होकर अपने

कुलगुरु महातपस्वी याज्ञवल्क्य का दर्शन किया जो अपने अग्निहोत्र में समासीन थे, ब्रह्मवेत्ताओं से घिरे हुए थे एवं एक दूसरे सूर्य के समान भासित हो रहे थे ॥ १५-१७ ॥

कुशध्वजेन स्ववृत्तान्तनिवेदनम्

तं प्रणम्य महात्मानमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥
त्वत्त एव मया विद्या परा प्राप्ता तथापरा ।
परविद्यानलेनैव दग्धं कर्माखिलं मम ॥ १८ ॥
पूर्वापरं विना कर्म प्रारब्धमिति च श्रुतम् ।
राज्यलाभः फलं प्राप्तं प्रारब्धस्य तु कर्मणः ॥ १९ ॥
इति मे वर्तमानस्य दुःसहः स्मृतिभञ्जनः ।
प्रावर्तत महामोहो मद्गात्रपरितापनः ॥ २० ॥
केनैतदागतं कष्टं केन वा शंस शाम्यति ।

कुशध्वज का स्ववृत्तान्त निवेदन—उस राजा ने महात्मा याज्ञवल्क्य को प्रणाम कर ऐसा कहा—हे भगवन् ! मैंने आपसे ही परा एवं अपरा दोनों विद्यायें प्राप्त की हैं । पराविद्या रूपी अग्नि से मेरे सारे पूर्वजन्म के तथा अन्य जन्मों के कर्म नष्ट हो गए हैं । मात्र प्रारब्ध कर्म का विनाश नहीं हुआ है, ऐसा हमने सुना है । वर्त्तमान काल में प्राप्त हुआ राज्य लाभ मेरे प्रारब्ध कर्म का ही फल है । कर्मों के नष्ट हो जाने पर भी अत्यन्त दुःसह स्मृति का लोप करने वाला तथा सारे अङ्गों को उत्तप्त कर देने वाला यह कष्टकारक महामोह किस कारण से आया? हे भगवन् ! इसकी शान्ति का उपाय क्या है? इसे बताइये? ॥ १७-२१ ॥

याज्ञवल्क्यस्य प्रतिवचनम्

तेनैवमुक्तो भगवान् व्याजहार कुशध्वजम् ॥ २१ ॥

याज्ञवल्क्य का उत्तर—राजा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महर्षि ने कुशध्वज से कहा ॥ २१ ॥

शरीरसृष्टेः फलभोगार्थत्वम्

सुखदुःखोपभोगाय देहिनां देहकल्पनम् ।

शरीर की उत्पत्ति कर्मों के फल भोगने के लिए ही हुई है—जीव को कर्म के फल स्वरूप सुख तथा दुःख भोगने के लिए शरीर की प्राप्ति होती है ॥ २२ ॥

ब्रह्मविच्छरीरस्यापि तथात्वम्

अपि ब्रह्मविदां देहस्तथैवेत्यवधारय ॥ २२ ॥
तत् तवापि शरीरेण भोक्तव्यं कर्मणः फलम् ।
क्रियन्ते यानि कर्माणि शरीरेण तवापि तु ॥ २३ ॥
तेषां फलानि भुज्यन्ते केवलं न कदाचन ।

ब्रह्मवेत्ता को भी शरीर प्राप्त करने में यही हेतु है—हे राजन् ! ब्रह्मवेत्ता को भी शरीर इसी कारण से मिलता है । इसलिए आपको भी इस शरीर से कर्म का फल भोगना

चाहिए। जीव जो-जो कर्म करता है उसका फल उसे भोगना ही पड़ता है। केवल आपको ही ऐसा करना पड़ रहा है, यह बात नहीं ॥ २२-२४ ॥

महामोहस्य पापफलत्वम्

अतः पापफलं विद्धि प्राप्तमेतन्महीपते ॥ २४ ॥

महामोह आपके पाप के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है—अत: हे राजन्! आपको जो ऐसा हो रहा है, उसे आप अपने पाप कर्म का फल समझो ॥ २४ ॥

तत्कारणभूतपापनिरूपणप्रतिज्ञा

शृणु येनागतो मोहस्तत्त्वतः कथयाम्यहम्।
उन्मादश्च महोन्मादश्चित्ताक्षेपश्च मूर्छना ॥ २५ ॥
संज्ञान्तकारी विक्षोभः प्रलापी स्मृतिभञ्जकः।
अष्टौ दोषा महापापैर्जायन्ते प्राणिहिंसकाः ॥ २६ ॥

मोह रूपी दु:ख के प्राप्त होने में उसके कारणभूत पाप का निरूपण—जिस कारण से आपको यह महामोह प्राप्त हुआ है उसका ठीक-ठीक कारण मैं आपसे कह रहा हूँ, उसे सुनिए। उन्माद, महोन्माद, चित्ताक्षेप, मूर्च्छना, संज्ञान्तकारी, विक्षोभ, प्रलाप तथा मूर्च्छना ये आठ दोष महा पाप से उत्पन्न होते हैं जो प्राणियों की जान ले लेते हैं ॥ २५-२३ ॥

राज्ञामुन्मादादिदोषोत्पत्तिकारणनिरूपणम्

ब्रह्मघ्नादण्डनविधेरसत्ये सत्यतामतेः।
स्वाराध्यदेवताबिम्बोपेक्षणान्नृपतेर्वधात् ॥ २७ ॥
ब्रह्मदेयापहारेण ब्राह्मणातङ्कनिर्मितेः।
मर्यादाभङ्गकरणादगम्यागमनादपि ॥ २८ ॥
एतैर्नृपाणां जायन्ते दोषास्ते कारणैर्नृप।

राजा को उन्मादादि दोष उत्पन्न होने के कारण का निरूपण—ब्रह्महत्यारे को दण्ड न देना, असत्य को सत्य मान लेना, स्वाराध्य देवता की मूर्ति की उपेक्षा, राजा की हत्या, ब्रह्मदेव का अपहरण, ब्राह्मण को आतङ्क उत्पन्न करना, मर्यादा का लोप तथा अगम्यागमन इन्हीं कारणों से राजा को पाप रूप दोष उत्पन्न होता है ॥ २७-२९ ॥

युद्धादन्यत्र राजवधात् कुशध्वजस्य महामोहप्राप्तिकथनम्

अयुद्धे न्यवधीः पूर्वं महाराजं सुधार्मिकम् ॥ २९ ॥
एतद्देहोपभोग्येन पापेनानेन भूपते।
प्राप्तेयं मूर्छना पापा भवन्तं भयदायिनी ॥ ३० ॥

कुशध्वज को युद्ध के बिना ही राजा का वध करने से महामोह की प्राप्ति—पूर्वकाल में आपने युद्ध के बिना ही सुधार्मिक महाराज का वध किया है। हे राजन्! उस पाप का फल आपको इसी देह से भोगना पड़ेगा। इसी कारण यह भयदायिनी पाप मूर्च्छना आपको प्राप्त हुई है ॥ २९-३० ॥

सुदर्शनमहिम्नाष्टानामपि दोषाणां निश्चयेन नाश्यत्वम्

सौदर्शनप्रभावेण दोषाश्चाष्टविधा अमी ।
विनश्यन्ति न सन्देहस्तेन तच्च प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

सुदर्शन की महिमा से ये आठों दोष निश्चित रूप से नष्ट हो जाते हैं—सुदर्शन के प्रभाव से ये आठों प्रकार के दोष (पाप) नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं । इसलिए उसी से आपका यह पाप भी नष्ट हो जायगा ॥ ३१ ॥

सुदर्शनप्रसादसम्पादनयत्नोपदेशः

अतस्तत्साधने यत्नं कुरुष्वाङ्ग विचारयन् ।

सुदर्शन को प्रसन्न करने के उपाय का उपदेश—इसलिए हे प्रिय राजन् ! सुदर्शन को प्रसन्न करने का प्रयत्न विचारपूर्वक करिए ॥ ३२ ॥

प्रथमं मण्डपादिनिर्माणम्

प्रथमं मण्डपं तुङ्गं सर्वमङ्गलसंयुतम् ॥ ३२ ॥
बहुस्तम्भसमाकीर्णं तुङ्गतोरणमण्डितम् ।
शुक्लक्षौमवितानाढ्यं किङ्किणीजालभूषितम् ॥ ३३ ॥
बहुध्वजसमाकीर्णं पताकाभिरलङ्कृतम् ।
मुक्तादामसमाकीर्णं बहुमाल्यपरिष्कृतम् ॥ ३४ ॥
क्षौमाभिवेष्टितस्तम्भं दीपिकासमलङ्कृतम् ।
षट्त्रिंशत्पदविस्तारं चतुःपञ्चाशता पदैः ॥ ३५ ॥
आयामैः संमितं रम्यं मङ्गलाष्टकसंयुतम् ।
चन्दनागरुधूपेन वासितं विश्वतः शिवम् ॥ ३६ ॥

सर्वप्रथम मण्डपादि निर्माण—सर्वप्रथम ऊँचे मण्डप का निर्माण करना चाहिए जो सभी माङ्गलिक द्रव्यों से युक्त हो, जिसमें बहुत से खम्मे हों, ऊँचे-ऊँचे तोरणों से जो सुसज्जित हो, जिसमें शुक्ल वर्ण के वस्त्र निर्मित वितान हों, जो क्षुद्र घण्टिकाओं के समूह से भूषित हो, जो अनेक ध्वजाओं से व्याप्त हो तथा पताकाओं से अलङ्कृत हो, जिसके चारों ओर मोतियों की झालर हो तथा बहुत से पुष्पों की माला से जो परिष्कृत हो, जिसके खम्भों में वस्त्र लपेटे गए हों और दीपकों से जो अलङ्कृत हो, जिसका विस्तार ३६ हाथ तथा लम्बाई ५४ हाथ हो, जो अत्यन्त मनोहर तथा अष्टमङ्गल से युक्त हो, चन्दन, अगुरु तथा धूप के गन्ध से सुवासित हो और चारों ओर कल्याणकारक द्रव्यों से परिपूर्ण हो ॥ ३२-३६ ॥

सरस्वतीतीरे मण्डपनिर्माणविधिः

एवमेव सरस्वत्यास्तटे शुद्धे पुराद् बहिः ।
शीघ्रं कारय कल्याण मा भैषीर्मा विचारणा ॥ ३७ ॥

सरस्वती के किनारे मण्डप निर्माण का विधान—हे कल्याण ! हमें इस प्रकार का

मण्डप आप नगर के बाहर सरस्वती के तट पर शीघ्र प्राप्त कराओ; अब डरो मत। विचार की आवश्यकता नहीं है ॥ ३७ ॥

तत्र स्वागमनप्रतिज्ञा

तत्रैव चागमिष्यामि करिष्ये कर्म शान्तिकम्।

वहाँ पर अपने आने की प्रतिज्ञा—मैं वहीं आऊँगा और शान्ति कर्म करूँगा ॥३८॥

यथोपदेशं राज्ञोऽनुष्ठानम्

एवमुक्तवति प्राज्ञे गुरौ राजा विनिर्ययौ ॥ ३८ ॥
ततः स परमप्रीतः समाहूय च किङ्करान्।
यथोक्तलक्षणं तत्र मण्डपं समकारयत् ॥ ३९ ॥

महर्षि के उपदेश के अनुसार राजा की तैयारी का वर्णन—महाबुद्धिमान् गुरु याज्ञवल्क्य द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा वहाँ से चले आये। तदनन्तर सेवकों को बुलाकर महर्षि द्वारा उपदिष्ट उपर्युक्त लक्षण युक्त मण्डप का निर्माण करवाया ॥३८-३९॥

याज्ञवल्क्यस्य तन्मण्डपगमनम्

स्वप्रभावेण तद्दोषं शक्तः शमयितुं मुनिः।
तथापि राजधर्मोऽयमिति बुद्ध्या विचिन्त्य सः ॥ ४० ॥
जगाम मण्डपं तत्र शुक्लपक्षे शुभे दिने।

याज्ञवल्क्य का मण्डप में पदार्पण—यद्यपि महर्षि अपने प्रभाव से राजा के महामोह रूप दोष को नष्ट करने में समर्थ थे। फिर भी 'यह राजधर्म है' ऐसा बुद्धि से विचार कर वे शुक्लपक्ष में तथा शुभ दिन में मण्डप में गए ॥ ४०-४१ ॥

मण्डपस्य पश्चिमभागे राजासनकल्पनम्

शिल्पिनः स समाहूय राजासनमकल्पयत् ॥ ४१ ॥
अस्य पश्चिमदिग्भागे तृतीये समलङ्कृते।

मण्डप के पश्चिम भाग में राजा के बैठने के लिए आसन का निर्माण—उन्होंने कारीगरों को बुलाकर मण्डप के तृतीय पश्चिम दिशा में अलङ्कृत स्थान पर राजा के बैठने योग्य आसन का निर्माण करवाया ॥ ४१-४२ ॥

प्राग्भागद्वयमध्ये होमकुण्डकल्पनम्

प्राग्भागद्वयमध्येऽस्य होमकुण्डान्यकारयत् ॥ ४२ ॥
विमानलक्षणोपेतवेदिकास्थलमूर्धसु।
चक्राकृतीनि कुण्डानि कल्पयामास सादरम् ॥ ४३ ॥

प्रथम दो भाग के मध्य होमकुण्ड का विधान—मण्डप के पूर्व दिशा के दो भाग में होम कुण्ड का निर्माण कर विमान के लक्षणों से युक्त वेदिका स्थल के शिरोभाग में चक्र की आकृति वाले कुण्डों का निर्माण करवाया ॥ ४२-४३ ॥

मध्ये अष्टदिक्षु च कुण्डकल्पना

तादृशं कुण्डयुग्मं तु मध्ये कृत्वा ततो बहिः ।
अष्टासु दिक्षु कुण्डानि तथैव समकारयत् ॥ ४४ ॥

मध्य में तथा आठों दिशाओं में कुण्ड निर्माण—मण्डप के मध्य भाग में दो कुण्ड का निर्माण करवा कर उसके बाहर आठों दिशाओं में उसी प्रकार (चक्राकार) कुण्ड बनवाया ॥ ४४ ॥

प्रतिकुण्डमेकैकस्य, मध्ये द्वयोश्च कुम्भयोः स्थापनम्

प्रतिकुण्डं परिस्तीर्य कलमान् भारसंमितान् ।
स्थापयामास कुण्डानां पूर्वपार्श्वेषु सर्वतः ॥ ४५ ॥
कुम्भानि राजतान्यष्टौ सौवर्णे मध्यमे उभे ।
गन्धतोयेन पूर्णानि नवरत्नयुतानि च ॥ ४६ ॥

प्रत्येक कुण्ड पर एक-एक तथा मध्य के दो कुण्डों पर दो कलशों का स्थापन करना—प्रत्येक कुण्ड के पूर्वभाग में सर्वत्र भार परिमाण का चावल बिछा कर आठ चाँदी के कुम्भ तथा मध्य के दो कुण्डों पर दो सुवर्ण के कलश स्थापित करवाये जो सुगन्धित जल से तथा नव रत्न से परिपूर्ण थे ॥ ४५-४६ ॥

याज्ञवल्क्येन स्वयं कुम्भार्चनम्

ततः स्वयं मुनिः सार्धं शतानन्देन धीमता ।
क्षौमैस्तन्तुभिरावेष्ट्य गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ॥ ४७ ॥
अलङ्कृत्य च कुम्भेषु देवमावाह्य सादरम् ।
अर्चयामास मन्त्रेण धूपदीपप्रसूनकैः ॥ ४८ ॥

याज्ञवल्क्य द्वारा स्वयं कुम्भ का अर्चन—तदनन्तर मुनि ने स्वयं महाबुद्धिमान् शतानन्द के साथ उन कलशों में वस्त्रों एवं तन्तुओं को लपेट कर गन्ध, पुष्प और अक्षतों से कलश को अलङ्कृत कर उन कुम्भों पर तत्तद् देवताओं का आवाहन कर मन्त्रोच्चारण करते हुये धूप-दीप तथा पुष्पों से उनकी अर्चना की ॥ ४७-४८ ॥

यन्त्रप्रतिष्ठाविलेखनादि

महायन्त्रं प्रतिष्ठाप्य मध्ये कुम्भद्वयं गुरुः ।
देवं विना महायन्त्रं सर्वमन्त्रसमन्वितम् ॥ ४९ ॥
पटे विलिख्य पूर्वोक्तं सर्वदिव्यास्त्रसंयुतम् ।
राजासने विकीर्यैतत् ततस्तत् सोत्तरच्छदम् ॥ ५० ॥
आरोपयामास तदा राजानममितौजसम् ।
स यन्त्रपटसंयुक्तं वितानं तस्य चाकरोत् ॥ ५१ ॥
निर्माय च सुवर्णेन मणिजालपरिष्कृतम् ।
यथोक्तलक्षणं यन्त्रं दर्पणे च न्यवेशयत् ॥ ५२ ॥

तथैव गोरोचनया भूर्जपत्रे सुसंस्कृते ।
सुवर्णसूच्या संलिख्य यन्त्रं दिव्यास्त्रवर्जितम् ॥ ५३ ॥
शिरस्यधारयद्राज्ञो यन्त्रमेतत् सुमन्त्रितम् ।
सौदर्शनेन तिलकं भस्मना चाप्यकारयत् ॥ ५४ ॥
ततश्चाष्टौ समाहूय ऋत्विजो मन्त्रनिष्ठितान् ।
संयतान् वैष्णवान् विप्रान् दिशाकुण्डेष्वयोजयत् ॥ ५५ ॥
ततो यवनिकां कृत्वा मण्डपस्य समन्ततः ।
अलङ्कृतेषु कुण्डेषु सौवर्णैश्च परिच्छदैः ॥ ५६ ॥
विधाय विहितं पूर्वमृत्विग्भिः सहितो गुरुः ।
शतानन्देन सहितो जुहाव ज्वलितेषु सः ॥ ५७ ॥

यन्त्र प्रतिष्ठा विलेखनादि कथन—गुरु याज्ञवल्क्य ने दोनों मध्य के कुम्भ पर सुदर्शन के बिना सर्वमन्त्र से युक्त महायन्त्र की स्थापना की । फिर पूर्वोक्त प्रकार का सर्वदिव्यास्त्र समन्वित महायन्त्र पट पर लिख कर राजासन पर उसे फैला कर बिछा दिया । फिर उस पर महातेजस्वी राजा को बैठाया । इसी प्रकार पट पर यन्त्र बनाकर राजा के शिर पर बितान (=चँदोवा) के समान लगवा दिया । तदनन्तर सुवर्ण निर्मित, मणिजालपरिष्कृत यथोक्तलक्षण यन्त्र बनाकर उसे शीशे पर स्थापित किया । फिर भोजपत्र पर गोरोचन से सुर्वण की सूई द्वारा वही यन्त्र जो दिव्यास्त्र से रहित था उसे मन्त्राभिषिक्त कर राजा के शिर पर स्थापित किया और सुदर्शन यन्त्र के भस्म से राजा को तिलक करवाया । तदनन्तर मन्त्र वेत्ता आठ ब्राह्मणों को जो सदाचार युक्त तथा शुद्ध वैष्णव थे, आठों दिशाओं के आठ कुण्डों पर उन्हें नियुक्त किया । मण्डप के चारों ओर परदा लगवा कर सभी अलङ्कृत कलशों के ऊपर सौवर्ण का परिच्छद बनवा कर ऋत्विजों तथा शतानन्द के साथ याज्ञवल्क्य ने जलती हुई अग्नि में हवन किया ॥ ४९-५७ ॥

नृत्तवादित्रसंयुक्तं ब्रह्मघोषसमायुतम् ।
पुण्याहं पूर्वमकरोद्धोमकर्म समाहितः ॥ ५८ ॥
प्रधानकर्मणो युक्तौ शतानन्दो गुरुस्तथा ।
दिशाहोमेषु संयुक्ता ऋत्विजः सर्व एव ते ॥ ५९ ॥
आज्यैर्विशुद्धैर्नियुतं होमान् सङ्कल्प्य सादरम् ।
अकरोदयुतं नित्यमेवं दशदिनं कृतम् ॥ ६० ॥
गुरुणानुदिनं स्नातो मन्त्रितैः कुम्भवारिभिः ।
मुक्तग्रहो विशुद्धात्मा विज्वरः प्रीतमानसः ॥ ६१ ॥

सर्वप्रथम गाने बजाने एवं ब्रह्मघोष के साथ पुण्याहवाचन किया । तदनन्तर याज्ञवल्क्य तथा शतानन्द ने प्रधान कर्म वाले होम का तथा दिशाओं के होम के लिए आठों ऋत्विजों को संयुक्त कर विशुद्ध आज्य से नियुत होम और एक लक्ष होम का सङ्कल्प किया । फिर प्रतिदिन अयुत (दश हजार) सङ्ख्या में होम करने लगे । इस प्रकार

दश दिन में नियुत सङ्ख्याक होम की पूर्त्ति हो गई । गुरु के द्वारा प्रतिदिन मन्त्रों से अभिमन्त्रित कुम्भजल से स्नान करने के पश्चात् (दशवें दिन) राजा ग्रह मुक्त हो गए । ज्वररहित पाप से विशुद्ध तथा परम प्रसन्न हो गए ॥ ५८-६१ ॥

पूर्णे दशदिने राजा रत्नैर्बहुसुवर्णकैः ।
आराधयामास गुरुं मण्डपं सपरिच्छदम् ॥ ६२ ॥
निवेद्य गुरवे सर्वानृत्विजः समतर्पयत् ।
धनैश्च बहुभिर्धान्यैः प्रतिष्ठाभिः समाहितः ॥ ६३ ॥
प्रशशास महीमेनां दिवि देवेन्द्रवत् सुधीः ।
अन्येषामपि भूतानामयमेव विधिः स्मृतः ॥ ६४ ॥
पञ्चाशन्नियुतैर्होमैर्द्वापरे स विधीयते ।
कलौ च कोटिहोमेन विधिरेष महीक्षिताम् ।
प्रारब्धमेवं भोक्तव्यं कर्म ब्रह्मविदामपि ॥ ६५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां कुशध्वजोपाख्यानवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २८३७ ॥

*

दश दिन पूर्ण हो जाने पर बहुत से रत्न तथा बहुत से सुवर्णों द्वारा गुरु की पूजा की । फिर सारी सामग्री से युक्त मण्डप भी गुरु को प्रदान कर दिया । तदनन्तर प्रतिष्ठा के साथ बहुत धन एवं बहुत सा धान्य देकर उन्होंने ऋत्विजों को सन्तुष्ट किया । वे स्वर्ग में इन्द्र के समान इस पृथ्वी का शासन करने लगे । हे नारद ! अन्य प्राणियों के लिए भी शान्ति का यही विधान है । राजाओं के लिए द्वापर में पचास नियुत होम का विधान है तथा कलि में करोड़ सङ्ख्याक होम का विधान है । इस प्रकार ब्रह्मवेत्ताओं को भी प्रारब्ध कर्म भोगना पड़ता है ॥ ६२-६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के कुशध्वज उपाख्यान नामक पैंतालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४५ ॥

*

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

सुदर्शनहोमाङ्गद्रव्यपरिमाणादिनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

राज्ञो होममण्डपानागमने कर्तव्यक्रमः

नारदः—

दैवाद्वा मानुषाद्वापि भूतादिभिरथापि वा ।
दर्पात् प्रतिबलाद्वान्यैरन्तरायैर्महीपतिः ॥ १ ॥
यदि न प्राप्नुयादेव होममण्डपमादितः ।
ततः कथं महीभर्तुर्निवर्त्यन्ते महाग्रहाः ॥ २ ॥

राजा के होम मण्डप में न पहुँच सकने पर कैसे कार्य सम्पादन हो—श्रीनारद ने कहा—दैवी, मानुषी एवं भूतादि से विवश होने पर, दर्प से, शत्रु के भय से अथवा अन्य प्रकार के विघ्न बाधाओं के आ पड़ने पर यदि राजा होम-मण्डप में प्रथम ही न उपस्थित हो सके तो राजाओं के ग्रह की शान्ति किस प्रकार करनी चाहिए? ॥ १-२ ॥

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु राजा न चेत् कुर्यात् पुरोधाः कुरुतात् कृती ।
स एव राज्ञः सर्वस्वमदृष्टार्थोपपादने ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—यदि राजा अपनी ग्रह-शान्ति न कर सके तो उसके स्थान पर विद्वान् पुरोहितं नियुक्त होकर सारा कार्य सम्पादन करे, क्योंकि वही अदृष्ट की शान्ति में राजा का सर्वस्व मान एवं सर्वाधिकारी है ॥ ३ ॥

पुरोहितलक्षणम्

धार्मिकः श्रुतिसम्पन्नः सुशीलः सत्यवाक् शुचिः ।
अभिजातोऽनहङ्कारस्तितिक्षुः. स्मृतिमान् वशी ॥ ४ ॥

देशकालविभागज्ञः शास्त्रदृष्टिरतन्द्रितः ।
अप्रधृष्योऽप्रमादी च वदान्यो नयकोविदः ॥ ५ ॥
उपायोपेयविन्मन्त्री यायजूको ह्यलोलुपः ।
दैववित् प्रियवादी च वैदिकः सत्त्ववान् प्रभुः ॥ ६ ॥
विष्णुभक्तस्तपस्वी च कार्यवित् कर्मठोऽनघः ।
हिताहिताप्तिहानेच्छुर्नृपाणं सर्वसम्मतः ॥ ७ ॥

पुरोहित का लक्षण—धार्मिक, वेदवेत्ता, सुशील, सत्यवादी, पवित्र, उत्तम कुल में उत्पन्न, कुलीन, अहङ्कार से रहित, तितिक्षु, मेधावी, जितेन्द्रिय, देश काल के विभाग को जानने वाला, शास्त्रवेत्ता, आलस्यरहित, निर्भय, प्रमाद न करने वाला, दाता, नीतिज्ञ, उपाय तथा अपेय का वेत्ता, मन्त्र जानने वाला, यज्ञ कार्य में निपुण, निर्लोभ, दैववेत्ता, प्रियवादी, वैदिक, सत्त्वगुणनिष्ठ, समर्थ, विष्णुभक्त, तपस्वी, कार्यवेत्ता, कर्मकुशल, निष्पाप, हितकारी तथा अहित को दूर करने वाला इस प्रकार का राज पुरोहित होना चाहिए ॥ ४-७ ॥

पुरोधस एव राज्ञः सर्वकार्यकर्तृत्वम्

ईदृशो दुर्लभो राज्ञां गुरुकल्पः पुरोहितः ।
ईदृशो हि क्षमो राज्ञामघौघविनिवारणे ॥ ८ ॥
अतः स एव राज्ञां हि रक्षाविधिमथार्हति ।
एवंविधो गुरुर्यस्य स सम्राड् नृपतिर्भवेत् ॥ ९ ॥
दीर्घायुर्निःसपत्नः स्यादरोगः परवीरहा ।
अवग्रहाद्या जायन्ते पीडास्तद्विषये न हि ॥ १० ॥

इस प्रकार का पुरोहित ही राजा के सारे कर्मों के सम्पादन के योग्य है—गुरु के समान हितकारी इस प्रकार का पुरोहित राजाओं के लिए दुर्लभ है, क्योंकि ऐसा पुरोहित ही राजा के सारे पापसमूह को नष्ट करने में समर्थ है । इसलिए वही राजा के रक्षा के विधान का अधिकारी है । जिस राजा का उपर्युक्त लक्षण युक्त पुरोहित हो, वह राजा सम्राट् होने योग्य है । वह राजा दीर्घायु, शत्रुरहित, स्वस्थ, शत्रुहन्ता होता है, उसके राज्य में अवग्रहादि (= अनावृष्टि) पीड़ा नहीं होती ॥ ८-१० ॥

तादृशपुरोहिताभावे राज्ञोऽनिष्टकथनम्

तं विनान्यो भवेद्राज्ञो गुरुर्वाथ पुरोहितः ।
विपरीतं भवेत् तस्य महीभर्तुर्न संशयः ॥ ११ ॥

उस प्रकार के पुरोहित के अभाव में राजा को अनिष्ट की सम्भावना—यदि उपर्युक्त लक्षणरहित राजा का गुरु अथवा पुरोहित न हो तो राजा को विपरीत फल की सम्भावना होती है इसमें संशय नहीं ।

कुम्भादीनां परिमाणादिप्रश्नः

नारदः—

परिमाणं च कुम्भानां स्रुक्स्रुवाणां च लक्षणम् ।
ऋत्विजः कीदृशो ह्यस्य प्रकारश्चाखिलं वद ॥ १२ ॥

यज्ञ में कुम्भादि के परिमाण के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् ! राजा को अपने यज्ञ में कितने परिमाण (तौल) का कलश रखना चाहिए । स्रुक् एवं स्रुवा का भी लक्षण कहिये और कितने ऋत्विज होने चाहिए? इन समस्त प्रकारों को कहिये?

उत्तमपरिमाणम्

अहिर्बुध्न्यः—

शुद्धैर्गन्धोदकैर्भारपरिमाणैः सुपूरितान् ।
सौवर्णराजतान् कुम्भान् कारयेदिदमुत्तमम् ॥ १३ ॥

उत्तम कलश के परिमाण का निरूपण—शुद्ध गन्धोदक से परिपूर्ण कलश भारी परिमाण का सोने अथवा चाँदी का बना हुआ होना चाहिए । यह उत्तम कलश का लक्षण है ॥ १३ ॥

मध्यमपरिमाणम्

अर्धभारभृतान् कुम्भान् मध्यमोऽयं विधिः स्मृतः ।

मध्यम कलश का परिमाण—अर्धभार के परिमाण वाला कलश मध्यम कहा गया है ॥ १४ ॥

अधमपरिमाणम्

तदर्धेनाधमे पक्षे पूरयेदेष निर्णयः ॥ १४ ॥

निकृष्ट कलश का परिमाण—निकृष्ट पक्ष में उस आधे को भी आधा भार वाला कलश कहा गया है ॥ १४ ॥

यथाविधि स्रुगादिनिर्माणम्

यथाविधि विधेयौ तु स्रुक्स्रुवौ मुनिसत्तम ।

स्रुगादि का निर्माण यथाविधि करना चाहिए—हे मुनिसत्तम ! स्रुक् तथा स्रुवा जैसे शास्त्रों में कहा गया है उसी प्रकार से निर्माण करावे ॥ १५ ॥

ऋत्विक्सङ्ख्या

ऋत्विजः सात्त्विकानष्टौ वृणुयाद्वैष्णावांस्ततः ॥ १५ ॥

ऋत्विजों की सङ्ख्या—तदनन्तर सात्त्विक स्वभाव वाले विष्णु भक्त आठ ऋत्विजों का वरण करना चाहिए ॥ १५ ॥

अङ्गमन्त्रादिविधिः

अङ्गमन्त्रैश्च गायत्र्या वह्निप्राकारकेण च ।
प्रधानकुण्डयोश्चापि गुरुकल्पौ समाहितौ ॥ १६ ॥
वृणुयान्मूलमन्त्रेण सर्वे रक्षामनौ रताः ।
शमीसमिद्भिर्दूर्वाभिस्तिलैराम्रदलैस्तथा ॥ १७ ॥
चरुणा पायसापूपैः पालाशैर्जुहुयात् क्रमात् ।
शुद्धेन सर्पिषा मध्यकुण्डयोर्हावयेद् गुरुः ॥ १८ ॥
अथवा सर्वकुण्डेषु शुद्धेनाज्येन हावयेत् ।
गुरुणैवाभिनिर्वर्त्ये प्रतीकारविधाविह ॥ १९ ॥
शयनासनयानादौ राज्ञः स्वैरविधावपि ।
पूर्वोक्तेन विधानेन वितानादिकमाचरेत् ॥ २० ॥

अङ्गमन्त्रादि विधि—अङ्गमन्त्र से, गायत्री से अथवा अग्नि प्राकारक मन्त्र से प्रधान कुण्ड पर विद्वान् एवं समाहित दो गुरुकल्पों का वरण करे । अन्य सबका मूल मन्त्र से वरण करे । वे सभी रक्षा के मन्त्रों में लगे रहने वाले हों, क्रमशः शमी की लकड़ी से, फिर दूर्वा से, फिर तिल से, तदनन्तर आम के पत्तों से, चरु से, फिर पायस से, तदनन्तर अपूप एवं पलाश का हवन करना चाहिए । मध्य कुण्ड पर गुरु शुद्ध घी से स्वयं होम करे अथवा सभी कुण्डों पर मात्र शुद्ध घृत का ही होम करना चाहिए । ग्रहों के प्रतीकार में, यदि राजा शयन, आसन एवं सवारी आदि कार्यों में संलग्न हो तो गुरु को ही सारा नियम सम्पादन करना चाहिए । पूर्वोक्त विधान से वितान (चँदोवा) आदि का निर्माण करना चाहिए ॥ १६-२० ॥

होमान्ते राज्ञोऽभिषेकः

होमावसानसमये प्रयोगेऽप्यत्र तद्गुरुः ।
तत्र राजानमाहूय पूर्ववन्मन्त्रितासने ॥ २१ ॥
स्थापयित्वाभिषेकादिसंस्कारं गुरुराचरेत् ।

होमान्त में राजा का अभिषेक—होम हो जाने के बाद गुरु स्वयं इस अनुष्ठान में राजा को बुलाकर पूर्ववत् मन्त्राभिमन्त्रित आसन पर बिठावें । फिर उसका अभिषेकादि संस्कार करे ॥ २१-२२ ॥

गुर्वादिप्रीणनम्

ततः स्वस्थमनाः सद्यो विमुक्तग्रहबन्धनः ॥ २२ ॥
यथार्हं गुरवे दद्यात् स्वचिह्नानि प्रणम्य च ।
भूषणानि महार्हाणि मुक्तामणिमयानि च ॥ २३ ॥
मणिपीठसुवर्णानि रत्नानि विविधानि च ।
भुवश्च भूयसीर्दत्वा ऋत्विजस्तर्पयेत् ततः ॥ २४ ॥

एकैकमृत्विजः सर्वे शतेनार्च्याः सुवर्णकैः ।
प्रत्येकं दशभिर्गोभिर्वासोभिर्विविधैरपि ॥ २५ ॥

गुर्वादि को प्रसन्न करने की विधि—तब ग्रह बन्धन से विमुक्त, स्वस्थता को प्राप्त हुआ राजा प्रणाम कर अपनी योग्यता के अनुसार गुरु को अपना विशेष चिह्न देवे । मोती और मणियों से निर्मित बहुमूल्य आभूषण, मणिजटित आसन, सुवर्ण तथा विविध रत्नों को भी देवे और पर्याप्त भूमि देवे । तदनन्तर ऋत्विजों को सन्तृप्त करे । एक-एक ऋत्विज को सौ-सौ सुवर्ण से पूजित करे । प्रत्येक को दश-दश गाय तथा विविध प्रकार के वस्त्र भी प्रदान करे ॥ २२-२५ ॥

प्रधानहोमकर्त्रे विशेषतो दक्षिणादानम्

प्रधानहोमकर्त्रे तु देशिकाय विशेषतः ।
दद्याद् बहु धनं पूर्णमेकमश्वं सवाहनम् ॥ २६ ॥
अलङ्कारेण सहितं मण्डपं सपरिच्छदम् ।

प्रधान होम कर्त्ता को विशेष रूप से दक्षिणा देने का विधान—प्रधान होम कर्त्ता को एवं आचार्य को विशेष दक्षिणा देकर उनका सत्कार करे । उन्हें बहुत धन देवे । एक अश्व देवे, वाहन देवे एवं अलङ्कार के सहित सारी सामग्री युक्त मण्डप भी आचार्य को देना चाहिए ॥ २६-२७ ॥

ततो ब्राह्मणतर्पणम्

ब्राह्मणानां ततस्तृप्तिं कुर्यात् प्रीतमना नृपः ॥ २७ ॥
राज्ञा स्वेनाभिनिर्वृत्ते कर्मण्यस्मिन् यथोदिते ।
प्रयोगे देशिकायैव दद्यान्मन्त्रविदे वसु ॥ २८ ॥
पुरोधसा कृतं सर्वमेष धर्मः सनातनः ।
राजोदाहरणे तावत् सविशेषमुदीरितम् ॥ २९ ॥
अन्येषामपि सर्वेषामेष एव विधिः स्मृतः ।
पूर्णाहुतिं ततः कुर्याद्वैष्णव्यर्चा समाहितः ।
राज्ञोऽभ्युदयमाकाङ्क्षन् देशिको मन्त्रवित्तमः ॥ ३० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनहोमाङ्गद्रव्यपरिमाणादिनिरूपणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः २८६७ ॥

* * *

तदनन्तर ब्राह्मणों की सन्तुष्टि का विधान—तदनन्तर राजा ब्राह्मणों को प्रसन्न मन से सन्तुष्ट करे । उक्त कर्म यदि राजा स्वयं अनुष्ठित करे तो इस प्रयोग (अनुष्ठान) में वह

मन्त्रवेत्ता आचार्य को ही धन देवे। यदि पुरोहित ऐसा करे तो उसका तो यह सनातन धर्म ही है। किन्तु यदि राजा करे तो उसमें विशेष-विशेष बात भी कह दी गई है (द्र०श्लो० २८)। अन्य सभी लोगों के लिए इसी प्रकार की विधि होती है। मन्त्रवेत्ता आचार्य राजा के अभ्युदय की इच्छा रखते हुये पूर्णाहुति करे। तदनन्तर सावधानी से विष्णु की अर्चा करे ॥ २७-३० ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शन होमाङ्ग द्रव्य एवं उनके परिमाण के निरूपण नामक छियालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४६ ॥

*

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्याय:

महाशान्तिविधानम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के तेजोमय रूप का ध्यान करते हैं ।

ऐहिकामुष्मिकसर्वफलसाधकैकोपायप्रश्नः

नारदः—

भगवन् पञ्चमन्त्राङ्ग पशुपाशहर प्रभो ।
स्वतः साक्षात्कृताशेषविशेष व्योममन्दिर ॥ १ ॥
ऐहिकामुष्मिकं शश्वन्मन्त्रेणानेन लभ्यते ।
उभयेऽपि तथा दोषा नाश्यन्ते नात्र संशयः ॥ २ ॥
इत्युक्तं तेन पृच्छामि येनैकेनैव कर्मणा ।
उभयी सिद्धिरुभयानिष्टनाशो भवेत् तथा ॥ ३ ॥
ईदृशं कर्म चेदस्ति तन्मे कथय शङ्कर ।
ईदृग्रहस्यं त्वत्तोऽन्यो न कश्चिद् वक्तुमर्हति ॥ ४ ॥

ऐहिक आमुष्मिक सब प्रकार के फलों की प्राप्ति के उपाय के विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे पञ्चमन्त्राङ्ग ! हे पशुपाशविनाशक ! हे प्रभो ! हे स्वत:साक्षात्कृताशेषविशेष ! हे व्योमनिलय ! आप ने यह कहा है कि इस मन्त्र से ऐहिकामुष्मिक सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति निरन्तर हो जाती है तथा ऐहिकामुष्मिक पाप भी इसी मन्त्र से नष्ट हो जाते हैं । अब हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि वह एक मात्र कौन सा ऐसा कर्म है जिससे उभय प्रकार के फलों की सिद्धि तथा उभय प्रकार के पापों का नाश हो जाता है । हे शङ्कर ! यदि ऐसा कोई कर्म है तो मुझे बताइये । इस प्रकार के रहस्य को आप के सिवाय कोई दूसरा बताने में समर्थ नहीं है ॥ १-४ ॥

तदुत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

तदेतत् कथयिष्यामि सर्वशान्तिकरं परम् ।

उस प्रश्न के समाधान का आरम्भ—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! सब प्रकार के कर्मों की शान्ति का उपाय मैं कहता हूँ ॥ ५ ॥

वक्ष्यमाणे कर्मविशेषे राज्ञामधिकारः

महाराजैर्महाभागैः प्रयोज्यं व्यस्तजातिभिः ॥ ५ ॥

आगे कहे जाने वाले कर्मों में मात्र राजा का ही अधिकार है—इस कर्म में महाभाग्यशाली तथा साधारण की अपेक्षा विशेष कुल में उत्पन्न मात्र महाराजाओं का ही अधिकार है ॥ ५ ॥

तस्य निखिलदुःखनिवर्तनपूर्वकमीप्सितफलसाधनत्वम्

आध्यात्मिकादिदुःखानां त्रयाणामपि नाशनम् ।
आधीनां चाप्यशेषाणां नाशनं शुभलक्षणम् ॥ ६ ॥
सर्वारिनाशनं शान्तं महाविजयकारणम् ।
रक्षोहणं पुष्टिकरं सर्ववश्यकरं मुने ॥ ७ ॥
परमायुःप्रदं पुण्यं पूर्वैर्नृपतिभिः कृतम् ।

वक्ष्यमाण कर्म निखिल दुःखों को दूर कर सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है—वक्ष्यमाण कर्म आध्यात्मिकादि तीनों प्रकारों के दुःखों का विनाशक है। सभी मानसिक व्याधियों को नष्ट करता है, शुभ लक्षण वाला है । यह सम्पूर्ण शत्रुओं का विनाश करता है, शान्ति देता है, महान् विजय में हेतु है और राक्षसों का विनाश कर साधक की रक्षा करने वाला है, पुष्टि प्रदान करता है तथा हे मुने ! सब को वश में करने वाला है । आयुष्य की अभिवृद्धि करता है, पुण्यकारक है और पूर्व में होने वाले राजाओं से अनुष्ठित है ॥ ६-८ ॥

अम्बरीषप्रभृतीनामेतदनुष्ठानात् यथोक्तफललाभः

अम्बरीषः शुकोऽलर्को मान्धाता च पुरूरवाः ॥ ८ ॥
राजोपरिचरो धुन्धुः शिबिश्च श्रुतकीर्तनः ।
कृत्वैतच्चक्रवर्तित्वं पुरा प्रापुरमी नृपाः ॥ ९ ॥
निरामया निःसपत्ना विस्तीर्णामलकीर्तयः ।

अम्बरीषादि अनेक राजाओं द्वारा इसका अनुष्ठान कर अपना मनोरथ पूर्ण किए जाने का प्रतिपादन—अम्बरीष, शुक, अलर्क, मान्धाता, पुरुरवा, राजा उपरिचर, धुन्धु, शिवि और श्रुतकीर्त्तन आदि राजाओं ने इसके अनुष्ठान से चक्रवर्त्तित्व पद प्राप्त किया है । इसके प्रभाव से सभी निरोग, शत्रुरहित तथा अपने यश का विस्तार करने वाले हुये ॥ ८-१० ॥

तत्र राज्ञामधिकारनिगमनम्

अतो मानुषमानन्दं काङ्क्षन्तो भुवि भूभुजः ॥ १० ॥

कुर्युरेतन्महाशान्तिलक्षणं कर्म सादरम् ।

उस कर्म में मात्र राजा का ही अधिकार है ऐसा कथन—इसलिए मनुष्योचित सारे आनन्दों की आकाङ्क्षा रखने वाले सभी राजाओं को महाशान्तिकारक यह कर्म श्रद्धापूर्वक करना चाहिए ॥ १०-११ ॥

देशविशेषविधिः

पुराद् बहिर्महानद्यास्तटे देवालयेऽथवा ॥ ११ ॥
असम्बाधे शिवे देशे विविक्ते सजलाशये ।
पूर्वोक्तलक्षणयुतान्मण्डपादधिकं मुने ॥ १२ ॥
कुर्यादायामविस्तारौ तथा राजासनान्वितम् ।
तत्तत्समन्ततः कुर्यादेवंलक्षणमुत्तमम् ॥ १३ ॥

वक्ष्यमाण कर्म के लिए देश विशेष का कथन—नगर से बाहर जहाँ नदी का तट हो, अथवा देवालय हो, अथवा उपद्रवरहित कल्याणकारी स्थान हो, अथवा एकान्त स्थित जलाशय हो ऐसे स्थान में पूर्वोक्तलक्षण युक्त मण्डप (द्र० ४५.३२-३६) से अधिक आयाम विस्तार (चौंड़ाई-लम्बाई) वाले राजासन से युक्त मण्डप का निर्माण करे । उसके चारों ओर वक्ष्यमाण उत्तम लक्षणयुक्त ऐसी रचना करे ॥ ११-१३ ॥

मण्डपनिर्माणक्रमः

बहुस्तम्भसमाकीर्णं मणिकाञ्चनमण्डितम् ।
तुङ्गतोरणसंयुक्तं दीपिकाशतशोभितम् ॥ १४ ॥
किङ्किणीजालसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतम् ।
सवितानं ससोपानं सर्वालङ्कारसंयुतम् ॥ १५ ॥
चन्दनागुरुकर्पूरधूपमालाधिवासितम् ।
तुङ्गसालसमायुक्तं होमशालाभिवेष्टितम् ॥ १६ ॥

उस मण्डप में अनेक खम्भे लगे हों, वह मणियों एवं काञ्चन से जगमगा रहा हो, ऊँचे-ऊँचे तोरण उसमें लगे हों तथा अनेक दीपों से सुशोभित हो, अनेक क्षुद्रघण्टिकायें जिसमें लगी हों, जो पताकाओं से अलङ्कृत हो, जिसमें वितान (=चँदोवा) हो और सीढ़ियाँ हों, जहाँ सम्पूर्ण प्रकार का अलङ्कार हो, वह मण्डप चन्दन, अगुरु, कपूर तथा धूपमाला से सुवासित हो, वह ऊँचे-ऊँचे साल वृक्षों से युक्त हो और होमशाला से अभिवेष्टित हो ॥ १४-१६ ॥

कुण्डकल्पनाक्रमः

एवं मनोज्ञं कृत्वैतत् तत्र कुण्डानि कल्पयेत् ।
प्राग्भागे मण्डपस्यास्य चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥ १७ ॥
चतुर्व्यूहाभियोगार्थं चतुरश्राणि कारयेत् ।
प्राच्याद्यान्यथ कुण्डानि केशवादीनथो यजेत् ॥ १८ ॥

चतुर्णां केशवादीनां विकोणेषु प्रकल्पयेत्।
कुण्डानि शेषमूर्तीनां तच्छिद्रेषु यथाक्रमम्॥ १९ ॥
त्र्यश्रं षडश्रमर्धेन्दुं योनिं पद्माकृतिं क्रमात्।
वृत्तं पद्माभमष्टाश्रं वज्राकृति धनुःप्रभम्॥ २० ॥
शूलाभं शूर्पकल्पं च कुण्डान्येतानि कारयेत्।
मध्ये देवं प्रतिष्ठाप्य यन्त्ररूपधरं प्रभुम्॥ २१ ॥
विमानलक्षणोपेतं कुण्डं कुर्यात् तदग्रतः।

कुण्ड कल्पना का क्रम—इस प्रकार का मनोज्ञ मण्डप निर्माण कराकर उसमें कुण्ड निर्माण करावे। मण्डप के पूर्वभाग में चारों ओर चतुर्व्यूह की पूजा के लिए चतुरश्र कुण्ड बनवावे। उन पूर्वादिभाग स्थित कुण्डों पर केशवादि की अर्चना करे। उन चारों केशवादि के विकोण में कुण्ड निर्माण करावे तथा शेषमूर्तियों के लिए उनके अवकाश स्थान में यथाक्रम कुण्ड इस प्रकार बनवावे कि त्र्यश्र, षडश्र, अर्धचन्द्राकार, योनिपद्म, वृत्तपद्म, अष्टाश्र वज्राकृति, धनुषाकार, त्रिशूलाकार तथा शूर्पाकार इस प्रकार के कुण्डों का निर्माण करावे। उनके मध्य में यन्त्ररूपधारी विष्णु को स्थापित कर आगे एक कुण्ड और निर्माण करावे॥ १७-२२ ॥

अस्त्रकुण्डकल्पना

समन्ताद्धोमशालायामस्त्रकुण्डान्यनुक्रमात् ॥ २२ ॥
शतं तथाधिकं कुर्याच्चत्वारिंशदतन्द्रितः।
यथार्हमस्त्रलिङ्गानि मण्डितान्यथ कारयेत्॥ २३ ॥

अस्त्रकुण्ड की कल्पना—उस होमशाला के चारों ओर क्रमशः एक सौ चालीस कुण्ड सावधानी से निर्माण करावे तथा उन कुण्डों को अस्त्र के चिह्नों से सुसज्जित करावे॥ २२-२३ ॥

ऋत्विग्वरणम्

अन्तर्मण्डपकुण्डेषु ऋत्विजः षोडश क्रमात्।
ऋग्भिः पुरुषसूक्ताभिर्वृणुयाद्वैष्णवान् सतः॥ २४ ॥

ऋत्विग्वरण—मण्डप कुण्ड के भीतर वैष्णव एवं सदाचार सम्पन्न सोलह ऋत्विजों को पुरुष सूक्त की ऋचाओं से वरण करे॥ २४ ॥

अस्त्रकुण्डेषु ऋत्विगन्तरवरणम्

ततः स्वनामभिश्चान्ते वृणुयाद्वेदपारगान्।
बाह्यास्त्रकुण्डशालायां ब्रह्मास्त्रप्रमुखेष्वपि॥ २५ ॥
ऋत्विजो वृणुयात् सर्वान् कुशलान् शान्तिकर्मणि।
ब्रह्मजज्ञानमित्यादिऋग्भिः पञ्चाशतं क्रमात्॥ २६ ॥
स्वनामभिश्च विदुषो ब्रह्मास्त्रादिकृतादिकान्।

त्रिशतं वृणुयाद् ब्रह्मसूक्तैः सद्भिरनुक्रमात् ॥ २७ ॥
तत्रैवाथ भवा मित्र इति पञ्चभिरन्वितः ।
परो मात्रादिभिर्ऋग्भिस्त्रयोदशभिरेव च ॥ २८ ॥
विष्णुसूक्तगताभिश्च अस्य वामेति पञ्चभिः ।
अतो देवेति षड्भिश्च दशभिश्चक्षुरित्यपि ॥ २९ ॥
षड्भिः प्रति व एनेति वृणुयात् स्वस्वनामभिः ।
सौवर्णान् राजतान् वाथ कुर्याद्धोमपरिच्छदान् ॥ ३० ॥

अस्त्र कुण्ड के लिए अन्य ऋत्विजों का वरण—तदनन्तर बाहरी अस्त्रकुण्ड शाला में ब्रह्मास्त्रादि प्रमुख कुण्डों के लिए वेदवेत्ता एवं शान्ति कर्मों में कुशल ऋत्विजों का इस प्रकार वरण करे—'ब्रह्मजज्ञान' इत्यादि ऋचाओं से स्वनाम ग्रहणपूर्वक विद्वान् ब्रह्मास्त्रादि की रचना करने वाले पचास ऋत्विजों का, तदनन्तर उत्तमोत्तम ब्रह्म सूक्त से तीन सौ ऋत्विजों का वरण करे। उसमें 'भवा मित्र' इन पाँच ऋचाओं को, 'मात्रादि' तेरह ऋचाओं को, विष्णुसूक्त तथा 'अस्य वाम' इन पाँच ऋचाओं को, 'अतो देव' इन छः ऋचाओं को 'चक्षुः' इत्यादि दश ऋचाओं को तथा 'प्रति व एन' आदि छः ऋचाओं को भी सम्मिलित कर वरण करे। होम के लिए सुवर्ण अथवा चाँदी का परिच्छद निर्माण करे ॥ २५-३० ॥

कुम्भस्थापनम्

पूर्वभागेषु कुण्डानां स्थापयेत् तोयपरितान् ।
सौवर्णान् राजतान् कुम्भान् यद्वा ताम्रमयानिह ॥ ३१ ॥
कुम्भान् पूर्ववदेकैकं कलमान् भारसंमितान् ।

कुम्भ स्थापन—प्रत्येक कुण्डों के पूर्वभाग में पूर्ववत् सुवर्ण का, रजत का अथवा ताँबे का प्रत्येक कुण्ड पर एक-एक के क्रम से कलश स्थापित करे, जिस पर एक-एक भाग चावल का पूर्णपात्र हो ॥ ३१-३२ ॥

होमार्थमृत्विगन्तरवरणविधिः

वृणुयादृत्विजः शिष्टान् यज्वनो होमकर्मसु ॥ ३२ ॥
प्रवर्तयेत स्वैः स्वैस्तु मन्त्रैर्मन्त्रविदुत्तमः ।

होम के लिए अन्य ऋत्विजों का वरण—तदनन्तर होम कर्म के लिए यज्ञकर्त्ता शेष ऋत्विजों का वरण करे। तदनन्तर मन्त्रवेत्ता अपने-अपने मन्त्रों से होम का प्रारम्भ करे ॥ ३२-३३ ॥

मध्यमकुण्डे आचार्यकर्तृकहोमविधिः

देशिको मध्यमे कुण्डे सामध्वनिसमन्वितम् ॥ ३३ ॥
हुनेद्वादित्रसंयुक्तं पुण्याहनिनदैर्युतम् ।

मध्यम कुण्ड पर आचार्य स्वयं होम करे—आचार्य मध्यम कुण्ड पर स्वयं सामवेद

का गान करते हुये गाने बजाने के साथ तथा पुण्याहवाचन के शब्दों से युक्त हो होम करे ॥ ३३-३४ ॥

होमसङ्ख्याविधिः

प्रत्येकं कोटिहोमेन शान्तिकर्म समारभेत् ॥ ३४ ॥

होम की सङ्ख्या का विधान—प्रत्येक कुण्ड पर कोटि-कोटि होमपूर्वक शान्ति कर्म का आरम्भ करना चाहिए ॥ ३४ ॥

तत्तत्कुम्भेषु तत्तद्देवताभ्यर्चनविधिः

तत्तद्देवान् समाहूय कुम्भेषु च पृथक् पृथक् ।
स्वैः स्वैरभ्यर्चयेन्मन्त्रैर्धूपदीपादिभिस्तथा ॥ ३५ ॥

कुम्भों पर तत्तद्देवतार्चन विधि—प्रत्येक कुण्ड के प्रत्येक कलश पर तत्तद् अस्त्र के देवताओं का आवाहन कर उनका उन-उन मन्त्रों से धूप-दीपादि द्वारा अर्चन करना चाहिए ॥ ३५ ॥

होमान्ते कुम्भोदकेन राज्ञोऽभिषेकः

होमकर्मणि निर्वृत्ते तत्तत्कुम्भोदकैस्ततः ।
यन्त्रपीठे समारोप्य राजानमभिषेचयेत् ॥ ३६ ॥

होम के पश्चात् उन कुम्भोदकों से राजा का अभिषेक—होम कर्म के समाप्त हो जाने पर उन-उन कुम्भोदकों से राजा को यन्त्रमय पीठ पर बैठा कर अभिषेक करना चाहिए ।

अस्त्रकुण्डेषु होमविधिः

अस्त्रमन्त्रेषु येष्वेव नियुक्ता ये द्विजातयः ।
तत्तत्कुण्डेषु तैर्मन्त्रैर्जुहुयुः शान्तमानसाः ॥ ३७ ॥

अस्त्रकुण्डों पर होम का विधान—जिन-जिन अस्त्रमन्त्रों के लिए जो ब्राह्मण नियुक्त किये गए हों वे, उन-उन कुण्डों पर उन-उन मन्त्रों से शान्त चित्त होकर होम करें ॥ ३७ ॥

उत्तममध्यमाधमभेदेन होमसङ्ख्याविकल्पः

प्रत्येकं कोटिहोमस्तु मुख्यस्तस्यार्धमध्यमः ।
अधमं नियुतं ज्ञेयं यावदेतत् समाप्यते ॥ ३८ ॥
कालेन तावता कार्यमप्रमत्तैरतन्द्रितैः ।

उत्तम, मध्यम तथा अधम के भेद से होम सङ्ख्या का विकल्प—प्रत्येक अस्त्र कुण्ड पर एक-एक करोड़ का होम उत्तम है । उसका आधा होम मध्यम है और नियुत सङ्ख्याक (= दस हजार) होम अधम है, जब तक होम की समाप्ति नहीं होती तावत्काल पर्यन्त आलस्यरहित होकर सावधानी से होम करना चाहिए ॥ ३८-३९ ॥

नारायणीयाद्यस्त्रवर्गे होमसाधनद्रव्यविधिः

नारायणीयं ब्राह्मं च विमलं क्रौञ्चमेव च ॥ ३९ ॥

धर्मपाशं च लक्षाक्षं संवर्तं सत्यमुत्तमम् ।
दुन्दुनाभं च शीतेषुं विष्णुचक्रं च मानवम् ॥ ४० ॥
ऐन्द्रं ज्यौतिषमित्येतमस्त्रवर्गं घृतैर्हुनेत् ।

नारायणीय आदि अस्त्र वर्ग के लिए होम सामग्री का विधान—नारायणीय, ब्राह्म, विमल, क्रौञ्च, धर्मपाश, लक्षाक्ष, संवर्त्त, सत्य, उत्तम, दुन्दुनाभ, शीतेषु, विष्णु चक्र, मानव, ऐन्द्र तथा ज्योतिष इन अस्त्र वर्गों को घृत की आहुति देवे ॥ ३९-४१ ॥

कालचक्रादिवर्गे चरुविधिः

कालचक्रं धर्मचक्रं वज्रास्त्रं च गदाह्वयम् ॥ ४१ ॥
ब्राह्मं शिरस्तथैषीकं त्रिशूलमशनिद्वयम् ।
कालपाशं च पैनाकं पाशं वारुणमेव च ॥ ४२ ॥
आग्नेयं दयितं चापि तथा पाशुपतं परम् ।
एष वर्गस्तु होतव्यश्चरुणैव यथाविधि ॥ ४३ ॥

कालचक्रादि अस्त्र वर्गों के लिए चरु होम का विधान—कालचक्र, धर्मचक्र, वज्रास्त्र, गदाह्वय, ब्राह्म, शिरः इषीक, त्रिशूल, दोनों अशनि, कालपाश, पैनाक, पाश, वारुण, आग्नेय, दयित तथा श्रेष्ठ पाशुपत इन अस्त्र वर्गों को चरु से यथाविधि होम करे ॥ ४१-४३ ॥

कङ्कालादिवर्गे दधिविधिः

कङ्कालं मुसलं चापि वायव्यमथ कङ्कणी ।
असिरत्नं च कापालं शक्तिर्वैद्याधरं तथा ॥ ४४ ॥
प्रस्वापनप्रशमने दर्पणं शोषणं तथा ।
सन्तापनं च गान्धर्वं पैशाचं च विलापनम् ॥ ४५ ॥
एतानि दध्ना होतव्यान्यस्त्राणि परमास्तिकैः ।

कङ्कालादि वर्गों के लिए दधिहोम का विधान—कङ्काल, मुसल, वायव्य, कङ्कणी, असिरत्न, कापाल, शक्ति, वैद्याधर, प्रस्वापन, प्रशमन, दर्पण, शोषण, सन्तापन, गान्धर्व, पैशाच तथा विलापन इन अस्त्रों के लिए परमास्तिक ऋत्विज दधि से होम करे ॥ ४४-४६ ॥

मदनादिवर्गे पयोविधिः

मदनं तामसं चैव कन्दर्पदयितं परम् ॥ ४६ ॥
सौमनं मुसलं चैव संवर्तं घोरमेव च ।
मायाधरं च सोमास्त्रं वारुणं त्वाष्ट्रमेव च ॥ ४७ ॥
प्रस्वापनं भगास्त्रं च रौद्रसृष्टं पराङ्मुखम् ।
पयसामूनि जुहुयुस्तदस्त्रध्यानतत्पराः ॥ ४८ ॥

मदनादि वर्ग के लिए दूध से होम की विधि—मदन, तामस, कन्दर्पदयित, पर,

सौमन, मुसल, संवर्त्त, घोर, मायाधर, सोमास्त्र, वारुण, त्वाष्ट्र, प्रस्वापन, भगास्त्र, रौद्रसृष्ट तथा पराङ्मुख इन अस्त्रों को दूध से उन अस्त्रों का उस-उस प्रकार से ध्यान करते हुये होम करना चाहिए ॥ ४६-४८ ॥

रभसादिवर्गे पायसविधिः

रभसं सत्यकीर्तिं च प्रतिहारतरं तथा ।
अवाङ्मुखं च विषमं दृढनाभं सुनाभकम् ॥ ४९ ॥
दशाक्षं शतवक्त्रं च शतशीर्षं शतोदरम् ।
पद्मनाभं महानाभं नैराश्यक्रथने अपि ॥ ५० ॥
वर्गोऽयं पायसेनैव होतव्यः शुद्धमानसैः ।

रभसादि वर्ग के लिए पायस से होम विधि—रभस, सत्यकीर्त्ति, प्रतीहार, अवाङ्मुख, विषम, दृढ़नाभ, सुनाभ, दशाक्ष, शतवक्त्र, शतशीर्ष, शतोदर, पद्मनाभ, महानाभ, नैराश्य तथा क्रथन इन अस्त्र वर्गों को विशुद्ध मन वाले ऋत्विज पायस से होम करे ॥ ४९-५१ ॥

योगन्धरादिवर्गे तिलविधिः

योगन्धरं विनिद्रं च नैद्रं सौमनसं तथा ॥ ५१ ॥
धृतिमाली प्रमथनं विधूतं वृत्तिमानपि ।
महार्चिर्माली मकरं रुचिरं करवीरकम् ॥ ५२ ॥
अमीषां च कृते कार्यस्तिलैर्होमो यथाविधि ।

योगन्धरादिवर्ग के लिए तिल से होम का विधान—योगन्धर, विनिद्र, नैद्र, सौमनस, धृतिमाली, प्रमथन, विधूत, वृत्तिमान्, महार्चि, माली, मकर, रुचिर तथा करवीरक इनके लिए यथाविधि तिल का होम करना चाहिए ॥ ५१-५३ ॥

धनादिवर्गे मधुविधिः

धनधान्ये कामरूपं मोहः कामरुचिस्तथा ॥ ५३ ॥
वरणावरणे चैव परमास्त्रे उभे अपि ।
जृम्भकं सर्वनाभं च भृशाश्वतनयो महान् ॥ ५४ ॥
संदानं परशुं चैव प्रीणीयान्मधुना भृशम् ।

धनादिवर्ग के लिए मधुहोम का विधान—धन, धान्य, कामरूप, मोह, काम-रुचि, वरण, अवरण, दोनों प्रकार के परमास्त्र, जृम्भक, सर्वनाभ, भृशाश्वतनय, महान्, संदान तथा परशु इन अस्त्र वर्गों को मधु द्वारा होम कर परम प्रसन्न करे ॥ ५३-५५ ॥

अन्येष्वस्त्रेषु शालितण्डुलविधिः

अपराण्यप्यनुक्तानि जुहुयाच्छालितण्डुलैः ॥ ५५ ॥

अन्य अस्त्रों के लिए शालितण्डुल से होम का विधान—और अन्य अस्त्र जिन्हें इन वर्गों में नहीं कहा गया है उन्हें शालि तण्डुल के होम से तृप्त करे ॥ ५५ ॥

होमान्ते मन्त्रविशेषेण सुदर्शनतर्पणविधिः

हुत्वा यथोक्तं स्वैर्मन्त्रैः सर्वास्त्रप्रभवं विभुम् ।
सुदर्शनाकृतिं विष्णुं सर्वयन्त्रमयं विभुम् ॥ ५६ ॥
ऋग्भिर्यन्त्रनियुक्ताभिः शान्तिकर्म समारभेत् ।

होमान्त में मन्त्रविशेष से सुदर्शन के तर्पण का विधान—ऊपर कहे गए तत्तद् मन्त्रों से तत्तद्द्रव्यों द्वारा होम कर सभी अस्त्रों के जन्मदाता, विभु, सुदर्शनाकृति वाले यन्त्रमय विष्णु के लिए यन्त्र में लिखित उन-उन ऋचाओं से शान्ति कर्म का प्रारम्भ करे ॥ ५३-५७ ॥

नारायणीयादितर्पणे मन्त्रविशेषविधिः

नारायणीयमुख्यास्त्रजातं प्रत्येकमादरात् ॥ ५७ ॥
शान्तिं कुर्यात् परो मात्रेत्येतत्सूक्तेन सादरम् ।

नारायणीयादि में तर्पण की विशेष विधि—नारायणीयादि मुख्य अस्त्र मुख्य समूह में (द्र० ४७.३९.४०) प्रत्येक की 'परो मात्रा' इस सूक्त से आदरपूर्वक शान्ति करे ॥ ५७-५८ ॥

कालचक्रादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

कालचक्रादिवर्गस्थं प्रत्येकं जातवेदसम् ॥ ५८ ॥
प्रीणीयाच्चैव कङ्कालमुख्यवर्गस्य शान्तये ।
दिवस्परीति सूक्तेन जुहुयाज्ज्वलितेऽनले ॥ ५९ ॥

कालचक्रादि वर्ग के तर्पण की विशेष शान्ति विधि—कालचक्रादिवर्ग के अस्त्रों में प्रत्येक को 'जातवेदसम्' इस मन्त्र से तृप्त करे तथा कङ्कालादि मुख्य वर्गों की शान्ति के लिए 'दिवस्परी' त्यादि सूक्त से जलती हुई अग्नि में होम करे ॥ ५८-५९ ॥

मदनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

मदनाद्यस्त्रवर्गस्य शान्तिं कुर्यात् समाहितः ।
अतो देवेति सूक्तेन तथा विष्णोर्नुकं त्विति ॥ ६० ॥

मदनादिवर्ग के अस्त्रों के लिए मन्त्र विशेष से शान्ति का विधान—मदनादि अस्त्र वर्ग की शान्ति समाहित चित्त से 'अतो देव' इस सूक्त से तथा 'विष्णोर्नु कं' इत्यादि सूक्त से करे ॥ ६० ॥

रभसादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

रभसाद्यस्त्रजातानि भवा मित्रेति पञ्चभिः ।
प्रत्येकं शमयेदृग्भिरिति वैदिकशासनम् ॥ ६१ ॥

रभसादि वर्ग की शान्ति के लिए मन्त्र विशेष का विधान—रभसादि अस्त्र वर्गों में प्रत्येक की शान्ति 'भवा मित्र' इत्यादि पाँच ऋचाओं को पढ़ते हुये करे ऐसा वैदिकों का अनुशासन है ॥ ६१ ॥

योगन्धरादेरस्त्रस्य शान्तिः कार्या समाहितैः ।
सूक्तेनानेन चैकैकमतो देवा अवन्त्विति ॥ ६२ ॥

योगन्धरादि अस्त्र जातों की शान्ति के लिए मन्त्र विशेष का विधान—शान्त चित्त वाला ऋत्विज योगन्धरादि अस्त्रों में प्रत्येक अस्त्र की शान्ति 'अतो देवा अवन्तु' इस ऋचा से करे ॥ ६२ ॥

धनादिवर्गे मन्त्रविशेषविधिः

धनधान्यादिवर्गस्थमस्त्रजातं विचक्षणः ।
जुषस्व नेति सूक्तेन शमयेत् परमेण तत् ॥ ६३ ॥

धनादि अस्त्र जात वर्गों में प्रत्येक की शान्ति के लिए विशेष मन्त्र का विधान—धनधान्यादि वर्गस्थ अस्त्रों में प्रत्येक अस्त्र की शान्ति, बुद्धिमान् ऋत्विज 'जुषस्व नेति' इस सूक्त को पढ़ते हुये करे ॥ ६३ ॥

अन्येष्वस्त्रेषु मन्त्रविशेषविधिः

अस्त्राण्यन्यान्यनुक्तानि विष्णुसूक्तेन तर्पयेत् ।
सूक्तैरेतैर्महायन्त्रविनियुक्तैश्च पावनैः ॥ ६४ ॥
सर्वयन्त्रमयं देवं स्तुतिहोमैः समर्चयेत् ।

अन्य अस्त्रों की शान्ति के लिए मन्त्र विशेष का विधान—अन्य अस्त्र जिन्हें इन वर्गों में नहीं कहा गया है उनका विष्णु सूक्त से तर्पण करना चाहिए । तदनन्तर सर्वयन्त्रमय देवाधिदेव सुदर्शन को यन्त्र में उल्लिखित कर महा पवित्र उन-उन सूक्तों से तथा स्तुति एवं होम से पूजन करे ॥ ६४-६५ ॥

तर्पणान्ते सहस्रब्राह्मणभोजनविधिः

ततो देवान् समभ्यर्च्य ब्राह्मणांस्तदनन्तरम् ॥ ६५ ॥
सहस्रं भोजयेच्छुद्धैरोदनैः पायसैरपि ।

प्रधान देव के तर्पण के पश्चात् सहस्रब्राह्मण के भोजन का विधान—इस प्रकार देवताओं के अर्चन के अनन्तर सहस्र ब्राह्मणों को शुद्ध ओदन तथा पायस का भोजन करावे ॥ ६५-६६ ॥

ततोऽस्त्रमन्त्रजलैः राज्ञोऽभिषेकविधिः

ततो राजासनारूढं राजानं शान्तमानसम् ॥ ६६ ॥
ऋत्विग्भिराहृतैः सर्वैरस्त्रमन्त्रजलैः शुभैः ।
गुरुस्तन्मूलमन्त्रेण मन्त्रितैरभिषेचयेत् ॥ ६७ ॥

तदनन्तर अस्त्रमन्त्र वाले जल से राजा के अभिषेक का विधान—तदनन्तर राजासन पर बैठे हुये शान्त चित्त राजा को, ऋत्विजों द्वारा लाये गए सभी अस्त्र मन्त्रों एवं कल्याणकारी जल से तत्तदस्त्र मन्त्रों से अभिषिक्त करे और मूलमन्त्र पढ़ते हुए आचार्य राजा को स्वयं स्नान करावें ॥ ६६-६७ ॥

रुग्णस्य तु राज्ञः प्रोक्षणविधिः

प्रोक्षयेदामयाविष्टो यदि राजा भवेन्मुने ।

यदि राजा रोगी हो तो उसको मात्र प्रोक्षण करने का विधान—हे मुने ! यदि राजा रोगी हो तो उसके ऊपर जल का प्रोक्षण मात्र करे ॥ ६७ ॥

मण्डपान्तःस्थकुम्भतोयाभिषेचनावश्यकता

अवश्यं मण्डपान्तःस्थकुम्भतोयाभिषेचनम् ।
कुर्यान्निरामयोऽनाधिर्विजयी भवति क्षणात् ॥ ६८ ॥

मण्डप के भीतर कुम्भस्थ जल से अभिषेक की आवश्यकता का प्रतिपादन—अवश्य ही मण्डपान्तःस्थ कलश जल से राजा का अभिषेचन करना चाहिए । ऐसा करने से वह निरामय एवं मानसिक सन्तापों से रहित तथा तत्क्षण विजयी हो जाता है ॥ ६८ ॥

यथोक्तमहाशान्तिफलकीर्तनम्

आरोग्यमायुर्विजयो विभूति-
र्वशित्वमास्तिक्यममर्त्यता च ।
सर्वार्थसिद्धिर्वसुधाधिपत्यं
भवन्ति निःसंशयमेव राज्ञः ॥ ६९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां महाशान्तिविधानं
नाम सप्तचत्वारिंशोऽयायः ॥ ४७ ॥
॥ आदितः श्लोकाः २९३६ ॥

* * *

ऊपर कही गई महाशान्ति का फलकथन—ऊपर कही गई शान्ति से राजा को आरोग्य, आयुवृद्धि, विजय, विभूति, इन्द्रिय जय, आस्तिकता, अमरता, सर्वार्थसिद्धि तथा वसुधाधिपत्य प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के महाशान्ति
विधान नामक सैंतालीसवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं०
रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४७ ॥

* * *

अथाष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः

श्रीसुदर्शनमहायन्त्रघटितासनादिप्रभाववर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम्।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने पर अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूह को नष्ट कर देता है, हम उस दिव्य तेजोमय सुदर्शन का ध्यान करते हैं।

इष्टार्थसाधने जपादिव्यतिरिक्तोपायप्रश्नः

नारदः—

कथितं भगवन् सर्वं जपहोमार्चनादिकम्।
अभिषेको महाशान्तिर्महाशान्तिक्रियाविधिः॥ १॥
सर्वार्थसाधकत्वेन चक्ररूपस्य शार्ङ्गिणः।
एतैर्विना किमिष्टार्थसाधनं विद्यते न वा॥ २॥

इष्टार्थ साधन के विषय में जपादि के अतिरिक्त और उपाय क्या हैं, इस विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भगवन् आपने सुदर्शन के जप, होम तथा अर्चन विषयक सारी बातें कहीं तथा अभिषेक महाशान्ति एवं उस महाशान्ति की क्रियाविधि भी कही। अब आप यह बताइये कि सर्वार्थसाधकं चक्ररूप विष्णु के जपादि के बिना क्या इष्ट साधन का कोई और उपाय है अथवा नहीं॥ १-२॥

तत्रासनादीनामुपायत्वकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

विनैतान्यप्यभीष्टार्थमलभन्त परे नृपाः।
आसनेनाङ्गुलीयेन दर्पणेन ध्वजेन च॥ ३॥
वितानेन च विस्तीर्णभूतयो देवसन्निभाः।
मुक्तापीडो विशालश्च सुनन्दश्चित्रशेखरः॥ ४॥
कीर्तिमाली च भूपालाः पालयन्तोऽखिलां भुवम्।

इस विषय में आसनादि रूप उपाय का कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—कुछ राजा ऐसे हुये हैं जिन्होंने उक्त उपाय के अतिरिक्त आसन, अङ्गुलीयक, दर्पण, ध्वज तथा

वितान से अपने विभूतियों का विस्तार किया तथा देवताओं के तुल्य हो गए। उनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—मुक्तापीड़, विशाल, सुनन्द, चित्रशेखर तथा कीर्त्तिमाली। इन्होंने आसनादि उपायों से सारी पृथ्वी का पालन किया था ॥ ३-५ ॥

आसनादिभिर्मुक्तापीडादीनामिष्टसिद्धिः

आसनेनैव वसुधां मुक्तापीडोऽजयत् पुरा ॥ ५ ॥
विशालोऽप्यजयन्मृत्युमङ्गुलीयेन भूपतिः।
सुनन्दो दर्पणेनैव नागलोकं महीपतिः ॥ ६ ॥
ध्वजेनासुरसंग्राममजयच्चित्रशेखरः।
कीर्तिमाली वितानेन त्रिदिवं प्राप भूपतिः ॥ ७ ॥

आसनादि उपायों से मुक्तापीडादि राजाओं की अभीष्ट सिद्धि—पूर्वकाल में मुक्तापीड ने मात्र आसन के प्रयोग से सारी पृथ्वी जीत ली थी। राजा विशाल ने अङ्गुलीयक के प्रयोग से मृत्यु पर विजय प्राप्त किया। सुनन्द नामक महीपति ने दर्पण के द्वारा नागलोक जीता था। चित्रशेखर ने ध्वज के द्वारा असुर संग्राम पर विजय प्राप्त किया था तथा कीर्त्तिमाली राजा ने वितान से स्वर्ग प्राप्त किया था ॥ ५-७ ॥

केवलासनादीनामिष्टसाधनत्वकथन्ताप्रश्नः

नारदः—

केवलान्यासनादीनि साधनत्वं कथं ययुः।
साध्यं प्रति विभो तन्मे कथयेदं महाद्भुतम् ॥ ८ ॥

इष्टसाधन में मात्र आसनादि के प्रयोग से किस प्रकार सिद्धि होती है। इस विषय में प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—केवल आसनादि किस प्रकार साध्य रूप इष्टसिद्धि में साधक होते हैं? यह तो बड़ी अद्भुत बात है, हे प्रभो ! इसे कहिये ॥ ८ ॥

आसनप्रभाववर्णनाय मुक्तापीडोपाख्यानकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

मुक्तापीडो महातेजा राजा सुश्रवसः सुतः।
पितर्युपरते पृथ्वीं बुभुजे सागराम्बराम् ॥ ९ ॥

आसन का प्रभाव वर्णन करने के लिए प्रसङ्गतः मुक्तापीड के इतिहास का कथन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—महा तेजस्वी मुक्तापीड नामक राजा सुश्रवा का पुत्र था। पिता के उपरत हो जाने पर वह स्वयं सागर रूप वस्त्र से घिरी हुई पृथ्वी का शासन करने लगा ॥ ९ ॥

मुक्तापीडस्य विषयासक्ततया राज्ये धर्मविच्युतिः

निजान्तःपुरयोषित्सु विषयासक्तमानसः।
अनालोचितसप्ताङ्गो राजा राजीवलोचनः ॥ १० ॥
प्रजास्तद्विषये तेन धर्मविच्युतिमाचरन्।

बलिभिर्दस्युभी राज्यं क्षुभितं च हृतं च तत् ॥ ११ ॥
तस्मै प्रकृतयः सर्वा राज्ञे क्षोभं व्यजिज्ञपन् ।
बुबुधे न स तेनापि मधुमैथुनविह्वलः ॥ १२ ॥

मुक्तापीड की विषयासक्ति से राज्य में धर्म का ह्रास—कमलनेत्र वह राजा अन्त:पुर की पटरानियों में इतना विषयासक्त हो गया कि उसने राज्य के सप्ताङ्गों की देख-भाल करना भी त्याग दिया । उसके ऐसा करने से उसके राज्य की सारी प्रजा धर्महीन हो गई । इस कारण बलवान् दस्युओं ने उसके राज्य में उपद्रव प्रारम्भ किया तथा राज्य का हरण भी कर लिया । सभी प्रजा जनों ने मिल कर राजा से दस्युओं के उपद्रव की शिकायत की । किन्तु वह मद्य और मैथुन में इतना विह्वल था कि उसे तब भी होश नहीं हुआ ॥ १०-१२ ॥

सपुरोधसाममात्यानां मन्त्रणप्रकारः

ततः पुरोधसा सार्धममात्याः संन्यमन्त्रयन् ।
राजा तु विषयासक्तो राज्यं दस्युभिराप्लुतम् ॥ १३ ॥
इति संचिन्त्य ते सर्वे गुरुं प्राप्य महाद्युतिम् ।
भवत्प्रसादाज्जेष्यामो नान्या काप्यस्ति नो गतिः ॥ १४ ॥
इत्युक्तस्तैः पुरोधास्तु तथैवेत्याह तान् प्रति ।

तब पुरोहित से अमात्यों ने मन्त्रणा की—तब अमात्यों ने यह सोच कर की राजा विषयासक्त है और राज्य दस्युओं से घिरा हुआ है, फिर हमें क्या करना चाहिए? ऐसा विचार कर वे महातेजस्वी गुरु के पास गए और उनसे निवेदन किया कि अब आपकी कृपा से ही हम लोग इन दस्युओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं और कोई दूसरा उपाय नहीं है । इस बात को सुनकर गुरु पुरोहित ने उनसे कहा—ठीक है ॥ १३-१५ ॥

पुरोधसा वसिष्ठोपदिष्टोपायानुष्ठानम्

इत्युक्त्वा यन्त्रघटितं विष्टरं रत्नमण्डितम् ॥ १५ ॥
वसिष्ठोक्तेन मार्गेण चकारास्मै महाद्भुतम् ।
तस्मिन्नारोपयामास राजानमबलारतम् ॥ १६ ॥

पुरोहित ने वशिष्ठ द्वारा उपदिष्ट उपाय का अनुष्ठान बताया—वशिष्ठ के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से उन्होंने एक महान् अद्भुत यन्त्र युक्त रत्नों से मण्डित विष्टर (=आसन) का निर्माण किया । उस विष्टर पर रानियों में आसक्त उस राजा को बिठाया ॥ १५-१६ ॥

पुरोधसा राजानं प्रति कृत्यविशेषानुशासनम्

वेदशाखाश्चतुर्दिक्षु वाचयेच्च क्रमेण तु ।
आशीर्मङ्गलयुक्तानि गीतवादित्रनर्तकान् ॥ १७ ॥
कलशोदकमक्षय्यममृतं भावयेद् बुधः ।
तन्मध्यादुत्थिते पद्मे सौवर्णे चाष्टपत्रके ॥ १८ ॥

चतुर्बाहुं त्रिनेत्रं च पद्महस्तं हिरण्मयम् ।
सर्वाभरणसंछन्नं मुक्ताहारविराजितम् ॥ १९ ॥
किरीटहारकेयूरकटकादिविभूषितम् ।
पीताम्बरधरं सौम्यं प्रसन्नवदनं शुभम् ॥ २० ॥
कटिसूत्रसमायुक्तं कुण्डलाभ्यां विराजितम् ।
श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीकरं श्रीनिकेतनम् ॥ २१ ॥
श्रिया जुष्टं सदा सम्यक् ताम्रपद्मनिभेक्षणम् ।
पद्मनाभमुदाराङ्गं भक्तार्तिशमनं हरिम् ॥ २२ ॥
तस्याङ्के दक्षिणे लक्ष्मीं समासीनां विचिन्तयेत् ।

तदनन्तर पुरोहित द्वारा राजा को कृत्यविशेष के अनुष्ठान का उपदेश—हे राजन् ! चारों दिशाओं में चारों वेदों की शाखाओं से क्रमशः पुण्याहवाचन करावे । आशीर्वाद तथा मङ्गल युक्त गाने बजाने वाले तथा नर्तकों के साथ, अक्षम, अमृतयुक्त कलश को उदक से पूर्ण करे । इसके बीच में सुवर्ण निर्मित आठ पत्र वाला कमल बना कर उस पर श्रीभगवान् विष्णु का इस प्रकार ध्यान करे जो चार बाहु, तीन नेत्र, हाथ में कमल लिए, सुवर्णमय, सर्वाभरणसंच्छन्न, मुक्ताहार से सुशोभित, किरीट, हार, केयूर एवं कटकादि से विराजित पीताम्बर धारण किये, सौम्य एवं प्रसन्नमुख, शुभ काञ्ची धारण किये हुये, दोनों कानों में कुण्डल पहने, वक्षःस्थल पर कौस्तुभ धारण किये हुये । लक्ष्मी के पति, लक्ष्मी देने वाले, श्रीनिवास, लक्ष्मी से सेवित, सर्वदा अनुकूल रहने वाले, रक्तकमल के समान नेत्रों वाले, जिनकी नाभि से कमल निकला हुआ है और भक्तों की आर्त्ति का शमन करने वाले उन विष्णु का ध्यान करे जिनकी दाहिनी ओर गोद में लक्ष्मी विराजमान हों ॥ १७-२३ ॥

मन्त्रमूर्त्यात्मको देवो मन्त्रवाच्यस्तु स प्रभुः ॥ २३ ॥
प्रविशन्तं ततस्तं तु भावयेन्मन्त्ररूपिणम् ।
एवं संचिन्तयन् मन्त्रं जपेत् कलशमामृशन् ॥ २४ ॥
अष्टोत्तरायुतं जप्त्वा अभिषिञ्चन् स्वकां तनुम् ।
ग्रहाणां नवकानां च सद्यः शान्तिकरो भवेत् ॥ २५ ॥
आयुः श्रियं च यस्येच्छेत् तं च तेनाभिषेचयेत् ।
अर्चयेदृत्विजः सर्वान् पूर्वमेव बुधो नरः ॥ २६ ॥
ब्राह्मणांस्तर्पयेच्चैव दक्षिणामुत्तमां ददत् ।
एवं स्वस्यापरस्यापि हितं कुर्यात् तथात्मनः ॥ २७ ॥

उन विष्णु का ध्यान करे कि वे भगवान् मन्त्र मूर्त्यात्मक हैं, मन्त्र उनका वाचक है तथा वे मन्त्र से वाच्य हैं, वे मन्त्र रूप से इस घड़े में प्रवेश कर रहे हैं, इस प्रकार से ध्यान करते हुये कलश का स्पर्श कर मन्त्र का जप करे । जप एक सौ आठ की सङ्ख्या में करे । फिर उस घड़े के जल से अपने शरीर को अभिषिक्त करे । इस प्रकार की यह क्रिया नव ग्रहों की सद्यः शान्ति कर देती है । किं बहुना जिसे आयु तथा लक्ष्मी की इच्छा हो उस घड़े

से उनका अभिषेक करे। बुद्धिमान् मनुष्य सभी ऋत्विजों की पूजा करे। ब्राह्मणों को उत्तमोत्तम दक्षिणा देकर उन्हें तृप्त करे। इस प्रकार इस क्रिया से दूसरों का, अपना तथा अपने सम्बन्धियों का हित करना चाहिए ॥ २३-२७ ॥

दक्षिणा चात्र देया स्यात् सुवर्णं शतमेव वा।
केशान् धुनेन्न न वपेन्न स्पृशेत् स्नानशाटिकाम् ॥ २८ ॥
नातिष्ठेत् स्नानसलिलमलङ्कुर्यात् ततो बुधः।
मङ्गलानि च पश्येत्तु ऋषभं मङ्गलाः स्त्रियः ॥ २९ ॥
आत्मनो जन्मनक्षत्रे शुक्लवासा भवेत् तथा।
शुक्रवारेषु कुर्वीत सप्तशः कुर्वतस्तथा ॥ ३० ॥
कामाः सङ्कल्पितास्तस्य ध्रुवं सिध्यन्ति नान्यथा।

इस अनुष्ठान में सौ सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए। उस दिन केशों को न झाड़े और न उनका वपन करवावे, स्नान वस्त्र का स्पर्श न करे, स्नान के जल का उपयोग न करे। तदनन्तर अपने शरीर को अलङ्कृत करे। बैल और सौभाग्यवती स्त्रियों का दर्शन करे। यदि अपने जन्म का नक्षत्र हो तो उस दिन शुक्ल वस्त्र धारण करे। इस प्रकार उन्चास शुक्रवार पर्यन्त यह क्रिया करे। ऐसा करने से उसकी समस्त सङ्कल्पित कामनायें पूर्ण हो जाती हैं यह अन्यथा नहीं है ॥ २८-३१ ॥

उद्वहन् वारि कुर्वीत श्रीकामः पापनाशनम् ॥ ३१ ॥
तिष्ठन्नञ्जलिभिः प्रातरष्टोत्तरशतं पुनः।
अभिमन्त्र्य जलं मूर्ध्नि क्षिपेत् पापप्रणाशनम् ॥ ३२ ॥

यदि लक्ष्मी की कामना हो तो जल लिए हुये पाप प्रणाशक इस मन्त्र के जप को करे। उसकी विधि इस प्रकार है—प्रातःकाल में एक सौ आठ अञ्जुलि जल ले। तदनन्तर आचार्य मन्त्र को पढ़ते हुये प्रत्येक अञ्जुलि के जल से पापप्रणाशक उस जल द्वारा साध्य के शिर पर अभिषेक करे। ऐसा करने से लक्ष्मी प्राप्त होती हैं ॥ ३१-३२ ॥

जुहुयाद्वस्त्रकामस्तु कुसुमैः कुमुदादिभिः।
यद्वर्णं जुहुयात् पुष्पं तद्वर्णं वस्त्रमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥

वस्त्र की इच्छा रखने वाला कुमुद के पुष्पों का होम करे। जिस वर्ण के पुष्प से होम किया जाता है उसी वर्ण का वस्त्र प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

वृष्टिकामः शुचौ देशे गोमयेनोपलेपिते।
रक्तद्रव्येण तत्रैव मण्डलं परिकल्पयेत् ॥ ३४ ॥
मण्डलस्य पुरस्तात्तु नवकुम्भं निधापयेत्।
तन्तुना वेष्टितं सम्यक् पूरितं गन्धवारिणा ॥ ३५ ॥
आवाहयेत् ततः सूर्यं कुम्भे शुभ्रे समाहितः।
तत्रस्थमर्चयेद् विष्णुं पूर्ववत् साधकोत्तमः ॥ ३६ ॥

वृष्टि चाहने वाला पुरुष किसी गोमयोपलिप्त पवित्र भूमि में रक्त वर्ण के द्रव्य से मण्डल का निर्माण करे। मण्डल के आगे नवीन कुम्भ स्थापित करे, उसमें रक्षासूत्र बाँधे और गन्धयुक्त जल से उसे परिपूर्ण करे। तदनन्तर उस शुभ्र कलश पर सूर्य का आवाहन करे। पुनः उस कलश में साधक विष्णु स्वरूप सूर्य का पूजन करे ॥ ३४-३६ ॥

पायसं जुहुयात् तत्र शतमष्टोत्तरं बुधः।
ध्यायन्नेकाग्रधीः सिंहं जपेन्मन्त्रं सहस्रशः ॥ ३७ ॥
एवं कुर्वीत सप्ताहं द्वादशाहमथापि वा।
ततः प्रसन्नो भगवान् महावृष्टिं विमुञ्चति ॥ ३८ ॥

तदनन्तर अग्नि में खीर की एक सौ आठ आहुति इसी मन्त्र द्वारा दे। साधक भगवान् नृसिंह का एकाग्र मन से ध्यान करते हुये इस मन्त्र का एक हजार बार जप करे। इस प्रकार की क्रिया एक सप्ताह, अथवा बारह दिन पर्यन्त करे तो भगवान् प्रसन्न होकर अवश्य ही वृष्टि करते हैं ॥ ३७-३८ ॥

वैतसेनैव होमेन वृष्टिर्भवति सर्वथा।
अनश्नन्नार्द्रवासस्को वृष्टिकामः सदा जपेत् ॥ ३९ ॥
सप्ताहाज्जायते वृष्टिर्महती दिव्यशासनात्।
भस्महोमेन वा सम्यग् लवणेनाथवा पुनः ॥ ४० ॥
वृष्टिं निवारयेद् भूयः शान्तिः कार्या मनीषिणा।

अथवा वैतस के हवन से निश्चित रूप से वृष्टि होती है। वृष्टि की इच्छा वाला उपवास करते हुये आर्द्र वस्त्र से इस मन्त्र का जप करे तो सप्ताह भर में विष्णु के आदेश से बहुत बड़ी वृष्टि होती है। भस्म का होम करने से अथवा लवण का होम करने से वृष्टि का निवारण करे। तदनन्तर उसकी शान्ति करे ॥ ३९-४१ ॥

यस्तु मन्त्रं जपेन्नित्यं प्रातः स्नात्वा सहस्रशः ॥ ४१ ॥
श्रीरारोग्यं च तेजश्च वर्धते तस्य सर्वदा।
सर्वाहःसु जपेद्यस्तु क्षीराहारो जितेन्द्रियः ॥ ४२ ॥
अर्चनं च यथाशक्ति कुर्वन्नियुतमन्वहम्।
संसिद्धिमतुलां गच्छेदणिमादिगुणैर्युताम् ॥ ४३ ॥

जो पुरुष प्रातःस्नान कर एक हजार की सङ्ख्या में जप करता है, उसकी श्री, आरोग्य तथा तेज की सर्वथा अभिवृद्धि होती है। जो दूध पीकर अपनी इन्द्रियों को वश में रख कर दिन भर जप करता है और यथाशक्ति अर्चन करता है इस प्रकार नियुत (= १० हजार) सङ्ख्या में जप की पूर्णता हो जाने पर उसे अणिमादि से युक्त सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं ॥ ४१-४३ ॥

अहोरात्रोषितो यस्तु पञ्चगव्यं पिबेत् ततः।
नित्यमष्टसहस्रं तु सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४४ ॥

जो दिन-रात उपवास कर तदनन्तर पञ्चगव्य का पान करता है तथा इस मन्त्र का आठ हजार जप करता है तो उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

पञ्चगव्यं तु सम्पीत्वा जपेत् पञ्च दिनानि वै ।
ब्रह्महत्यादिभिः सद्यो मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४५ ॥

जो पञ्चगव्य पीकर पाँच दिन पर्यन्त इस मन्त्र का जप करता है वह ब्रह्महत्यादि सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

वापयेत् सर्वबीजानि ह्यभिमन्त्र्य सहस्रकम् ।
महती सस्यसम्पत्तिर्जायते नात्र संशयः ॥ ४६ ॥

इस मन्त्र से सहस्र बार अभिमन्त्रित कर जो सभी प्रकार के बीजों को खेत में बोता है, उसे बहुत धन-धान्य प्राप्त होता है । इसमें संशय नहीं है ॥ ४६ ॥

घृतेन पयसा चापि स्नापयेद् देवमुत्तमम् ।
ततः प्रसन्नो भगवान् ददाति मनसेप्सितम् ॥ ४७ ॥
अश्नीयादन्वहं विद्वानन्नं सप्ताभिमन्त्रितम् ।
परकर्माचरन्नस्मिन्नासीनः कुरु सर्वदा ॥ ४८ ॥

जो घृत से अथवा दूध से भगवान् को नित्य स्नान कराता है इससे प्रसन्न हुये भगवान् उसे मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं । दूसरे के कर्म को करता हुआ विद्वान् इस मन्त्र पर बैठ कर इसी मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रित कर भोजन करे और कहे कि मुझे सर्वदा सिद्धि प्रदान कीजिए ॥ ४७-४८ ॥

यथोपदिष्टानुष्ठानेन राज्ञो निष्कण्टकभूमिलाभः

तेनैवमनुशिष्टोऽयं मासमात्रमथाकरोत् ।
तेनास्य शत्रवः सर्वे विनष्टा व्याधिभिर्बलैः ॥ ४९ ॥
तेन निष्कण्टका भूमिर्वश्याभूत् तस्य सार्णवा ।

इस प्रकार पुरोहित द्वारा उपदिष्ट का आचरण करने से राजा को निष्कण्टक अपने राज्य की प्राप्ति का प्रतिपादन—पुरोहित के द्वारा इस प्रकार का उपदेश प्राप्त कर राजा ने एक महीने तक उसी प्रकार का अनुष्ठान किया । उसके प्रभाव से उसे सर्वदा के लिए समुद्र पर्यन्त निष्कण्टक भूमि प्राप्त हो गई ॥ ४९-५० ॥

अङ्गुलीयकप्रभाववर्णनाय विशालोपाख्यानारम्भः

विशालो नाम राजायं विशालाख्ये पुरे वसन् ॥ ५० ॥
पालयामास धर्मात्मा मेदिनीं साब्धिपत्तनाम् ।

अङ्गुलीयक प्रभाव वर्णन के प्रसङ्ग से विशालोपाख्यान—विशाल नाम का धर्मात्मा राजा अपनी विशाला पुरी में निवास करते हुये समुद्र सहित पृथ्वी का पालन करता था ॥ ५०-५१ ॥

विशालगुणवर्णनम्

सत्यवादी समो बन्धुर्दैष्टिको धर्मवत्सलः ॥ ५१ ॥
वसन् विंशतिमे वर्षे ब्राह्मणानामुपासकः ।
प्रजानुरञ्जको धीरो दैवे पित्र्ये च निष्ठितः ॥ ५२ ॥

विशाल राजा के गुण का वर्णन—वह राजा सत्यवादी, समदर्शी, प्रजाबन्धु, भाग्य पर भरोसा रखने वाला तथा धर्मवत्सल था। उसकी अवस्था मात्र २० वर्ष की थी। तभी से ब्राह्मणों की सेवा में निरत, प्रजावर्ग का अनुरञ्जन करने वाला, धैर्यवान् तथा देव एवं पितृ कार्य में निष्ठा रखने वाला था ॥ ५१-५२ ॥

तज्जनन्याः स्वपुत्रमरणसूचकाकाशवाणीश्रवणाद्विलापः

बाल्ये पित्रा वियुक्तस्य तस्येत्थं वसतो मुने।
जननी वाचमश्रौषीदाकाशे ह्यशरीरिणीम् ॥ ५३ ॥
आगामिनि चतुर्थेऽह्नि पञ्चत्वं ते गमिष्यति।
पुत्र इत्यादि सा श्रुत्वा विललापाकुला भृशम् ॥ ५४ ॥

उसकी माता का आकाशवाणी द्वारा पुत्र मरण सुनकर विलाप करना—हे प्रभु! बाल्यावस्था में ही उसके पिता उसे छोड़कर परलोकगामी हो गए थे, किसी समय उसकी माता को अशरीरिणी वाक् सुनाई पड़ी कि आगे आने वाले पाँचवे दिन आपका पुत्र मर जायगा। इस बात को सुनते ही वह व्याकुल हो कर अत्यन्त विलाप करने लगी ॥ ५३-५४ ॥

राज्ञा मातुः समाश्वासनपूर्वकं पुरोधसः पुलहस्याश्रमगमनम्

तच्छ्रुत्वा जननीमार्तामुवाच सुसमाहितः।
किमर्थं रोदिषीत्येवं पृष्टा निर्बन्धतः सती ॥ ५५ ॥
तत्त्वतो वृत्तमाचख्यौ स तच्छ्रुत्वा महामनाः।
मा भैषीरिति तामुक्त्वा निर्ययौ पुलहाश्रमम् ॥ ५६ ॥

राजा द्वारा माता को धीरज देना और अपने पुरोहित पुलह के आश्रम में जाना—राजा ने जब माता को इस प्रकार आर्त्त देखा तब समाहित चित्त होकर कहा—'माँ आप क्यों रो रही हो'? इस प्रकार कई बार आग्रहपूर्वक पूछने पर उस सती ने सत्य-सत्य सारी बातें बता दी। उसे सुन कर वह महामना राजा 'माँ आप मत रोओ' इस प्रकार समाश्वस्त कर पुलहाश्रम चले गए ॥ ५५-५६ ॥

पुलहं प्रति स्ववृत्तान्तनिवेदनम्

तपस्यन्तं मुनिं दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत्।
अश्रृणोज्जननी चैवमशरीरां सरस्वतीम् ॥ ५७ ॥

पुलह से स्ववृत्तान्त निवेदन—उन्होंने पुलहाश्रम में जाकर तपस्या में निरत पुलह को प्रणाम कर कहा कि मेरी माँ ने ऐसी अशरीरिणी वाक् सुनी है ॥ ५७ ॥

मुनिना तत्प्रतीकारोपायोपदेशनम्

इत्थं तेनैवमुक्तोऽसौ मुनिराह पुरोहितः ।
सौदर्शनमहायन्त्रघटितं चाङ्गुलीयकम् ॥ ५८ ॥
धारयैनमनेनैव मृत्युर्नश्यत्यसंशयम् ।

मुनि द्वारा उसके प्रतीकार का उपदेश प्रदान करना—राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महर्षि पुलह ने कहा कि राजन् सुदर्शन महायन्त्र युक्त अङ्गुलीयक (= अँगूठी) धारण करिए । अवश्य ही ऐसा करने से मृत्यु का विनाश हो जायगा इसमें संशय नहीं है ॥ ५८-५९ ॥

राज्ञा यथोपदिष्टानुष्ठानम्

इति शिष्टोऽङ्गुलीयं स आहूयैनमधारयत् ॥ ५९ ॥

राजा का महर्षि के उपदेशानुसार सुदर्शन यन्त्र युक्त अङ्गुलीयक धारण करना—पुरोहित द्वारा इस प्रकार का उपदेश प्राप्त कर पुलह की आज्ञानुसार यन्त्र घटित मुद्रिका धारण की ॥ ५-९ ॥

ततश्च राज्ञो यमकिङ्करैः समागमः

विशालेन धृते तस्मिन्नङ्गुलीये सुयन्त्रिते ।
ततः कालेन संदिष्टाः किङ्करा भीमदर्शनाः ॥ ६० ॥
प्राणानादातुमाजग्मुस्तस्यान्तिकमवारिताः ।

तदनन्तर निर्दिष्ट दिन यमकिङ्करों का आगमन—सुन्दर यन्त्र युक्त अङ्गुलीयक उस विशाल राजा के धारण कर लेने पर यमराज की आज्ञा से महाभयानक यम किङ्कर समय पर राजा का प्राण लेने के लिए बे रोक-टोक आ पहुँचे ॥ ६०-६१ ॥

अङ्गुलीयप्रभावात् किङ्कराणां दूरात् पलायनम्

पार्श्वं न शेकुस्ते गन्तुमङ्गुलीयप्रभावतः ॥ ६१ ॥
संरब्धोर्ध्वकरास्तस्मिन् यावत् पाशान्न चिक्षिपुः ।
तावच्चक्रमहानेमिनिस्सृतैर्विविधायुधैः ॥ ६२ ॥
प्रदुद्रुवुस्ते नितरां पीड्यमाना यथागतम् ।

अङ्गुलीयक के प्रभाव से यमकिङ्करों का दूर पलायन—वे उस अङ्गुलीयक के प्रभाव से राजा के पास तक नहीं फटक सके । अभी दूर से ही जब तक क्रोधपूर्वक हाथ उठा कर उसे पकड़ने के लिए पाश तक नहीं फेंक सके थे कि इतने में चक्र की नेमि लगे हुये अस्त्रों से पीड़ित होकर जैसे आये थे उसी प्रकार वे भाग निकले ॥ ६१-६२ ॥

राज्ञोऽपमृत्युजयात् यमादीनां विस्मयः

ततः सहैव कालेन सुरा विस्मयमागमन् ॥ ६३ ॥
सुदर्शनप्रभावेण तीर्णमृत्युरसाविति ।

राजा के अपमृत्यु से छुटकारा देखकर यमादिकों को महान् विस्मय—तब सभी

देवगण काल के साथ ही यह देख कर आश्चर्य में पड़ गए कि सुदर्शन के प्रभाव से यह राजा मृत्यु से छूट गया ॥ ६३-६४ ॥

दर्पणप्रभाववर्णनाय सुनन्दोपाख्यानम्

तथैव दर्पणस्यापि शृणु वीर्यं महामुने ॥ ६४ ॥
सुनीतिरिति राजासीच्छृङ्गाराख्ये पुरे पुरा ।
त्रेतायुगावसानेऽसौ पालयामास मेदिनीम् ॥ ६५ ॥

दर्पण प्रभाव वर्णन के प्रसङ्ग से सुनन्दोपाख्यान का वर्णन—हे महामते ! उसी प्रकार अब दर्पण के प्रभाव को भी सुनिए। पूर्व काल में शृङ्गार नामक पुर में सुनीति नाम का राजा त्रेतायुग की समाप्ति के काल में हुआ था। वह पृथ्वी पालन में लगा हुआ था ॥ ६४-६५ ॥

सुमतिनाम्नस्तत्पुत्रस्य नागकन्यया नागलोके नयनम्

लेभे चिरेण तनयमयमिष्ट्वा शतक्रतुम् ।
चकार सुमतिं नाम्ना वर्धमानं दिने दिने ॥ ६६ ॥
जनकस्तं ततः श्रीमान् कालेन प्राप्तयौवनः ।
सोऽभूदनल्पकालेन प्राप्तविद्योऽस्त्रकोविदः ॥ ६७ ॥
एकदा मृगयां कर्तुं बाह्योपवनमभ्यगात् ।
तत्रापश्यन्मनोज्ञाङ्गीं रूपयौवनशालिनीम् ॥ ६८ ॥
अदृष्टपूर्वां तां दृष्ट्वा मुमोह मदनातुरः ।
सुमतिं तं समादाय सा जगाम स्वमालयम् ॥ ६९ ॥
मायया मोहयित्वैनं नागलोकं विवेश सा ।

उसके पुत्र सुमति का किसी नागकन्या के साथ नागलोक में गमन—इस राजा ने चिरकाल के बाद सौ यज्ञ करने के उपरान्त एक पुत्र प्राप्त किया। पिता ने उसका नाम सुमति रखा। वह दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। थोड़े ही दिनों में वह युवावस्था को प्राप्त हो गया और सारी विद्याओं में तथा अस्त्र विद्या में भी निपुण हो गया। किसी समय जब वह मृगया के लिए बाहर उपवन में गया तो वहाँ रूप यौवनसम्पन्ना अभूतपूर्व लावण्यमयी युवती किसी स्त्री को देखकर काम से मोहित हो मूर्च्छित हो गया। तदनन्तर वह स्त्री उस सुमति को लेकर और उसे माया से मोहित कर नागलोक में, जहाँ उसका घर था, ले आई ॥ ६६-७० ॥

तस्यानङ्गमञ्जरीं वासुकितनयां परिणीय तत्रैव चिरकालनिवासः

तस्मिन् भोगवतीं रम्यां नागराजपुरीं तदा ॥ ७० ॥
प्रविश्यानङ्गमञ्जर्यै प्रायच्छत् सुमतिं रमा ।
तं दृष्ट्वा परमप्रीता सा वव्रे सुमतिं पतिम् ॥ ७१ ॥
तं लोकं तां पुरीं तां च नागकन्यां मनोहराम् ।
विलोक्य विस्मयं प्राप स तां चानङ्गमञ्जरीम् ॥ ७२ ॥

गान्धर्वेण विवाहेन परिगृह्य तया सह ।
रेमे विस्मृतसर्वस्वपुरीपितृपरिग्रहः ॥ ७३ ॥

वहाँ पर वासुकि की कन्या अनङ्गमञ्जरी से उसका विवाह करवाना और उसी नागलोक में उसका निवास करना—उस स्त्री ने, जिसका नाम रमा था, परम मनोहर भोगवती नाम की नागराजपुरी में प्रवेश कर सुमति को अनङ्गमञ्जरी के हवाले कर दिया । अनङ्गमञ्जरी उस सुन्दर राजकुमार को देखकर प्रसन्न हो गई । फिर उसे अपने पति के रूप में वरण कर लिया । उधर सुमति भी उस नागलोक को, उस पुरी को तथा नागराजकन्या अनङ्गमञ्जरी को देख विस्मित हो गया और उसके साथ गान्धर्व विवाह कर अपने पिता की पुरी को भुलाकर उसके साथ रमण करने लगा ॥ ७०-७३ ॥

पुत्रविरहात् खिद्यता राज्ञा चारैः पुत्रान्वेषणम्

एतस्मिन्नन्तरे राजा शुश्रावानागतं सुतम् ।
त्वरया परयाविष्टः सचिवांश्चेदमब्रवीत् ॥ ७४ ॥
कृच्छ्राल्लब्धः प्रियः पुत्रो ममैकोऽद्य प्रवेश्यताम् ।
तेन सार्धं तु भुञ्जीय न भोक्ष्येऽद्येत्यचोदयत् ॥ ७५ ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्ययुः सर्वतो दिशः ।
सचिवैः प्रेषिताश्चारा दूताश्चान्ये जवान्विताः ॥ ७६ ॥
विदिक्षु दिक्षु कोणेषु गिरिष्वप्सु सरित्सु च ।
ग्रामेषु नगरेष्वेते चेरुश्चैत्येषु शाखिषु ॥ ७७ ॥
पत्तनेष्वप्यरण्येषु तीर्थेष्वन्विष्य सर्वतः ।
नापश्यन् सुमतिं सर्वे तथैवोचुर्नृपाय वै ॥ ७८ ॥

पुत्र के विरह से खिन्न राजा सुनीति द्वारा पुत्र के अन्वेषण के लिए यत्र-तत्र गुप्तचरों को भेजना—जब राजा को मालूम हुआ कि मृगया के लिए गया राजकुमार अभी तक नहीं लौटा, तो वह खिन्न होकर शीघ्रता से मन्त्रियों को बुलाकर ऐसा कहने लगा—'मैंने जिस पुत्र को इतने कष्ट से प्राप्त किया, उस पुत्र का शीघ्रता से आप लोग पता लगाइये । मैं आज उसी के साथ भोजन करूँगा । अन्यथा उपवास करूँगा' ऐसा कहा । राजा की बात सुनकर मन्त्री गणों ने चारों दिशाओं में ढूढ़ने के लिए गुप्तचरों को भेजा । तब दूत भी बड़ी शीघ्रता से दिशाओं में, विदिशाओं के कोनों, पहाड़ों, जलों एवं नदियों में, ग्रामों में, नगरों में, चैत्यों में, वृक्षों पर, नगर में, अरण्य में तथा तीर्थों में सर्वत्र उसे ढूंढने लगे । किन्तु कहीं भी जब राजकुमार का पता नहीं लगा तब राजा से जहाँ-जहाँ देखा था वहाँ-वहाँ की सारी बात उसी प्रकार कह दी ॥ ७४-७८ ॥

अलब्धपुत्रवृत्तान्तेन राज्ञा अनशनव्रतस्वीकरणम्

तच्छ्रुत्वा शोकसन्तप्तो विलप्य बहु भूपतिः ।
अनश्नन्नशयिष्टान्तः शोकेन महतावृतः ॥ ७९ ॥

पुत्र का पता न पाकर राजा के द्वारा अनशन व्रत का आरम्भ—इस बात को सुनकर

राजा शोक सन्तप्त हो नाना प्रकार का विलाप करने लगे और बिना खाये पिये उस दिन अन्तः पुर में सो गए ॥ ७९ ॥

पुरोधसा कण्वाश्रमगमनपूर्वकं तस्मिन् राजवृत्तस्य निवेदनम्

एवं शोकाभिभूतेऽस्मिन् महाराजे पुरोहितः ।
स्वगुरुं कण्वमासाद्य तमसातीरवासिनम् ॥ ८० ॥
वृत्तं विज्ञापयामास राजपुत्रस्य तादृशम् ।

पुरोहित द्वारा कण्वाश्रम में जाकर अपने गुरु कण्व से राजवृत्तान्त का निवेदन—इस प्रकार राजा को शोकाभिभूत देखकर पुरोहित ने अपने गुरु कण्व के पास, जो तमसा तट पर निवास करते थे, राजपुत्र का सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ८०-८१ ॥

कण्वमुनिना राजकुमारवृत्तान्तस्याविष्करणम्

तच्छ्रुत्वा स मुनिर्युक्तो बभूव कृपया पुनः ॥ ८१ ॥
दृष्ट्वा कुमारवृत्तान्तं योगेनास्मात् समुत्थितः ।
स तस्मै कथयामास तद्वृत्तमखिलं मुनिः ॥ ८२ ॥
आसीद् भोगवती नाम पुरी परमशोभना ।
पाताले नागराजस्य वासुकेरमितद्युतेः ॥ ८३ ॥
अनङ्गमञ्जरी नाम तस्यां तस्याभवत् सुता ।
रूपलावण्यसम्पन्ना कालेन प्राप्तयौवना ॥ ८४ ॥
अस्या यस्मिन् वरे लिप्सा तस्मै दास्यामि तामिति ।
सङ्कल्पं वासुकेर्मत्वा चेट्यश्चेरुरितस्ततः ॥ ८५ ॥
तस्याः सदृशमन्वेष्टुं वरं तं नैव लेभिरे ।
नागलोके तथा भूम्यां व्यचरन् वरवाञ्छया ॥ ८६ ॥
तत्रैनं सुमतिं दृष्ट्वा राजपुत्रं मनोहरम् ।
प्रोचुस्तस्या महाराजतनयो मदनोपमः ॥ ८७ ॥
तवैव सदृशो भूम्यां पुरुहूतसमः श्रिया ।
न च सामादिभिः शक्यः समानेतुमसाविति ॥ ८८ ॥
तदाकर्ण्य तमत्रैव क्षिप्रमानयतेति ताः ।
उक्त्वा तत्सङ्गमौत्सुक्यात् परां चिन्तामुपागता ॥ ८९ ॥
ततः सम्मन्त्र्य ताः सख्यो रमां मायाविशारदाम् ।
मायया मोहयित्वैनमिहानय मनोरमम् ॥ ९० ॥
इत्यूचुः सा तथोक्तैनमानयामास मायया ।
सुमतिस्तामथोद्वाह्य रमते तत्र साम्प्रतम् ॥ ९१ ॥

कण्व मुनि द्वारा राजकुमार के सम्पूर्ण वृत्तान्त का समाधि में दर्शन—पुरोहित की बात सुनकर कृपा से करुणापूर्ण होकर मुनि समाधिस्थ हो गए और योग से सारी घटना

जान कर समाधि से उठे। तदनन्तर राजकुमार का सारा वृत्तान्त इस प्रकार कहा—पाताल में परम तेजस्वी वासुकि नाम के राजा की राजधानी भोगवतीपुरी है। वहाँ पर अनङ्गमञ्जरी नाम की उसकी एक कन्या है जो रूप तथा लावण्य से सम्पन्न युवावस्था को प्राप्त है। 'इस लड़की का जिस वर में अभिलाष होगा, उसी वर को मैं अपनी कन्या प्रदान करूँगा' ऐसा उसके पिता का सङ्कल्प जान दूतियाँ जहाँ-तहाँ भेजी गईं। किन्तु उन्होंने उसके सदृश कहीं भी वर प्राप्त नहीं किया। वे पाताल एवं भूलोक में वर खोजने के लिए विचरण करने लगीं। तदनन्तर उन्होंने सुमति नामक परम मनोहर राजकुमार को उसके सदृश वर देख कर कन्या से निवेदन किया कि राजा सुनीति का लड़का काम के सदृश आपके कन्या के अनुरूप बहुत सुन्दर वर है। वह इस पृथ्वी का इन्द्र है। किन्तु सामदामादि किसी भी उपाय से भी उसका ले आना शक्य नहीं है। अनङ्गमञ्जरी ने जब ऐसा सुना तो बोली—'उन्हें शीघ्र यहाँ लाओ।' उसकी सखियाँ भी राजकुमार से सङ्गम के लिए उसे उत्सुक देखकर चिन्तित हो गईं। फिर विचार कर उन्होंने माया में विशारद रमा को उसे लाने के लिए भेजा और कहा—'आप माया से मोहित कर राजकुमार को यहाँ लाओ।' तदनन्तर रमा ने माया से मोहित कर उसे पाताल लोक ले गई। फिर वह राजकुमार सुमति अनङ्गमञ्जरी से विवाह कर वहीं उसके साथ रमण करने लगा॥ ८१-९१॥

कुमारप्रत्याहरणे सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणस्यैव साधनत्वोपदेशः

सुदर्शनप्रभावेण विनाहरणकर्मणि।
नास्त्युपायान्तरं तस्य ततस्तेनाहराम्यहम्॥ ९२॥
सुदर्शनमहायन्त्रं दर्पणीकृत्य हाटकैः।
पूर्वोक्तवर्त्मना तेन तमानयत मा चिरम्॥ ९३॥
इत्युक्त्वा स पुनश्चक्रे तपः परमदारुणम्।

राजकुमार को लाने के लिए कण्व का सुदर्शन यन्त्र घटित दर्पण का उपदेश करना—तदनन्तर कण्व ने कहा—सुदर्शन यन्त्र घटित दर्पण के सिवाय उसे वापस लाने का कोई और उपाय नहीं है। अतः उसी से मैं उसे वहाँ से लाने में समर्थ हो सकता हूँ। बाजार में सुदर्शन यन्त्र को दर्पण में मढ़वा लीजिए। तदनन्तर उसी को धारण कर राजकुमार को वापस लाइए। विलम्ब मत करिए। ऐसा कह वे पुनः अपने कठोर तप में लग गए॥ ९२-९४॥

यथोपदिष्टानुष्ठानात् राज्ञो नागलोकगमनसिद्धिः

पुरोहितो विनिष्क्रम्य राज्ञे सर्वं न्यवेदयत्॥ ९४॥
राजा च परमप्रीतः कृत्वा यन्त्रितदर्पणम्।
रथे पुरस्तात् संस्थाप्य बिलद्वारं तदा ययौ॥ ९५॥
तेनाभिगन्तुं शक्तोऽभूत् सुनन्दो दर्पणौजसा।

वैसा करने से राजा सुनीति को नागलोक जाने के सामर्थ्य की प्राप्ति—पुरोहित ने कण्वाश्रम से लौटकर राजा से सारी बातें कहीं। राजा ने प्रसन्न होकर दर्पण में सुदर्शन यन्त्र

को स्थापित किया। तदनन्तर रथ पर उसे आगे रखकर पाताल के द्वार पर पहुँचे। फिर तो उस दर्पण के तेज से वह बड़ी प्रसन्नता के साथ पाताल लोक में चले गए॥ ९४-९६॥

अत्यद्भुतनागलोकदर्शनात् राज्ञो विस्मयातिशयः

प्रविश्य लोकं नागानां स्वर्गलोकमिवापरम्॥ ९६॥
विस्मयं परमं प्राप तत्समृद्धिविलोकनात्।

अत्यन्त अद्भुत उस नागलोक को देखते ही राजा का विस्मयान्वित होना—वह राजा एक दूसरे स्वर्ग के समान उस नागलोक की समृद्धि देख कर परम विस्मय को प्राप्त हुआ॥ ९६-९७॥

राज्ञा सदारस्य कुमारस्य स्वपुरीं प्रति प्रत्यानयनम्

तस्मिन् भोगवतीं रम्यां नागराजपुरीमसौ॥ ९७॥
प्रविश्याथानयामास पुत्रं परमवत्सलः।
सदारः पितरं द्रष्टुं शुद्धान्तात् सुमतिस्तदा॥ ९८॥
निर्ययौ वनितालोकसहितो मदनो यथा।
तं ताभिर्नागकन्याभिः सह स्यन्दनमुत्तमम्॥ ९९॥
आरोप्य स्वपुरीं राजा प्रतस्थे परवीरहा।

राजा द्वारा भार्या समेत राजकुमार को अपनी पुरी लाने का प्रयत्न करना—नागराज वासुकी की उस भोगवती नामक मनोहर नगरी में राजा गए। पुत्रवत्सल राजा पाताल में प्रवेश कर पुत्र को ले आए। सुमति भी अपने पिता का दर्शन करने के लिए रनिवास से रानियों के साथ कामदेव के सदृश निकला। तब राजा ने उन नागकन्याओं के सहित अपने पुत्र को उत्तम रथ पर बैठा लिया और अपनी पुरी की ओर चल पड़ा॥९७-१००॥

ततः क्रुद्धस्य वासुकेर्युद्धसमुद्योगः

तव जामातरं पुत्रीं स्वावरोधान्महीपतिः॥ १००॥
कश्चित् स्यन्दनमारोप्य यातीत्याकर्ण्य वासुकिः।
निर्ययौ परमक्रुद्धः फणिसेनापरीवृतः॥ १०१॥
स दृष्ट्वा राजशार्दूलं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
क्व गम्यते समादाय वधूं वरमितस्त्वया॥ १०२॥

क्रुद्ध हुये वासुकि का युद्ध के लिए उद्योग—'कोई राजा आपके रनिवास से आपकी पुत्री तथा जामाता को रथ पर बैठाकर लिए जा रहा है।' यह समाचार सुन कर क्रुद्ध हुये वासुकि सर्पों की सेना के साथ युद्ध करने की इच्छा से उद्यत हो गए और राजा को देख कर कहने लगे 'सावधान! खड़े रहो, खड़े रहो'। आप वधू समेत वर को लेकर अब कहाँ जा रहे हो?॥ १००-१०२॥

सुदर्शनयन्त्रघटितदर्पणप्रभावात् राज्ञो विजयलाभः

सुनन्दोऽथ समाकर्ण्य निवर्त्य स्यन्दनोत्तमम्।

वव्रे दर्पणमद्यैव शत्रुसेनां जहीति वै ॥ १०३ ॥
ततः प्रस्वापनाग्नेये दिव्यास्त्रे निःसृते क्षणात् ।
प्रस्वापनं नागसेनां विवेशानेन सास्वपत् ॥ १०४ ॥
आग्नेयमस्त्रमारब्ध तां पुरीं दग्धुमोजसा ।

सुदर्शन यन्त्र घटित दर्पण के प्रभाव से राजा को विजय की प्राप्ति—सुनन्द ने भी वासुकि को आते देख अपना रथ पीछे की ओर लौटाया और दर्पण से कहा—हे दर्पण ! आप मेरे इन शत्रुओं का विनाश करिए । फिर तो तत्क्षण उस दर्पण से प्रस्वापन और आग्नेयास्त्र निकले । प्रस्वापन ने सारी नागसेना में प्रवेश कर उन्हें सुला दिया और आग्नेयास्त्र क्रोध में भरकर नागपुरी को जलाने लगा ॥ १०३-१०५ ॥

पराजितेन वासुकिना शरणागतिपूर्वकं राजाभ्यर्हणम्

तद्दृष्ट्वा नागराजस्तं शरणं समुपागमत् ॥ १०५ ॥
नाज्ञायि सर्वमस्माभिस्तदेतत् क्षम्यतां विभो ।
अत्याहितमिदं स्त्रीणामिति मत्वा शमं व्रज ॥ १०६ ॥
गृहाणेमानि रत्नानि महार्हाणि महाद्युते ।
इमां च कन्यामन्याश्च सहस्रं नागयोषितः ॥ १०७ ॥
आदाय प्रतिसंहृत्य दिव्यास्त्रे गन्तुमर्हसि ।

पराजित वासुकि का शरणागत होना तथा राजा की अर्चना करना—यह देख कर नागराज राजा की शरण में गया और कहा—हे प्रभो ! मुझे यह ज्ञात नहीं था । इसलिए क्षमा करे । यह स्त्रियों के न जानने से ऐसा हुआ । अतः शान्त हो जाइये ! हे महातेजस्वी राजन् ! इन अमूल्य रत्नों को ग्रहण कीजिये । एक कन्या तो आपकी हुई ही । इन सहस्र नागकन्याओं को भी ले लीजिये और इन दिव्यास्त्रों का प्रतिसंहार (लौटा) कर वापस चले जाइये ॥ १०५-१०८ ॥

ततो राज्ञः सपरिकरस्य स्वपुरप्रवेशः

सुनन्दोऽपि तथेत्युक्त्वा संहृत्यास्त्रे समाहितः ॥ १०८ ॥
ततः स्वपुत्रं रत्नानि महान्ति वरयोषितः ।
आदायामन्त्र्य तं राजा जगाम स्वपुरीं कृती ॥ १०९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां श्रीसुदर्शनमहायन्त्र-
घटितासनादिप्रभाववर्णनं नाम अष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३०४५ ॥

* * *

तदनन्तर परिवार सहित राजा का अपने पुर को आगमन—तब सुनन्द ने सावधान हो 'तथास्तु कहा' और उन दोनों दिव्यास्त्रों का उपसंहार कर लिया। फिर पुत्र, महर्घरत्न तथा उत्तमोत्तम नागकन्याओं को लेकर राजा ने विदा की आज्ञा ले कर उनसे कृतार्थ होकर पुनः अपनी पुरी को लौट आए ॥ १०८-१०९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के श्रीसुदर्शन-
महायन्त्रघटितासनादि प्रभाव वर्णन नामक अड़तालीसवें अध्याय की
शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के
द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय
कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४८ ॥

* * *

अथ एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

सुदर्शनमहायन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिसका अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

सुदर्शनयन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपण

अहिर्बुध्न्यः—

सुदर्शनमहायन्त्रघटितस्य ध्वजस्य तु ।
प्रभावः श्रूयतां सम्यग् याथातथ्येन नारद ॥ १ ॥

सुदर्शन यन्त्र घटित ध्वज का प्रभाव निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—अब हे नारद ! सुदर्शन यन्त्र घटित ध्वज का प्रभाव जैसा है उसे भली प्रकार सुनिए ॥ १ ॥

चित्रशेखराधिष्ठितभद्रवाटीनगरवर्णनम्

सरस्वत्यास्तटे रम्ये भद्रवाटीति विश्रुता ।
परःसहस्रैः प्रासादैर्जातरूपमयैश्चिता ॥ २ ॥
पुरी विविधकामाढ्या हेमसालसमन्विता ।
समृद्ध्या त्रिदिवप्रख्या बभूव भुवि दुर्लभा ॥ ३ ॥
तामध्यास्ते महावीर्यो राजोपरिचरात्मजः ।
पालयन्नैकवर्षाणि चित्रशेखरसंज्ञितः ॥ ४ ॥

चित्रशेखर राजा की राजधानी भद्रवाटी नगरी का वर्णन—सरस्वती नदी के सुरम्य तट पर भद्रवाटी नाम की एक नगरी थी जिसमें सुवर्ण निर्मित सहस्राधिक ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें थीं । वह पुरी बहुत लुभावनी थी । उसमें सुवर्णमय साल के वृक्ष लगे हुये थे । समृद्धि में तो वह स्वर्ग ही थी जो पृथ्वी में अन्यत्र दुर्लभ है । उसमें उपरिचर राजा का महाबलवान् पुत्र राज्य का पालन करते हुये निवास करता था । उसका नाम चित्रशेखर था ॥ २-४ ॥

तत्पित्रोपरिचरेण कदाचिद् द्वन्द्वयुद्धे शङ्कुकर्णाख्यासुरहननम्

पितर्यस्य पुरा दिव्यमिन्द्रदत्तं क्रमागतम् ।
रथमारुह्य देवानां कार्यार्थं याति खे बली ॥ ५ ॥
शङ्कुकर्ण इति ख्यातो दानवो भीमलोचनः ।
जिघृक्षुस्तद्रथं मार्गे तस्य कूबरमग्रहीत् ॥ ६ ॥
उवाच च मया सार्धं युध्यस्व यदि वा रथम् ।
जहि वेत्युक्तवत्यस्मिन् स तथेत्यग्रहीद् धनुः ॥ ७ ॥
ततस्तेन महायुद्धे दिनमेकं प्रवर्तिते ।
अथास्त्रजालमुत्सृज्य द्वन्द्वयुद्धे हतोऽसुरः ॥ ८ ॥

उसके पिता उपरिचर द्वारा द्वन्द्व युद्ध में शङ्कुकर्ण नामक असुर का वध करना— उसके पिता उपरिचर के पास इन्द्र के द्वारा दिया गया पितृ-परम्परा से प्राप्त एक रथ था । वह देवताओं के कार्य के लिए उसी रथ पर सवार होकर आकाश मार्ग से जाया करता था । किसी समय आकाश गमन करते हुये उपरिचर के रथ को पकड़ने के लिए रथ के कूबर को भयानक नेत्र वाले शङ्कुकर्ण नामक दानव ने पकड़ लिया और बोला—यदि रथ चाहते हो तो मेरे साथ युद्ध करिए और मेरा वध करिए । राजा ने 'तथास्तु' कह कर दिव्य धनुष हाथ में लिया । तदनन्तर एक दिन पर्यन्त अस्त्रजालों का युद्ध चलता रहा । फिर द्वन्द्व युद्ध होने लगा जिसमें राजा ने असुर का वध कर दिया ॥ ५-८ ॥

अमर्षणनाम्ना शङ्कुकर्णसुतेन चित्रशेखरपीडनम्

जित्वा तमसुरं राज्ञि कालेनास्तंगते मुने ।
तत्पुत्रं शङ्कुकर्णस्य सुतः परमरोषणः ॥ ९ ॥
अमर्षण इति ख्यातो मायावी चित्रशेखरम् ।
जिघांसुस्तद्बलं राज्ञः पुरं चापीडयत् सदा ॥ १० ॥
एकदामर्षणः क्रुद्धो भद्रवाटीमुपागमत् ।
पितृहन्तृसुतं योद्धुं ससैन्यं चित्रशेखरम् ॥ ११ ॥
निहत्य चैनमादास्ये सर्वं तत्स्यन्दनोत्तमम् ।
इत्युक्त्वा नगरीं रम्यां रुरोध बलदर्पितः ॥ १२ ॥

शङ्कुकर्ण के पुत्र अमर्षण द्वारा उपरिचर के पुत्र चित्रशेखर को पीड़ित करना—हे मुने ! उस असुर को जीत कर कुछ दिन के बाद जब राजा की मृत्यु हो गई तो शङ्कुकर्ण का पुत्र जो बड़ा क्रोधी था ! उपरिचर के पुत्र चित्रशेखर को पीड़ा पहुँचाने लगा । वह बड़ा मायावी था । वह चित्रशेखर की सारी सेनाओं के वध करने की इच्छा से उसके पुर को बारम्वार पीड़ा पहुँचाता रहता था । एक बार वह अमर्षण जब भद्रवाटी नगर में आया । उसने यह विचार कर उस नगरी को घेर लिया कि पितृहन्ता उपरिचर के इस पुत्र चित्रशेखर का ससैन्यवध कर उसके पितृपरम्परागत रथ को ले जाऊँगा ॥ ९-१२ ॥

चित्रशेखरस्य तेन सह घोरयुद्धम्

निर्ययौ महतीं सेनां सन्नह्य नृपतिः पुरात् ।
तत्र युद्धं समभवद्राज्ञस्तेन दुरात्मना ॥ १३ ॥
सरणैश्चाभिसरणैः कचाकचि भयावहम् ।
गजाश्वरथपादातं प्रभग्नरथमाकुलम् ॥ १४ ॥
प्रवृत्तासृक्सरित्सार्थं कृत्तच्छत्रध्वजाचितम् ।
नृत्यत्कबन्धमुत्कृत्तदष्टाधरशिरश्चितम् ॥ १५ ॥

चित्रशेखर द्वारा उस असुर से घोर युद्ध का वर्णन—शत्रु को आया देख चित्रशेखर भी कवच धारण कर बहुत बड़ी सेना लेकर नगर के बाहर चला आया । वहाँ उस दुरात्मा असुर के साथ आगे-पीछे पैंतरेबाजी से भयावह परस्पर कचग्रहण द्वारा, हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेना के हताहत होने से महा भयानक ऐसा युद्ध हुआ कि उससे घोर रक्त की नदी बह चली । जिसमें सैनिकों के छत्र ध्वज, नाचते कबन्ध, काटे गए तथा दाँतों से अधर को दष्ट करने वाले शिर दिखाई पड़ रहे थे ॥ १३-१५ ॥

दिनत्रयं युध्यमानस्यापि विजयालाभः

एवं दिनत्रयं युद्धं प्रवृत्तं रोमहर्षणम् ।
न लेभे विजयं तस्मिन्नाहवे चित्रशेखरः ॥ १६ ॥

तीन दिन तक युद्ध करते रहने पर भी किसी को विजय श्री न मिलना—इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देने वाला तीन दिन तक लगातार युद्ध हुआ । फिर भी चित्रशेखर को उस युद्ध में विजय-श्री नहीं मिली ॥ १६ ॥

श्रान्तसेनयोर्द्वयोरपि युद्धात् प्रतिनिवृत्तिः

श्रमान्निववृते सेनाद्वयी तस्माद् द्वयोरपि ।
तावुभौ जग्मतुः स्वं स्वं पुरं विश्रान्तवाहनौ ॥ १७ ॥

अन्त में थक कर दोनों ओर की सेनाओं का लौट जाना—विजय-श्री न मिलने के कारण दोनों ओर की सेनायें थक जाने से वापस लौट गईं और वे दोनों भी अपने-अपने रथ के घोड़ों के थक जाने से अपने-अपने नगर लौट आये ॥ १७ ॥

एवं सप्तदशवारं युध्यमानस्यापि विजयासिद्धिः

वारान् सप्तदशैतेन युयुधे चित्रशेखरः ।
एवमेव जयं प्राप न क्वचित् पृथिवीपतिः ॥ १८ ॥

इस प्रकार का युद्ध सत्रह बार होना परन्तु चित्रशेखर की विजय न होना—वह राजा चित्रशेखर इसी प्रकार सत्रह बार तक लड़ता रहा फिर भी उसे विजय लाभ न प्राप्त हो सका ॥ १८ ॥

खिन्नस्य राज्ञः चिन्ताप्रकारः

अथ दुर्जयमालोच्य महासुरममर्षणम् ।

केनोपायेन जेतव्य इति चिन्तापरोऽभवत्॥ १९ ॥
महादेवप्रसादेन विना नैव जयो मम।
अतस्तं तपसा देवं तोष्यामीति मनो दधे॥ २० ॥

खिन्न होकर राजा का विचार करना—तब राजा ने उस महासुर अमर्षण को दुर्जय समझ कर विचार किया कि जब तक भगवान् शङ्कर प्रसन्न नहीं होते तब तक मेरी विजय होने वाली नहीं। इसलिए निश्चय ही अब उन महादेव को प्रसन्न करुँगा ॥ १९-२०॥

कृतनिश्चयस्य कैलासगमनम्

कृती निश्चित्य मनसा राज्यं संन्यस्य मन्त्रिषु।
जगाम तपसे राजा रथमारुह्य कामगम्॥ २१ ॥
कैलासशिखरं रम्यं नभसा वसुधाधिपः।

कृतनिश्चय चित्रशेखर का कैलास गमन—तब मन में ऐसा विचार कर उस राजा ने राज्य का भार मन्त्रियों पर सौंप दिया और कामना के अनुसार चलने वाले रथ पर सवार होकर आकाश के रास्ते सुरम्य कैलास शिखर पर तपस्या के लिए चल पड़ा ॥२१-२२॥

गगने गच्छतोऽस्य मन्दरोपरि स्यन्दनगतिप्रतिरोधः

तेनैव गच्छतस्तस्य स्यन्दनं मन्दरोपरि॥ २२ ॥
अतिष्ठत् प्रेर्यमाणेषु वराश्वेष्वपि नारद।

आकाशमार्ग से जाते हुये मन्दराचल पर रथ की गति का रुकना—आकाश मार्ग से जाते हुये उसके रथ की गति मन्दराचल पर्वत पर रुक गई। हे नारद! यद्यपि घोड़ों को कई बार आगे वढ़ने के लिए प्रेरित किया गया ॥ २२-२३ ॥

तत्कारणजिज्ञासया चरतस्तत्र कुबेरदर्शनम्

रथः कस्मादकस्मान्मे विष्टब्ध इति विस्मितः॥ २३ ॥
रथादवातरच्छृङ्गे तस्य रम्ये महीपतिः।
अवतीर्य रथात् तस्माच्चचार गिरिमूर्धनि॥ २४ ॥
तत्रापश्यत् सरस्तीरे तरुणं दिव्यलक्षणम्।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यामवस्थितमनाकुलम्॥ २५ ॥
तरुणादित्यसङ्काशं ज्वलन्तं प्रभया स्वया।

रथ के निरोध का कारण पता लगाने के लिए रथ से उतर कर इधर-उधर घूमते हुये राजा को कुबेर का दर्शन—राजा विस्मित था कि अकस्मात् हमारा रथ क्यों रुक गया? तब वह मन्दराचल के सुरम्य शिखर पर रथ से उतर पड़ा और उसी जगह इधर-उधर टहलने लगा। वहाँ उसने किसी तालाव के सन्निकट दिव्य लक्षण लक्षित एक तरुण को देखा जो सायङ्कालीन सन्ध्या कर प्रसन्न चित्त बैठा हुआ था। वह अपनी प्रभा से दोपहर के सूर्य के समान प्रज्वलित-सा हो रहा था ॥ २३-२६ ॥

तेन समं संलापः

तं प्रणम्य महाबाहुः कृताञ्जलिरभाषत ॥ २६ ॥
कस्त्वं पुराणपुरुषो यदि वा कमलोद्भवः ।
उमेश्वरो दिशेशानां यदि वान्यतमो भवान् ॥ २७ ॥
इत्युक्तस्तेन भगवान् प्राह गम्भीरया गिरा ।
किं नामकोऽसि कथय किमागमनकारणम् ॥ २८ ॥
एकाकिना त्वया देशः कथं प्राप्तोऽयमित्यपि ।

राजा का उससे वार्त्तालाप—महाबली उस राजा ने उस दिव्य पुरुष को प्रणाम किया फिर हाथ जोड़ कर बोला—आप कौन हैं? क्या पुराण पुरुष विष्णु हैं? अथवा ब्रह्मदेव हैं? अथवा सदाशिव हैं? अथवा दिगीश्वरों में कोई दिगीश्वर हैं? इस प्रकार पूछे जाने पर उन भाग्यवान् ने गम्भीर वाणी में कहा—आपका नाम क्या है? यहाँ आपका आना किस कारण से हुआ? आप अकेले इस प्रदेश में कैसे चले आये? ॥ २६-२९ ॥

राज्ञा कुबेरे स्ववृत्तान्तस्य निवेदनम्

अथ न्यवेदयत् सर्वं राजोपरिचरात्मजः ॥ २९ ॥
चित्रशेखरनामानमात्मानमवनीपतिम् ।
महासुरप्रवृत्तिं च स्वस्य तेन च पीडनम् ॥ ३० ॥
तज्जयायेशतुष्ट्यर्थं तपश्चरणकारणात् ।
स्यन्दनेनाभिगमनं निरोधं तत्र तस्य तु ॥ ३१ ॥

राजा द्वारा कुबेर से स्ववृत्तान्त निवेदन—तब उपरिचर के पुत्र उस राजा ने सारी बीती बात निवेदन की । उसने अपने को चित्रशेखर नाम का राजा बताकर उस महासुर का उपद्रव और उससे अपना सताया जाना आदि कह कर निवेदन किया कि मैं उसी राक्षस पर विजय के लिए तपस्या द्वारा सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए कैलास जा रहा हूँ । किन्तु यहाँ मेरा रथ अकस्मात् रुक गया है ॥ २९-३१ ॥

कुबेरवचनात् तत्र गिरौ लक्ष्मीनिवासपरिज्ञानम्

इत्युक्तस्तेन सोऽप्याह विद्धि मां गुह्यकेश्वरम् ।
अत्रैवास्ते महालक्ष्मीः सर्वकारणकारणम् ॥ ३२ ॥
तत्सेवार्थमिह प्राप्तः सा हि सर्वगतिः परा ।
तदाज्ञयैव चरतश्चन्द्रसूर्यौ विहायसि ॥ ३३ ॥
तत्प्रभावेण ते भग्नं गमनं स्यन्दनस्य तु ।

कुबेर के वचन से राजा को मालूम हुआ कि यहाँ महालक्ष्मी का निवास है—राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस तेजस्वी पुरुष ने कहा—राजन्! मुझे गुह्यकों का राजा कुबेर समझें । सभी कारणों की कारणभूता महालक्ष्मी यहाँ रहती हैं । मैं उन्हीं की सेवा के लिए यहाँ आया हूँ क्योंकि वही सबकी रक्षा करने वाली हैं । सूर्य और चन्द्रमा

उन्हीं की आज्ञा से आकाश में सञ्चरण करते हैं। आपके रथ की रुकावट भी उन्हीं के प्रभाव से हुई है ॥ ३२-३४ ॥

लक्ष्मीप्रसादनोपदेशपूर्वकं कुबेरान्तर्धानम्

तां दृष्ट्वा साधयाभीष्टमित्युक्त्वान्तरधीयत ॥ ३४ ॥

लक्ष्मी को प्रसन्न करने का उपदेश कर कुबेर का अन्तर्द्धान होना—उनका दर्शन कर अपने मनोरथ को पूर्ण करिए। इतना कह कर कुबेर अन्तर्हित हो गए ॥ ३४ ॥

राजसाहाय्यार्थं कुबेरप्रहितपुरुषसमागमः

तस्य साहाय्यकामोऽन्यस्तन्निदेशादुपागमत्।
प्रणम्य भूपतिं प्राह गुह्यकोऽहं तदाज्ञया ॥ ३५ ॥
साहाय्यकामस्ते प्राप्तो वसावोऽत्रैव शर्वरीम्।
प्रत्यूषेऽपेक्षितं यत् स्यात् तत् करिष्यामि नान्यथा ॥ ३६ ॥

राजा की सहायता के लिए कुबेर द्वारा भेजा गया गुह्यक का आगमन—उस राजा की सहायता के लिए कुबेर द्वारा भेजा गया गुह्यक वहाँ आया और राजा को प्रणाम कर बोला—मैं कुबेर की आज्ञा से आपकी सहायता के लिए आया हूँ। आज रात हम दोनों यहीं निवास करे। प्रातःकाल होने पर आपकी अपेक्षित सहायता करुँगा और सब ठीक हो जायेगा ॥ ३५-३६ ॥

तद्वचनात् तत्रैव स्थाने तद्रात्रियापनम्

परस्परप्रणयिनौ तां रात्रिं तत्र चोष्य तु।
देव्याः सदसि गन्धर्वगीतवादित्रनिःस्वनम् ॥ ३७ ॥
शृण्वन्तौ तत्कथाभिश्च निन्यतुस्तां सरस्तटे।

कुबेर के सेवक की आज्ञानुसार राजा का वहीं रात्रि व्यतीत करना—दोनों ने आपस में मित्रता कर वह रात्रि वहीं बिता दी। दोनों ने देवी की सभा में गन्धर्वों द्वारा गाये जाने वाले गाने तथा बजाने के शब्दों तथा देवी की कथा सुनते हुये सारी रात बिताई ॥ ३७-३८ ॥

प्रभाते राज्ञा लक्ष्मीनिवासस्थानजिज्ञासया गुह्यकं प्रति प्रश्नः

प्रत्यूषसमये सन्ध्यामुपास्य प्रथमां नृपः ॥ ३८ ॥
गुह्यकं प्राह शैलेऽस्मिन् देवी सा कुत्र वर्तते।
केनाध्वना वा तद्धाम याम तद्दर्शनं कदा ॥ ३९ ॥

प्रातःकाल लक्ष्मी का निवास स्थान जानने हेतु राजा का गुह्यक से प्रश्न—प्रातःकाल हुआ तब राजा ने प्रातःकालीन सन्ध्या कर उस गुह्यक से पूछा 'इस पर्वत पर देवी का स्थान कहाँ है? वहाँ किस रास्ते से हम जावें और कब उनका दर्शन प्राप्त होगा?' ॥ ३८-३९ ॥

गुह्यकस्य प्रतिवचनम्

गुह्यकः प्रत्युवाचेदं क्रोशे तन्मन्दिरं परम्।

यतो गीतमृदङ्गानां निस्वनः श्रूयते महान् ॥ ४० ॥
कंचित् कालमुपास्यैनां धनदो यास्यति क्षणात् ।
तस्मिन् गते प्रविश्यैनां नमस्यसि सनातनीम् ॥ ४१ ॥

गुह्यक ने कहा—यहाँ से एक कोस की दूरी पर उन देवी का बहुत सुन्दर मन्दिर है। जहाँ से गाने-बजाने तथा मृदङ्ग का महान् शब्द सुनाई पड़ रहा है। कुबेर इस समय उनकी उपासना कर रहे हैं। उपासना के अनन्तर जब वे वहाँ से चले जायेंगे तब आप प्रवेश कर उन सनातनी देवी को नमस्कार करना ॥ ४०-४१ ॥

ततो गुह्यकेन सह लक्ष्मीमन्दिरगमनम्

प्रस्थापयामास ततो याममात्रं प्रतीक्ष्य तम् ।
राजापि स्वरथं तत्र संस्थाप्यैनमथान्वगात् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर राजा का गुह्यक के साथ लक्ष्मीमन्दिर गमन—एक प्रहर बीत जाने पर गुह्यक ने राजा को मन्दिर में जाने के लिए कहा। राजा भी रथ को वहीं छोड़कर उस गुह्यक को आगे कर उसके पीछे-पीछे चलने लगे ॥ ४२ ॥

गुहाद्वारदेशे गुह्यकस्यावस्थानम्

ततो महागुहापार्श्वे मन्दिरं समदृश्यत ।
तद्गुहाद्वारि सोऽतिष्ठत् पालयन् बिलगह्वरम् ॥ ४३ ॥

गुहा के द्वार स्थान पर गुह्यक का अवस्थान—तब गुफा के द्वार देश पर मन्दिर दिखाई पड़ा। उस गुफा के द्वार पर वह गुह्यक गुफा के द्वार का पालन करता हुआ वहीं स्थित हो गया ॥ ४३ ॥

राज्ञो मन्दिरान्तःस्थरत्नमण्डपे प्रवेशः

अतीत्य च ततः कक्ष्याश्चतस्रो मणिगोचराः ।
ततो रत्नमयं दिव्यं विवेशास्थानमण्डपम् ॥ ४४ ॥

राजा का मन्दिर के भीतर जहाँ रत्नमण्डप था वहाँ प्रवेश—तब मणिनिर्मित चार कक्ष्य का अतिक्रमण कर राजा ने रत्नमय दिव्य मण्डप स्थान में प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

मण्डपवर्णनम्

मणिस्थूणासहस्राढ्यं मण्डपं समदृश्यत ।
परःशतमहारत्नपर्यङ्कसमलङ्कृतम् ॥ ४५ ॥
रत्नमङ्गलदीपैश्च मण्डितं तुङ्गतोरणम् ।
अनेककल्पकाकीर्णं मणिपीठपरिष्कृतम् ॥ ४६ ॥
मन्दारकुसुमामोदैर्मृगनाभिमदैरपि ।
कस्तूरिकोत्थसौरभ्यैर्वासितान्तरमूर्जितम् ॥ ४७ ॥
अत्यादित्यप्रभं पुण्यं मुक्तादामविभूषितम् ।
हेमपङ्कजमालाढ्यं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ४८ ॥

धूपैः कालागरूद्भूतैः समन्तादधिवासितम् ।
कर्पूरमिश्रकालेयक्षोदपङ्कपरिष्कृतम् ॥ ४९ ॥
इतस्ततश्चरन्तीनां शक्तीनां भूषणारवैः ।
झणज्झणितमञ्जीरनिनदैर्नादितान्तरम् ॥ ५० ॥

मण्डप का वर्णन—हजारों मणिमय खम्भों पर वह मण्डप बना हुआ था जो महारत्नों से निर्मित अनेक रत्नपर्यङ्कों से सुसज्जित था । उसमें रत्न के दीपक जल रहे थे । ऊँचे-ऊँचे तोरण बँधे हुये थे । अनेक प्रकार के स्वच्छ मणियों के आसन से वह परिष्कृत था । मन्दार एवं परियात्र के पुष्पों से तथा कस्तूरिका से मण्डप का भतरी भाग सुवासित होकर गमगमा रहा था । उसकी प्रभा सूर्य के भी तेज को तिरस्कृत करने वाली थी । चारों ओर मोतियों की झालर लटक रही थी । सुवर्णमय कमल की मालाओं से तथा पताका ध्वजादिकों से वह सुशोभित हो रहा था । चारों ओर काला गुरु के धूप से सुवासित तथा कर्पूर मिश्रित कालेय के चूर्ण से वह परिष्कृत था । इधर-उधर आती जाती हुई देवी की शक्तियों के आभूषण के शब्दों से तथा मञ्जीर से निकलने वाले झणझण शब्दों से मण्डप का भीतरी भाग शब्दायमान हो रहा था ॥ ४५-५० ॥

मण्डपमध्यस्थरत्नपर्यङ्के अब्जासनस्थमहालक्ष्मीदर्शनम्

तन्मध्ये रत्नपर्यङ्के संस्कृताब्जासनाश्रिताम् ।
महालक्ष्मीं महानन्दां संश्रितां सर्वशक्तिभिः ॥ ५१ ॥
सर्वाभरणसंयुक्तां सर्वालङ्कारशोभिताम् ।
लावण्यामृतकल्पाङ्गीं शशिबिम्बनिभाननाम् ॥ ५२ ॥
संवीतदिव्यकौशेयां दिव्यचन्दनमालिकाम् ।
विलोक्य प्रणतो भूत्वा विस्मयस्तिमितोऽभवत् ॥ ५३ ॥

राजा को मण्डप के मध्यभाग में स्थित कमल के आसन पर आसीन महालक्ष्मी का दर्शन—उस मण्डप के मध्यभाग में स्थित पर्यङ्क पर सुसंस्कृत कमलासन पर विराजमान सभी शक्तियों से सेवित महान् आनन्द देने वाली महालक्ष्मी को राजा ने देखा । वे सर्वाभरण से युक्त, सर्वालङ्कार शोभित लावण्य रूपी अमृत के समान अङ्गवाली, चन्द्रमुखी, दिव्य कौशेय वस्त्र धारण की हुई तथा दिव्य चन्दन की माला से अलङ्कृत थी । इस प्रकार की महालक्ष्मी का दर्शन कर राजा ने उन्हें प्रणाम किया । फिर विस्मय से स्तब्ध हो गए ॥ ५१-५३ ॥

तत्पादोदकप्राशनपरिपूतेन राज्ञा तत्स्तुतिकरणम्

तत्पादाम्बु समादाय रतिरेनमपाययत् ।
सोऽथ तुष्टाव सुप्रीतस्तां देवीं शुभलोचनाम् ॥ ५४ ॥

उनके चरणोदक के स्पर्श से पवित्र राजा द्वारा महालक्ष्मी की स्तुति—तब रति ने महालक्ष्मी के चरणोदक का राजा को पान कराया । फिर प्रसन्न हुये राजा ने उन शुभलोचना भगवती महालक्ष्मी की इस प्रकार स्तुति की ॥ ५४ ॥

तत्र लक्ष्म्याः उभयविभूत्यैश्वर्यप्रतिपादनम्

महालक्ष्मि भद्रे परव्योमवासि-
न्यनन्ते सुषुम्नाह्वये सूरिजुष्टे ।
जये सूरितुष्टे शरण्ये सुकीर्ते
प्रसादं प्रपन्ने मयि त्वं कुरुष्व ॥ ५५ ॥
सति स्वस्ति ते गौरि गायत्रि गार्गि
ध्रुवे कामधेनो सुराधीशवन्द्ये ।
सुनीते सुपूर्णेन्दुशीते कुमारि
प्रसादं प्रपन्ने मयि त्वं कुरुष्व ॥ ५६ ॥
सदा सिद्धगन्धर्वयक्षेशविद्या-
धरैः स्तूयमाने रमे रामरामे ।
प्रशस्ते समस्तामरीसेव्यमाने
प्रसादं प्रपन्ने मयि त्वं कुरुष्व ॥ ५७ ॥

उस स्तुति द्वारा महालक्ष्मी के उभयविभूत्यात्मक ऐश्वर्य का प्रतिपादन—हे महालक्ष्मि, हे भद्रे, हे परमव्योमवासिनि, हे अनन्ते, हे सुषुम्ना नाम से जानी जाने वाली, हे विद्वानों से सुसुविते, हे जये, हे सूरितुष्टे, हे शरण्ये, हे सुकीर्त्ते ! आप मुझ शरणागत पर प्रसन्न होओ । हे सति, हे गौरि, हे गायत्रि, हे गार्गि, हे ध्रुवे, हे कामधेनु, हे सुरेश-वन्दिते ! आपका कल्याण हो । हे सुनीते ! हे पूर्ण चन्द्रमुखि ! हे कुमारि ! आप मुझ शरणागत पर प्रसन्न होइए । सर्वदा सिद्ध, गन्धर्व, यक्षेश, विद्याधरों से स्तूयमान रमा को रमण कराने वाली, प्रशस्त गुणों वाली, देवस्त्रियों से सेव्यमान ! हे महालक्ष्मि ! मुझ शरणागत पर प्रसन्न होइए ॥ ५५-५६॥

लक्ष्म्या एव निर्व्याजपुरुषकारत्वसमर्थनम्

दुरितौघनिवारणप्रवीणे
विमले भासुरभागधेयलभ्ये ।
प्रणवप्रतिपाद्यवस्तुरूप-
स्फुरणाख्ये हरिवल्लभे नमस्ते ॥ ५८ ॥
सिद्धे साध्ये मन्त्रमूर्ते वरेण्ये
गुप्ते तृप्ते नित्यमुद्गीथविद्ये ।
व्यक्ते विद्वद्भाविते भावनाख्ये
भद्रे भद्रं देहि मे संश्रिताय ॥ ५९ ॥
सर्वाधारे सद्गतेऽध्यात्मविद्ये
भाविन्यार्द्रे निर्वृतेऽध्यात्मवल्लि ।
विश्वाध्यक्षे मङ्गलावासभूमे
भद्रे भद्रं देहि मे संश्रिताय ॥ ६० ॥

लक्ष्मी ही निर्व्याज रूप से परमपुरुषार्थ हैं ऐसा प्रतिपादन—पाप समूह के निवारण में प्रवीण, सर्वथा विमल, महाभाग्यशालियों को ही भाग्यवशात् उपलब्ध होने वाली, प्रणव प्रतिपाद्यवस्तु रूप से स्फुरित होने वाली, हे हरिवल्लभे ! हम आपको नमस्कार करते हैं । हे सिद्धे, हे साध्यस्वरूपे, हे मन्त्रमूर्तें, हे वरेण्ये, हे गुप्ते, हे तृप्ते, हे नित्य उद्गीथविद्ये, हे व्यक्ते, हे विद्वद्भाविते, हे भावनाख्ये, हे भद्रे ! एकमात्र आपकी ही आशा करने वाले मुझे भद्र (कल्याण) प्रदान करिए । हे सर्वाधारे ! हे सज्जनों की रक्षा करने वाली, हे अध्यात्मविद्यास्वरूपे, हे भाविनि, हे आर्द्रें, हे आनन्दस्वरूपिणि, हे अध्यात्मवल्लि, हे विश्वाध्यक्षे, हे मङ्गलावास की भूमिस्वरूपा ! एकमात्र आपकी ही आशा करने वाले मुझे भद्र (कल्याण) प्रदान करिए ॥ ५८-६०

लक्ष्म्याः पारमार्थिकमङ्गलगुणाकरतया श्रुतिशिरोभूषणत्वम्

अमोघसेवे निजसद्गुणौघे
विदीपितानुश्रवमूर्धभागे ।
अहेतुमीमांस्यमहानुभावे
विलोकने मां विषयीकुरुष्व ॥ ६१ ॥

लक्ष्मी का पारमार्थिक मङ्गल करने के कारण तत्त्वत:श्रुति की शिरोभूषण स्वरूपा होना—जिनकी सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती, जो सद्गुण समूहों की खान हैं तथा जो श्रुति के मूर्धा स्थान में स्थित होकर जगमगा रही हैं, जिनका महानुभाव हेतुओं के विचार से परे है ऐसी हे महालक्ष्मि ! आप मुझे अपने नेत्रों का विषय बनाइए अर्थात् अपनी कृपा-कटाक्ष से मुझे देखिए ॥ ६१ ॥

उमाशचीप्रभृतीनां महालक्ष्मीविभूतित्वम्

उमाशचीकीर्तिसरस्वतीधी-
स्वाहादिनानाविधशक्तिभेदे ।
अशेषलोकाभरणस्वरूपे
विलोकने मां विषयीकुरुष्व ॥ ६२ ॥

उमा, शची प्रभृति देवियाँ महालक्ष्मी की विभूतियाँ हैं इसका प्रतिपादन—उमा, शची, कीर्त्ति, सरस्वती, धी एवं स्वाहा आदि रूपों से भिन्न-भिन्न शक्तियों वाली, समस्त संसार की भूषण स्वरूपे ! हे महालक्ष्मि ! आप मुझे अपने नेत्रों का विषय बनाइए और कृपा कटाक्ष से मेरी ओर देखिए ॥ ६२ ॥

स्तुतिप्रीतया लक्ष्म्या राजाभीष्टस्य प्रश्नः

इति स्तुतिं निशम्यैषा प्रसन्ना प्राह पार्थिवम् ।
प्रार्थितं ते ददाम्यद्य किं तत् कथय भूपते ॥ ६३ ॥

स्तुति से प्रसन्न महालक्ष्मी का राजा के अभीष्ट विषयक प्रश्न—इस स्तुति से प्रसन्न हुई महालक्ष्मी ने राजा से कहा—हे राजन् ! आंप क्या चाहते हैं? जिसे मैं आपको दूं ॥ ६३ ॥

राज्ञा स्ववृत्तान्तस्य निवेदनम्, लक्ष्म्या सुदर्शनयन्त्रघटितध्वजस्यार्पणञ्च

राजा च स्वान्वयं स्वं च महासुरनिपीडितम् ।
आचख्यौ सर्वमेवास्यै मा भैषीरिति साब्रवीत् ॥ ६४ ॥
अहमाधारभूतापि शक्तीनां जगतस्तथा ।
सुदर्शनप्रभावेण करोम्याश्रितरक्षणम् ॥ ६५ ॥
अनेन जहि ते शत्रुमिति ध्वजमथार्पयत् ।

राजा द्वारा स्ववृत्तान्त निवेदन एवं लक्ष्मी द्वारा सुदर्शन यन्त्र घटित ध्वज प्रदान करना—राजा ने अपने वंश की कथा तथा महासुर द्वारा दी गई पीड़ा आदि समस्त वृत्तान्त उनसे निवेदन किया । तब महालक्ष्मी ने कहा—राजन् ! आप भयभीत मत होइए । यद्यपि मैं सभी शक्तियों का तथा सारे जगत् का आधार हूँ तथापि सुदर्शन के प्रभाव से अपने आश्रितों की रक्षा करती हूँ । आप इसी से शत्रु पर विजय प्राप्त करिए, ऐसा कहकर उन्होंने राजा को ध्वज दिया ॥ ६४-६६ ॥

लक्ष्मीदत्तध्वजमहिम्ना शत्रुजयपूर्वकं राज्ञो निष्कण्टकराज्यलाभः

यन्त्रितं तं ध्वजं लब्ध्वा जगाम स्वपुरं नृपः ॥ ६६ ॥
जिगाय तेन महतीमासुरीं स वरूथिनीम् ।
तं च हत्वा सुखं राज्यमकरोच्चित्रशेखरः ॥ ६७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां सुदर्शनमहायन्त्रघटितध्वज-
प्रभावनिरूपणं नाम एकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३११२ ॥

* * *

लक्ष्मी से प्राप्त ध्वज द्वारा राजा की शत्रु पर विजय तथा निष्कण्टक राज्य लाभ—राजा यन्त्र युक्त उस ध्वज को प्राप्त कर अपने नगर चले गए । उसके प्रभाव से उन्होंने विशाल असुर सेना पर विजय प्राप्त कर लिया तथा असुर का वध कर निष्कण्टक राज्य करने लगे ॥ ६६-६७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के सुदर्शनमहा-
यन्त्रघटितध्वजप्रभावनिरूपण नामक तीसवें अध्याय की शैवागमावतार
महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ०
सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ४९ ॥

* * *

अथ पञ्चाशोऽध्यायः

कीर्तिमाल्युपाख्यानवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिन सुदर्शन का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उन सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

वक्ष्यमाणार्थसूचनम्

अहिर्बुध्न्यः—

इदं तु शृणु देवर्षे कीर्तिमाली वितानतः ।
अजयत् त्रिदिवं पूर्वं येनैव विधिना बली ॥ १ ॥

वितान के प्रभाव से विजय—अहिर्बुध्न्य ने कहा—अब हे देवर्षे नारद ! बलवान् कीर्त्तिमाली ने पूर्वकाल में वितान के प्रभाव से जिस प्रकार स्वर्ग पर विजय प्राप्त किया था उसे सुनिए ॥ १ ॥

भद्रशृङ्गनाम्ना राज्ञा भूमण्डलस्य परिपालनम्

भद्रशृङ्ग इति ख्यातो राजा परमधार्मिकः ।
आसीदुदारचरितो विशालाख्ये पुरे पुरा ॥ २ ॥
तस्य स्वपुरवत् पृथ्वीं सप्तद्वीपवतीमपि ।
शासतः शक्रकल्पस्य शरदामयुतं गतम् ॥ ३ ॥

भद्रशील नामक राजा द्वारा भूमण्डल का परिपालन—पूर्वकाल में परमधार्मिक, उदारचरित्र भद्रशील नाम से विख्यात राजा विशाल नामक नगर में राज्य करते थे । इन्द्र के समान उस तेजस्वी राजा के अपने पुर के समान ही सप्तद्वीपवती पृथ्वी का पालन करते हुये दस हजार वर्ष व्यतीत हो गए ॥ २-३ ॥

तत्पुत्रस्य कीर्तिमालिनो गुणवर्णनम्

तस्य दीर्घायुषः पुत्रः कीर्तिमाली मदोद्धतः ।

शूरः कमलपत्राक्षः कन्दर्प इव रूपवान् ॥ ४ ॥
बलवानप्रतिद्वन्द्वः सर्वशास्त्रविशारदः ।
विनयज्ञो महोदारः प्रतापी सत्यसङ्गरः ॥ ५ ॥
समरेष्वपरावर्ती गम्भीरो धनदर्पितः ।
मेघगम्भीरनिर्ह्लादी जिगीषुः शत्रुतापनः ॥ ६ ॥
मत्तद्विप इव स्वैरं चचार जगतीमिमाम् ।

भद्रशील के पुत्र कीर्त्तिमाली का गुण वर्णन—उन चिरञ्जीवी राजा का कीर्त्तिमाली नामक पुत्र था जो मदोद्धत, शूर, कमलनेत्र, काम के समान सौन्दर्य युक्त, बलवान्, द्वन्द्वयुद्ध में अप्रतिम, सर्वशास्त्रविशारद, विनयशील, कृपालु, प्रतापी, सत्यप्रतिज्ञ, युद्ध में कभी पीछे न हटने वाला, गम्भीर, धन से मदमत्त, मेघ के समान गम्भीर बोलने वाला, जिगीषु तथा शत्रुहन्ता था और मदमत्त हाथी के समान समस्त जगत् में विचरण करता था ॥ ४-७ ॥

पितुरनन्तरं तेनापि धर्मतो राज्यस्य पालनम्

तस्यैवं वर्तमानस्य पिता मृत्युमुपागतः ॥ ७ ॥
पितर्युपरते श्रीमाञ्छशास पितृवद् भुवम् ।
जगत्याः सर्ववृत्तान्तं चारैः कैश्चिद्विवेद सः ॥ ८ ॥
स्वपुरे स्वयमङ्गेषु चरितं वेद सप्तसु ।

पिता के उपरत हो जाने के पश्चात् उसके द्वारा भी धर्म पूर्वक पृथ्वी पालन—इस प्रकार रहते हुये कीर्त्तिमाली के सामने ही उसके पिता की मृत्यु हो गई । तदनन्तर श्री सम्पन्न कीर्त्तिमाली ही अपने पिता के समान पृथ्वी का पालन करने लगा और गुप्तचरों के द्वारा सारे पृथ्वी का तथा अपने पुर में राज्य के सप्ताङ्गों का स्वयं ज्ञान रखने लगा ॥ ७-९ ॥

कदाचित् निशीथे गूढं सञ्चरतस्तस्य पुराद् बहिर्विप्रदर्शनम्

एकाकी चैकदा धन्वी नृपः स्वैरकथा नृणाम् ॥ ९ ॥
श्रोतुं निशीथे निर्गत्य सर्वतो व्यचरत् पुरम् ।
आपणेषु च रथ्यासु चत्वरेषु गृहेषु च ॥ १० ॥
सर्वद्वारेषु वप्रेषु सरसीषु वनेषु च ।
उपकार्यासु चैत्येषु देवतायतनेषु च ॥ ११ ॥
शस्त्रशालासु तीर्थेषु वनेषूद्यानभूमिषु ।
सञ्चरन् विप्रमासीनं शमीमूले पुराद् बहिः ॥ १२ ॥
ददर्श राजा निर्भीको ज्वलन्तमिव पावकम् ।
प्रसाधिततनुं शान्तं साक्षात्कृतसुदर्शनम् ॥ १३ ॥
सम्प्राप्तसर्वकामं तं योगारूढमकल्मषम् ।
प्रश्रयावनतो भूत्वा पप्रच्छेदं महीपतिः ॥ १४ ॥

किसी समय अर्धरात्रि में नगर में गुप्त रूप से घूमते हुये कीर्त्तिमाली को नगर के बाहर किसी ब्राह्मण का दर्शन होना—किसी समय वह राजा अर्ध रात्रि के समय अपने विषय में प्रजामण्डल का हाल जानने के लिए धनुष लेकर अकेले नगर में गुप्तरूप से विचरण करने लगा। आपण, गली, चौराहे, गृह, सबके दरवाजे, वप्र (खाड) सरसी वन, उपकार्या (शिविर), देवस्थान, शस्त्रशाला, तीर्थ वन और उद्यानभूमि में इस प्रकार विचरण करते हुये उस निर्भीक राजा ने नगर के बाहर शमीवृक्ष के नीचे बैठे हुये किसी ब्राह्मण को देखा। वह ब्राह्मण जाज्वल्यमान अग्नि के समान तेजस्वी, तपस्वी, शान्त सुदर्शन का साक्षात्कार करने वाला पूर्णकाम, योगारूढ़ तथा पापाचार से रहित था। तब राजा ने विनयपूर्वक जा कर उनसे पूछा ॥ ९-१४ ॥

तद्वृत्तान्तजिज्ञासोः राज्ञस्तं प्रति प्रश्नः

कस्त्वं किमर्थमधुना वृक्षमूलमुपाश्रितः।
कस्मादुपागतः सर्वमाचक्ष्वानघ पृच्छते॥ १५ ॥

उसके वृत्तान्त को जानने की इच्छा से राजा का प्रश्न—राजा ने पूछा। आप कौन हो? किसलिए इस रात्रिकाल में वृक्ष के नीचे बैठे हो? और कहाँ से आ रहे हो? अपनी सारा वृत्तान्त मुझे बताओ मैं जानना चाहता हूँ॥ १५ ॥

योगारूढस्य तस्य राजप्रश्नमजानतो मौनीभावः

एवमुक्तोऽपि योगस्थो न वेदैतदुदीरितम्।
तथा पुनः पुनश्चोक्तो राजानं नाभ्यभाषत॥ १६ ॥

योगारूढ़ होने के कारण ब्राह्मण को राजा के प्रश्न का भान न होने से पूर्ववत् मौन धारण—योगारूढ़ होने के कारण ब्राह्मण को राजा के प्रश्न का भान न हुआ। इसलिए राजा के द्वारा बारम्बार पूछने पर भी वह मौन ही रहा॥ १६ ॥

बलाद् ग्रहीतुमुद्युक्तस्य राज्ञो विप्रप्रभावात् स्तम्भीभावः

बलाद् ग्रहीतुमारेभे ब्राह्मणं कुपितो नृपः।
ततस्तस्य प्रभावेण स्तब्धचेष्टोऽभवत् तदा॥ १७ ॥

तब राजा ने उसे बलपूर्वक पकड़ना चाहा किन्तु ब्राह्मण के तेज से उसकी चेष्टा स्तब्ध हो गयी—जब क्रोध से आग बबूले हुये राजा ने उसे पकड़ना चाहा तो ब्राह्मण के तेज के प्रभाव से उसकी सारी चेष्टा स्तब्ध हो गई॥ १७ ॥

विस्मितेन राज्ञा स्तुतिभिर्विप्रस्य प्रसादनम्

स्तब्धमात्मानमालक्ष्य विस्मयं परमं ययौ।
स्तुतिभिस्तोषयामास तं प्रणम्य ततस्तुतः॥ १८ ॥

विस्मित हुये राजा द्वारा उसे स्तुति कर प्रसन्न करना—तब राजा अपने को सर्वथा निस्तब्ध देख कर परम विस्मय को प्राप्त हुये। फिर उस ब्राह्मण को प्रणाम कर बारम्बार उसकी स्तुति कर प्रसन्न किया॥ १८ ॥

प्रसन्नेन विप्रेण स्ववृत्तान्तस्याविष्करणम्

तुष्टः स योगादुत्थाय जगादेदं वचो नृपम् ।
सालग्राम इति ख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम् ॥ १९ ॥
नित्यं सन्निहितस्तत्र चक्ररूपी जगत्पतिः ।
तत्र चक्राङ्कितं सर्वं स्थावरं जङ्गमं च यत् ॥ २० ॥
तत्र प्रवेशमात्रेण जन्तवो वीतकल्मषाः ।
तत्र त्यक्तशरीरास्तु यान्ति निर्वाणमुत्तमम् ॥ २१ ॥
तस्मिन् देशे समुत्पन्नो ब्राह्मणः शिष्टसम्मतः ।
सुदर्शनप्रभावेण साधिताखिलसाधनः ॥ २२ ॥
गम्यते पौष्करं तीर्थं मयाद्य जगतीपते ।
निशि मार्गवशात् प्राप्तः पुरमेतत् तवर्द्धिमत् ॥ २३ ॥
पिहितद्वारमालक्ष्य शमीमूलमिह श्रितः ।

प्रसन्न हुये ब्राह्मण द्वारा अपने वृत्तान्त को प्रकट करना—तब स्तुति से प्रसन्न हुये उन ब्राह्मण ने समाधि त्याग कर राजा से कहा—विष्णु का स्थानभूत अत्यन्त श्रेष्ठ 'सालग्राम' नाम से विख्यात एक स्थान है । वहाँ पर स्वयं भगवान् विष्णु चक्र रूप में विराजमान रहते हैं । वहाँ भी सभी वस्तुयें चाहे स्थावर हो चाहे जङ्गम हों, चक्र के चिह्न से अङ्कित हैं । उस स्थान पर जाते ही मनुष्यों के सारे पाप धुल जाते हैं । किं बहुना वहाँ शरीर त्यागने वाले जन्तु का मोक्ष हो जाता है । मैं उसी देश में उत्पन्न हुआ कुलीन ब्राह्मण हूँ । मैंने सुदर्शन की कृपा से समस्त साधनों को प्राप्त कर लिया है । हे राजन् ! इस समय मैं पुष्कर तीर्थ की यात्रा के लिए निकला हूँ । संयोगवश रात हो जाने के कारण आपकी यह समृद्धशाली राजधानी मुझे मार्ग में प्राप्त हो गई । रात के समय नगर के फाटक बन्द हो जाने के कारण इसी शमी वृक्ष के मूल का आश्रय लिया हूँ ॥ १९-२४ ॥

विदितवृत्तान्तेन राज्ञा स्वपुरं प्रति ब्राह्मणस्यानयनम्

एवमुक्तस्ततो राजा सत्कृत्यैनमनिन्दितम् ॥ २४ ॥
प्रावेशयत् पुरीं रम्यां तत्राप्यायतनं हरेः ।
तत्रोषितस्तु तां रात्रिं सर्वसत्कारपूर्वकम् ॥ २५ ॥
अपरेद्युर्द्विजो गन्तुमारेभे पुष्करं प्रति ।

ब्राह्मण के सारे वृत्तान्त को जानकर राजा का उन्हें अपने नगर में ले आना—ब्राह्मण के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने उन्हें सर्वथा निर्दोष समझा और अपनी पुरी ले आकर विष्णु मन्दिर में ठहराया । ब्राह्मण ने भी राजा से सब प्रकार सत्कार प्राप्त कर वह रात्रि वहीं बिताई । फिर प्रात:काल पुष्कर जाने की तैयारी में लग गया ॥ २४-२६ ॥

हितमुपदेष्टुं राजप्रार्थना

राजा तु कृतपूर्वाह्णकर्माणं तमभाषत ॥ २६ ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं समस्ताभीष्टसाधनम्।
इति श्रुतमतो भाषे भगवन् किं हितं मम॥ २७ ॥
यथेह विन्देय सुखं परत्राप्यसपत्नकम्।
तथा प्रसादं कुरु मे करुणार्द्रमना ह्यसि॥ २८ ॥

हितकारक उपदेश के लिए राजा की प्रार्थना—तब राजा ने पूर्वाह्नकृत्य को समाप्त किये उन ब्राह्मण से कहा—'हे ब्राह्मण! साधुओं के दर्शन से पुण्य तो होता ही है। सम्पूर्ण मनोभीष्ट भी पूर्ण हो जाते हैं। ऐसा हमने वृद्धों से सुना है इसलिए हे भगवन्! आप मुझे बताइये कि मेरा हित क्या है? जिससे मैं इस लोक में तथा परलोक में निर्विघ्न सुख प्राप्त करुँ? आप मुझपर प्रसन्न होकर वैसा उपदेश कीजिये। आप बहुत दयालु दिखाई पड़ रहे हैं॥ २६-२८ ॥

तेन राज्ञे साङ्गसौदर्शनमहामन्त्रस्योपदेशः

ततः प्रसन्नो राजानमुपसन्नं मुने द्विजः।
सौदर्शनं महामन्त्रं षड्वर्णं सर्वसाधकम्॥ २९ ॥
सत्कारपूर्वकं तस्मै नृपायोपादिशत् तदा।
साङ्गमन्त्रं तथा ध्यानं साधनं यन्त्रमेव च॥ ३० ॥
अस्त्रमन्त्रांस्तथा सर्वान् प्रवर्तकनिवर्तकान्।
परिच्छदानि पञ्चाशद्यन्त्रितानि महामुने॥ ३१ ॥
सर्वं तस्मै प्रदायासौ गन्तुं समुपचक्रमे।

ब्राह्मण द्वारा राजा को अङ्ग सहित सुदर्शन मन्त्र का उपदेश—तब प्रसन्न हुये उस ब्राह्मण ने राजा को प्रशान्तचित्त तथा विनयत्वादि गुणों से युक्त देखकर छः अक्षर वाले सर्वार्थसाधक सुदर्शन महामन्त्र का सत्कारपूर्वक उपदेश दिया। अङ्ग सहित महामन्त्र का ध्यान, साधन, यन्त्र, प्रवर्तक एवं निवर्त्तक सभी प्रकार के अस्त्र मन्त्र तथा पचास यन्त्रों से युक्त परिच्छदादि हे महामुने! सब कुछ देकर प्रस्थान करने का विचार किया॥ २९-३२ ॥

राज्ञा गुरवे दक्षिणयाः प्रदानम्

राजा च परमप्रीतो द्रव्यजातमुपानयत्॥ ३२ ॥
गवां सहस्रं कोटिं च सुवर्णानां तथा मुने।
रत्नपूर्णानि हैमानि पात्राण्यन्यानि सप्त च॥ ३३ ॥
तथा भूयांसि वासांसि महार्हाणि च भूपतिः।
ग्रामानष्टौ च गुरवे प्रादात् परमधार्मिकः॥ ३४ ॥

राजा का गुरु को दक्षिणादान—तब परम धार्मिक उस राजा ने प्रसन्न होकर बहुत सा द्रव्य उस ब्राह्मण को उपहृत किया। हे महामुने! एक सहस्र कोटि गाय, उतनी ही सङ्ख्या में सुवर्ण, इसके अतिरिक्त रत्नपूर्ण सात सुवर्ण के पात्र तथा बहुमूल्य वस्त्र एवं आठ ग्राम भी अपने गुरु को भेंट किया॥ ३२-३४ ॥

गुरुणा तदग्रहणपूर्वकं स्वाभिमतदेशस्य गमनम्

न चैच्छद् ब्राह्मणस्तत्र दक्षिणाः समुपाहृताः ।
किं कार्यमेभिर्नृपते सर्वं सङ्कल्पिते भवेत् ॥ ३५ ॥
यथेष्टं विनियुङ्क्ष्वैतदित्युक्तः प्राह भूपतिः ।
अवश्यं गृह्यतामेतन्न चेन्नैवास्मि साधकः ॥ ३६ ॥
त्यज्यतां वा यथेष्टं भो मद्दत्तं दत्तमेव हि ।
इत्युक्तो ब्राह्मणोऽप्याह राजानममितौजसम् ॥ ३७ ॥
मदर्थमर्थजातं तद् ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयताम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो भूपतिश्चैनमन्वयात् ॥ ३८ ॥
निवर्तितः स गुरुणा ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ ।

गुरु द्वारा उसे अस्वीकार कर स्वाभीष्ट देश की ओर प्रस्थान—राजा के द्वारा दी गई सारी भेंट अस्वीकार करते हुये ब्राह्मण ने कहा—हे राजन्! मुझे इस दक्षिणा को लेकर क्या करना है? मेरा तो सारा कार्य मेरे सङ्कल्प मात्र से पूर्ण हो जाता है। आप स्वयं अपनी इच्छानुसार इन द्रव्यों का उपयोग करिए। तब राजा ने कहा—आप इसे अवश्य ग्रहण कीजिये। अन्यथा मुझे सिद्धि प्राप्त न होगी आप अपनी इच्छानुसार इसे त्यागें या ग्रहण करे, मैंने जो दिया वह दे दिया। राजा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर ब्राह्मण ने कहा—राजन् आप मेरी दक्षिणा ब्राह्मणों को बाँट दीजिये। ऐसा कह कर ब्राह्मण ने प्रस्थान किया। राजा भी उसके पीछे-पीछे गया। पश्चात् गुरु ने उसे लौटा दिया और सारी दक्षिणा ब्राह्मणों को बाँट दी ॥ ३५-३९ ॥

राज्ञा धर्मतो राज्यस्य प्रशासनम्

तस्मिन् गते महाराजो विप्रसात्कृत्य तद्धनम् ॥ ३९ ॥
अन्वशात् पृथिवीमेतां त्रिदिवं मघवानिव ।
नक्तंदिवं विभज्यैव धर्ममोक्षाविरोधिनौ ॥ ४० ॥
अर्थकामौ यथाकालमसेवत महीपतिः ।
राजधर्मेषु चान्येषु नात्यवर्तिष्ट किञ्चन ॥ ४१ ॥
एवं च मानवं मार्गमनुतिष्ठन् महीपतिः ।
धर्म्येण पालनेनैव प्रजा रञ्जयति स्म सः ॥ ४२ ॥

राजा का धर्मपूर्वक राज्य पर शासन—उस ब्राह्मण के चले जाने के उपरान्त उस राजा ने सारी दक्षिणा ब्राह्मणों को दे दी और इस पृथ्वी का शासन स्वर्ग में देवराज इन्द्र के समान करने लगा। उस राजा ने रात और दिन का उसी प्रकार सेवन किया जिसमें धर्म तथा मोक्ष का विरोध न हो अर्थात् समय पर सोना और ब्राह्म मुहूर्त में उठना आदि। उसी प्रकार से अर्थ और काम का जिसमें विरोध न हो वैसे ही अपने कार्य का विभाग किया। इस प्रकार परस्पर विरोध न हो, इसलिए यथाकाल उनका सेवन किया। अन्य राज धर्मों

की भी मर्यादा का किसी प्रकार उल्लङ्घन नहीं किया। इस प्रकार मनुप्रणीत धर्म मार्ग का अनुसरण करते हुये वह प्रजाओं का अनुरञ्जन करने लगा ॥ ३९-४२ ॥

वश्यावश्यपरराष्ट्रादिबुभुत्सया कदाचिदमात्यान् प्रति राज्ञः प्रश्नः

एकदा मन्त्रिणः सर्वानाहूयास्थानमण्डपे।
पप्रच्छ पृथिवीपालः के च वश्या उतेतरे ॥ ४३ ॥
देशेषु भूमिपालेषु प्रकृतिष्वथवा मम।
ब्रूत सर्वं हि जानन्ति भवन्तश्चारचक्षुषः ॥ ४४ ॥

कौन राष्ट्र हमारे वश में हैं? और कौन नहीं। इस वृत्तान्त को जानने की इच्छा से राजा का अपने अमात्यों से प्रश्न—किसी समय राजा ने आस्थानमण्डप में सभी मन्त्रियों को बुलाकर पूछा कि देश में भूमिपालों में तथा हमारे प्रजामण्डल में कौन-कौन हमारे वश में हैं और कौन-कौन नहीं? आप लोग गुप्तचरों के द्वारा सब कुछ जानते हैं अतः हमें बताइये ॥ ४३-४४ ॥

मन्त्रिणां प्रतिवचनम्

इति प्रतिसमादिष्टास्ते सर्वे मन्त्रिणोऽवदन्।
देव त्वयि महीमेतां शासत्येव परन्तपे ॥ ४५ ॥
प्रतिपक्षाः प्रलीयन्ते तपत्यर्के यथा तमः।

मन्त्रियों द्वारा प्रत्युत्तर—राजा की इस प्रकार की आज्ञा सुनकर उन मन्त्रियों ने कहा—हे देव! आप जैसे परन्तप के इस पृथ्वी पर शासन करते हुये सारे शत्रु इस प्रकार नष्ट हो गए हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ४५-४६ ॥

कृत्स्नस्यापि भूमण्डलस्य वश्यत्वप्रतिपादनम्

साधुना पृथिवी वश्या सशैलाम्बुधिपत्तना ॥ ४६ ॥
दिवीव देव राजानः सर्वे द्वारि निवारिताः।
तव प्रकृतिवर्गेषु का कथा जगतीपते ॥ ४७ ॥

सारा भूण्डल ही आपके वश में है ऐसा प्रतिपादन—हे देव! आप जैसे सदाचारी राजा के शासन में पर्वत समुद्र सहित सारी पृथ्वी ही वश में है। यहाँ तक कि राजा लोग भी आपके द्वार पर रोके गए स्थित हैं, जिस प्रकार स्वर्ग में द्वार पर लोग रोके जाते हैं। हे जगतीपते! तब राजाओं की यह दशा है तो प्रजामण्डल के विषय में क्या कहा जाय? ॥ ४६-४७ ॥

देवादीनां वश्यत्वाभावप्रतिपादनम्

न च देवा न गन्धर्वा नासुरा न च पन्नगाः।
यथा वयं ते सेवन्ते भवन्तं परमेश्वरम् ॥ ४८ ॥
देवः प्रमाणमिति ते विज्ञाप्यार्थमुपारमन्।

केवल देवगण ही आपके वश में नहीं है इस अभाव का प्रतिपादन—हे राजन्! जिस प्रकार हम लोग आप परमेश्वर राजा की सेवा करते हैं उस प्रकार देवता गन्धर्व, असुर एवं पन्नग आपकी सेवा नहीं करते मात्र यही एक अभाव है। इस विषय में आप ही प्रमाण हैं। इतना निवेदन कर मन्त्रीगण मौन हो गए ॥ ४८-४९ ॥

पुनरमात्यान् प्रति राज्ञो देवादिविजयोपायप्रश्नः

कीर्तिमाली च तच्छ्रुत्वा देवादीनां जिगीषया ॥ ४९ ॥
व्यजृम्भत तदा सर्वान् मन्त्रिणश्चाब्रवीदिदम्।
कथमेतान् विजेष्यामो बलिनो वीर्यशालिनः ॥ ५० ॥
विचित्रयोधिनो दृप्ता मायाबलसमन्विताः।
अनुकूला विशिष्टाश्च लोकान्तरमुपाश्रिताः ॥ ५१ ॥
यथा भवन्ति ते वश्यास्तथा वदत मा चिरम्।

तब फिर देवादिकों पर विजय प्राप्ति के लिए उपाय विषयक अमात्यों से राजा का प्रश्न—कीर्त्तिमाली मन्त्रियों की बात सुन कर कुछ रुक सा गया। फिर देवताओं पर बिना प्राप्ति की इच्छा से मन्त्रियों से ऐसा कहने लगा, महाबली परम पराक्रमी, विचित्र प्रकार का युद्ध करने वाले उद्धत, मायाबल का आश्रय लेने वाले अन्य लोकों में रहने वाले तथा सब प्रकार से विशिष्ट ये लोग जिस प्रकार हमारे अनुकूल तथा वशवर्त्ती हों वह उपाय आप लोग बताइये। विलम्ब मत कीजिये ॥ ४९-५२ ॥

अमात्यानां प्रतिवचनम्

इत्युक्तास्तेमहाराजमूचुः सम्मन्त्र्य मन्त्रिणः ॥ ५२ ॥
एतानद्यैव यास्यामो विजेष्यामश्च संयुगे।

अमात्यों का प्रत्युत्तर—राजा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर मन्त्रियों ने आपस में मन्त्रणा कर कहा—राजन्! हम लोग आज ही प्रस्थान करेंगे तथा इन पर विजय प्राप्त करेंगे ॥ ५२-५३ ॥

स्वपक्षे बलसमृद्धिनिरूपणपूर्वकमभिषेणनोद्योगजननम्

अस्मद्वरूथिनी सर्वाचतुरङ्गबलान्विता ॥ ५३ ॥
मेरुमन्दरसङ्काशा गजाः परमदुर्जयाः।
एकैकमेव पर्याप्तं शत्रुसैन्यप्रमर्दने ॥ ५४ ॥
एवंविधानां नागानां नियुतानि दशाभवन्।
मत्तानां तुरगाणां च पञ्च कोट्यः परन्तप ॥ ५५ ॥
तिस्रः कोट्यश्च सम्पूर्णाः स्यन्दनानां तथाभवन्।
बद्धापदानमानानां शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ५६ ॥
चतुर्विधपदातीनामक्षौहिण्यश्चतुर्दश ।

निशितास्त्राणि नः सङ्ख्ये यान्यसङ्ख्यानि भूपते ॥ ५७ ॥
एकतः सर्वमेतच्च एकतः केवलो बली ।
अतिरिक्तो भवान् वीर्यादिति मन्यामहे वयम् ॥ ५८ ॥
किञ्च दिव्यानि चास्त्राणि लब्धवानसि भूसुरात् ।
एभिः परिवृतस्यैवं कस्तिष्ठेत् सम्मुखे तव ॥ ५९ ॥
संवर्तवर्तिनः शम्भोर्भूतानीव दिधक्षतः ।
यत्र यत्र जिगीषा ते वर्तते तत्र मा चिरम् ॥ ६० ॥
नियुङ्क्ष्वास्मान् महाबाहो जयं विद्धि करे स्थितम् ।

अपने पक्ष की सैन्यसमृद्धि प्रगट करते हुये चढ़ाई के लिए मन्त्रियों का उद्योग करना—मन्त्रियों ने कहा—महाराज हम लोगों की सारी चतुरङ्गिणी सेना मेरु तथा मन्दर पर्वत को सदृश अलङ्घ्य है । हाथी तो परम दुर्जय है ही । शत्रु सैन्य के विमर्दन के लिए एक भी हाथी पर्याप्त है । इस प्रकार दस लाख हाथी हमारी सेना में है । हे परन्तप ! पाँच करोड़ मदमत्त घोड़े हैं तथा समस्त सामग्री युक्त रथ पर सवार होने वाले, युद्ध में पीछे न हटने वाले तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले ऐसे तीन करोड़ रथी हैं । इस प्रकार पैदल सेनाओं को लेकर हमारी चतुरङ्गिणी सेना चौदह अक्षौहिणी हैं । ये सभी अक्षौहिणी सेना एक ओर तथा अकेले महाबलवान् आप एक ओर । फिर भी बल में आप उनकी अपेक्षा भारी पड़ेंगे ऐसा हम लोगों का विचार है क्योंकि आपने ब्राह्मण द्वारा दिव्यास्त्र प्राप्त किया है । इस प्रकार की सेनाओं से संयुक्त आप के सम्मुख लड़ाई में कौन टिकने वाला है? जिस प्रकार प्रलय काल में संवर्त्त बन कर प्राणियों का संहार करने वाले महादेव के सामने कोई नहीं टिक सकता । अतः हे राजन् ! अब विलम्ब मत कीजिये । जिस पर जहाँ-जहाँ आपको विजय की कामना हो वहाँ हमें नियुक्त कीजिये । हे महाबाहो विजय तो आपके हस्तगत है ही ॥ ५३-६१ ॥

मन्त्रिवचनात् प्रथमं राज्ञो नागलोकाभिगमनम्

इत्युक्तः परमप्रीतः कीर्तिमाली महाबलः ॥ ६१ ॥
सर्वानमात्यानाहूय तत्तत्सेना महाहृता ।
नागलोकं प्रयात्वद्य युध्यतामद्य पन्नगैः ॥ ६२ ॥
अहं चाद्यैव यास्यामि समूलबलवाहनः ।
इत्युक्त्वा तैः परिवृतो जगाम स महीपतिः ॥ ६३ ॥

मन्त्रियों के कथनानुसार राजा की नागलोक पर चढ़ाई—मन्त्रियों के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर महाबली राजा कीर्त्तिमाली प्रसन्न हो सभी अमात्यों को बुलाकर बोले—मैंने हाथी, घोड़े, रथ एवं पैदलों की सेना ठीक कर ली है । वह आज ही नागलोक प्रयाण करे तथा आज ही नागों से लड़ाई प्रारम्भ कर दे और मैं भी अपने वाहन पर सवार होकर चल रहा हूँ । ऐसा कहकर वह राजा अपनी सेना के साथ नागलोक के लिए कूच कर दिया ॥ ६१-६३ ॥

गारुडास्त्रप्रभावेण तत्र राज्ञो विजयप्राप्तिः तथा दैत्यविजयः

तत्र तैः पन्नगैर्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ।
ततोऽचिरेण कालेन दिव्यास्त्रेण गरुत्मतः ॥ ६४ ॥
विजयं प्राप्तवांस्तत्र तेभ्यो रत्नादिकं करम् ।
गृहीत्वा दैत्यनाशाय मनश्चक्रे महामनाः ॥ ६५ ॥

गरुडास्त्र के प्रभाव से राजा की नागलोक पर विजय—फिर तो नागलोक में राजा का पन्नगों के साथ रोमाञ्चकारी युद्ध प्रारम्भ हो गया। थोड़ी ही देर में गरुड़ के दिव्यास्त्रों से राजा को विजय लाभ हो गया। फिर वहाँ के रत्नादि को कर स्वरूप ग्रहण कर उस मनस्वी राजा ने दैत्यों के विनाश का सङ्कल्प किया ॥ ६४-६५ ॥

तैर्युद्धमभवत् तीव्रं चिरकालं महामुने ।
नाशयित्वा तु तत्सैन्यं विजयं परमं ययौ ॥ ६६ ॥

दैत्यों पर विजय—हे महामुने ! तदनन्तर दैत्यों के साथ चिरकाल तक लड़ाई चली और अन्त में राजा ने दैत्यों की सेना का विनाश कर विजय प्राप्त कर लिया ॥ ६६ ॥

यक्षगन्धर्वादिजयपूर्वकं राज्ञः स्वनगरागमनम्

ततश्च यक्षगन्धर्वान् सिद्धविद्याधरानपि ।
निर्जित्य समरे सर्वान् किङ्करानकरोद् बली ॥ ६७ ॥
एतान् विजित्य समरे स्वपुरं पुनराययौ ।

यक्ष गन्धर्वादिकों पर विजय प्राप्त कर राजा का स्वनगर में आगमन—तदनन्तर उस बलवान् राजा ने यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध तथा विद्याधरों को युद्ध में जीत कर सबको अपना किङ्कर बना लिया और अपने नगर की ओर लौट आया ॥ ६७-६८ ॥

तत्र स्वपरिवारेषु देवानामदर्शनादिन्द्रं प्रति सन्देशप्रेषणम्

आस्थानसद्मन्यासीनो राजभिः परिवारितः ॥ ६८ ॥
तथा गन्धर्वयक्षैश्च दानवैः पन्नगेश्वरैः ।
चक्रवर्ती निजास्थाने नामरान् ददृशे तदा ॥ ६९ ॥
ततो मनोजवं नामगन्धर्वमिदमूचिवान् ।
अद्य त्रिदिवमभ्येत्य वचनान्मम वासवम् ॥ ७० ॥
ब्रूया ऐरावतं नागं कुलिशं कल्पकं तथा ।
अष्टौ चाप्सरसः क्षिप्रं मदर्थं विसृजेति वै ॥ ७१ ॥

वहाँ अपने वश में देवताओं को न देख इन्द्र के यहाँ सन्देश भेजना—वहाँ अपने सभामण्डप के सिंहासन पर बैठ हुये राजा ने अपनी सभा में राजाओं को गन्धर्व, यक्ष, दानवों एवं पन्नगेश्वरों से परिवेष्टित अपने को देखा, किन्तु उस चक्रवर्त्ती ने अपनी सभा में

देवताओं को नहीं देखा। तब उसने मनोजव नाम के गन्धर्व से ऐसा कहा—हे मनोजव! आप आज अभी स्वर्ग में जाकर इन्द्रदेव से मेरा सन्देश कहो कि वे ऐरावत हाथी, वज्र, कल्पवृक्ष एवं आठ अप्सरायें मेरे लिए शीघ्र भेज दें॥ ६८-७१॥

राजसन्देशात् मनोजवनाम्नो दूतस्यामरावतीगमनम्

मनोजवस्तथेत्युक्त्वा शिरसा चक्रवर्तिनः।
मालामिवाज्ञां संगृह्य प्रययावमरावतीम्॥ ७२॥

राजा का सन्देश लेकर मनोजव नामक दूत का अमरावती गमन—मनोजव ने चक्रवर्ती उस राजा की आज्ञा 'तथास्तु' कह कर माला की भाँति स्वीकार कर ली और सन्देश लेकर अमरावती पुरी को चल दिया॥ ७२॥

तत्रास्थानमण्डपे वासवदर्शनम्

प्रविश्य तत् पुरं रम्यमुपमानं परं पुराम्।
वासवं वसुभी रुद्रैरादित्यैश्च समावृतम्॥ ७३॥
आस्थानमण्डपासीनमप्सरोगणसेवितम्।
विश्वावसुमुखैः सिद्धैः स्तूयमानं शचीपतिम्॥ ७४॥
ददर्श स तदा देवं नाट्यदर्शनलालसम्।
दृष्ट्वा प्रणम्य तुष्टाव विरते नृत्यकर्मणि॥ ७५॥

वहाँ सभा मण्डप में इन्द्रदेव का दर्शन—पुरों में सर्वश्रेष्ठ उस पुर में प्रवेश कर मनोजव ने वसु, रुद्र, आदित्यादि देवताओं के साथ सभा मण्डप में बैठे इन्द्र देव को देखा, अप्सरायें जिनकी सेवा कर रही थीं एवं विश्वावसु प्रमुख-प्रमुख सिद्ध उनकी स्तुति कर रहे थे। स्वयं वे नृत्य देख रहे थे। तब नृत्य समाप्त हो जाने पर मनोजव ने उन्हें प्रणाम किया फिर स्तुति की॥ ७३-७५॥

वासवेन दूतस्याभिनन्दनम्

दृष्ट्वा प्रीतः सुरपतिर्मनोजवमवैक्षत।

इन्द्र द्वारा दूत का सत्कार—मनोजव को देख कर प्रसन्न हुये देवराज ने उसका अभिनन्दन किया॥ ७६॥

दूतेनेन्द्राय राजसन्देशस्य निवेदनम्

विमलीकृतमात्मानं मन्यमानः स वीक्षितैः॥ ७६॥
व्यजिज्ञपद्यथावृत्तं वृत्रहन्त्रेऽविलम्बितम्।
देव भूमण्डले कश्चित् कीर्तिमालीति विश्रुतः॥ ७७॥
चक्रवर्ती सुरपते देवायैतन्न्यवेदयत्।

दूत द्वारा राज सन्देश का निवेदन—इन्द्र की दृष्टि से अपने को कृतकृत्य मानते हुये दूत ने बिना कुछ विलम्ब किये ही शीघ्रता से उन्हें राजा का सन्देश इस प्रकार सुनाया—हे

देव ! भूमण्डल में कीर्त्तिमाली नाम का कोई चक्रवर्त्ती राजा है । उसने आपसे यह निवेदन किया है ॥ ७६-७८ ॥

दूतेन राजोक्तसन्देशस्यानुवादः

विनिर्जिता मया लोकाः सर्वे त्रिविदमन्तरा ॥ ७८ ॥
भवन्तं द्रष्टुमिच्छामि साम्प्रतं त्रिदिवेश्वर ।
आरोहणार्थं नागेन्द्रमैरावतमवारितम् ॥ ७९ ॥
कल्पकं कुलिशं चाष्टौ योषितो विसृजेह नः ।
इत्थमाज्ञापितं तेन महाराजेन गोपते ॥ ८० ॥
देवः प्रमाणमत्रेति विरराम मनोजवः ।

दूत द्वारा राजोक्तसन्देश का अनुवाद—'मैंने स्वर्गलोक के अतिरिक्त सारे लोकों को जीत लिया है । हे त्रिदिवेश्वर ! अब मैं आपका दर्शन करना चाहता हूँ' अतः मुझे चढ़ने के लिए नागेन्द्र ऐरावत हाथी, कल्पवृक्ष, वज्र तथा आठ अप्सरायें बिना किसी हिचकिचाहट के भेज दें । हे गोपते ! महाराज ने ऐसी आज्ञा दी है, अब आप ही प्रमाण हैं' ऐसा कहकर मनोजव चुप हो गया ॥ ७८-८१ ॥

सन्देशश्रवणात् कुपितस्येन्द्रस्य तत्प्रतिक्रियाचरणम्

ततो विहस्य मघवानास्थाने देवसेविते ॥ ८१ ॥
प्राह गम्भीरया वाचा विज्ञायैतां विडम्बनाम् ।
वज्रमैरावतं नागं प्रेषयाम्यद्य ते उभे ॥ ८२ ॥
आगत्य स्वयमन्यांस्तु समाहृत्य प्रयात्वसौ ।
इत्युक्त्वा प्रेषयामास वज्रमैरावतं गजम् ॥ ८३ ॥

सन्देश को सुनते ही क्रुद्ध इन्द्र का प्रतीकारात्मक आचरण—तब देव सेवित सभामण्डप में बैठे हुये इन्द्रदेव ने इसे विडम्बना की बात जान कर हँसते हुये मेघगम्भीर वाणी में कहा—आज अभी वज्र और ऐरावत यह दोनों भेज रहा हूँ और शेष वह यहाँ आकर स्वयं ले जावें । इतना कह कर उन्होंने वज्र और ऐरावत हाथी दोनों राजा के पास भेज दिया ॥ ८१-८३ ॥

सवज्रेणैरावतेन राजसैन्यस्य विनाशनम्

निष्क्रम्योभौ विविशतुः कीर्तिमालिमहापुरीम् ।
प्रविश्यैरावतो नागो वज्रमादाय वाहिनीम् ॥ ८४ ॥
अदृष्टेनैव रूपेण जघानैनां महामुने ।

वज्र के साथ ऐरावत द्वारा समस्त राज सेना का विनाश—दोनों ने ही स्वर्ग से निकल कर कीर्त्तिमाली की महापुरी में प्रवेश किया और प्रवेश करते ही ऐरावत हाथी ने अपने हाथ में वज्र लेकर अदृश्य हो राजसेना को विनष्ट कर दिया ॥ ८४-८५ ॥

भीतैर्जानपदैः राज्ञे तद्वृत्तान्तस्य निवेदनम्

हन्यमानेषु सैन्येषु गजवाजिभटात्मसु ॥ ८५ ॥
सर्वे जानपदा भीता भूपायैतन्न्यवेदयन् ।
देव सोमोद्भवा नागा निहता भुवि शेरते ॥ ८६ ॥
तथा हयोत्तमाः शूरा भटाः परमशोभनाः ।
अकस्मादेव दृश्यन्ते निहता जगतीपते ॥ ८७ ॥

भयभीत हुये राजा की प्रजाओं द्वारा इस वृत्तान्त का निवेदन—ऐरावत के द्वारा मारे गए हाथी, घोड़े तथा महाभटों को देख कर राज्य की प्रजाओं ने महाराज से सारी बातें कहीं । उन्होंने कहा—हे देव ! सोमवंशीय हाथी मारे जाने से पृथ्वी पर गिरे हुये हैं, इसी प्रकार उत्तमोत्तम घोड़े, शूर तथा परम तेजस्वी महाभट अकस्मात् मर कर पृथ्वी पर पड़े हुये हैं ॥ ८५-८७ ॥

सैन्यविनाशश्रवणात् दुःखितेन राज्ञा पुरोधसं प्रति प्रश्नः

एतच्छ्रुत्वा महाराजः शोकेन महता वृतः ।
पुरोधसं समाहूय वचनं चेदमब्रवीत् ॥ ८८ ॥
वारणा वाजिनो योधा हन्यन्ते कारणादृते ।
न रोगो दृश्यते चैषु न तापः कालकल्पितः ॥ ८९ ॥
नाभिचारः परकृतो दृश्यते सुनिरूपितः ।
किमेतच्चिन्त्यतां ब्रह्मन् भ्रमतीव च मे मनः ॥ ९० ॥

अपनी सेना का विनाश देख दुःखी हुये राजा का पुरोहित से पूछताछ—इस बात को सुनते ही महाराज शोकाकुल हो गए । फिर पुरोहित को बुलाकर इस प्रकार कहने लगे ! हाथी घोड़े तथा योधागण मरे पड़े हैं । किन्तु उनके मरने का कोई भी कारण दिखाई नहीं पड़ता । न उनको कोई रोग हुआ और न समयानुसार उनको ज्वर जूड़ी आई किसी शत्रु द्वारा योजना बद्ध कोई अभिचार भी नहीं किया गया । फिर भी ये मर गए । हे ब्रह्मन् ! इसके कारणों का पता लगाइये । मेरा मन अत्यन्त भ्रमित है ॥ ८८-९० ॥

पुरोधसा देवकोपस्यैव तत्कारणत्वेन निवेदनम्

इत्युदीरितमाकर्ण्य पुरोधाश्चाप्यचिन्तयत् ।
चिन्तयित्वा जगादैतद् देवकोपादुपागतम् ॥ ९१ ॥
इति शङ्के न शोकस्य वशमागाः परन्तप ।

इसमें देवकोप ही कारण है ऐसा पुरोहित का निवेदन—राजा की बात सुनकर पुरोहित विचार करने लगे । विचार करने के पश्चात् उन्होंने कहा—देव कोप के कारण ही ऐसा हो रहा है । मुझे यही आशङ्का हो रही है । हे राजन् ! आप शोक के वश में मत होइये ॥ ९१-९२ ॥

अत्रान्तरे मनोजवसमागमः

इति चिन्तयतोरेव तयोरागान्मनोजवः ॥ ९२ ॥
प्रणतः प्राञ्जलिस्तस्थौ महाराजस्य पार्श्वतः ।

मनोजव का आगमन—अभी दोनों विचार ही कर रहे थे कि मनोजव अमरावती से आ पहुँचा । फिर प्रणाम कर हाथ जोड़े महाराज के पार्श्वभाग में खड़ा हो गया ॥ ९२-९३ ॥

मनोजवं प्रति राज्ञः प्रश्नः

मनोजव किमानीतमुक्तरत्नचतुष्टयम् ॥ ९३ ॥
किमाह वासवः सर्वं कथयाद्याविलम्बितम् ।

मनोजव से राजा का प्रश्न—राजा ने मनोजव से पूछा—मनोजव ! क्या आप इन्द्र के पास से रत्नचतुष्टय ले आये? इन्द्र ने क्या कहा? शीघ्र बताइए । बिल्कुल विलम्ब मत करिए ॥ ९३-९४ ॥

मनोजवेन राज्ञे निवेदनम्

इत्युक्तस्तेन सकलं पृष्टमस्मै न्यवेदयत् ॥ ९४ ॥
राजवाक्यस्य कथनमतो मघवतः स्मयः ।
वज्रैरावतयोस्तेन प्रेषणं तद्वचस्ततः ॥ ९५ ॥

मनोजव का राजा से निवेदन—राजा के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर मनोजव ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया । जिस प्रकार राजा का सन्देश सुनाया तथा जिस प्रकार इन्द्र ने अपना अहङ्कार सूचित किया । फिर वज्र तथा ऐरावत को जैसे भेजा और राजा को जो सन्देश दिया ये सारी बातें उसने जैसी की तैसी सारी बाने कह दी ॥ ९४-९५ ॥

स्वसैन्यविनाशमैरावतकृतं ज्ञातवता राज्ञा वारणास्त्रेणैरावतस्य स्तम्भनम्

एवं तेनेरितो राजा निश्चित्यैरावतक्रियाम् ।
पुरोधसा प्रतीकारं तस्य सम्मन्त्र्य तत्क्षणात् ॥ ९६ ॥
व्यसृजद्वारणाख्यास्त्रं दिव्यं वारणवारणम् ।
तदस्त्रं तु गजं प्राप्तं निश्चेष्टः सोऽभवत् तदा ॥ ९७ ॥

ऐरावत के द्वारा अपनी सेना का विनाश जान कर वारण अस्त्र द्वारा ऐरावत का स्तम्भन—मनोजव की बात से राजा ने जान लिया कि सारा उपद्रव ऐरावत ने किया है । फिर तत्क्षण पुरोहित के साथ उसके प्रतीकार की मन्त्रणा की और हाथियों को वारण करने वाले वारण नामक अस्त्र का प्रयोग किया, जो ऐरावत को लगा जिससे वह स्तब्ध रह गया ॥ ९६-९७ ॥

तच्छ्रुतवता वासवेन युद्धार्थं देवसैन्यस्य प्रेषणम्

स्तब्धमैरावतं वज्रं तेनास्त्रेण महात्मना ।

व्यजिज्ञपुर्मघवते सुराश्चैरावतानुगाः ॥ ९८ ॥
तच्छ्रुत्वा परमक्रुद्धो मघवान् समनह्यत ।
सन्नद्धमिन्द्रमालक्ष्य सुराश्चुक्षुभिरे तदा ॥ ९९ ॥
प्रेषितास्तेन ते सर्वे सैनिकास्तत्पुरं ययुः ।
प्रलयोज्जृम्भिताम्भोधिकल्पं सैन्यं शतक्रतोः ॥ १०० ॥

यह बात सुनकर इन्द्र द्वारा राजा से युद्ध के लिए अपनी देवसेना का प्रेषण—उस महान् अस्त्र के प्रयोग से जब ऐरावत एवं वज्र स्तब्ध (निश्चेष्ट) हो गए तब देवताओं ने एवं ऐरावत के साथियों ने इन्द्र से सारी बातें कहीं । इसे सुनते ही इन्द्र क्रोध से आग बबूले हो गए और युद्ध की तैयारी में लग गए । इन्द्र की इस प्रकार युद्ध की तैयारी करते देख देवता लोग संक्षुब्ध हो उठे । फिर उनके द्वारा भेजे गए समस्त सैनिक राजा की राजधानी में गए । इन्द्र की वह सेना प्रलयकालीन महासमुद्र के समान अत्यन्त विशाल थी ॥ ९८-१०० ॥

ततो देवमानुषसेनयोर्घोरयुद्धप्रवृत्तिः

विलोक्य त्वरितो राजा ससैन्यो निर्ययौ पुरात् ।
ततः प्रववृते युद्धं देवमानुषसेनयोः ॥ १०१ ॥

तदनन्तर देव और मानुष सैन्य समूहों में घनघोर युद्ध का आरम्भ—इन्द्र की उस महती सेना को देख कर राजा भी अपनी सेना के साथ नगर के बाहर चल पड़ा । फिर तो दैवी एवं मानुषी सेना का घनघोर युद्ध होने लगा ॥ १०१ ॥

प्रवृत्तयुद्धवर्णनम्

अदृष्टचरमाश्चर्यं हाहाकारि भयावहम् ।
दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खभेरीरवैरपि ॥ १०२ ॥
क्ष्वेलितैस्तलशब्दैश्च विहायः समपूर्यत ।
नागा युयुधिरे नागैः पत्तिभिः पत्तयस्तथा ॥ १०३ ॥
स्यन्दनैः स्यन्दनाश्चाश्वैरश्वाश्चैव परस्परम् ।
नाराचैः परिघैः शूलैः पट्टसैर्मुद्गरैरपि ॥ १०४ ॥
कार्मुकैः शक्तिभिः खड्गैः प्रासैः कुन्तैः परश्वधैः ।
एवं नानाविधैः शस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥ १०५ ॥
केचिन्निकृत्तशिरसः केचिच्छिन्नोरसः परैः ।
केचिदुत्कृत्तशस्त्रास्तु विद्धवक्षांसि कानि च ॥ १०६ ॥
छिन्नहस्ता गजाः केचित् खड्गनिर्भिन्नमस्तकाः ।
भल्लैर्निर्भिन्नहृदया दृश्यन्ते तुरगास्तथा ॥ १०७ ॥
प्रवृत्ता रक्तसरितो हस्तिस्यन्दनवाजिनाम् ।
निपतच्छस्त्रसम्भिन्ना दृश्यन्ते रणभूमयः ॥ १०८ ॥

महायुद्ध का वर्णन—वैसा आश्चर्यकारी महायुद्ध कभी देखा नहीं गया। हाहाकार के शब्द से भय उत्पन्न करने वाला था। दिव्य दुन्दुभी के बजने से तथा शङ्ख और भेरी के निनाद से परस्पर युद्ध क्रीड़ा से एवं तल-ताड़ी ठोकने के शब्दों से सारा आकाश पूर्ण हो रहा था। हाथी-हाथी से पैदल-पैदल से, रथी रथियों से, घोड़े-घोड़ों से परस्पर लड़ रहे थे। वीर लोग बाण, परिघ, शूल, पट्टिश, मुद्गर, कार्मुक शक्ति, खड्ग, प्रास, भाले और फरसे आदि नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से परस्पर एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। किन्हीं के सिर काट दिए गए और किसी दूसरे के छाती पर प्रहार किया। किसी के शस्त्र काट दिये गए तो किसी के शस्त्रों ने कितनों का हृदय विदीर्ण कर दिया। किसी हाथी का हाथ (सूँड़) कट गया तो किसी का मस्तक खड्ग से काट दिया गया। कितने घोड़ों के वक्षःस्थल में भाले घोंप दिये गए। उस समय हाथियों एवं रथ में जुते घोड़ों के रक्त से रक्त की नदी बह चली। सारी की सारी रणभूमि प्रयोग में लाये गए शस्त्रों से पट गई ॥ १०२-१०८ ॥

तत्र जिगीषुणेन्द्रेण स्वसेनाधिपतीनां प्रचोदनम्

एवं प्रवृत्ते संग्रामे जयार्थी पाकशासनः।
देवसेनापतीन् सर्वांश्चोदयामास सत्वरः ॥ १०९ ॥

विजय चाहने वाले इन्द्र के द्वारा अपने सेनापतियों को ललकारना—इस प्रकार चल रहे संग्राम में विजय चाहने वाले देवराज ने अपने सेनापतियों को शीघ्र प्रोत्साहित करते हुये ललकारा ॥ १०९ ॥

देवसेनापतीनां तात्कालिकजयप्राप्तिः

तेन प्रवर्तिता देवा विद्राव्य नृपतेर्बलम्।
विजयं लेभिरे सद्यस्ततः क्रुद्धोऽभवन्नृपः ॥ ११० ॥

देवराज के सेनापतियों की तात्कालिक विजय—इन्द्र के द्वारा प्रेरित देव सेनापतियों ने राजा की सारी सेना भगा दी। जिससे वे तत्क्षण विजयी हो गए। यह देख कर राजा के क्रोध का पारावार नहीं रहा ॥ ११० ॥

राज्ञा दिव्यास्त्रस्य विमोचनम्

विनष्टे स्वबले सोऽथ दिव्यास्त्राणि मुमोच ह।
आग्नेयादीनि चास्त्राणि प्रवृत्तानि महामुने ॥ १११ ॥

राजा द्वारा दिव्यास्त्र का प्रयोग—तब, हे महामुने! अपनी सेना को विनष्ट हुई देख राजा ने दिव्यास्त्रों एवं आग्नेयादि महान् अस्त्रों का प्रयोग किया ॥ १११ ॥

तेषामपीन्द्रेण निवारणान्निर्विण्णेन राज्ञा सुदर्शनयन्त्रघटितवितानसमाश्रयणम्

निवृत्य बलभित् क्रुद्धः प्रत्यस्त्रैस्तान्यवारयत्।
ततो निर्वेदमापन्नः कीर्तिमाली द्विजोत्तमात् ॥ ११२ ॥
लब्धं विमानं सस्मार तत्तथाकारयत् ततः।

सुदर्शनमहायन्त्रयन्त्रितं सवितानकम् ॥ ११३ ॥
कृत्वा निषेदिवांस्तस्य छायायां स महीपतिः ।

इन्द्र द्वारा उन अस्त्रों के निवारण से खिन्न राजा द्वारा सुदर्शन वितान का आश्रय लेना—इन्द्र ने पुनः लौट कर क्रुद्ध हो, उन अस्त्रों को काट देने वाले अस्त्र चला कर उनका वारण कर दिया । यह देख खिन्न हुये राजा कीर्त्तिमाली ने उस ब्राह्मण द्वारा प्राप्त विमान का स्मरण कर उसी प्रकार ब्राह्मणोपदिष्ट मन्त्र से उसका आवाहन किया । फिर सुदर्शन महायन्त्र से नियन्त्रित उस वितान को अपने शिर पर चँदवे के समान तान कर उसकी छाया में बैठ गया ॥ ११२-११४ ॥

राजप्रयुक्तेन वैष्णवचक्रेण देवसैन्यस्य प्रतिहतिः

प्राहिणोद्विष्णुचक्रं तु महास्त्रप्रभवं परम् ॥ ११४ ॥
तेजसा विश्वमापूर्य विरराज विहायसि ।
तस्यैव तेजसा सर्वे सुराः प्रतिहता रणे ॥ ११५ ॥
विनिघ्नाश्चेष्टितुं नैव शेकुर्देवगणा मुने ।

राजा द्वारा चलाये गए वैष्णव चक्र से देवसेना का विनाश होना—राजा ने सम्पूर्ण महान्-महान् अस्त्रों के जनक उस विष्णु चक्र को चलाया । वह अपने तेज से सारे विश्व को पूर्ण कर आकाश मण्डल में शोभित होने लगा । हे महामुने ! उसके तेज से सारे देवगण युद्ध में प्रतिहत होकर मर गए । तथा किसी प्रकार की चेष्टा करने में सर्वथा असमर्थ हो गए ॥ ११४-११६ ॥

वासवप्रयुक्तानां दिव्यास्त्राणामपि तस्मिन् विष्णुचक्रे विलयः

ततः क्रुद्धः स मघवान् दिव्यास्त्राणि व्यसर्जयत् ॥ ११६ ॥
तानि सर्वाणि निर्गत्य विष्णुचक्रे निलिल्यिरे ।
सर्वास्त्रप्रकृतौ तस्मिञ्छलभा इव पावके ॥ ११७ ॥
ततश्चिक्षेप शस्त्राणि सर्वाण्यपि पुनः पुनः ।
तानि तत्रैव लीनानि सरितः सागरे यथा ॥ ११८ ॥

इन्द्र द्वारा चलाये गए सभी दिव्यास्त्रों का विष्णुचक्र में विलय—तदनन्तर क्रुद्ध हुये देवराज ने पुनः दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया । किन्तु वे सभी उनसे निकल कर सभी अस्त्रों के जन्मदाता उसी विष्णुचक्र में उसी प्रकार विलीन हो गए जिस प्रकार पतङ्ग पावक में विलीन हो जाता है । फिर भी इन्द्रदेव ने बारम्बार उन दिव्यास्त्रों का पुनः प्रयोग किया । किन्तु सभी उस चक्र में इस प्रकार विलीन होते गए जिस प्रकार नदियाँ सागर में विलीन हो जाती हैं ॥ ११६-११८ ॥

अन्ततो वज्रस्याप्यकिञ्चित्करत्वम्

ततश्च परमक्रुद्धो वज्रं सुरसुपूजितम् ।
चिक्षेप तच्च तत्रैव तथैवान्तरधीयत ॥ ११९ ॥

अन्त में इन्द्र द्वारा प्रयुक्त वज्र भी अकिञ्चित्कर हो गया—तब क्रुद्ध हुये इन्द्र ने देवताओं से प्रशंसित अपने वज्र को चलाया। किन्तु वह भी उसी में जाकर उसी में विलीन हो गया ॥ ११९ ॥

स्वपराजयात् विस्मितस्य शक्रस्य राज्ञा सह संलापः

तद् दृष्ट्वा विस्मितः शक्रो राजपार्श्वमुपाययौ।
कीर्तिमाली च देवेन्द्रं विमानस्थं पुरः स्थितम् ॥ १२० ॥
उत्थाय प्रणतो भूत्वा तुष्टाव शुभया गिरा।
ततस्तुष्टः शचीनाथो राजानमिदमब्रवीत् ॥ १२१ ॥
पुरा विमुक्तान्यस्त्राणि विफलानि तवाभवन्।
अधुना विपरीतानि दृश्यन्ते कारणं वद ॥ १२२ ॥

अपने सारे पराक्रम को निष्फल देखकर देवराज इन्द्र का राजा से सम्भाषण करना—अपने सारे प्रयत्नों को, किं बहुना, वज्र प्रयोग को भी निष्फल हुआ देख इन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। अन्त में इन्द्र स्वयं राजा के पास आये। तब कीर्त्तिमाली भी अपने आगे विमान पर स्थित इन्द्रदेव को देख कर उठ खड़े हुये और प्रणाम कर विनम्र हो शुभवाणी से स्तुति करने लगे। तदनन्तर सन्तुष्ट हुये देवराज इन्द्र ने राजा से कहा—हे राजन्! प्रथम आपके द्वारा प्रयुक्त सभी अस्त्र निष्फल हो गए थे। किन्तु इस समय सभी अस्त्र उसके विपरीत हो सफल हो गए। इसका क्या कारण है? आप बताइए ॥ १२०-१२२ ॥

राज्ञा सुदर्शनयन्त्रघटितवितानप्रभावात् स्वस्याजय्यत्वस्य ख्यापनम्

सुदर्शनमहायन्त्रयन्त्रितस्य प्रभावतः।
वितानस्य हरे प्राप्तमजय्यत्वमवेहि नः ॥ १२३ ॥

राजा का सुदर्शनयन्त्र से घटित वितान (=आच्छादन) के प्रभाव को अपने विजय में कारण बताना—राजा ने कहा—देवराज! श्रीविष्णु के सुदर्शन महायन्त्र से यन्त्रित वितान के प्रभाव से मैंने यह अजयेता प्राप्त की है। ऐसा आप जान लीजिये ॥ १२३ ॥

राजशक्रयोः सख्यकरणपूर्वकं स्वस्वस्थानगमनम्

अतः परं महाराज सख्यं भवतु चावयोः।
यन्मे तत् तव यत् ते स्यात् तन्मम स्यादिति ब्रुवन् ॥ १२४ ॥
स ययौ त्रिदिवं देवः सबलायुधवाहनः।
कीर्तिमाली च सन्तुष्टो विजयी स्वपुरं ययौ ॥ १२५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां कीर्तिमाल्युपाख्यान-
वर्णनं नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५० ॥
॥ आदितः श्लोकाः ३२३७ ॥

*

राजा तथा देवराज इन्द्र का परस्पर एक दूसरे का सत्कार कर अपने-अपने निवास स्थान पर लौट आना—तब देवराज इन्द्र ने कहा—हे महाराज ! अब हमारे और आपके बीच मैत्री हो, जो हमारा हो, वह आपका हो और जो आपका हो वह मेरा हो—ऐसा कहते हुये देवराज इन्द्र अपनी सेना एवं अस्त्र-शस्त्र तथा वाहन के साथ स्वर्ग चले गए और कीर्त्तिमाली भी इन्द्र की मैत्री से सन्तुष्ट होकर विजय प्राप्त कर अपने पुर की ओर लौट आए ॥ १२४-१२५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के कीर्त्तिमाली उपाख्यान वर्णन नामक पचासवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज़ डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५० ॥

* * *

अथ एकपञ्चाशोऽध्यायः

तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थवर्णनम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरे का एक बार भी ध्यान अनेक करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

तारादिमन्त्रार्थप्रश्नः

नारदः—

भगवन् भूतभव्येश भगनेत्रनिपातन ।
साधकानां हितार्थाय यन्त्रं नानाविधात्मकम् ॥ १ ॥
नानामन्त्रमयं प्रोक्तं नानाशक्त्युपबृंहितम् ।
प्रदर्शितानि चास्त्राणि द्वितयानीह शङ्कर ॥ २ ॥
विधानमपि च प्रोक्तं दिव्यं माहाभिषेचनम् ।
उक्ता चोच्चावचा शान्तिरियं ग्लपितयातना ॥ ३ ॥
ऋग्भिरप्युदिता सम्यगस्त्रशक्तिरनेकधा ।
नानाफला महावीर्या मन्त्रा एवात्र कारणम् ॥ ४ ॥
उक्ता भगवता पूर्वं मन्त्रास्ते तारकादयः ।
एषामर्थकृतं भावं वक्तुमर्हसि शङ्कर ॥ ५ ॥
यत्तज्ज्ञानं महत् प्रोक्तं सर्वशास्त्रार्थसम्भवम् ।
तत्ते मनोमयं सर्वं सर्वज्ञो ह्यसि शाश्वत ॥ ६ ॥

तारादि मन्त्रों का अर्थ प्रतिपादन करने के लिए प्रश्न—श्रीनारद ने कहा—हे भूत तथा भविष्य काल के ईश, हे भगनेत्रभञ्जक ! हे भगवन् ! आपने साधकों के हित के लिए नाना मन्त्रों से युक्त एवं नाना शक्तियों से उपबृंहित नाना प्रकार के यन्त्रों का आख्यान किया । हे शङ्कर ! प्रवर्त्तक एवं निवर्त्तक इन दो भेदों वाले अस्त्रों का भी प्रदर्शन किया । विधान सहित दिव्य महाभिषेचन भी कहा और रोगादि आपत्तियों को नष्ट करने वाली

वैदिक ऋचाओं से होने वाली शान्ति को भी बड़े एवं सामान्य लोगों के लिए कहा तथा अस्त्रों की अनेक प्रकार की शक्तियों का भी भली प्रकार से निरूपण किया तथा यह भी कहा कि इन सभी कार्यों में अनेक प्रकार के फल देने वाले महाबलवान् मन्त्र ही कारण हैं । एतदर्थ आपने पूर्व में तारकादि मन्त्रों का उपदेश भी दिया । अब हे शङ्कर ! इन मन्त्रों के अर्थ द्वारा उत्पन्न हुये भावों का भी प्रतिपादन कीजिये । क्योंकि सभी शास्त्रों के अर्थ से उत्पन्न होने वाला यह ज्ञान महाविशाल है, जो सभी आपके मन में विद्यमान हैं । हे शाश्वत ! आप सर्वज्ञ हैं कोई भी शास्त्रार्थ आपसे छिपे नहीं है ॥ १-६ ॥

उत्तरकथनारम्भः

अहिर्बुध्न्यः—

शृणु नारद तत्त्वेन मन्त्राणामर्थजं यशः ।
यद्विज्ञानान्नरः शश्वत् सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥

उत्तर देने का उपक्रम—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! अब आप मन्त्रों से उत्पन्न होने वाले अर्थों की प्रशंसा सुनिए जिसके जान लेने से मनुष्य सर्वदा के लिए सर्वज्ञ बन जाता है ॥ ७ ॥

तारकस्य सर्वश्रैष्ठ्यप्रतिपादनम्

तारको नाम यो भावः सारः सर्वगिरामयम् ।
प्रभवन्ति ह्यतः शब्दा अपियन्ति च तं पुनः ॥ ८ ॥
अनेनाप्यायिताः शब्दा भावं पुष्णन्ति च स्वकम् ।

सभी मन्त्रों में तारक मन्त्र सर्वश्रेष्ठ है ऐसा प्रतिपादन—यह तारक नाम का जो मन्त्र है वह समस्त वाग् का सार है । इसी से सारे शब्द पैदा होते हैं और पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं । शब्द इसी से आप्यायित (वृद्धि) होकर अपने-अपने अर्थों को प्रगट करते हैं ॥ ८-९ ॥

मन्त्रसामान्येऽप्यर्थस्य त्रैविध्यम्

स्थूलः सूक्ष्मः परश्चेति भावो मन्त्रे त्रिधा स्थितः ॥ ९ ॥

मन्त्र सामान्य रूप से एक रहता है किन्तु उसके अर्थ तीन प्रकार के होते हैं—१. स्थूल अर्थ, २. सूक्ष्म अर्थ और ३. परार्थ । इस प्रकार भावस्वरूप से मन्त्रार्थ की त्रिधा स्थिति होती है ॥ ९ ॥

स्थूलादीनां सामान्यतो लक्षणम्

स्थूलः संसर्गजो योऽर्थः सूक्ष्मः पदविभावितः ।
अप्रमेयादिभिर्भावैरक्षरस्थः परः स्मृतः ॥ १० ॥

स्थूल, सूक्ष्म तथा पर अर्थों के सामान्य लक्षण—शब्दों के परस्पर संसर्ग से जो अर्थ प्रगट होते हैं, वे स्थूल हैं और पदों से ज्ञात होने वाले अर्थ सूक्ष्म हैं । अप्रमेयादि भावों से अक्षरों में रहने वाले अर्थ 'पर' कहे गए हैं (द्र० १७.४.२९) ॥ १० ॥

स्थूललक्षणम्

संस्तुतैरन्वितैर्योगैः स्वस्ववाच्याभिधानतः ।
पुरुषार्थोऽविभागात्मा संसर्गो नाम भाव्यते ॥ ११ ॥

स्थूल के लक्षण—प्रशस्त अन्वय वाले योगों से युक्त अपने-अपने वाच्यार्थ के अभिधान से पुरुष द्वारा किया गया वह अर्थ जिसका कोई और विभाग न हो सके इस प्रकार का संसर्ग स्थूल अर्थ का लक्षण है ॥ ११ ॥

सूक्ष्मलक्षणम्

स्वरूपालोचनेनैव यः प्रतीतः पदे पदे ।
योगेन जन्यते भावः स सूक्ष्म उदितो बुधैः ॥ १२ ॥

सूक्ष्म लक्षण—अपने स्वरूप का प्रदर्शन करते हुये जो पद-पद में प्रतीत होता हो तथा पदों के परस्पर योग से जो अर्थ प्रगट होता है उसे बुद्धिमानों ने सूक्ष्म अर्थ कहा है ॥ १२ ॥

परलक्षणम्

अप्रमेयादिभिर्भावैर्भावो यो वर्णसंश्रयः ।
स परः कथ्यते सद्भिरिति त्रेधार्थसंस्थितिः ॥ १३ ॥

परलक्षण—अप्रमेयादि भावों (द्र० १७४४-२९) से जो अर्थ अक्षर में स्थित हो सज्जनों ने उसे परार्थ कहा है इस प्रकार तीनों प्रकार के अर्थों की स्थिति कही गई ॥ १३॥

तारस्य स्थूलार्थप्रदर्शनम्

ओतमस्मिन् मितं सर्वमित्यर्थः स्थूल उच्यते ।
ओकारेण मकारेण संसर्गस्तारकाश्रयः ॥ १४ ॥
द्वौ वर्णौ गमकावेतावोतस्य च मितस्य च ।
यत् किञ्चिद्भगवत्तोऽन्यत् तन्मितं सर्वमिष्यते ॥ १५ ॥
शक्तिमान् भगवान् वाच्यस्तच्छक्तेः प्रविजृम्भणम् ।
सङ्कल्पनीयः सङ्कल्प इति यत्ते पुरोदितम् ॥ १६ ॥
तत्र सङ्कल्पनीयोऽर्थो भूतिः शुद्धेतरात्मिका ।
अव्याहता तु तत्प्रेक्षा सङ्कल्पस्तत् सुदर्शनम् ॥ १७ ॥

तार प्रणव का स्थूल अर्थ प्रदर्शन—यह सारा संसार मित है जो परब्रह्म (प्रणव) में ओत-प्रोत (अनुस्यूव) हैं यही तार का स्थूल अर्थ कहा गया है क्योंकि तारक में स्थित ओंकार तथा मकार के परस्पर संसर्ग से यह अर्थ किया गया है इसमें रहने वाले दो वर्ण ओ और म् ओत तथा मित अर्थ के प्रगट करने वाले हैं, भगवान् से अतिरिक्त और जितने भी पदार्थ हैं वे सभी मित (स्वल्पपरिमाण वाले) हैं इस ओम् के शब्द से शक्तिमान् भगवान् वाच्य हैं जिसमें सारी शक्तियों का विजृम्भण विकास होता है । जिसे सङ्कल्पनीय और सङ्कल्प भी कहते हैं । हे नारद ! यह बात पूर्व में हम आपको बता भी चुके हैं उसमें

सङ्कल्पनीय अर्थ शुद्धेतर भूति नाम से भी पुकारा जाता है। उस भूति की प्रेक्षा (दृष्टि) अव्याहत है। तथा उस भूति का सङ्कल्प सुदर्शन नाम से कहा गया है ॥ १४-१७ ॥

कल्प्यकल्पात्मकं सर्वं तदेतन्मितमिष्यते।
मितं तदोतं सूत्रे हि मणिवद्भगवत्यजे ॥ १८ ॥
अवतिस्तु प्रवेशार्थो गतिर्व्याप्तिः प्रवेशनम्।
मितं प्रविष्टं देवेशे पुष्करे परमाणुवत् ॥ १९ ॥
ओतो मिते च देवेशः प्रविष्टः सूत्रवन्मणौ।
स्थूलोऽयं प्रणवस्यार्थः सूक्ष्मोऽथार्थो निरूप्यते ॥ २० ॥

कल्पना योग्य तथा कल्पमात्र रहने वाला यह सारा जगत् मित कहा गया है। यह सारा मित जगत उस भगवान् आज में इस प्रकार अनुस्यूत है जिस प्रकार सूत्र में मणि अनुस्यूत रहती है अब् धातु प्रवेश, गति, व्याप्ति तथा प्रविष्ट होने वाले अर्थ में कहा गया है। यह सारा मित संसार भगवान् में इस प्रकार प्रविष्ट हैं। जिस प्रकार पुष्कर (पराग) में परमाणु भगवान् उसी प्रकार यह भी इस मित जगत् में इस प्रकार प्रविष्ट हैं जिस प्रकार सूत मणि में। यह प्रणव का स्थूलार्थ हुआ अब उसका सूक्ष्मार्थ निरूपण करुँगा ॥ १८-२० ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणप्रतिज्ञा,
तत्रानिरुद्धप्रद्युम्नसङ्कर्षणानामखण्डभगवच्छक्त्यंशत्वकथनम्

सृष्टिस्थित्यन्तकारिण्यः शक्तयस्तिस्र ऊर्जिताः।
पूर्णाया भगवच्छक्तेरेकस्या अंशतां गताः ॥ २१ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण की प्रतिज्ञा में सर्वप्रथम यह कहना चाहते हैं कि अनिरुद्ध प्रद्युम्न तथा सङ्कर्षण ये भगवान् की अखण्ड शक्तियों के अंश हैं—सृष्टि, स्थित तथा विनाश करने वाली ये तीन शक्तियाँ प्रधान हैं जो परिपूर्ण भगवान् की एक ही शक्ति के अंश हैं ॥ २१ ॥

क्रमेण तेषां प्रणवाक्षरत्रयप्रतिपाद्यत्वम्

अकाराद्यक्षरत्रेतारूपिण्यः परमाद्भुताः।

तीन शक्तियों का क्रमशः प्रणव के तीनों अक्षर अकार, उकार तथा मकार से प्रतिपाद्य होना—ये तीनों ही क्रमशः अकारादि तीन अक्षर स्वरूपा हैं और परम आश्चर्यमयी हैं ॥ २२ ॥

तेषामेकैकस्य विश्वतैजसप्राज्ञरूपैकैकसंज्ञाभागित्वम्

अकारशक्तिर्विश्वाख्या उकारोत्था तु तैजसी ॥ २२ ॥
मकारशक्तिः प्राज्ञाख्या तासां रूपं पुनः शृणु।

इन तीनों अक्षरों का क्रम से विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ संज्ञा से अभिहित होना—अकार शक्ति विश्वा नाम से, उकार शक्ति तैजसी नाम से तथा मकार शक्ति प्राज्ञ नाम वाली कही गई हैं। अब आप उनके रूपों को पुनः सुनिए ॥ २२-२३ ॥

विश्वाख्यानिरुद्धरूपप्रदर्शनम्

एकोनविंशतिमुखा विश्वाख्या विश्वधारिणः ॥ २३ ॥

विश्वाख्या का ही अनिरुद्धशक्ति के नाम से अभिधान—उसमें जो विश्वधारी परमात्मा की विश्वाख्या शक्ति १९ मुखों वाली है।

विशेष—इस शक्ति का मध्यम मुख गजमुख की आकृति वाला है किन्तु इसके दोनों पार्श्वस्थ मुख के नव-नव सङ्ख्या से युक्त पुरुष मुख के सदृश हैं इस प्रकार कुल १९ मुख हैं ॥ २३ ॥

अनिरुद्धस्यैव स्थानविशेषनिर्देशपूर्वकं भोग्यविशेषनिरूपणम्

नानासृष्टिमयी विश्वा भुङ्क्ते स्थूलानि जाग्रती।
द्रव्यक्रियागुणाकारं नानासामान्यचित्रितम् ॥ २४ ॥
स्थूलं तर्पयते विश्वं विश्वां सृष्टिमयीमजाम्।

अनिरुद्ध का स्थान विशेष निर्देश करते हुये भोग्यविशेष का निरूपण—यह विश्वा शक्ति नाना प्रकार की सृष्टियों वाली है और नेत्र स्थान पर स्थित हो जागती हुई स्थूल पदार्थों का उपभोग करती है। इतना ही नहीं द्रव्य, गुण एवं क्रियात्मकादि नाना स्वरूपों से तथा सामान्य रूप से विचित्र इस स्थूल विश्व को तृप्त करती है और विश्वा सृष्टिमयी अजा (माया) को भी तृप्त करती है ॥ २४-२५ ॥

प्रद्युम्नस्य भोग्यविशेषस्थानविशेषनिरूपणम्

विश्वं तदेव सूक्ष्माख्यमन्तःकरणसंमितम् ॥ २५ ॥
स्वाप्नीं तर्पयते शक्तिमुकारस्थां तु तैजसीम्।

प्रद्युम्न के भोग्यविशेष तथा स्थानविशेष का निरूपण—वही विश्व (स्थूल) जब सूक्ष्म (वासना) रूप में रहता है तो उसका अन्त कारण संज्ञा होती है वह स्वाप्नीशक्ति का तर्पण करती है और उकार में होने वाली तैजसी शक्ति का भी तर्पण करती है ॥२५-२६॥

सङ्कर्षणस्य भोग्यविशेषस्थानविशेषनिरूपणम्

विश्वं तदेव सूक्ष्मत्वं विहायानन्दतां गतम् ॥ २६ ॥
परां तर्पयते शक्तिं सौषुप्तिं प्राज्ञनामिकाम्।
उकारशक्तिस्त्रिमुखा सूक्ष्मा स्वाप्नी पुरोदिता ॥ २७ ॥
निरञ्जना मकाराख्या शक्तिरानन्दभोजिनी।

सङ्कर्षण के भोग्यविशेष तथा स्थानविशेष का निरूपण—वही विश्व (स्थूल) जब सूक्ष्मता (अन्त:करणजन्यवासना) को त्याग कर जब आनन्द स्वरूप को प्राप्त करती है तो सुषुप्ति, जिसका नाम प्राज्ञ भी है, उस पराशक्ति को तृप्त करती है, उकार में रहने वाली त्रिमुखा स्वाप्नीशक्ति सूक्ष्मा है यह हम पहले कह आये हैं (द्र० ५१.२५) ॥ २६-२८ ॥

अनिरुद्धस्य स्थूलदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः

स्थूलं पुरमधिष्ठाय देहं विश्वा प्रवर्तते ॥ २८ ॥

अनिरुद्ध की स्थूलदेह के अधिष्ठातृत्वरूपेण प्रवृत्ति—यह विश्वा (अनिरुद्ध) शक्ति स्थूल देह स्वरूप पुर में निवास करती हुई प्रवृत्त होती है ॥ २८ ॥

प्रद्युम्नस्य सूक्ष्मदेहाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः

सूक्ष्मं पुर्यष्टकं स्वाप्नी पुरमादाय वर्तते ।

प्रद्युम्न की सूक्ष्मदेहाधिष्ठातृत्वरूपेण प्रवृत्ति—यह सूक्ष्म (प्रद्युम्नरूपा) शक्ति आठ पुरी वाली स्वाप्नी पुरी में निवास कर प्रवृत्त होती है ॥ २९ ॥

सङ्कर्षणस्यानन्दाधिष्ठातृतया प्रवृत्तिः

प्राज्ञा प्रवर्तते प्राप्य पुरमानन्दजं परम् ॥ २९ ॥

सङ्कर्षण की आनन्दाधिष्ठातृत्व रूपेण प्रवृत्ति—प्राज्ञा (सङ्कर्षण रूपा) शक्ति सर्वोत्कृष्ट आनन्द देने वाले पुर को प्राप्त हो कर प्रवृत्त होती है ॥ २९ ॥

अनिरुद्धस्य बहिःप्रज्ञत्वम्

बाह्यप्रमाणभूमिष्ठा विश्वस्य स्थूलता दशा ।

अनिरुद्ध की बहिःप्रज्ञता—विश्व की स्थूलता रूपा दशा (अनिरुद्ध रूपा शक्ति) बाह्य प्रमाण वाली भूमि में निवास करती है ॥ ३० ॥

प्रद्युम्नस्यान्तःप्रज्ञत्वम्

अन्तःकरणभूमिष्ठा सूक्ष्मता तस्य वै दशा ॥ ३० ॥

प्रद्युम्न की अन्तःप्रज्ञता—इस विश्व की सूक्ष्मता रूपा दशा (प्रद्युम्न रूपा शक्ति) अन्तःकरण की भूमि में निवास करती है ॥ ३० ॥

सङ्कर्षणस्यानन्दमयत्वम्

सदानन्दमयी तस्य विश्वस्य परता दशा ।

सङ्कर्षण का आनन्दमय स्वरूप—विश्व की परता रूपा दशा (सङ्कर्षण रूपा शक्ति) सदा आनन्दमयी भूमि में निवास करती है ॥ ३१ ॥

स्थूलत्वादिदशात्रयस्यानिरुद्धादिशक्तित्रयप्रीतिहेतुत्वम्

एतास्तिस्रो दशास्तिस्रः शक्तीः सम्प्रीणयन्ति ताः ॥ ३१ ॥
अनिरुद्धादिरूपास्ता भोक्तृशक्तीर्विचिन्तयेत् ।

इन स्थूलादि तीनों दशाओं का उन तीनों प्रकार की शक्तियों को प्रसन्न रखना—ये शक्तियाँ अनिरुद्धादि स्वरूप वाली है । इनका स्थूल एवं सूक्ष्म तथा आनन्दमयी शक्तियों का जगत् के भोक्तृत्व रूप में ध्यान करना चाहिए ॥ ३१-३२ ॥

वासुदेवाख्यायाश्चतुर्थशक्तेर्नादप्रतिपाद्यत्वम्

अर्धमात्रा तु या दिव्या मकारोत्था प्रकाशिनी ॥ ३२ ॥
वासुदेवमयीं शक्तिं विद्धि तामनुपस्कृताम् ।

वासुदेव नामक चतुर्थ शक्ति का नाद के द्वारा प्रतिपादित होना—हे नारद ! मकार से उत्पन्न हुई अर्धमात्रा युक्त प्रकाश करने वाली एक दिव्या शक्ति है, उसे आप

वासुदेवमयी शक्ति समझो । वह जाग्रत, स्वप्न सवं सुषुप्ति के अभिमानी अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा सङ्कर्षण शक्ति से भिन्न है । जिसे तुरीया शक्ति भी कहते हैं ॥ ३२-३३ ॥

शक्तिचतुष्टयविलये सति अखण्डभगवच्छक्तेः स्तैमित्यरूपत्वम्

तिसृणां सार्धमात्राणां विलये या विराजते ॥ ३३ ॥
तां विद्धि भगवच्छक्तिमनुच्चार्यां निरञ्जनाम् ।

शक्ति चतुष्टय के विलय हो जाने पर अखण्डभगवच्छक्ति का स्तिमित रूप में होना—अर्द्धमात्रा के सहित तीनों शक्तियों के विलय हो जाने पर भी जो सत्ता के रूप में शेष रह जाती है उसे उच्चारण से परे मायारहित भगवच्छक्ति समझो ॥ ३३-३४ ॥

शक्तिचतुष्टयविलापनप्रकारः

उच्चरन्नोमिति व्यक्तं क्रमादादीर्विलोपयेत् ॥ ३४ ॥
शक्तीश्चतस्र उद्दिष्टा उत्तरोत्तरभूमिषु ।

चारों शक्तियों के विलय का प्रकार—'ॐ' इस शब्द का उच्चारण करते हुये क्रमशः अकार, उकार, मकार तथा चौथी नाद शक्ति को उत्तरोत्तर भूमि में विलय करना चाहिए ॥ ३४-३५ ॥

स्तैमित्यरूपायास्तस्याः शक्तेः पञ्चमदशारूपत्वम्

या न किञ्चिदिवाभाति न सती नापि चासती ॥ ३५ ॥
सर्वासां ग्रसनी दिव्या शक्तीनां पञ्चमी दशा ।

तब मात्र स्तैमित्य शक्ति (= शान्ति) का ही पञ्चमदशा को प्राप्त होना—उस स्तैमित्य शक्ति का न सत्तात्मक रूप से और न असत्तात्मक रूप से कुछ भी भान नहीं होता । वह सभी शक्तियों की पञ्चमी दशा है जो सब कुछ ग्रसने वाली तथा दिव्या है ॥ ३५-३६ ॥

प्रणवाभ्यासविशेषस्य तादृशशक्तिसाक्षात्कारहेतुत्वम्

ओमित्युच्चरतः सम्यक् शाम्यतः क्रमतो मुने ॥ ३६ ॥
महाभासा निराभासा शक्तिः सान्तर्विजृम्भते ।

प्रणव के अभ्यास विशेष से उस शक्ति का साक्षात्कार होना—हे मुने ! 'ॐ' इस शब्द का उच्चारण करने वाले को जब क्रमशः क्रमशः पूर्ण शान्ति प्राप्त होने लगती है तब महाभासा, निराभासा वही सौमित्यशक्ति अन्तः करण में प्रकाशित होने लगती है ॥ ३६-३७ ॥

तस्याः शक्तेर्भगवदपृथक्सिद्धविशेषणीभूतलक्ष्मीरूपत्वम्

अनन्या सा परा शक्तिर्विष्णोर्लक्ष्मीः सनातनी ॥ ३७ ॥
गौरी सरस्वती धेनुर्वाच्या वाच्यक्रमोज्झिता ।

वह शक्ति भगवान् से पृथक् न रह कर उनमें विशेषण रूप से रहती हुई लक्ष्मीस्वरूपा

कही जाती है—वही परा शक्ति विष्णु से पृथक् न रहकर लक्ष्मी, सनातनी गौरी, सरस्वती तथा धेनु शब्द से वाच्य होती है। उसमें वाच्य का क्रम नहीं रहता ॥ ३७-३८ ॥

ओंकाराभ्यासिनो हृदये लक्ष्म्या निर्हेतुकं स्वस्वरूपस्य प्रकाशनम्

उदेति स्वयमेवान्तरोंकारं शृण्वतो मुने ॥ ३८ ॥

ॐकार का दृढ़तर अभ्यास करने वाले भक्तों के हृदय में लक्ष्मी का स्वयं अपने स्वरूप को प्रगट करना—हे मुने ! ॐकार का जप करने वालों को वह महालक्ष्मी स्वयं दर्शन देती है ॥ ३८ ॥

भवद्दूरे परस्मिन् ब्रह्मणि भावरूपत्वं लक्ष्म्याः

नित्ये निरञ्जने शुद्धे निष्कले निर्विकल्पके ।
विष्णौ भवितरि व्यक्तं भावो ब्रह्मणि वर्तते ॥ ३९ ॥

परब्रह्म परमात्मा के प्रादुर्भूत होने पर उनका भी स्वयं प्रादुर्भूत होना—नित्य निरञ्जन, विशुद्ध, निष्कल तथा निर्विकल्प, ब्रह्मस्वरूप विष्णु जब प्रादुर्भूत होते हैं तो वह लक्ष्मी भी भाव रूप से प्रादुर्भूत होती है ॥ ३९ ॥

पौराणिकोक्तस्य ब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञाचतुष्टयस्य लक्ष्मीपरत्वम्

ब्रह्मविष्णुशिवाख्याभिस्तथैवाव्याकृताख्यया ।
उक्ता चतसृभिर्दिव्या स्तूयते सैव पञ्चमी ॥ ४० ॥

पुराणों में कहे गए ब्रह्मा, विष्णु आदि चारों संज्ञाओं से उन्हीं लक्ष्मी का बोध होना—ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अव्याकृत इन चारों नामों से उसी पञ्चमी महालक्ष्मी का बोध होता है ॥ ४० ॥

पाशुपतोक्तस्येशादिसंज्ञाचतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम्

ईशविद्यासमाख्याभिस्तथैव च शिवाख्यया ।
उक्ता चतसृभिः सैव शक्तिः पाशुपते मते ॥ ४१ ॥

पाशुपत मत में ईशादि चारों संज्ञाओं से भी उसी महालक्ष्मी का बोध होना—पाशुपत मत में ईशा, विद्या, समा तथा शिवा इन चारों नामों से उसी महाशक्ति लक्ष्मी का बोध होता है ॥ ४१ ॥

सांख्ययोगोक्तस्य संज्ञाचतुष्टयस्यापि लक्ष्मीपरत्वम्

व्यक्ताव्यक्तपुमाख्याभिस्तथा कालाख्यया मुने ।
उक्ता चतसृभिः सैव शक्तिर्वै सांख्ययोगयोः ॥ ४२ ॥

सांख्य योगमत में भी चारों संज्ञाओं से लक्ष्मी का बोध होता है—हे मुने ! सांख्य तथा योग मत में भी व्यक्त, अव्यक्त, पुमान् तथा काल नामक चार संज्ञाओं से वही महालक्ष्मी कही जाती है ॥ ४२ ॥

लक्ष्मीविशिष्टस्य परस्य ब्रह्मणो मुक्तप्राप्यत्वम्

प्राप्य तां पञ्चमीं शक्तिं यदन्ते विरमत्यसौ।
परं ब्रह्म परं धाम तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ४३ ॥

लक्ष्मीविशिष्ट परब्रह्म ही मुक्त योगियों को प्राप्त होते हैं—दृढ़तर प्रणवाभ्यास से संसार बन्धन से मुक्त हुआ पुरुष लक्ष्मी विशिष्ट पर ब्रह्म को प्राप्त कर विराम प्राप्त करता है। वही विष्णु का परं धाम है। अविच्छिन्न तेज वही विष्णु का परम पद है और वही उनका स्वरूप है ॥ ४३ ॥

उक्तार्थस्यैव भङ्ग्यन्तरेण विशदीकरणम्

अर्धमात्रोर्ध्वगां दिव्यां दीर्घघण्टानदोपमाम्।
अन्तरास्वादयञ्छक्तिमानन्दात्मानमव्ययाम् ॥ ४४ ॥
यमन्ते लभते भावं रूपं विष्णोस्तदुज्ज्वलम्।
इति ते प्रणवस्यार्थः सूक्ष्मात्मा सम्प्रदर्शितः॥ ४५ ॥

उसी अर्थ को प्रकारान्तर से विस्तारपूर्वक कहते हैं—अर्धमात्रा वाली, ऊपर की ओर गमन करने वाली, दीर्घ घण्टा के समान शब्द वाली, आनन्दात्मा तथा अव्यय स्वरूपा उस महाशक्ति का अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार कर साधक अन्त में जिस भाव को प्राप्त करता है वही विष्णु का उज्ज्वल रूप है। यही प्रणव का सूक्ष्म स्वरूप वाला अर्थ है। हे नारद! इसे मैंने आपसे कहा ॥ ४४-४५ ॥

अथ परार्थनिरूपणम्

योऽर्थः पराह्वयस्तस्य तमिदानीं निबोध मे।
प्रणवं भावयेदेतदक्षरद्वितयात्मकम्॥ ४६ ॥

प्रणव का परार्थ निरूपण—अब जो प्रणव का परार्थ है। हे नारद! आप उसे सुनिए। यह अर्थ उसी प्रणव का निरूपण करता है जिसका दूसरा नाम अक्षर भी है ॥ ४६ ॥

सृष्ट्याद्युन्मुखशक्त्युपहितस्य स्थूलचिदचिद्विशिष्टस्य ब्रह्मणोऽकारप्रतिपाद्यत्वम्

पञ्चकृत्यकरी शक्तिर्या हि सा वैष्णवी परा।
तयैवोपहितं ब्रह्म नानाकारविकल्पवत्॥ ४७ ॥
अभिधत्ते परं विष्णुं सृष्टिकृत् परमेश्वरः।

सृष्टि के लिए उन्मुख महाशक्ति से उपहित स्थूल चिद्, अचिद्विशिष्ट ब्रह्म 'ॐ' में रहने वाले अकार से प्रतिपाद्य है उनका प्रतिपादन—जो पञ्चकृत्यकरी है वही विष्णु की पराशक्ति है उस वैष्णवी शक्ति से उपहित ब्रह्म ही नाना आकार के विकल्पों से युक्त होता है। अतः सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर ही पर विष्णु का अभिधान करते हैं ॥ ४७-४८ ॥

सृष्ट्याद्यनुन्मुखशक्त्युपहितस्य सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्टस्य ब्रह्मण उकारप्रतिपाद्यत्वम्

अव्यक्तपञ्चकृत्यासौ तूष्णींभूतेव राजते॥ ४८ ॥

निरञ्जना निराभासा निश्चला वैष्णवी परा ।
सदा प्रतायमानापि सूक्ष्मैर्भावैरर्लक्षणैः ॥ ४९ ॥
निर्व्यापारेव सा भाति स्तैमित्यमिव चोदधेः ।
तयैवोपहितं ब्रह्म निर्विकल्पं निरञ्जनम् ॥ ५० ॥
अभिधत्ते परं विष्णुं व्यापी व्योमेश उज्ज्वलः ।

सृष्टि के लिए उन्मुख शक्ति से उपहित सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट ब्रह्म उकार से प्रतिपाद्य है इसका प्रतिपादन—पञ्चकृत्यों को अपने में अव्यक्त रखने वाली जब वह महाशक्ति कुछ न कर तूष्णीभाव रूप में स्थित रहती है तब वह निरञ्जना (माया रहित), निराभासा (प्रकाश रहित), निश्चला (सर्वथा स्थिर) परा वैष्णवी (महालक्ष्मी) सर्वदा प्रतायमान (विकासशील) होते हुये भी सूक्ष्म भावों से अपना लक्षण प्रगट किये बिना ही निर्व्यापार दशा को प्राप्त हो जाती है । जिस प्रकार निर्व्यापार समुद्र स्तैमित्य (निश्चलता) को प्राप्त करता है उस प्रकार की सूक्ष्म महालक्ष्मी से उपहित निर्विकल्प एवं निरञ्जन ब्रह्म पर विष्णु का अभिधान करता है । वह विष्णु व्यापी व्योमेश (ॐकार स्वरूप १७.११) तथा उज्ज्वल है ॥ ४८-५१ ॥

ओंकारेण यथोक्तब्रह्मणोरभिन्नत्वस्य बोधनम्

एकतानयनं यत् तदनयोर्वर्णयोर्द्वयोः ॥ ५१ ॥
तदोमित्यक्षरं ब्रह्म परेयमजपा स्मृता ।
जगद्विलापनं रूपं तदेव प्रणवाह्वयम् ॥ ५२ ॥

ॐकार से ऊपर कहे गए ब्रह्म के स्वरूप का अभिधान—जब अकार उकार दोनों वर्ण एक होकर सन्धिः ॐकार का रूप धारण करते हैं तो वही 'ॐ' अक्षर ब्रह्म कहा जाता है और वही अजपा कहा जाता है । सारे जगत् को अपने में विलीन करने वाला जो रूप है वही प्रणव स्वरूप से कहा जाता है ॥ ५१-५२ ॥

उक्तार्थध्याननिष्ठस्य योगनिष्ठासिद्धिः

अत्र योऽवहितो योगी स समाधिं व्रजेत् परम् ।
इति ते त्रिविधावस्था प्रणवस्य प्रदर्शिता ॥ ५३ ॥

ऊपर कहे गए प्रणव के ध्यान में निष्ठा रखने वाले पुरुष को शीघ्र योगसिद्धि हो जाती है ऐसा कथन—जो इस प्रणव का सावधानी से ध्यान करता है वह पर समाधि को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार हे नारद ! मैंने प्रणव की तीनों प्रकार की अवस्थओं को आपको बताया ॥ ५३ ॥

तारानुतारयोरर्थवर्णनप्रतिज्ञा

तारानुतारयोरन्या विधास्तिस्रो निशामय ।

तारा एवं अनुतारा के अर्थ वर्णन करने की प्रतिज्ञा—अब हे नारद ! तारा (ह्रीं) और अनुतारा (श्रीं) के अन्य तीनों (स्थूल, सूक्ष्म एवं पर) अवस्थाओं को सुनिए ॥५४ ॥

तत्र तारायाः स्थूलार्थनिरूपणम्

हरत्यशेषदुरितमीड्यते च सुरासुरैः ॥ ५४ ॥
मीयते चाखिलैर्मानैरतो ह्रीमिति कीर्त्यते ।

उसमें तारा के स्थूलार्थ का निरूपण—जो समस्त दुरितों का विनाश करे तथा सुर और असुरों से संस्तुत हो और समस्त मानों एवं प्रमाणों से कही जाती है इसलिए तारा का अर्थ 'ह्रीँ' कहा जाता है ॥ ५४-५५ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

इति ते स्थूल उद्दिष्टः सूक्ष्ममद्य निशामय ॥ ५५ ॥
सर्वत्र प्राणिति व्यक्तमलंभावं न गच्छति ।
नित्योन्नमनरूपा सा कलयत्यखिलं जगत् ॥ ५६ ॥

तारा ह्रीं के सूक्ष्मार्थ का निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ऊपर हमने तारा का स्थूल अर्थ आपको बता दिया अब सूक्ष्म अर्थ सुनिए । जो सर्वत्र स्पष्ट रूप से प्राण प्रदान करती है और कभी भी अलंभाव (विश्राम या पर्याप्तता) को नहीं प्राप्त करती नित्य उन्मन अर्थात् ऊपर उठाने के रूप वाली होकर वह सारे जगत् का निर्माण करती है ॥ ५५-५६ ॥

परार्थनिरूपणम्

इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमद्य निशामय ।
परमात्मा परो योऽसौ देवो नारायणाह्वयः ॥ ५७ ॥
तस्यानपायिनी शक्तिर्देवी तद्धर्मधर्मिणी ।
मायाश्चर्यकरत्वेन पञ्चकृत्यकरी सदा ॥ ५८ ॥
व्यापिनी विष्णुरूपेण सर्वभावानुगामिनी ।
अशेषभुवनाधारसङ्कल्पप्रविजृम्भिणी ॥ ५९ ॥
समाश्रितानलं भावं विधाय विविधं जगत् ।
व्योमेशव्यापिनी स्पष्टं पुनः सा प्रतितिष्ठति ॥ ६० ॥
परोऽयमर्थ उद्दिष्टस्तारिकाया महामुने ।

तारा (ह्रीं) मन्त्र का परार्थ निरूपण—इस प्रकार हे नारद ! मैंने तारा मन्त्र का सूक्ष्म अर्थ आपको बताया, अब परार्थ सुनिए । जो यह पर परमात्मा देव हैं, जिन्हें नारायण भी कहा जाता है, उनकी कभी नष्ट न होने वाली शक्ति उनके समान धर्म को धारण करती है । आश्चर्य युक्त काम करने से वही माया तथा पञ्चकृत्यकरी कही जाती है । विष्णु रूप से वह सर्वत्र व्याप्त होकर सभी पदार्थों में अनुस्यूत रहने वाली है, समस्त जगत् की आधारभूता है तथा सङ्कल्प से सर्वत्र प्रकाश फैलाने वाली है । वह सारे जगत् का निर्माण करके भी अलंभाव (परिश्रान्त) को नहीं प्राप्त होती । इतना कर लेने पर फिर वह व्योमेश (विष्णु ५१.५१) में व्याप्त होकर स्थित हो जाती है । यही तारा का परार्थ है । हे महामुने ! इस प्रकार हमने तारा (ह्रीं) का परार्थ आपको निरूपण किया ॥ ५७-६१ ॥

अनुतारायाः स्थूलार्थनिरूपणम्

शृणाति निखिलान् दोषाञ्छ्रीणाति च गुणैर्जगत् ॥ ६१ ॥
श्रीयते चाखिलैर्नित्यं श्रयते च परं पदम् ।
लेशतः स्थूल उद्दिष्टः श्रिय एष महामुने ॥ ६२ ॥

अनुतारा (श्रीं) का स्थूलार्थ निरूपण—जो अपने चरण कमल में आश्रय चाहने वाले समस्त भक्तों के कर्म रूप को नष्ट करती है तथा कारुण्य वात्सल्यादि स्वगुणगणों से समस्त जगत् के मानस काठिन्यादि दोषों को पचाकर उन्हें मृदु बनाती है और समस्त स्वीय चेतन वर्ग जिसके चरण कमलों का आश्रय लेते हैं तथा जो परं पद में निवास करती है यही अनुतारा का स्थूल अर्थ है । हे महामुने ! इस प्रकार अनुतारा का स्थूलार्थ (श्रीँ) लेश मात्र आपसे कहा ॥ ६१-६२ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षरमव्ययम् ।
शङ्करी श्रयतां तत्र मर्दयन्ती भवोदधिम् ॥ ६३ ॥
नानाश्चर्यकरी भूत्वा तत्तद्भोगप्रदानतः ।

अनुतारा (श्रीं) का सूक्ष्मार्थ निरूपण—नित्य, अक्षर, अव्यय एवं पुण्डरीक जिसका परम धाम है । जो अपने आश्रित भक्तों के लिए अनेक सौभाग्यों को प्रदान कर आश्चर्यकारिणी होकर उनका कल्याण करती है तथा संसारसमुद्र से अथवा जन्म मरण के कुचक्र से छुड़ाती है । यही अनुतारा का सूक्ष्म अर्थ है ॥ ६३-६४ ॥

परार्थनिरूपणम्

इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमद्य निशामय ॥ ६४ ॥
प्रशान्तं यत् परं ब्रह्म नित्यशुद्धं निरञ्जनम् ।
षाड्गुण्यमचलं दिव्यं नारायणसमाह्वयम् ॥ ६५ ॥
तद्धर्मधर्मिणी देवी शक्तिस्तस्यानपायिनी ।
मायाश्चर्यकरत्वेन पञ्चकृत्यकरी सदा ॥ ६६ ॥
व्यापिनी विष्णुरूपेण सर्वभावानुभाविनी ।
अशेषभुवनाधारसङ्कल्पप्रविजृम्भिणी ॥ ६७ ॥
समास्थितानलंभावं विधाय विविधं जगत् ।
व्योमेशव्यापिनी स्पष्टं पुनः सा प्रतितिष्ठिति ॥ ६८ ॥
अर्थोऽयमनुतारायास्ताराया इव वर्णितः ।

अनुतारा (श्रीं) का परार्थ निरूपण—हे नारद ! यहाँ तक हमने अनुतारा का सूक्ष्म अर्थ कहा । अब पर अर्थ सुनिए । नित्यशुद्ध निरञ्जन (मायारहित) षाड्गुण्य अचल दिव्य एवं नारायण नाम वाले प्रशान्त परब्रह्म के समान उनके धर्म को धारण करने वाली उनकी शक्ति नित्या है जो नाना प्रकार के आश्चर्यकारक कर्म करने से पञ्चकृत्यकारी कही जाती है

विष्णुरूप से वह सर्वत्र सभी पदार्थों में अनुस्यूत होकर व्यापनशीला है। समस्त संसार की आधारभूता है तथा अपने सङ्कल्प से प्रकाशित रहती है। अनेक प्रकार के जगत् का निर्माण कर भी वह कभी थकान को नहीं प्राप्त करती और पुनः ॐ विष्णु में व्याप्त होकर उसी में स्थित हो जाती है, हे नारद ! इस प्रकार तारा (ह्रीं) के समान हमने इस अनुतारा (श्रीँ) का परार्थ निरूपण किया ॥ ६४-६९ ॥

उक्तसर्वार्थसंक्षेपः

सर्ववाच्यार्थविषयं संक्षेपं शृणु नारद ॥ ६९ ॥
योऽसौ तवेरितो देवःपरमात्मा सनातनः।
शक्तिमानखिलावासः षाड्गुण्यपरिबृंहितः ॥ ७० ॥
तद्धर्मधर्मिणी शक्तिरेका तस्यानपायिनी।
सर्वभूतानुगा देवी स्तैमित्यमिव वारिधेः ॥ ७१ ॥
अत्यन्ताल्पाल्पकांशेन सा स्वेनैव विभाव्यते।
भाव्यभावकभेदेन भाव्या भूतिः सितेतरा ॥ ७२ ॥
भावको विष्णुसङ्कल्पः सुदर्शनसमाह्वयः।
भूतिः शब्दार्थभेदेन द्विधा पूर्वा प्रवर्तते ॥ ७३ ॥
शब्दस्य शब्दनं यत् तदर्थं प्रति निरूप्यते।
तत् क्रियारूपतो ज्ञेयं सौदर्शनमयं वपुः ॥ ७४ ॥

ऊपर कहे गए समस्त प्रतिपाद्यों का संक्षेप में वर्णन—हे नारद ! अब आप तारा (ह्रीं) एवं अनुतारा (श्रीं) मन्त्र के सभी वाच्यार्थ विषय को सुनिए जो हमने आपसे कहा है। वह परमात्मा सनातन हैं, शक्तिमान् हैं, सम्पूर्ण जगत् उसमें निवास करते हैं तथा षाड्गुण्य से परिबृंहित है, उसके समस्त धर्मों को धारण करने वाली कभी विनष्ट न होने वाली उनकी एक ही शक्ति है जो समस्त प्राणियों में निवास करती है तथा निश्चेष्ट समुद्र के समान स्थिर है। वह अपने अल्प से अल्प (अत्यन्त अल्प) अंश से भाव्य एवं भावक इन दो भेदों से जगत् में प्रकाशित होती है। जिसमें भाव्य उसका ऐश्वर्य है जो रजोगुण से युक्त रहता है। दूसरा उसका भावक भेद सुदर्शन नाम से विख्यात विष्णु सङ्कल्प है। प्रथम भेद वाली भूति, शब्द और अर्थ इन दो भेदों से जगत् में व्यवहृत होती है। शब्द का जो शब्दन है वही शब्द है। अब दूसरे भेद अर्थ का निरूपण करता हूँ। वह अर्थ क्रियारूप (कर्तृत्वरूप) से सुदर्शन का दिव्य शरीर है ऐसा समझना चाहिए ॥ ६९-७४ ॥

शब्दभावो हि योऽर्थस्य कर्मीभावसमाह्वयः।
सोऽपि क्रियात्मभावेन सुदर्शनमयः स्मृतः ॥ ७५ ॥
अतः स्पन्दमयो विष्णोर्यः सङ्कल्पः सुदर्शनम्।
तन्मय्येव क्रिया सर्वा कारकस्था न संशयः ॥ ७६ ॥

अर्थ का अर्थ कर्मीभाव नाम से कहा जाने वाला शब्द का भाव है, वह भाव भी क्रिया-त्मभाव से सुदर्शनमय कहा गया है। इसलिए विष्णु का सङ्कल्पभूत सुदर्शन स्पन्दन

से युक्त है। अतः उस कारक में होने वाली सारी क्रियाएं सुदर्शनमयी होती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ७५-७६ ॥

सर्वः शब्दश्च सर्वश्च वाच्यो द्वेधा प्रवर्तते ।
गुणेन कर्मणा वापि विधान्या नैव विद्यते ॥ ७७ ॥
अतो नैव प्रवर्तन्ते वाचो ब्रह्मणि रूपतः ।
अवगाहयतो ब्रह्म एते तु गुणकर्मणी ॥ ७८ ॥
ते च सौदर्शने रूपे विशेषणमयात्मना ।
मन्त्रग्रामो हि यो यावान् ब्रह्मणि प्रविगाहते ॥ ७९ ॥
सुदर्शनप्रभावेण तत् सर्वमिति चिन्त्यताम् ।
इति ते गदितः सम्यक् संक्षेपः शास्त्रसम्मतः ।
अस्य विस्तृतिमव्यग्रो मन्त्रे मन्त्रे निबोध मे ॥ ८० ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थवर्णनं नाम एकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३३१७ ॥

* * *

सभी शब्द तथा सभी वाच्यार्थ दो रूपों में प्रवृत्त होते हैं (१) गुणयुक्त शब्द गुणरूप अर्थ एवं (२) कर्मरूप शब्द कर्मरूप अर्थ, इसके अतिरिक्त उनकी प्रवृत्ति और अन्य रूप में नहीं होती। ब्रह्म गुण तथा कर्म से हीन है इसलिए गुण और कर्म का अवगाहन करने वाले शब्द तथा अर्थ स्वरूपतः ब्रह्म के प्रतिपादन में असमर्थ हैं। वे केवल विशेषण रूप से सुदर्शन के रूप तक ही सीमित रहते हैं। जो-जो और जितने जितने भी मन्त्र समूह हैं वे सुदर्शन के प्रभाव से ही ब्रह्म का साक्षात्कार कराते हैं ऐसा विचार करना चाहिए। इस प्रकार हमने शास्त्रसम्मत किन्तु संक्षेप में तार (ॐ), तारा (ह्रीं) और अनुतारा (श्रीं) का अर्थ कहा। उसका विस्तार आगे कहे जाने वाले प्रत्येक मन्त्र में आप सावधान होकर मुझसे सुनिए ॥ ७७-८० ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के तारादिबीजाक्षरस्वरूपार्थ वर्णन नामक इक्यावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५१ ॥

* * *

अथ द्विपञ्चाशोऽध्यायः

विष्ण्वादिमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

वृत्तानुवादपूर्वकं विष्ण्वादिमन्त्रार्थकथनप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

तारतारानुताराणां स्वरूपं ते प्रदर्शितम् ।
स्थूलसूक्ष्मपरत्वेषु गुणकर्मनिमित्तजम् ॥ १ ॥
मन्त्राणां विष्णुपूर्वाणामर्थमद्य निशामय ।

ऊपर कही गई समस्त बातों का अनुवाद करते हुये विष्णुपरक मन्त्रों का अर्थ निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! हमने तार (ॐ), तारा (ह्रीं) एवं अनुतारा (श्रीं) का स्थूल एवं सूक्ष्म परत्वरूपों में गुण कर्म रूप निमित्त से होने वाले स्वरूप को प्रदर्शित किया । अब विष्णु प्रतिपादक मन्त्रों का अर्थ आप मुझसे सुनिए ॥ १-२ ॥

नमःशब्दस्य स्थूलार्थनिरूपणे शब्दार्थप्रदर्शनम्

प्रेक्षावतः प्रवृत्तिर्या प्रह्वीभावात्मिका स्वतः ॥ २ ॥
उत्कृष्टं परमुद्दिश्य तन्नमः परिगीयते ।

नमः शब्द के स्थूलार्थ निरूपण प्रसङ्ग से उस शब्द के अर्थ का प्रतिपादन—दूसरे को अपने से उत्कृष्ट देख कर देखने वाले व्यक्ति की स्वयं प्रह्वीभाव वाली (झुक जाने वाली) जो प्रवृत्ति है वही नमः शब्द का अर्थ है ॥ २-३ ॥

उत्कृष्टापकृष्टभेदेन चेतनद्वैविध्यम्

लोके चेतनवर्गस्तु द्विधैव परिकीर्त्यते ॥ ३ ॥

ज्यायांश्चैव तथाज्यायान्नैवाभ्यां विद्यते परः ।

उत्कृष्ट तथा अपकृष्टभेद से चेतन के दो प्रकार—लोक में चेतनवर्ग के दो प्रकार कहे गए हैं एक उत्कृष्ट चेतन दूसरा अपकृष्ट चेतन । इन दो भेदों के अतिरिक्त उनका कोई और भेद नहीं है ॥ ३-४ ॥

अनवधिकातिशयप्रकर्षविशिष्टस्य ज्यायःशब्दमुख्यार्थत्वम्

कालतो गुणतश्चैव प्रकर्षो यत्र तिष्ठति ॥ ४ ॥
शब्दस्तं मुख्यया वृत्त्या ज्यायानित्यवलम्बते ।

अनवधिक अतिशय प्रकर्ष विशिष्ट ज्यायान् शब्द का मुख्यार्थ कथन—जिसमें काल से तथा गुण से उत्कृष्टता रहती हो 'ज्यायान्' शब्द उसी में मुख्य वृत्ति (अभिधावृत्ति) से प्रवृत्त होता है ॥ ४-५ ॥

तदन्येषामज्यायस्त्वम्

अतश्चेतनवर्गोऽन्यः स्मृतः प्रत्यवरो बुधैः ॥ ५ ॥
अज्यायांश्चानयोर्योगः शेषशेषितयेष्यते ।
अज्यायांसः स्मृताः सर्वे ज्यायानेको मतः परः ॥ ६ ॥

उससे अतिरिक्त अन्य सभी अज्यायान् हैं ऐसा कथन—'ज्यायान्' के अतिरिक्त अन्य सभी चेतन वर्गों को बुद्धिमानों ने 'अवर' शब्द से कहा है । ज्यायान् तथा अज्यायान् इनका योग शेष शेषीभाव रूप से कहा गया है । उसमें 'ज्यायान्' एक होता है । अन्य सभी 'अज्यायान्' है ॥ ५-६ ॥

जीवपरयोः सम्बन्धनिरूपणपूर्वकं नन्तृनन्तव्यत्वव्यवस्था

नन्तृनन्तव्यभावेन तेषां तेन समन्वयः ।
नन्तव्यः परमः शेषी शेषा नन्तार ईरिताः ॥ ७ ॥

जीव और परमात्मा में सम्बन्ध निरूपणपूर्वक नन्ता तथा नन्तव्य की व्यवस्था—जीव और परमात्मा का समन्वय (सम्बन्ध) नन्ता और नन्तव्यभाव से हैं । परमात्मा शेषी (विशेष्य) होने से नन्तव्य है और शेषभूत (विशेषणीभूत) जीव नन्ता हैं ऐसा कहा गया है ॥ ७ ॥

जीवेशयोः शेषशेषिभावस्य निरुपाधिकत्वम्

नन्तृनन्तव्यभावोऽयं न प्रयोजनपूर्वकः ।
नीचोच्चयोः स्वभावोऽयं नन्तृनन्तव्यतात्मकः ॥ ८ ॥

जीव और ईश्वर में शेषशेषीभाव उपाधि से रहित है ऐसा प्रतिपादन—जीव और ईश्वर में नन्ता और नतव्यभाव किसी प्रयोजनपूर्वक नहीं है । किन्तु नीच और उच्च में परस्पर नन्ता-नन्तव्यात्मक स्वभाव होता है ॥ ८ ॥

निरुपाधिकोत्कर्षापकर्षज्ञानस्य नमनहेतुत्वम्

उपाधिरहितेनायं येन भावेन चेतनः ।
नमति ज्यायसे तस्मै तद्वा नमनमुच्यते ॥ ९ ॥
भगवान् मत्परो नित्यमहं प्रत्यवरः सदा ।
इति भावो नमः प्रोक्तो नमसः कारणं हि सः ॥ १० ॥

निरूपाधिक उत्कर्षापकर्ष का ज्ञान ही नमन क्रिया में हेतु है—यह चेतन (जीव) उपाधिरहित जिस भाव से उसे परमात्मा (ज्यायस) के लिए जिस प्रकार नमन करता है उसी को 'नमः' कहते हैं । भगवान् नित्य हमसे श्रेष्ठ हैं और हम सर्वदा उनसे अपकृष्ट हैं इस प्रकार का भाव 'नमः' शब्द से वाच्य है, जो नमन क्रिया में कारण है ॥ ९-१० ॥

अन्तर्णिजर्थविवक्षया नमःशब्दस्य निर्वचनान्तरम्

नामयत्यपि वा देवं प्रह्वीभावयति ध्रुवम् ।
प्रह्वीभवति नीचे हि परो नैच्यं विलोकयन् ॥ ११ ॥
अतो वा नम उद्दिष्टं यत् तं नामयति स्वयम् ।

'नामयति' इस अन्तर्णिजर्थ की विवक्षा से नमः शब्द का दूसरा निर्वचन—जो क्रिया देवाधिदेव परमात्मा को नवा दे अथवा उन्हें झुकने के लिए विवश करा दे अथवा उत्कृष्ट परमात्मा अपने से नीचे जीव की ओर देखता हुआ जिस क्रिया से नीचे की ओर झुक जावे तो वही नमः शब्द का अर्थ है—क्योंकि वह परमात्मा को स्वयं नमन करा देता है ॥ ११-१२ ॥

करणत्रयसहितस्य नमसः पूर्णत्वम्

वाचा नम इति प्रोच्य मनसा वपुषा च यत् ॥ १२ ॥
तन्नमः पूर्णमुद्दिष्टमतोऽन्यन्न्यूनमुच्यते ।
इयं करणपूर्तिः स्यादङ्गपूर्तिमिमां शृणु ॥ १३ ॥

तीन कारणपूर्वक नमस्कार में पूर्णता आती है ऐसा प्रतिपादन—'वाचा नमः' ऐसा कहकर वाणी से, २. मनसा नमः ऐसा कहकर मन से तथा ३. शिरसा नमः कहकर शरीर से जो नमः क्रिया की जाती है वह पूर्ण नमः है । उसके अतिरिक्त अन्य न्यून नमस्कार है । यहाँ तक करण पूर्त्ति नमस्कार कहा गया । अब अङ्ग पूर्त्ति युक्त नमस्कार को सुनिए ।

विमर्श—नमस्कार से ही शरणागति परिलाक्षित होती है । यह शरणागति छः प्रकार की कही गई है—

आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रतिकूल्यस्य वर्जनम् ।
रक्षिष्यतीति विश्वासः गोप्तृत्ववरणं तथा ।
आत्मनिक्षेप कारुण्ये षड्विधा शरणागति ॥ १२-१३ ॥

प्रह्वीभावात्मकात्मनिक्षेपतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

शाश्वती मम संसिद्धिरियं प्रह्वीभवामि यत् ।

पुरुषं परमुद्दिश्य न मे सिद्धिरतोऽन्यथा ॥ १४ ॥
इत्यङ्गमुदितं श्रेष्ठं फलेप्सा तद्विरोधिनी ।

इन छः प्रकार के अङ्गनिरूपण में प्रह्वीभावात्मक आत्मनिक्षेप तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन करते हैं—मैं परमात्मा पुरुष को उत्कृष्ट समझ कर जो उसमें नमस्कार कर रहा हूँ यही हमारी शाश्वती संसिद्धि में हेतु है । इसके अतिरिक्त मेरी सिद्धि का अन्य कोई उपाय नहीं है । यह सर्वश्रेष्ठ नमस्कार का अङ्ग कहा गया है, नमस्कार से कुछ फल चाहना यह इच्छा उसकी विरोधिनी है ॥ १४-१५ ॥

कार्पण्यतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

अनादिवासनारोहादनैश्वर्यात् स्वभावजात् ॥ १५ ॥
मलावकुण्ठितत्वाच्च दृक्क्रियाविहतिर्हि या ।
तत् कार्पण्यं तदुद्बोधो द्वितीयं ह्यङ्गमीदृशम् ॥ १६ ॥
स्वस्वातन्त्र्यावबोधस्तु तद्विरोधीत्युदीर्यते ।

अब कार्पण्य तथा उसके विरोधीभाव का वर्णन—अनादिकालीन वासना के रहने से, ऐश्वर्यहीनता से, स्वभाव से तथा आणवादि मलों की कुण्ठा के कारण जीव की जो ज्ञान और क्रिया प्रतिहत हो गई है उसका उद्बोध (ज्ञान) होना कार्पण्य है । इस उद्देश्य से किया गया नमस्कार नमः का दूसरा अङ्ग है । अपने को सर्वथा स्वतन्त्र मानना' यह उस कार्पण्य का विरोधी भाव है ॥ १५-१६ ॥

महाविश्वासतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

परत्वे सति देवोऽयं भूतानामनुकम्पनः ॥ १७ ॥
अनुग्रहैकधीर्नित्यमित्येतत्तु तृतीयकम् ।
उपेक्षको यथाकर्म फलदायीति या मतिः ॥ १८ ॥
विश्वासात्मकमेतत्तु तृतीयं हन्ति वै सदा ।

महाविश्वास तथा तद्विरोधी भाव का वर्णन—देवाधिदेव परमात्मा पर होते हुये भी प्राणियों पर दया करने वाले हैं । इस प्रकार भगवान् के अनुग्रह में विश्वास रखना यह तृतीय अङ्ग है । वह कर्मानुसार फल देने वाला है, अतः किसी पर अनुग्रह क्यों करेगा? इस प्रकार की उसमें उपेक्षा बुद्धि रखना यह तृतीय विश्वासात्मक अङ्ग का विघात है ॥ १७-१९ ॥

गोप्तृत्ववरणतद्विरोधिनोर्निरूपणम्

एवंभूतोऽप्यशक्तः सन्न त्राणं भवितुं क्षमः ॥ १९ ॥
इति बुद्ध्यस्य देवस्य गोप्तृशक्तिनिरूपणम् ।
चतुर्विधमङ्गमुद्दिष्टममुष्य व्याहतिः पुनः ॥ २० ॥
उदासीनो गुणाभावादित्युपेक्षानिमित्तजा ।

गोप्तृत्व वरण तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन—यदि इस प्रकार का पामर पुरुष

अशक्त होता तो वह जीव की रक्षा करने में असमर्थ होता, किन्तु वह जीव वर्ग की रक्षा करता है इसलिए अवश्य शक्तिमान् है । इस प्रकार की बुद्धि से परमात्मा में गोप्तृत्व शक्ति का वरण नमः का चतुर्थ अङ्ग है । 'उसे किसी से क्या लेना देना? वह तो सर्वथा उदासीन है तथा निर्गुण होने से सर्वथा गुणरहित है । इस प्रकार के निमित्तों से उसमें उपेक्षा भाव रखना यह चतुर्थ गोप्तृत्व वरण का विनाशक भाव है ॥ १९-२१ ॥

प्रातिकूल्यवर्जनम्, तद्विरोधिनोर्निरूपणम्

स्वस्य स्वाम्यनिवृत्तिर्या प्रातिकूल्यविवर्जनम् ॥ २१ ॥
तदङ्गं पञ्चमं प्रोक्तमाज्ञाव्याघातवर्जनम् ।
अशास्त्रीयोपसेवा तु तद्व्याघात उदीर्यते ॥ २२ ॥

प्रातिकूल्य विवर्जन तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन—मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे स्वामी हैं इस भाव को बनाये रखना यही प्रातिकूल्य विवर्जन है जो नमः का पाँचवाँ अङ्ग है । भगवान् की आज्ञा का व्याघात, भगवान् की आज्ञा न मानना और अशास्त्रीय विधि से उनकी सेवा ये सभी प्रतिकूल्यभाव है जो इस पञ्चम अङ्ग के विरोधी हैं ॥ २१-२२ ॥

आनुकूल्यसङ्कल्पतम्, द्विरोधिनोर्निरूपणम्

चराचराणि भूतानि सर्वाणि भगवद्वपुः ।
अतस्तदानुकूल्यं मे कार्यमित्येव निश्चयः ॥ २३ ॥
षष्ठमङ्गं समुद्दिष्टं तद्विघातो निराकृतिः ।

आनुकूल्य का सङ्कल्प तथा उसके विरोधी भाव का वर्णन—समस्त चराचर जीव भगवान् के शरीर हैं, अतः हमें उनके अनुकूल कार्य करना चाहिए इस प्रकार निश्चय आनुकूल्यसङ्कल्प नामक नमः का षष्ठ अङ्ग हैं । भगवच्छरीरभूत चरा चरात्मक जगत् का न तिरस्कार की बुद्धि षष्ठ अङ्ग का विघातक है ॥ २३-२४ ॥

उक्तार्थनिगमनम्

पूर्णमङ्गैरुपाङ्गैश्च नमनं ते प्रकीर्तितम् ॥ २४ ॥
स्थूलोऽयं नमसश्चार्थः सूक्ष्ममद्य निशामय ।

उक्तार्थ का उपसंहार—हे नारद ! इस प्रकार हमने अङ्गों एवं उपाङ्गों से परिपूर्ण नमन का स्थूलार्थ निरूपण किया । अब सूक्ष्मार्थ सुनिए ॥ २४-२५ ॥

नमःशब्दस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणे म इत्यस्याहङ्कार-ममकारवाचित्वम्

चेतनस्य यदा मम्यं स्वस्मिन् स्वीये च वस्तुनि ॥ २५ ॥
मम इत्यक्षरद्वन्द्वं तदा मम्यस्य वाचकम् ।

नमः शब्द के सूक्ष्मार्थ निरूपण में 'म' शब्द अहङ्कार तथा ममकार का वाचक है ऐसा निरूपण—

चेतन वर्ग को अपने में तथा अपनी वस्तु में सदैव ममत्व रहता है । इसलिए 'मम' यह दो अक्षर नमः शब्दान्तर्वर्त्ती मकार का वाचक है ॥ २५-२६ ॥

नमःशब्दस्याहन्ताममताबुद्धिनिवर्तकत्वम्

अनादिवासनाधीनमिथ्याज्ञाननिबन्धना ॥ २६ ॥
आत्मात्मीयपदार्थस्था या स्वातन्त्र्यस्वतामतिः ।
मे नेत्येवं समीचीनबुद्ध्या सात्र निवार्यते ॥ २७ ॥

नमः इस शब्द से अहन्ता तथा ममता की बुद्धि निवृत्त हो जाती है—अनादिवासना की परवशता के कारण मिथ्याज्ञान से युक्त अपने में तथा अपने से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों में जीव को जो स्वातन्त्र्यपूर्वक स्वत्व की मति होती है, वह 'मे न' इस प्रकार की समीचीन बुद्धि से निवृत्त हो जाती है । यही नमः शब्द का अर्थ है ॥ २६-२७ ॥

उक्तार्थस्यैव विवरणम्

नाहंमम स्वतन्त्रोऽहं नास्मीत्यस्यार्थ उच्यते ।
न मे देहादिकं वस्तुसशेषः परमात्मनः ॥ २८ ॥
इति बुद्ध्या निवर्तन्ते तास्ताः स्वीयामनीषिकाः ।

ऊपर कहे गए अर्थ का विवरण—अहं न, मम न, अहं स्वतन्त्र न, मे देहादिकं वस्तु न, इत्यादि स्व और स्वीय में निषेध बुद्धि तथा यह सारा जगत् परमात्मा का है इस प्रकार की बुद्धि सकारात्मक से स्व और स्वीय बुद्धि निवृत्त हो जाती है । यह नमः शब्द का अर्थ है ॥ २८-२९ ॥

नमः शब्दार्थज्ञानस्याहन्ताममताबुद्धिनिवर्तकत्वे उपपत्तिप्रदर्शनम्

अनादिवासनाजातैर्बोधैस्तैस्तैर्विकल्पितैः ॥ २९ ॥
रूषितं यद् दृढं चित्तं स्वातन्त्र्यस्वत्वधीमयम् ।
तत्तद्वैष्णवसार्वात्म्यप्रतिबोधसमुत्थया ॥ ३० ॥
नम इत्यनया वाचा नन्त्रा स्वस्मादपोह्यते ।
इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परमद्य निशामय ॥ ३१ ॥

'नमः' शब्द के अर्थ का विज्ञान होने पर अहन्ता ममता की बुद्धि निवृत्त हो जाने में उपपत्ति प्रदर्शन—अनादिवासना जाल से उत्पन्न तत्तद् विकल्प विषयक बोध से यह चित्त स्वातन्त्र्य तथा स्वत्व बुद्धि से दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ है । तब नमस्कार करने वाला समस्त वस्तु जात भगवान् विष्णु का है इस प्रकार की बुद्धि से उत्पन्न नमः शब्द द्वारा अपने से उसे अलग कर देता है यही नमः शब्द का सूक्ष्म अर्थ है ॥ २९-३१ ॥

नमःशब्दस्य परार्थनिरूपणम्

पन्था नकार उद्दिष्टो मः प्रधानो निरूप्यते ।
विसर्गः परमेशस्तु तत्रार्थोऽयं निरूप्यते ॥ ३२ ॥

अनादिः परमेशो यः शक्तिमान् पुरुषोत्तमः ।
तत्प्राप्तये प्रधानोऽयं पन्था नमननामवान्॥ ३३ ॥
इति ते त्रिविधः प्रोक्तो नमःशब्दार्थ ईदृशः ।

नमः शब्द का परार्थ निरूपण—न कार का अर्थ है 'पन्था' और 'म' का अर्थ है प्रधान, म पर रहने वाले विसर्ग का अर्थ है परमेश्वर । इस प्रकार नमः शब्द का यह अर्थ हुआ कि अनादि शक्तिमान् परमेश्वर पुरुषोत्तम की प्राप्ति के लिए किया गया नमन प्रधान मार्ग है । हे नारद ! हमने नमः पद का स्थूलार्थ, सूक्ष्मार्थ तथा परार्थ आपसे इस प्रकार वर्णन किया ॥ ३२-३४ ॥

विष्णुमन्त्रस्य स्थूलार्थनिरूपणम्

विष्णुनारायणादीनामर्थमद्य निशामय ॥ ३४ ॥
नीचभावेन संद्योत्यमात्मनो यत् समर्पणम् ।
विष्ण्वादिस्था चतुर्थी तत्सम्प्रदानप्रदर्शनी ॥ ३५ ॥
नीचीभूतो ह्यसावात्मा यत्संरक्ष्यतयार्प्यते ।
तत् कस्मा इत्यपेक्षायां विष्णवे स इतीर्यते ॥ ३६ ॥
क्रियाकारकसंसर्गलभ्योऽर्थः स्थूल ईरितः ।

'ॐ नमो विष्णवे' इस विष्णु मन्त्र में विष्णु पद का स्थूल अर्थ कहते हैं—

हे नारद ! अब विष्णु नारायणादि पदों के अर्थ को सुनिए । अपने को नीच समझ कर विष्णु के लिए आत्मसमर्पण द्योतित करना यही 'विष्णवे' पद में रहने वाली चतुर्थी विभक्ति का अर्थ है । यह चतुर्थी विभक्त सम्प्रदान को प्रगट करती है । नीचीभूत इस आत्मा को (अपने) को जिस संरक्षण के लिए समर्पित किया जाता हैं, वह कौन है? इस का उत्तर है विष्णवे अर्थात् विष्णु के लिए । क्रिया कारक से तथा संसर्ग से लभ्य होने वाला यह विष्णवे पद का स्थूल अर्थ है ॥ ३४-३७ ॥

विष्णुमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणे विष्णौ परत्वद्योतकगुणविशेषनिरूपणम्

यः प्रातिपदिकप्रेक्षाजन्यः सूक्ष्मः स ईर्यते ॥ ३७ ॥
व्याप्तिकान्तिप्रवेशेच्छास्तत्तद्धातुनिबन्धनाः ।
परत्वद्योतिका विष्णोर्देवस्य परमात्मनः ॥ ३८ ॥

विष्णुमन्त्र के सूक्ष्मार्थनिरूपण के प्रसङ्ग से विष्णु पद में परत्व प्रकाशक गुण का निरूपण—प्रातिपदिक की समीक्षा से उत्पन्न अर्थ को सूक्ष्मार्थ कहा जाता है । विष्लृ व्याप्तौ, वश कान्तौ, विश प्रवेशने एवं ईष इच्छायाम्' इन धातुओं से बनने वाले विष्णु रूप प्रातिपदिक का व्याप्ति, कान्ति, प्रवेश, इच्छा इतना अर्थ तत्तद्धातुओं के निबन्धन से होता है । ये सभी अर्थ परमात्मा विष्णु देव के परत्व (उत्कृष्टता) के द्योतक हैं ॥ ३७-३८ ॥

व्याप्तिगुणनिरूपणम्

व्याप्नोति देशकालाभ्यां सर्वं यद्रूपतोऽपि च ।
तत् परं गदितं सद्भिर्विषेर्धातोर्निरूपणात् ॥ ३९ ॥

व्याप्तिरूप गुण का निरूपण—जो देश एवं काल से तथा स्वस्वरूप से सर्वत्र व्याप्त है वह सर्वापेक्षया पर (उत्कृष्ट) हुआ । सज्जनों ने विष्लृ व्याप्तौ इस धातु से निष्पन्न विष्णु पद का इस प्रकार उत्कृष्ट अर्थ किया है ॥ ३९ ॥

कान्तिगुणनिरूपणम्

कान्तिर्नाम गुणोत्कर्षो गुणा ज्ञानबलादयः ।
अतिवेलं प्रकृष्यन्ते यत्र कान्तः स ईरितः ॥ ४० ॥
अकान्ताश्चेतनाः सर्वे कान्तः स पुरुषः परः ।
कान्तिर्नाम गुणः सोऽयं वशेर्धातोर्निरूपणात् ॥ ४१ ॥

कान्तिगुण निरूपण—गुण की प्रकर्षता को कान्ति कहते हैं । ज्ञान, बल आदि गुण हैं । ये ज्ञान बलादि गुण जिसमें अपनी वेला (मर्यादा) का अतिक्रमण कर स्वयं आकृष्ट हों वह कान्त कहा जाता है । सभी चेतन अकान्त हैं । कान्त तो एक मात्र परमात्मा ही है । इस प्रकार वंश धातु से निष्पन्न कान्ति अर्थ वाले वे विष्णु ही पर हैं ॥ ४०-४१ ॥

प्रवेशगुणनिरूपणम्

चेतनाचेतनाः सर्वे विशन्त्येव यतः स्वयम् ।
महीयांसं विशत्येव योऽणीयानणुषु स्वयम् ॥ ४२ ॥
सपरो गदितः सद्भिर्विशेर्धातोर्निरूपणात् ।

प्रवेश गुण निरूपण—यतः चेतन और अचेतन सभी इन महान् विष्णु में स्वयं प्रवेश करते हैं तथा अत्यन्त अणु-अणु में स्वयं प्रवेश करते हैं । सज्जनों ने विश् धातु से निष्पन्न विष्णु रूप प्रातिपदिक का इसी प्रकार 'पर' अर्थ किया है ॥ ४२-४३ ॥

इच्छागुणनिरूपणम्

य इष्यते सदा सर्वैरात्मभावेन चेतनैः ॥ ४३ ॥
स परो गदितः सद्भिरिषेर्धातोर्निरूपणात् ।

इच्छागुण निरूपण—जो सभी चेतनों के द्वारा आत्मभाव से इच्छा का विषय है इस प्रकार सज्जनों ने इष धातु से निष्पन्न विष्णु का पर अर्थ कहा है ॥ ४३-४४ ॥

विष्णुशब्दे एकैकवर्णार्थनिरूपणम्

विश्वं प्रजायते वस्तु समवैति च तत्र हि ॥ ४४ ॥
प्रस्नौति च सदा सद्भ्यः पुरुषार्थं चतुर्विधम् ।
वेः सचेश्च स्नुतेश्चैव विष्णुर्धातुत्रयान्वयात् ॥ ४५ ॥
इति ते लेशतः सूक्ष्मो विष्णुशब्दार्थ ईरितः ।

विष्णु शब्द में रहने वाले एक-एक वर्ण के अर्थ का निरूपण—जिससे सारा विश्व उत्पन्न हुआ है वह 'वि' हुआ—(द्र० वी गतिव्याप्तिप्रजननकान्त्यासनखादनेषु)। यतः समुदाय रूप से वे उसी में रहते हैं, इसलिए वह 'ष्' हुआ (द्र० षच् समवाये) तथा जो सज्जनों के लिए चारों पुरुषार्थों को प्रस्रवित करता है वह ष्णु हुआ (द्र० ष्णु प्रस्रवणे)। इस प्रकार दो ष्कार युक्त विष्ष्णु शब्द वी, षच एवं ष्णु इन तीन धातुओं के योग से निष्पन्न हुआ। इस प्रकार विष्णुशब्द का सूक्ष्मार्थ हमने लेश मात्र कहा ॥ ४४-४६ ॥

परार्थनिरूपणम्

परस्त्वक्षरलभ्योऽर्थस्तस्य तत्त्वं निशामय ॥ ४६ ॥
अमृतायितसर्वार्थो ज्योतिस्त्रयसमिन्धनः ।
ददात्यभयमित्येतत् परोऽर्थः परिकीर्तितः ॥ ४७ ॥
इति ते वैष्णवे मन्त्रे त्रिविधा गतिरीरिता ।

विष्णु शब्द का परार्थ निरूपण—अक्षर से लभ्य अर्थ 'पर' अर्थ कहा जाता है, हे नारद ! अब आप उस 'पर' अर्थ को सुनिए जो सभी अर्थों को अमृतयुक्त करता है ! तीनों ज्योतियों को बढ़ाता है तथा सबको अभय प्रदान करता है यही विष्णु शब्द का परार्थ कहा जाता है। हमने इस प्रकार 'ॐ नमो विष्णवे' मन्त्र में विष्णु शब्द के तीनों अर्थों का प्रतिपादन किया ॥ ४६-४८ ॥

नारायणमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

नारायणे निबोधैतद्रूपाणां त्रितयं मुने ॥ ४८ ॥
क्रियाकारकलभ्योऽर्थस्तत्र स्थूलो निदर्शितः ।
यः प्रातिपदिकस्थोऽर्थः स सूक्ष्मोऽद्य निरूप्यते ॥ ४९ ॥
नरसम्बन्धिनो नारा नरः स पुरुषोत्तमः ।
नयत्यखिलविज्ञानं नाशयत्यखिलं तमः ॥ ५० ॥
न रिष्यति च सर्वत्र नरस्तस्मात् सनातनः ।
नरसम्बन्धिनः सर्वे चेतनाचेतनात्मकाः ॥ ५१ ॥
ईशितव्यतया नारा धार्यपोष्यतया तथा ।
नियाम्यत्वेन सृज्यत्वप्रवेशहरणैस्तथा ॥ ५२ ॥
अयते निखिलान्नारान् व्याप्नोति क्रियया तथा ।
नाराश्चाप्ययनं तस्य तैस्तद्भावनिरूपणात् ॥ ५३ ॥
नाराणामयनं वासस्ते च तस्यायनं सदा ।
परमा च गतिस्तेषां नाराणामात्मनां सदा ॥ ५४ ॥
आपो नारा इति प्रोक्तास्ता अप्ययनमस्य च ।
अतो नारायणो नाम हेतुभिर्दर्शितः परः ॥ ५५ ॥
इति ते सूक्ष्म उद्दिष्टः परं वर्णाश्रयं शृणु ।

नारायण मन्त्र का सूक्ष्मार्थ निरूपण—हे मुने 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्र में नारायण पद के तीनों प्रकार (स्थूल, सूक्ष्म तथा परार्थ) के अर्थों को सुनिए—क्रिया कारक भाव से प्राप्त होने वाला अर्थ स्थूल कहा जाता है। यह बात हम आपसे पहले कह आये है (द्र० ५२.३५.३६)। अब जो नारायण रूप प्रातिपादिक में रहने वाले 'नारा' और 'नर' एक मात्र वही पुरुषोत्तम है। जो सारे विज्ञानों के प्रकाशक हैं, समस्त तमों का विनाश करने वाले हैं। कोई भी जो किसी की हिंसा नहीं करता। (द्र० रुष रिष् हिंसायाम् दिवादि)। इसलिए भी वह सनातन पुरुष 'नर' कहा जाता है। ये समस्त चेतन अचेतन नर से सम्बन्ध रखने वाले हैं, सबका ईशितव्य होने से और सबको धारण करने से तथा सब का पोषण करने से वह 'नारा' कहा जाता है। नियामक होने से, सृजन करने से, प्रवेश करने से तथा हरण करने से वह सबको जानता है अथवा समस्त नर समूहों में क्रिया द्वारा जो व्याप्त है, वह नारायण है, अथवा नारा (नर समूह) वही उसका वास स्थान है इस भाव का निरूपण करने से वह नारायण है, अथवा समस्त नरसमूहों का वह वास स्थान है, अथवा समस्त नरसमूह उसका वास स्थान है इसलिए वह नारायण हैं अथवा उन आत्मीय नर समूहों (अपने भक्तों) की वह एकमात्र गति हैं इसलिए नारायण हैं, अथवा नारा जल को कहते हैं वह जल ही जिसका वास स्थान है इसलिए वह नारायण है। इस प्रकार अनेक हेतुओं द्वारा नारायण शब्द से हमने उसकी उत्कृष्टता प्रगट कर सूक्ष्मार्थ प्रदर्शित किया। अब नारायण शब्द के वर्ण में रहने वाले पर अर्थ को, हे नारद! सुनिए॥ ४८-५६॥

परार्थनिरूपणम्

अकुण्ठितश्चक्ररूपः समस्तदुरितानलः॥ ५६॥
व्यापकः सर्वशास्त्रेषु प्रथितो गोपनः सताम्।
सदानन्दमयः पन्था नाराणां च परा गतिः॥ ५७॥
इत्यर्थः पर उद्दिष्टो वासुदेवे निशामय।

नारायण शब्द का परार्थ निरूपण—जिसमें कुण्ठा नहीं है वह अकुण्ठित चक्र ही जिसका स्वरूप है। समस्त पापों को भस्म करने के लिए जो अग्नि स्वरूप है, जो सर्वत्र व्यापक तथा सभी शास्त्रों में प्रथित है। सज्जनों का गोपन (संरक्षण) करने वाला, सदा आनन्दमय प्रधान मार्ग वाला, नारा (अपने भक्त) जनों की एक मात्र गति है इस प्रकार नारायण शब्द का पर अर्थ कहा गया। अब ॐ नमो भगवते वासुदेवाय इस मन्त्र में रहने वाले 'वासुदेव' शब्द का अर्थ सुनिए॥ ५६-५८॥

वासुदेवमन्त्रस्य सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

क्रियाकारकगो योऽर्थः स्थूलः पूर्वोक्त एव सः॥ ५८॥
सूक्ष्मोऽर्थो वासुदेवाख्ये मन्त्रे प्रतिपदाश्रयः।
भगवानिति पूज्यार्थः शब्दोऽयं समुदायतः॥ ५९॥

वासुदेव मन्त्र का सूक्ष्मार्थ निरूपण—क्रिया कारक में रहने वाला जो अर्थ है वह

स्थूल कहा जाता है। यह बात हम पूर्व में कह आये हैं (द्र० ५२.३६)। वासुदेव नामक मन्त्र में सूक्ष्म अर्थ प्रत्येक पद का आश्रय लिए हुये हैं। इस शब्द समुदाय का पूज्यार्थ भगवान् होता है ॥ ५८-५९ ॥

भकारार्थनिरूपणम्

धारयत्यखिलं विश्वं पोषयत्यपि तत् सदा।
भरते पूरयत्येतत् सम्भरत्यपि चात्मना ॥ ६० ॥
त्रयीकर्मात्मकं सूक्ष्ममिति भार्थो निरूप्यते।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र में भकारार्थ निरूपण—(डुभृञ् धारणपोषणयो:) जो सारे विश्व को धारण करता है तथा उसका पोषण करता है, इसे पूर्ण करता है भकार का यह सूक्ष्म अर्थ तीन क्रियाओं वाला है, इस प्रकार भकार का सूक्ष्मार्थ निरूपण किया गया ॥ ६०-६१ ॥

गकारार्थनिरूपणम्

गीयते निखिलैः शब्दैर्गम्यते चापवर्गिभिः ॥ ६१ ॥
स्वतोऽवबुध्यते सर्वं व्याप्नोति निखिलं जगत्।
नेता च निखिलार्थस्य गकारार्थः स्मृतो मुने ॥ ६२ ॥

भगवते शब्द में गकारार्थ निरूपण—सम्पूर्ण शब्द राशि जिसका गान करते हैं, अपवर्गियों (मोक्ष चाहने वाले) द्वारा जो गम्य है और जो स्वयं सब कुछ जानता है तथा जो सारे संसार में व्याप्त हो रहा है तथा निखिल पदार्थों का अध्यक्ष है। हे मुने ! यही गकार शब्द का अर्थ है ॥ ६१-६२ ॥

मतुबर्थनिरूपणम्

स्वत्वेन वृणुते विश्वं वर्तते चेशतात्मना।
वर्धयत्यखिलं कामं वतोऽर्थोऽयं समीरितः ॥ ६३ ॥

भगवते पद में वतुप् प्रत्यय के अर्थ का निरूपण—जो सारे जगत् को स्वत्व रूपेण वरण करता है एवं ईश्वर रूपेण वर्त्तमान रहता है और सम्पूर्ण कामनाओं बढ़ाता है, यही वतुप् प्रत्यय का अर्थ है ॥ ६३ ॥

वासुशब्दार्थनिरूपणम्

छादयत्यखिलं स्वेन ज्ञानानन्दामलात्मना।
यथा च वह्निनाविष्टमिन्धनं तन्मयं भवेत् ॥ ६४ ॥
एवमाच्छादितं तेन विश्वं तन्मयमेव तत्।
वसत्यस्मिन् यतो विश्वं तत्रापि च वसत्ययम् ॥ ६५ ॥
वासुशब्दार्थ उद्दिष्टो वा गन्ता परिकीर्त्यते।
तन्तुवत् सकलार्थेषु सन्तनोतीति वाः स्मृतः ॥ ६६ ॥
प्रसूयतेऽखिलान् भावान् सौति प्रेरयतीत्यपि।
मखेष्वभिष्टुतः सद्भिरिति स्वर्थोऽयमुच्यते ॥ ६७ ॥

वासु शब्दार्थ निरूपण—(वस् आच्छादने) जो अपने ज्ञान, आनन्द तथा अमलात्म स्वरूप से निखिल विश्व को आच्छादित किये हुये हैं। जिस प्रकार अग्नि से आविष्ट इन्धन अग्नि स्वरूप में दिखाई पड़ता है उसी प्रकार उससे आच्छादित यह सारा विश्व भी तत्स्वरूप ही है। (वस निवासे) यत: विश्व इसमें निवास करता है और उस विश्व में यह स्वयं निवास करते हैं। यह 'वासु' शब्द का अर्थ हमने कहा। (वो गतिबन्धनयो:) 'वा' का अर्थ गन्ता (ज्ञानवान्) कहा जाता है, अथवा तन्तु के समान सम्पूर्ण अर्थों में जो अनुस्यूत है वह 'वा:' कहा जाता है। सु का अर्थ जो सारे पदार्थों को उत्पन्न करता है, अथवा सबको प्रेरित करता है, अथवा यज्ञों में सज्जनों से अभिष्टुत हैं, यही 'सु' शब्द का अर्थ है ॥ ६४-६७ ॥

देवशब्दार्थनिरूपणम्

द्योतते स्वत एवायं सृष्ट्याद्यैः क्रीडति स्वयम्।
स्तूयते च सदा देवैरिति देवार्थ ईरितः ॥ ६८ ॥
दाता च सर्वकामानां शोधकः सर्वदेहिनाम्।
रक्षिता सर्वभूतानामिति देकार उच्यते ॥ ६९ ॥
सर्वैः सम्भजनीयश्च वोढा च सकलात्मनाम्।
वकारार्थोऽयमुद्दिष्ट इति सूक्ष्मगतिस्त्वियम् ॥ ७० ॥

देव शब्दार्थ निरूपण—दिव् क्रीडा विजिगीषाव्यवहार एवं द्युतिस्तुति मोद कान्तिगतिषु इतने अर्थों में दिव् धातु प्रयुक्त होती है।

जो स्वयं प्रकाशित रहता है और सृष्टि आदि से स्वयं क्रीडा करता है तथा देवता गणों से संस्तुत है। इतना देव शब्द का अर्थ कहा। अब दे का अर्थ—जो सम्पूर्ण कामनाओं का दाता है समस्त जीवों को पाप से शुद्ध करता है और सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा करता है। यही 'दे' का शब्द का अर्थ है। 'व' शब्द का अर्थ—सबके द्वारा अपनी सेवा की योग्यता रखने वाला और सम्पूर्ण लोगों का वहन करने वाला है। यही 'वकार' शब्द का अर्थ कहा जाता है, इतना सूक्ष्मार्थ हुआ ॥ ६८-७० ॥

परार्थनिरूपणे भकारार्थनिरूपणम्

परस्त्वक्षरसलभ्यस्तस्य रूपं निशामय।
ध्रुवः पूर्वोऽवधिर्ज्ञेयो यदुपादानमुच्यते ॥ ७१ ॥
ध्रुवं जगदुपादानमिति भाक्षरचिन्तनम्।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र में भगवते शब्द के 'भकार' का परार्थ निरूपण—पर अर्थ अक्षर से लभ्य है, अत: उसका रूप सुनिए। 'ध्रुव' (भकार द्र० १७.२८) पूर्व में वर्त्तमान अवधि को कहते हैं जिसे उपादान भी कहा जाता है। वह ध्रुव होने के कारण सारे जगत् का उपादान है, यहाँ तक 'भकार' का परार्थ कहा गया ॥ ७१-७२ ॥

गकारार्थनिरूपणम्

गां वेदयति सच्छास्त्रमादौ विन्दति वा स्वयम् ॥ ७२ ॥

गोविन्दो नाम देवोऽसौ गार्थः सङ्कर्षणो मुने ।

भगवते के गकारार्थ का निरूपण—जो गाम् (पृथ्वी वाणी या गाय) का ज्ञान कराते हैं, अथवा स्वयं सच्छास्त्रों को जानते हैं वहीं गोविन्द नाम वाले देव सङ्कर्षण भी कहे जाते हैं । हे मुने ! यही 'गकार' का अर्थ है ॥ ७२-७३ ॥

वकारार्थनिरूपणम्

वरुणो वृणुते विश्वं त्रयीकर्मोभयात्मकम् ॥ ७३ ॥
वृणुते कुरुते विश्वमिति वार्थो निरूप्यते ।

भगवते के वकारार्थ का निरूपण—जो सारे विश्व को आच्छादित करता है वह वरुण (वकार द्र० १७.२६) है अथवा जो विश्व को वरण करता है, अथवा जो विश्व का कर्त्ता है वह 'वकार' है । (यहाँ पर वृञ् वरणे और वृञ् आच्छादने) दो धातु हैं पर उनकी तीन क्रियायें हैं । इस प्रकार 'वकार का अर्थ निरूपण किया गया ॥ ७३-७४ ॥

तकारार्थनिरूपणम्

यत् सृज्यते संह्रियते स्रग्धरः परिकीर्त्यते ॥ ७४ ॥
धत्ते तदुभयं देवः स्वनाभिकमलोदरे ।
अतः स्रग्धर इत्येवमनिरुद्धोऽत्र चोदितः ॥ ७५ ॥
चतुर्भिरक्षरैरेवं चतुर्व्यूहनिरूपणम् ।

भगवते के तकारार्थ का निरूपण—जो सृष्टि करता है और उसका संहार करता है, उसे स्रग्धर (तकार द्र० १७.१९) कहा जाता है, अथवा अपने नाभिकमल के भीतर सृष्टि और संहार इन दोनों को धारण करता है इस कारण भी वह स्रग्धर तकार (द्र० १७.१९) कहा जाता है । इस तकार से यहाँ अनिरुद्ध व्यूह विवक्षित है । अब आगे वासुदेव इन चार अक्षरों से चतुर्व्यूह का निरूपणे किया जाता है ॥ ७४-७६ ॥

वाकारार्थनिरूपणम्

वकारेणामृताधारो वासुदेवो निरूप्यते ॥ ७६ ॥
आकारेणादिदेवस्तु सङ्कर्षण उदीर्यते ।
यो वासुदेवो भगवान् मोक्षाधारः सनातनः ॥ ७७ ॥
सङ्कर्षणः स एवेति वाकारार्थो निरूप्यते ।

वासुदेव के वाकारार्थ का निरूपण—वकार द्वारा अमृताधार वासुदेव का निरूपण किया जाता है । (द्र० १७.२६) आकार से आदिदेव सङ्कर्षण कहे जाते हैं । जो सनातन मोक्षाधार भगवान् वासुदेव है वही सङ्कर्षण भी है । इतना ही 'वाकार' का अर्थ निरूपण किया जाता है ॥ ७६-७८ ॥

सुकारार्थनिरूपणम्

भुवनं कर्म चैवादौ योऽसूयत सनातनः ॥ ७८ ॥
स सोम उदितस्तेन प्रद्युम्नः पुरुषोत्तमः ।

उद्दाम उदयश्चात्र सङ्कर्षण उदीर्यते ॥ ७९ ॥
सङ्कर्षणदशायां हिं सम्पूर्ण उदयो हरेः ।
वासुदेवात्मको यः स सङ्कर्षण उदीरितः ॥ ८० ॥
प्रद्युम्नोऽपि स एवेति सुकारार्थो निरूप्यते ।

वासुदेव पद में सुकारार्थ का निरूपण—जिस सनातन भगवान् ने सर्वप्रथम भुवन रूप कार्य को उत्पन्न किया। वही सोम (सकार द्र० १७.२७) रूप से प्रकट हुआ, जिससे पुरुषोत्तम प्रद्युम्न हुये। वही सोम जब उद्दाम रूप से उदित हुआ (उकार द्र० १७.६) तो सङ्कर्षण कहा गया। सङ्कर्षण दशा में हरि का पूर्ण रूप से उदय होता है। इस प्रकार जो वासुदेवात्मक है, वही सङ्कर्षण है और जो सङ्कर्षण है वही प्रद्युम्न है। सुकारार्थ का निरूपण यहाँ तक किया गया ॥ ७८-८१ ॥

देकारार्थनिरूपणम्

दत्तो येनावकाशोऽप्सु शयानेन महात्मना ॥ ८१ ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्वृद्ध्यै स्वनाभिकमलोदरे ।
दत्तावकाशो दस्यार्थः सोऽनिरुद्ध उदीर्यते ॥ ८२ ॥
एकारेण जगद्योनिः प्रद्युम्नः परिपठ्यते ।
सङ्कर्षणात्मको यः स प्रद्युम्नः परिकीर्तितः ॥ ८३ ॥
अनिरुद्धः स इत्येवं देकारार्थो निरूप्यते ।

वासुदेव शब्द में देकारार्थ का निरूपण—जिन महात्मा विष्णु ने अपने नाभिकमलोदर में स्थित जल में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को बढ़ने के लिए अवकाश (स्थान) प्रदान किया, अर्थात् 'दत्तावकाश' द का अर्थ है और वही अनिरुद्ध पद से अभिहित किया जाता है। दकारोत्तरवर्त्ती एकार से जगद्योनि प्रद्युम्न कहे जाते हैं। सङ्कर्षणात्मक व्यूह ही प्रद्युम्न नाम से कहा जाता है। वही अनिरुद्ध व्यूह भी हैं। इतने से 'देकार' का अर्थ निरूपण किया गया ॥ ८१-८४ ॥

वकारार्थनिरूपणम्

एवं वर्णत्रयेणोक्तं व्यूहतादात्म्यमुत्तमम् ॥ ८४ ॥
उपसंहाररूपेण पुनर्वेति तदुच्यते ।
लेशतो वासुदेवाख्ये परोऽर्थस्ते प्रदर्शितः ।
जितन्तायामिदानीं मे सर्वमर्थं निशामय ॥ ८५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां विष्ण्वादिमन्त्रार्थनिरूपणं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३४०२ ॥

वासुदेव पद में वकारार्थ का निरूपण—इस प्रकार 'वा' 'सु' दे इन तीन अक्षरों से व्यूहों का परस्पर तादात्म्य (अभेद) सम्बन्ध कहा गया। उसी त्रितयात्मक व्यूह को कहने के लिए उपसंहार रूप में पुनः वकार कहा गया है। इस प्रकार मन्त्र में आने वाले वासुदेव पद को हमने लेश मात्र परार्थ निरूपण किया। अब आप 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' इस विष्णुमन्त्र का अर्थ सुनिए ॥ ८४-८५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के विष्ण्वादि-मन्त्रार्थ निरूपण नामक बावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५२ ॥

* * *

अथ त्रिपञ्चाशोऽध्यायः

जितन्ताख्यमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ जन्मों के पाप राशि को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

मन्त्राद्यपादस्य स्थूलार्थनिरूपणे जिधात्वर्थयोरौज्ज्वल्याविघातयोर्नमनप्रयोजकत्वकथनम्

अहिर्बुध्न्यः—

औज्ज्वल्यमविघातश्च जयतेरर्थ उच्यते ।
प्रयोजकं तदुभयं नन्तुर्नमनकर्मणि ॥ १ ॥

'जितं' आदि मन्त्र के प्रथम पाद में स्थूलार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से जिधातु के अर्थभूत उज्ज्वलत्व तथा अविघातकत्व ये दोनों ही नमन क्रिया के प्रयोजक हेतु हैं ऐसा प्रतिपादन करते हैं—अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिधातु से निष्पन्न 'जयते' का अर्थ उज्ज्वलता तथा अविघातता कहा गया है । ये दोनों नमस्कार कर्ता के नमन क्रिया में प्रयोजक हेतु हैं ॥ १ ॥

तयोर्ज्ञानादिषड्गुणजन्यत्वम्

ज्ञानशक्तिबलाद्यैस्तदुभयं खलु जायते ।

ये दोनों अर्थ ज्ञानादिषाड्गुण्य से उत्पन्न होते हैं ऐसा प्रतिपादन करते हैं—ज्ञान शक्ति वलादि षड्गुणों से ये दोनों निश्चित रूप से उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

ज्ञानादिगुणपूर्णत्वात् भगवत एव नन्तव्यत्वम्

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजोमहोदधिः ॥ २ ॥
भगवानेव विश्वात्मा नन्तव्यः प्रविवक्ष्यते ।

ज्ञानादि षड्गुण से परिपूर्ण होने से एक भगवान् ही नमस्कार करने के योग्य है—ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य एवं तेज के महोदधि एक मात्र विश्वात्मा भगवान् ही हैं। इसलिए वही नमस्करणीय हैं ॥ २-३ ॥

पुण्डरीकाक्षशब्दस्य यथोक्तार्थप्रकाशकत्वोपपादनम्

पुण्डरीकाक्षशब्देन तदिदं प्रतिसूत्र्यते ॥ ३ ॥
प्रयुक्तो रागरोषाभ्यां चक्षुषैव विभाव्यते ।
अयं त्ववाप्तकामत्वात् तत्तत्कृत्यविवर्जितः ॥ ४ ॥
प्रसन्नो वैकृतत्यागात् पुण्डरीकाक्ष उच्यते ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द से उक्त दोनों अर्थों का प्रतिपादन होता है ऐसा कथन—जिधात्वर्थ एवं षाड्गुण्यादि परिपूर्णता ये दोनों अर्थ एक मात्र पुण्डरीकाक्ष शब्द से प्रतिसूत्रित हो जाते हैं क्योंकि राग और रोष से युक्त पुरुष का ज्ञान नेत्र द्वारा ही होता है। भगवान् पूर्ण काम हैं इसलिए राग रोष रहित होने के कारण तथा विकारों के त्याग देने से वे प्रसन्न रहते हैं। इसलिए वही पुण्डरीकाक्ष है ॥ ३-५ ॥

तस्यैव शब्दस्य हेयप्रतिभटत्वकल्याणगुणाकरत्वरूपोभयलिङ्गपरत्वम्

रागादिदोषनिर्मुक्तिः कल्याणगुणपूरणम् ॥ ५ ॥
पुण्डरीकाक्षशब्देन शब्द्यते पुरुषोत्तमे ।

वही पुण्डरीकाक्ष शब्द हेयादिदोष राहित्य से तथा कल्याणादि गुण करता इन दोनों अर्थों का प्रतिपादन करता है ऐसा कथन—रागादिदोष से निर्मुक्ति तथा कल्याणगुण से पूर्णता ये दोनों ही पुण्डरीकाक्ष शब्द पुरुषोत्तम में घटित होते हैं ॥ ५-६ ॥

तस्यैव वासुदेवाख्यप्रथमव्यूहनिरूपकत्वम्

पुण्डरीकाक्षशब्दोऽयमादिव्यूहनिरूपणः ॥ ६ ॥
पुण्डरीकाक्षमामन्त्र्य ब्रह्मा तेनैव हेतुना ।
नन्ता स्वं च समालोक्य जितं त इति वक्त्ययम् ॥ ७ ॥
इति संसर्गजः स्थूलः सूक्ष्मं चापि मुने शृणु ।

वही वासुदेव नामक प्रथम व्यूह है ऐसा कहते हैं—यह पुण्डरीकाक्ष शब्द आदिव्यूह (वासुदेव व्यूह) का निरूपण करता है इसी कारण ब्रह्मदेव, पुण्डरीकाक्ष को ही इन गुणों से युक्त समझ कर तथा अपने को स्वयं नन्ता (नमस्कार कर्त्ता) जान कर 'जितं ते' इस वाक्य का उच्चारण करते हैं। यह तो संसर्गज पुण्डरीकाक्ष शब्द का स्थूल अर्थ हुआ। हे मुने! अब उसका सूक्ष्म अर्थ सुनिए।

विमर्श— 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥'

यह श्लोक बद्ध मन्त्र लक्ष्मीतन्त्र २४.६९ में आया है ॥ ६-८ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणे पुण्डरीकाक्षशब्देन भगवतोऽकाल-काल्यत्वस्याविष्करणम्

पुण्डरीकं तु कालाख्यं पुरं जरयते यतः ॥ ८ ॥
तेनाक्षतो बहिर्भावात् तेनानाकलितो यतः ।

सूक्ष्मार्थ निरूपण के प्रसङ्ग में भगवान् का काल द्वारा अकाल्यत्व कालराहित्य कथन—यत: ये पुण्डरीक कालाख्य पुर को जला देते हैं । अत: काल से सर्वथा बाहर रहने के कारण वे अक्षत हैं और काल से कवलित नहीं होते ॥ ८-९ ॥

कालत्रैविध्यकथनपूर्वकं तदुपपादनम्

स्थूलः सूक्ष्मः परः कालस्त्रिविधो न परात्मनि ॥ ९ ॥
वासुदेवे परे ब्रह्मण्यवगाहनमर्हति ।
स्थूलो लवादिमान् कालः सूक्ष्मस्तत्त्वनिरूपकः ॥ १० ॥
व्यूहानां चेष्टितव्यापी परः कालो निरूप्यते ।

काल का त्रैविध्य निरूपण तथा उसका उपपादन—स्थूल, सूक्ष्म तथा पर ये त्रिविध काल परमात्मा वासुदेव रूप परब्रह्म में अवगाहन नहीं करते । लव, कला, काष्ठादि स्थूल काल कहे जाते हैं । तत्त्वों का निरूपक सूक्ष्म काल कहा गया है तथा व्यूहों की चेष्टा में व्याप्त रहने वाला काल, पर काल नाम से निरूपित किया गया है ॥ ९-११ ॥

व्यूहत्रयात् परवासुदेवस्य वैलक्षण्याविष्करणम्

व्यूहत्रयस्य भवति कालेन कलनं सदा ॥ ११ ॥
भगवान् वासुदेवस्तु न व्यूहेनापि कालवान् ।
व्यूहत्रयमपेक्ष्यैव कालव्यूहनिरूपणम् ॥ १२ ॥
कालेनामानतश्चायममितद्युतिरुच्यते ।

वासुदेव नामक व्यूह अनिरुद्धादि व्यूह त्रितय से विलक्षण हैं ऐसा उपपादन करते हैं—इन तीनों व्यूहों का सदैव काल से कलन हो जाता है किन्तु भगवान् वासुदेव नामक व्यूह काल व्यूह से भी कवलित नहीं होंगे । कालव्यूह का निरूपण इन्हीं तीनों व्यूहों की अपेक्षा से किया जाता है । यह वासुदेव काल गणना से परे हैं और अमितद्युति कहे जाते हैं ॥ ११-१३ ॥

पुण्डरीकाक्षशब्दस्य भगवति नित्यविभूतियोग-प्रतिपादकत्वम्

पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षयमव्ययम् ॥ १३ ॥
तस्मिन्निवसनान्नित्यं पुण्डरीकाक्ष उच्यते ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द का भगवान् में नित्य विभूतियोग रूपेण प्रतिपादन—पुण्डरीक नाम का धाम (तेज) नित्य अक्षय तथा अव्यय है । उस अपने धाम में निवास करने के कारण भगवान् को पुण्डरीकाक्ष कहते हैं ॥ १३ ॥

तस्यैव स्वमहिम्नप्रतिष्ठिततत्वप्रतिपादकत्वम्

पुण्डरीकं परं धाम स्व एव महिमोज्ज्वलः ॥ १४ ॥
स्वे महिम्नि स्थितो देवः पुण्डरीकाक्ष उच्यते ।
वासुदेवस्ततः प्रोक्तः पुण्डरीकाक्षसंज्ञया ॥ १५ ॥
पुण्डरीकाक्षशब्दस्य सूक्ष्मार्थः सोऽयमीरितः ।

पुण्डरीकाक्ष भगवान् अपने महिमा में प्रतिष्ठित हैं ऐसा उपपादन—पुण्डरीक नामक धाम अपने महिमा से ही उज्ज्वल हैं । अतः स्व महिमा में स्थित होने के कारण देव वासुदेव भगवान् पुण्डरीकाक्ष हैं । इसलिए वासुदेव पुण्डरीकाक्ष संज्ञा से अभिहित होते हैं । इस प्रकार पुण्डरीकाक्ष शब्द का अर्थ हमने कहा ॥ १४-१६ ॥

परार्थनिरूपणारम्भः

पुण्डरीकाक्ष इत्यस्य परमर्थं निशामय ॥ १६ ॥

अब पुण्डरीकाक्ष शब्द परार्थ का निरूपण प्रारम्भ करते हैं—हे नारद ! अब पुण्डरीकाक्ष शब्द का परार्थ श्रवण करिए ॥ १६ ॥

पकारार्थनिरूपणम्

रागादिदोषनिर्मुक्तः पवित्रं परमं हरिः ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द में पकारार्थ निरूपण—पुण्डरीकाक्ष शब्द का पकार, उकार, णकार, डकार, रीकार, काकार, क्षकार इस प्रकार सात भागों में विभाग कर अब उसका क्रमशः अर्थ प्रदर्शित करते हैं—

पकारार्थ निरूपण—रागादिदोष से निर्मुक्तहरि ही एकमात्र परम पवित्र हैं ॥ १७ ॥

उकारार्थनिरूपणम्

नित्योदितस्वरूपत्वादुद्दाम उदयः स्मृतः ॥ १७ ॥

उकारार्थ निरूपण—नित्य उदित होने वाले स्वरूप से उद्दाम एवं उदय उकार का अर्थ है ॥ १७ ॥

णकारार्थनिरूपणम्

व्यूहत्रितयपूर्वत्वात् प्रधानः परिपठ्यते ।

णकारार्थ निरूपण—तीन व्यूहों से पूर्व रहने के कारण जो प्रधान शास्ता (द्र० १७१.१९) हैं वही णकार का अर्थ है ॥ १८ ॥

डकारार्थनिरूपणम्

शुद्धाशुद्धाध्वसम्प्राप्तेः संस्मृतोऽखण्डविक्रमः ॥ १८ ॥

डकारार्थ निरूपण—शुद्धाशुद्धाध्व की सम्प्राप्ति से अखण्डविक्रम ही डकार का अर्थ है ॥ १८ ॥

ईकारशिरस्करेफार्थनिरूपणम्

सङ्कर्षणादिभूम्यन्तमशेषभुवनं यतः ।
बिभर्त्याधारभावेन व्याप्नोत्यन्तश्च तत् स्वयम् ॥ १९ ॥

रीकार का अर्थ निरूपण—सङ्कर्षणादि भूमि से लेकर अन्त में रहने वाले सम्पूर्ण भुवनों का आधार बन कर (द्र० १७.२५) जो धारण करता है और उसके भीतर व्याप्त रहता है वह स्वयं रीकार का अर्थ है ॥ १९ ॥

आकारसहितककारार्थनिरूपणम्

आनन्दो नैरपेक्ष्येण परा च प्रकृतिः स्वयम् ।

काकार का अर्थ निरूपण—जो बिना किसी की अपेक्षा किये आनन्द स्वरूप है (आकार द्र० १७.४) तथा स्वयं परा प्रकृति स्वरूप (ककार द्र० १७.१२) है वह काकार का अर्थ है ॥ २० ॥

क्षकारार्थनिरूपणम्

शुद्धाशुद्धमयस्यास्य चेतनाचेतनात्मनः ॥ २० ॥
वर्गस्यान्तः परा सीमा वर्गान्तः परिपठ्यते ।

क्षकारार्थ निरूपण—शुद्धाशुद्धमय चेतना चेतनात्मक (मातृका) वर्ग के अन्त की सीमा होने के कारण वर्गान्त क्षकार (१७.२८) का अर्थ है ॥ २०-२१ ॥

पुण्डरीकाक्षशब्दार्थस्य चिरकालादपि कात्स्न्येंन वक्तुमशक्यत्वम्

इति वर्णमयी रीतिः पराख्या ते प्रदर्शिता ॥ २१ ॥
वर्षायुतैरपि व्यक्तं न शक्या वक्तुमञ्जसा ।

पुण्डरीकाक्ष शब्द का अर्थ बहुत काल पर्यन्त भी सम्पूर्ण रूपेण वर्णन करना सम्भव नहीं है—इस पुण्डरीक शब्द की वर्णमयी पराख्या रीति हमने प्रदर्शित की । इसका सम्पूर्ण अर्थ दश हजार वर्षों तक भी कदाचित् वर्णन करना सम्भव नहीं है ॥ २१-२२ ॥

मन्त्रद्वितीयपादस्थूलार्थनिरूपणम्

विश्वभावनसंज्ञेयं सङ्कर्षश्रीसमीरणी ॥ २२ ॥
क्रियाकारकसंसर्गजन्यः स्थूलो निरूपितः ।

'जितन्ता' मन्त्र के दूसरे पाद का स्थूलार्थ निरूपण—यह विश्वभावन संज्ञा सङ्कर्षण श्री को प्रेरणा करने के कारण है । इस प्रकार विश्वभावन शब्द का क्रिया कारक भाव से जन्य स्थूल अर्थ निरूपण किया गया ॥ २२-२३ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

सूक्ष्ममर्थमिदानीं तु गदतो मे निशामय ॥ २३ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण—अब हे नारद ! आप विश्वभावन शब्द का सूक्ष्म अर्थ सुनिए ॥ २३ ॥

विश्वभावनशब्दस्य सर्वकारणपरत्वम्

चेतनाचेतनाकारं विश्वं प्रद्युम्नपूर्वकम् ।
भावयन्ननिशं देवः कथितो विश्वभावनः ॥ २४ ॥

यह विश्वभावन शब्द सब का कारण परत्व है—प्रद्युम्नपूर्वक समस्त चेतना चेतनात्मक जगत् को वे देव यतः उत्पन्न करते हैं इसलिए उन्हें विश्वभावन कहा जाता है ॥ २४ ॥

कारणत्वोपयोगिसर्वज्ञत्वपरत्वम्

विश्वं भावयति व्यक्तं जानात्येव यथार्थतः ।
विश्वभावन उद्दिष्टः सर्वज्ञः शब्दवित्तमैः ॥ २५ ॥

विश्व कारणता के उपयोगी सर्वज्ञत्व का कथन—वह इस विश्व को प्रकट रूप में उत्पन्न करता है तथा यथार्थ रूप से उसका ज्ञान भी रखता है इसलिए शब्दवेत्ता विद्वानों ने विश्वभावन शब्द का अर्थ 'सर्वज्ञ' ऐसा किया है ॥ २५ ॥

सङ्कर्षणाख्यद्वितीयव्यूहपरत्वम्

अनिशं बिभ्रतं प्राप्य विश्वं भवति वै ततः ।
विश्वभावन उद्दिष्टो बलदेवो महाबलः ॥ २६ ॥

यह विश्वभावन शब्द सङ्कर्षण नामक द्वितीयव्यूह का भी वाचक है—उसी से निरन्तर धार्यमाण रह कर यह सारा विश्व उत्पन्न होता है । इसलिए महा बलवान् बलदेव ही विश्वभावन शब्द से कहे जाते हैं ॥ २६ ॥

सर्वशेषिपरत्वम्

अनाथमभवद्विश्वं नाथो भावयति स्वयम् ।
तस्मिन्नुदितमात्रे वै विश्वं यद्भवति स्वयम् ॥ २७ ॥
विश्वभावन उद्दिष्टो नाथत्वेन निरीक्षणात् ।

सर्वशेषी परत्व का उपपादन—इस विश्व को वह स्वयं ऐश्वर्य तथा आशीः प्रदान करते हैं । अन्यथा वह अनाथ हो जाता है । नाथ रूप से उसकी रक्षा करते हैं, क्योंकि उनके उदय होते ही यह सारा विश्व अपने आप उत्पन्न हो जाता है । अतः नाथ बन कर निरीक्षण करने के कारण वह विश्वभावन है ॥ २७-२८ ॥

सर्वाधारपरत्वम्

विशालोऽयं यदाधारो विश्वस्य भवने स्वयम् ॥ २८ ॥
तिलकालकवद्विश्वं यस्मात् तत्रावतिष्ठते ।
विशालाधाररूपेण विशालाक्षो भवेत् स्वयम् ॥ २९ ॥
विश्वं तद्भावयन् विश्वं विश्वभावन ईर्यते ।
इति ते लेशतः प्रोक्तः सूक्ष्मोऽर्थो विश्वभावने ॥ ३० ॥

सर्वाधारपरत्व निरूपण—विश्व के उत्पन्न होने में यह स्वयं विशाल आधार है । जिस कारण से यह सारा विश्व उसमें मात्र काले तिल के समान स्थित रहता है अत: विश्व का विशाल आधार होने के कारण वह स्वयं विशालाक्ष बन जाता है, चारों ओर से विश्व की रक्षा करने के कारण उसे विश्वभावन कहा जाता है । इस प्रकार हे नारद ! हमने विश्वभावन शब्द का लेश मात्र सूक्ष्म अर्थ आपको निरूपण किया ॥ २८-३० ॥

परार्थनिरूपणारम्भः

परमर्थमिदानीं त्वं गदतो मे निशामय ।

विश्वभावन शब्द का परार्थ निरूपण—विश्वभावन शब्द का परार्थ निरूपण मैं करता हूँ उसे सुनिए ।

विमर्श—वि, श, द्वितीय व, भ, आ, तृतीय व, न इस प्रकार सात भागों में विश्वभावन' शब्द के वर्णों का विभाग कर तथा उनका अप्रमेयादि भावसिद्ध शब्द के वर्णों का विभाग कर और उनका अप्रमेयादिभावसिद्ध 'पर' संज्ञक अर्थ (द्र० १७.४.२९) निरूपण किया जाता है जो 'अमृताधारत:' इत्यादि ३१ श्लो० से आरम्भ कर विश्वभावन इत्येव ३७ श्लोक पर्यन्त साढ़े पाँच श्लोकों में है ॥ ३१ ॥

इकारशिरस्कवकारार्थनिरूपणम्

अमृताधारतस्त्विद्धो वासुदेवादिभूमिकः ॥ ३१ ॥

इकारशिरस्क वकारार्थ निरूपण—अमृताधार (वकार द्र० १७.२६) और इद्ध, (इकार द्र० १७.६) ये दोनों वासुदेव भूमिका वाले हैं ॥ ३१ ॥

शकारार्थनिरूपणम्

सम्यग्ज्ञानोपदेशेन शङ्करः सर्वदेहिनाम् ।

शकारार्थ निरूपण—सम्यग् ज्ञानोपदेश कर जो सारे जीवों का कल्याण करता है यह शकार का अर्थ है (द्र० १७.२६ शङ्कर:) ॥ ३२ ॥

द्वितीयवकारार्थनिरूपणम्

अह्नां वरमहो यस्माद्वराहः परिपठ्यते ॥ ३२ ॥
अहः सङ्कर्षणः प्रोक्तो वासुदेवस्य तत्त्वतः ।

द्वितीय वकारार्थ निरूपण—जिस कारण वह सभी अहों की अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ हैं । इसलिए वराह द्वितीय वकार का अर्थ है । यथार्थ रूप से वासुदेव को अहः सङ्कर्षण कहा जाता है ॥ ३२-३३ ॥

आकारसहितभकारार्थनिरूपणम्

सिद्धिदः सर्वभूतानां देवानामादिरेव च ॥ ३३ ॥

भाकार का अर्थ निरूपण—सम्पूर्ण प्राणियों को सिद्धि प्रदान करते हैं (भकार द्र० १७.२३) तथा देवताओं में आदिदेव है । (आकार द्र० १७.४) यहाँ तक भा का अर्थ निरूपण किया गया ॥ ३३ ॥

भकारविवक्षितसिद्धिप्रदत्वोपपादनम्

तत्तत्सच्छास्त्रसम्भूतशुक्लकर्मोपजोषणः ।
सिद्धिं ददाति जीवानामतः सिद्धिद उच्यते ॥ ३४ ॥

विश्वभावन सिद्धिप्रद हैं ऐसा भाकार के अर्थ का उपपादन—उन-उन शास्त्रों में प्रतिपादित शुक्ल कर्मो से सेवित भगवान् जीवों को सिद्धि प्रदान करते हैं अत: 'सिद्धिद' कहे जाते हैं ॥ ३४ ॥

आकारविवक्षितयोरादित्वदेवत्वयोरुपपादनम्

आदिभूतः स देवानां सव्यूहविभवात्मनाम् ।
आदिश्च दीव्यति व्यक्तमादिदेवः स उच्यते ॥ ३५ ॥

भकारोत्तरवर्त्ती आकार से विवक्षित आदित्व तथा देवत्व इन दो अर्थों का उपपादन—वह व्यूह विभव वाले सभी देवताओं का आदिभूत है और आदि प्रकटरूप से विश्व में देदीप्यमान है । इसलिए विश्वभावन को आदिदेव भी कहा जाता है (आकार द्र० १७.४) ॥ ३५ ॥

तृतीयवकारनकारार्थनिरूपणम्

आवृणोति तमः सर्वं विवृणोति तदक्षरम् ।
वरुणः सोऽप्रमेयस्थः स च पन्थाः स्मृतो बुधैः ॥ ३६ ॥
विश्वभावन इत्येवमर्थो वर्णमयः परः ।

तृतीय वकार तथा नकार का अर्थ निरूपण—जो सारे अन्धकारों को रोकता है तथा अक्षर को विकसित करता है । इस प्रकार अप्रमेयस्थ वकार ही सब का मार्ग है (द्र० नकार ११७.२१) ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है । इस प्रकार विश्वभावन का वर्णमय पर अर्थ हमने कहा ॥ ३६-३७ ॥

मन्त्रतृतीयपादस्थूलार्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम्

हृषीकेशपदार्थं तु ब्रुवतो मे निशामय ॥ ३७ ॥
क्रियाकारकसंसर्गजन्योऽर्थः पूर्वमीरितः ।

अब मन्त्र के तृतीय पाद 'जितन्तेऽथ हृषीकेश' में हृषीकेश शब्द का क्रियाकारक रूप स्थूलार्थ हमने पूर्व में कह दिया है ऐसा सूचित करना—हे नारद ! अब हम हृषीकेश शब्द का अर्थ निरूपण कर रहे हैं । आप सुनिए । क्रिया कारक से प्राप्त होने वाला स्थूल अर्थ हमने पूर्व में ही कह दिया है ॥ ३७-३८ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

यः प्रातिपदिकार्थस्तं सूक्ष्ममद्य निशामय ॥ ३८ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण—अब जो हृषीकेश रूप प्रातिपदिक का सूक्ष्म अर्थ है हे नारद ! आप उसे सुनिए ॥ ३८ ॥

हृषीकेशपदस्य सप्तधा अर्थवर्णने प्रथमं ज्ञानोत्तेजकत्वपरत्वकथनम्

प्रद्योतयति विद्यायास्तमो हत्वा मधुं रिपुम् ।
भगवद्भावितं रूपं सत्सत्त्वप्रतिपादकम् ॥ ३९ ॥
हृषीकेशत्वमीशस्य तदेव गदितं बुधैः ।

हृषीकेश शब्द के सात प्रकार के अर्थ वर्णन के प्रसङ्ग से, उसका प्रथम ज्ञानोत्तेजकत्व रूप परत्व अर्थ का कथन—विद्या के तमरूप शत्रु मधु को मार कर वे सत् सत्त्व प्रतिपादक भगवद् भावित रूपों से प्रकाशित करते हैं यही उस ईश्वर का हृषीकेशत्व है । ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है ॥ ३९-४० ॥

ज्ञाननिर्मलीकरणद्वारा हर्षहेतुत्वपरत्वेन प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम्

हर्षयत्यमलीकृत्य विद्यामीश इतीदृशम् ॥ ४० ॥
हृषीकेशत्वमेतद्धि प्रद्युम्नत्वमुदीर्यते ।

अब ज्ञान को निर्मल बनाकर हर्ष के हेतुभूत प्रद्युम्नव्यूह रूप में प्रगट होते हैं—वे ईश्वर विद्या को निर्मल बना कर जीव को हर्षित करते हैं । इसी प्रकार का उनका हृषीकेशत्व है, जिसे प्रद्युम्न भी कहा जाता है ॥ ४०-४१ ॥

ज्ञानेन्द्रियनियामकपरत्वम्

ज्ञानेन्द्रियं हृषीकं स्यात् तस्य सोऽन्तर्नियामकः ॥ ४१ ॥
हृषीकेशत्वमेतद्धि प्रद्युम्नस्य निगद्यते ।

ज्ञानेन्द्रियों की नियामकता—ज्ञानेन्द्रियों को हृषीक कहते हैं । वे भीतर से उसका नियमन करते हैं, यही उस प्रद्युम्न का हृषीकेशत्व है ॥ ४१-४२ ॥

जगन्मयपरत्वम्

हृषीका विषयाः प्रोक्ताः प्रकृतिप्राकृतात्मकाः ॥ ४२ ॥
हर्षयन्ति हि ते जीवांस्तेषामीशो जगद्गुरुः ।
जगन्मयत्वमेतद्धि तन्मयत्वसमीरणात् ॥ ४३ ॥

जगन्मय परत्व—हृषीक शब्द प्रकृति एवं प्राकृतात्मक विषय रूप अर्थ का वाचक है । वे विषय जीव को हर्षित करते हैं । वे उन जीवों के ईश हैं । जगत् के गुरु हैं । इस प्रकार जगन्मय होने से उनका जगन्मयत्व ही हृषीकेश शब्द का अर्थ है ॥ ४२-४३ ॥

सृष्ट्यादिरूपक्रीडाहेतुकहर्षाश्रयदेवपरत्वम्

क्रीडया हृष्यति व्यक्तमीशस्तत्सृष्टिरूपया ।
हृषीकेशत्वमीशस्य देवत्वं चास्य तत् स्फुटम् ॥ ४४ ॥

सृष्टियादिरूप क्रीडा के हेतुभूत हर्षाश्रय रूप देवत्व का कथन—वह ईश्वर अपनी सृष्टि रूप क्रीडा से प्रकट रूप में प्रसन्न होते हैं । यही ईश्वर का हृषीकेशत्व है, जिससे उनका देवत्व स्पष्ट प्रकट होता है ॥ ४४ ॥

ऐश्वर्यवीर्यरूपगुणाश्रयपरत्वम्

अविकारितया हृष्टो हृषीको वीर्यरूपया ।
ईशः स्वातन्त्र्ययोगेन नित्यं सृष्ट्यादिकर्मणि ॥ ४५ ॥
ऐश्वर्यवीर्यरूपत्वं हृषीकेशत्वमुच्यते ।

ऐश्वर्य एवं वीर्य रूप गुण का आश्रय परत्व कथन—वीर्य रूप से अविकारी होने के कारण हृष्ट रहना यही हृषीक है और वह सृष्ट्यादि कर्म में नित्य स्वतन्त्र रहने के कारण ईश्वर भी है । इस प्रकार ऐश्वर्य तथा वीर्य रूप होने के कारण वह हृषीकेश कहलाते हैं ॥ ४४-४६ ॥

जगच्छब्दविवक्षितसर्वचेतनशेषित्वपरत्वम्

हृषी ज्ञानं समुद्दिष्टं हृषीकाश्चेतनात्मकाः ॥ ४६ ॥
जङ्गमत्वाज्जगद्रूपास्तदीशो जगतां पतिः ।
इति सूक्ष्मोऽयमुद्दिष्टः स प्रातिपदिकाश्रयः ॥ ४७ ॥

जगच्छब्द से विवक्षित सर्वचेतन का शेषित्वप्रधान विशेष्यत्व रूप का प्रतिपादन—'हृषी' ज्ञान को कहते हैं । अतः सभी चेतन प्राणी हृषीक हैं । वे चेतन जङ्गम होने से जगद्रूप हैं । वह उसका ईश अर्थात् जगत्पति है । इस प्रकार हमने हृषीकेश रूप प्रातिपदिक के आश्रयभूत सूक्ष्म अर्थ का निरूपण किया ॥ ४६-४७ ॥

परार्थनिरूपणारम्भः

वर्णाश्रयमिदानीं मे परमर्थं निशामय ।

परार्थ निरूपण—अब हे नारद ! आप हृषीकेश शब्द के प्रत्येक वर्ण में रहने वाले पर अर्थ को सुनिए ।

विमर्श—हकार, ऋकार, ईकार एवं शिरस्क षकार, एकार शिरस्क ककार एवं शकार इस प्रकार हृषीकेश शब्द में रहने वाले वर्णों को पाँच भागों में विभक्त कर अप्रमेयादि भाव से सिद्ध पर अर्थ का क्रमशः प्रदर्शन करते हैं ॥ ४८ ॥

हकारार्थनिरूपणम्

प्राणयत्यखिलं जीवं शुक्लधर्मात्मभावतः ॥ ४८ ॥

हकारार्थ निरूपण—शुक्ल धर्मात्मभाव से जो सारे जीवों को प्राण देकर जीवित रखता है । यह हकार का अर्थ हुआ । (हकार द्र० १७.२८) ॥ ४८ ॥

ऋकारार्थनिरूपणम्

सत्यश्च नामतः सच्च त्यच्च यस्माद्भवत्ययम् ।

ऋकारार्थ निरूपण—जिस कारण वह सत् रूप और त्यद् रूप होने से अर्थात् वह पञ्चमहाभूत स्वरूप है इसलिए नामतः सत्य कहा जाता है । ऋकार का अर्थ है । (ऋकार द्र० १७.७) ॥ ४९ ॥

ईकारशिरस्कषकारार्थनिरूपणम्

माययाश्चर्ययोगेन भास्करं भरते दिवि ॥ ४९ ॥

षी शब्द का अर्थ निरूपण—माया के आश्चर्य योग का सहारा लेकर वह आकाश में भास्कर (भकार द्र० १७.२७) को प्रकाश देकर पोषित करता है यह 'षी' का अर्थ हुआ ॥ ४९ ॥

एकारशिरस्कककारार्थनिरूपणम्

करालां जगंतो योनिं घोररूपां तमोमयीम् ।

के शब्द का अर्थ निरूपण—यह जगत् की योनि रूप से कराल है । घोर रूपा है तथा तमोमय है, यह के शब्द का अर्थ हुआ । (ककार द्र० १७.१२) ॥ ५० ॥

शकारार्थनिरूपणम्

शमयत्यप्रमेयस्थ इति वर्णाश्रया स्थितिः ॥ ५० ॥
अर्थोऽयं त्रिविधः प्रोक्तो हृषीकेशे महामुने ।

शकारार्थ निरूपण—अप्रमेय में स्थित होकर वह उस तमोमयी योनि को विनष्ट कर देता है । यह शकार का अर्थ है (शान्तः द्र० ५.१७,२६) इस प्रकार हृषीकेश शब्द के प्रत्येक वर्ण में रहने वाले अर्थ का प्रतिपादन किया तथा हे महामुने ! इस प्रकार उसका स्थूल, सूक्ष्म तथा परार्थ भी निरूपण किया ॥ ५०-५१ ॥

मन्त्रचतुर्थपादस्य स्थूलार्थनिरूपणम्

अर्थं शृणु त्वं त्रिविधं महापुरुषपूर्वजे ॥ ५१ ॥
जितं त इति वाकृष्य आहार्योऽत्र जयेति वा ।
जितं तेऽथ नमस्तेऽस्तु पदमेतदिहोभयम् ॥ ५२ ॥
अञ्जसा जगतोऽध्यक्षे चेतनाचेतनात्मनः ।
जयः प्रणामरूपोऽर्थो ह्यनिरुद्धेऽभिधीयते ॥ ५३ ॥
जितं त इति शब्दोऽयमतिस्वामित्वसूचकः ।
सन्निकृष्टो नमस्कारः सर्वोत्कृष्टे कथं भवेत् ॥ ५४ ॥
अत्युच्चो येन रूपेण सन्निकर्षमुपैति सः ।
तद् द्वितीयतृतीयौ द्वाविति तत्र नमस्क्रिया ॥ ५५ ॥
भावद्वयेन भगवाननिरुद्धो जगद्धितः ।
इति द्योतयितुं तत्र वाच्ये जयनमस्क्रिये ॥ ५६ ॥
क्रियाकारकजन्योऽर्थ इति स्थूलो निरूपितः ।

मन्त्र के चतुर्थपाद 'महापुरुषपूर्वज' का स्थूल अर्थ प्रतिपादन करते हैं—हे नारद ! अब आप 'महापुरुषपूर्वज' शब्द के तीनों प्रकार के अर्थों को सुनिए । यहाँ पूर्व पद में रहने वाले 'जितं ते' इस पद का आकर्षण कर अथवा जय पद का अध्याहार कर, अथवा 'जितं

तेऽथ नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज' इस प्रकार श्लोक का दो चरण मान कर तीन प्रकार का अर्थ करना चाहिए । १. चेतना चेतनात्मक सारे जगत् के अध्यक्ष अनिरुद्ध में जय अथवा प्रणाम कहा जाता है—ऐसा कहा गया है । २. 'जितं ते' यह शब्द सभी प्रकार के स्वामियों के स्वामित्व का अतिक्रमण करने वाला अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्वामी इस अर्थ को द्योतित करता है—अब रही नमस्कार की बात नमस्कार सन्निकृष्ट को किया जाता है जो सर्वोत्कृष्ट है उसमें किस प्रकार नमस्क्रिया बने? तो कहते हैं दो बार अथवा तीन बार अथवा उससे अधिक दो बार और नमस्कार करे । ३. 'जय तथा नमः' इन दो भावों से भगवान् अनिरुद्ध ही एकमात्र जगत् के हितकारी हैं । इस भाव का द्योतन करने के लिए वहाँ जय तथा नमस्क्रिया करनी चाहिए । यहाँ तक हमने 'महापुरुषपूर्वज' शब्द का क्रियाकारकभावजन्य स्थूल अर्थ निरूपण किया ॥ ५१-५७ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

य: प्रातिपदिकस्थोऽर्थस्तं त्वं सूक्ष्मं निशामय ॥ ५७ ॥

सूक्ष्मार्थ निरूपण—जो प्रातिपदिक में रहने वाला सूक्ष्म अर्थ है हे नारद ! आप सुनिए ॥ ५७ ॥

मकारार्थनिरूपणम्

मिमीते विविधं वस्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञतन्मयम् ।

मकारार्थ निरूपण—जो क्षेत्रमय एवं क्षेत्रज्ञमय समस्त वस्तुओं को परिमित करता है—यह मकार का अर्थ है ॥ ५८ ॥

हाकारार्थनिरूपणम्

जिहीते तदशेषं च प्रविशत्यन्तरात्मना ॥ ५८ ॥

हाकारार्थ निरूपण—जो अशेष को त्यागता है अथवा उसका ज्ञान रखता है तथा अन्तरात्मा रूप से उसमें प्रवेश करता है—यह हकार का अर्थ है ॥ ५८ ॥

महेतिसमुदायार्थनिरूपणम्

प्राणयत्यथ तत् सर्वं तत्र तत्र महीयते ।
महद्भ्यश्च महानित्थं महानिति निरुच्यते ॥ ५९ ॥

'महा' इस समुदाय पद का अर्थ—समस्त जीव जात को जीवन देता है और वहाँ-वहाँ महत्ता प्राप्त करता है तथा जो महान् से भी महान् हैं । इस प्रकार महाशब्द का अर्थ 'महान्' हुआ ॥ ५९ ॥

पुकारार्थनिरूपणम्

पुष्यति स्थितिमाव्यक्ति पुनः पुनरुदेति च ।

पुकारार्थ निरूपण—सब का पोषण करता है । प्रत्येक व्यक्ति में स्थिति रहता है तथा पुनः-पुनः उदय को प्राप्त होता है यह पुरुष के पुकार का अर्थ है ॥ ६० ॥

रुशब्दार्थनिरूपणम्

रौति शास्त्रं च नानार्थं रूयते तत्तदात्मना ॥ ६० ॥
राति पूजामथादत्ते राति चाराधितः फलम्।

रु शब्द का अर्थ-निरूपण—जो नाना अर्थ वाले शास्त्रों को शब्दतः प्रकाशित करता है तथा तत्तदात्माओं से पुकारा जाता है, अथवा जो पूजा ग्रहण करता है अथवा जो आराधना करने पर उसका फल प्रदान करता है। यह रु शब्द का अर्थ है ॥ ६०-६१ ॥

षकारार्थनिरूपणम्

अन्तं करोति पापानां नाना सभज्यते जनैः ॥ ६१ ॥

षकारार्थ निरूपण—जो पापों का अन्त करता है तथा लोगों द्वारा सेवित होता है—यह 'पुरुष' शब्द के ष का अर्थ है ॥ ६१ ॥

पुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम्

पुरमोषति कर्मान्ते पुरुभिः सेव्यते तथा।
पुरि शेते पुरं सौति सत्त्वे पुरुणि सीदति ॥ ६२ ॥

पुरुष पद का समुदित अर्थ—जो कर्म की समाप्ति हो जाने पर इस पुर (शरीर) का शोषण कर जाता है, अथवा उसकी समाप्ति कर देता है वह पुरुष है, अथवा जो पुर (शरीर) में शयन करता है, अथवा पुर (शरीर) को उत्पन्न करता है वह पुरुष है ॥ ६२ ॥

रेफशिरस्कपूकारार्थनिरूपणम्

पारयत्यखिलं विश्वं वारयत्यखिलं तमः।

पूकारार्थ निरूपण—जो सारे संसार को पार कराता है, अथवा जो समस्त तमस् को दूर करता है यह पूर्वज के 'पू' का अर्थ है ॥ ६३ ॥

वकारजकारार्थनिरूपणम्

वनते चाश्रितान् सर्वाञ्जयत्यपि तमोमयम् ॥ ६३ ॥
अजति क्षिपति स्पष्टं द्विषतः क्रूरयोनिषु।

वकार एवं जकारार्थ निरूपण—जो अपने आश्रितों की सेवा करता है तथा उनके अन्धकार को दूर करता है, द्वेष करने वालों को नीच योनि में फेंकता है वह व और ज का अर्थ हुआ ॥ ६३-६४ ॥

पूर्वजशब्दसमुदितार्थनिरूपणम्

पूर्व एव पुराणः संस्तत्तद्योनिषु जायते ॥ ६४ ॥
पूर्वजः सर्वदेवानां पूर्वोऽजो यस्य देहजः।
अजो हि पुत्रः पूर्वोऽस्य ब्रह्मा प्रथमकल्पितः ॥ ६५ ॥
पूर्वा जीवाः समाख्याताः पुरस्ते वन्वते यतः।
स्वेन रूपेण पूर्वांस्तान् प्रादुर्भावयति स्वयम् ॥ ६६ ॥

पूर्वज इस समुदित शब्द का अर्थ—जो पूर्व एवं पुराण होकर भी तत्तद् योनियों में उत्पन्न होता है, सभी देवों में पूर्वज है तथा पूर्व में वर्त्तमान ब्रह्मदेव जिसके शरीर से पैदा हुये हैं, अज यही जिनके सर्वप्रथम पुत्र हैं, अथवा ब्रह्मदेव ही जिनकी प्रथम रचना है—यह पूर्वज का अर्थ है । पूर्व पद से जीव कहा जाता है, अतः वही उसके आगे होकर याचना करते हैं, अथवा पूर्व में रहने वाले उन जीवों को अपने स्वरूप से जो स्वयं प्रादुर्भूत करता है वह पूर्वज है ॥ ६४-६६ ॥

महापुरुषपदसमुदितार्थनिरूपणम्

महत्त्वमनपेक्षत्वं सर्वभावक्रियाविधौ ।
पुरुषैरविभागो यो महापुरुषतास्य सा ॥ ६७ ॥
एतदेव च तेजस्तत् सैषा शक्तिरुदीरिता ।
एतदेवानिरुद्धत्वं भगवत्त्वमपीदृशम् ॥ ६८ ॥
स्थित्युत्पत्तिलयत्राणहेतुत्वं चैतदीदृशम् ।
इति ते लेशतः प्रोक्तः सूक्ष्मः प्रतिपदाश्रयः ॥ ६९ ॥

महापुरुष पद का समुदित अर्थ—सभी पदार्थों की सभी क्रियाओं में जिसका महत्त्व तथा जिसकी निरपेक्षता है । पुरुष द्वारा जिसकी महापुरुषता विभक्त नहीं की जा सकती यही उसका तेज है और यही उसकी शक्ति है यही उसका अनिरुद्धत्व है, ऐसी ही उसकी भगवत्ता है । स्थिति, उत्पत्ति, लय तथा त्राण का हेतु भी इसी प्रकार है इस प्रकार प्रतिपद में रहने वाला महापुरुष शब्द का सूक्ष्म अर्थ लेश मात्र आपसे कहा ॥ ६७-६९॥

परार्थनिरूपणारम्भः

वर्णाश्रयमिदानीं मे परमर्थं निशामय ।

महापुरुष शब्द का परार्थ निरूपण—हे नारद ! अब आप महापुरुष शब्द के वर्ण में रहने वाले अर्थ को सुनिए ॥ ७० ॥

मकारार्थनिरूपणम्

मर्दनः सर्वदुष्टानामप्रमेयपराक्रमः ॥ ७० ॥

मकारार्थ निरूपण—वह अप्रमेय पराक्रम वाला है । (अकार द्र० १७.४) तथा समस्त दुष्टों का मर्द्दन करने वाला है (मकार द्र० १७.२४) ॥ ७० ॥

हाकारार्थनिरूपणम्

अरिभ्यश्च हितो नित्यं गोपनः सर्वदेहिनाम् ।
व्यक्तः क्रियावतां पन्थास्त्रयीकर्मसमुद्भवः ॥ ७१ ॥

हाकारार्थ निरूपण—जो सारे जीवों की शत्रुओं से रक्षा करता है और नित्य उनका हित करता है तथा वेदत्रयी कर्म से उत्पन्न क्रियावानों का स्पष्ट मार्ग है—यह हाकार का अर्थ है ॥ ७१ ॥

उकारशिरस्कपकारार्थनिरूपणम्

पद्मनाभोऽम्बुशायी सन्नुद्दामभुवनोदयः ।

उकारार्थ एवं पकारार्थ निरूपण—विशाल भुवन (उकार द्र० १७.६) को उत्पन्न कर जो पद्मनाभ एवं अम्बुशायी है (यकार द्र० १७.२२) ॥ ७२ ॥

तादृशरेफार्थनिरूपणम्

अशेषभुवनाधारस्तत्तत्कार्योदयस्थितिः ॥ ७२ ॥

रु शब्द का अर्थ कथन—जो तत्त्कार्यों की उदय स्थिति है तथा अशेष भुवनों का आधार है—यह रु वर्ण का अर्थ है ॥ ७२ ॥

षकारपकारार्थनिरूपणम्

श्वेतद्वीपे नृसिंहः सन्नग्निरूपो हविर्भुजाम् ।
भास्करः सर्वदेवानां पवित्रं परमं सताम् ॥ ७३ ॥

षकारार्थ तथा पकारार्थ का निरूपण—जो श्वेतद्वीप में नृसिंह रूप से निवास कर हवि भोजन करने वालों में अग्नि है, सभी देवों में भास्कर है तथा सज्जनों में परम पवित्र हैं—यह षकार और पकार का अर्थ है (द्र० १७.२७) ॥ ७३ ॥

ऊकारार्थनिरूपणम्

नानाविधानां प्रज्ञानामाधारः कार्यसाधने ।

ऊकारार्थ निरूपण—कार्य सिद्धि में जो नाना प्रकार की प्रज्ञा का आधार है (ऊकार द्र० १७.६) ॥ ७४ ॥

द्वितीयरेफार्थनिरूपणम्

बलवान् सर्वलोकेशः कल्पान्ते कालपावकः ॥ ७४ ॥

द्वितीय रेफार्थ निरूपण—वलवान् है, सर्व लोकेश है तथा कल्पान्त में वही प्रलयाग्नि है—यह द्वितीय रेफ का अर्थ है (द्र० १७.२५) ॥ ७४ ॥

वकारजकारार्थनिरूपणम्

वराहो वसुधोद्धारे जन्महन्ता स्मृतः सताम् ।
अजितो देवदैत्याद्यैर्महापुरुषपूर्वजः ॥ ७५ ॥
इति वर्णाश्रया रीतिर्महापुरुषपूर्वजे ।

वकार एवं जकारार्थ निरूपण—पृथ्वी के उद्धार काल में वराह रूप धारण करने वाला तथा सज्जनों के जन्मादि का विनाश करने वाला, देव तथा दैत्यादिकों से कभी न जीता जाने वाला वह महापुरुष पूर्वज है । इस प्रकार हमने 'महापुरुष पूर्वज' के वर्णों में रहने वाली अर्थ रूप रीति का प्रतिपादन किया ॥ ७५-७६ ॥

प्रकृतमहामन्त्रतात्पर्यसूचनम्

नानाविधमहार्थोऽयं जितन्ताख्यो महामनुः ।
चक्ररूपं चित्ररूपं वक्ति देवं सनातनम् ॥ ७६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां जितन्ताख्यमन्त्रार्थ-निरूपणं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३४७८ ॥

*

प्रकृत महामन्त्र का तात्पर्य कथन—'जितन्ते' इत्यादि महामन्त्र अनेक प्रकार के महान् अर्थों वाला है जो चक्ररूप और चित्ररूप तथा सनातन देव का प्रतिपादन करता है ॥ ७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के जितन्ताख्य-मन्त्रार्थनिरूपण नामक तिरपनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५३ ॥

*

अथ चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

सप्तभिः श्लोकैर्मन्त्रमाहात्म्यनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

इति ते लेशतः प्रोक्तो जितन्ताख्यो महामनुः ।
नारसिंहमिदानीं मे तत्त्वतः शृणु नारद ॥ १ ॥

सात श्लोकों द्वारा नरसिंहानुष्टुभ् महामन्त्र का माहात्म्य निरूपण—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! इस प्रकार हमने 'जितं ते' इस महामन्त्र का लेश मात्र अर्थ कहा है । अब आप नारसिंह मन्त्र का तत्त्वतः व्याख्यान सुनिए ॥ १ ॥

मन्त्रस्यास्यैहिकामुष्मिकनानाविधफलसाधनता

सर्वाश्चर्यकरः सोऽयं नारसिंहो महामनुः ।
दिव्यान्तरिक्षभौमानां भोगानामुपपादकः ॥ २ ॥
आध्यात्मिकादिरूपाणां त्रिविधानां तथापदाम् ।
निवारणस्तथा रक्षोदैत्यदानवमर्दनः ॥ ३ ॥

यह मन्त्र इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी नाना फलों का साधन है इसका निरूपण—यह नारसिंह महामन्त्र सभी प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न करता है । यह दिव्य, भौम तथा अन्तरिक्ष में रहने वाले सभी भोगों को प्रदान करने वाला है । यह मन्त्र आध्यात्मिकादि तीनों प्रकार की आपत्तियों का निवारण करता है और राक्षस, दैत्य तथा दानवों का मर्दन करता है ॥ २-३ ॥

सांख्ययोगपाञ्चरात्रवेदान्तपाशुपतैरप्यस्यावश्योपजीव्यत्वम्

सांख्यानां परमं ज्ञानमिदमेव महामुने।
इयं सोपानभूमिः सा योगिनां नियतात्मनाम्॥ ४॥
तदेतदयनं ह्येकं सात्त्वतानां महात्मनाम्।
एतत् त्रय्यन्तसर्वस्वमेतत् पाशुपतं मतम्॥ ५॥

यह सांख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेदान्त एवं पाशुपतों का आवश्यक रूपेण उपजीव्य है—हे महामुने ! यही सांख्य मत वालों का परम ज्ञान है, योग में लगे हुये महात्माओं की यह सोपान भूमि है। सात्त्वत महात्माओं का तो यह एक मात्र अयन (निवास स्थान) है। यही वेदान्त का सर्वस्व है और पाशुपतों का तो यही सिद्धान्त है॥ ४-५॥

सर्वचेतनहितकामनया कल्पादौ सङ्कर्षणेनास्य प्रकाशितत्वम्

सङ्कर्षणो जगत्यस्मिन् सृष्टे नानाविधे पुरा।
हिताय सर्वजीवानां ज्ञानमेतत् परं जगौ॥ ६॥

सभी चेतन प्राणियों के हित के लिए सङ्कर्षण ने इसे प्रकाशित किया है—भगवान् सङ्कर्षण ने पूर्वकाल में नाना प्रकार की सृष्टि के उपरान्त सभी जीवों के हित के लिए इस मन्त्र को प्रकट किया॥ ६॥

ब्रह्मरुद्रादीनामपि महता श्रमेण सङ्कर्षणादेतन्मन्त्रप्राप्तिः

तप्त्वा घोरं तपो ब्रह्मा तस्मादधिजगौ पुरा।
अधीतवानहं तस्मान्मत्तो दिव्या महर्षयः॥ ७॥

ब्रह्मा एवं रुद्रादिकों ने बहुत श्रम से सङ्कर्षण द्वारा इस मन्त्र को प्राप्त किया है—पूर्वकाल में ब्रह्मा ने घोर तप कर सङ्कर्षण द्वारा इस मन्त्र को प्राप्त किया और मैंने भी उन्हीं से इस मन्त्र की शिक्षा प्राप्त की। तदनन्तर महर्षियों ने मुझसे प्राप्त किया॥ ७॥

विमर्श—नारसिंह मन्त्र इस प्रकार है—

'उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥'

इस मन्त्र में कुल ग्यारह पद हैं सबसे अन्त वाला ग्यारहवाँ अहं पद प्रथमान्त कर्त्ताकारक है तथा १० वाँ नमामि पद उत्तम पुरुषैकवचनान्त क्रिया का बोधक है॥ ७॥

स्थूलार्थनिरूपणे शेषत्वज्ञानपूर्वकमात्मात्मीययोर्भगवति समर्पणनिरूपणम्

नमनं नतिरित्युक्तं नीचीभावश्च स स्मृतः।
परं प्रत्यात्मनो नीचीभावः शेषत्वमेव हि॥ ८॥
आत्मानं शेषतां नीत्वा नमामीतिपदेन तु।
आत्मीयमर्थं तत् तस्मै निवेदयति मन्त्रवित्॥ ९॥

स्थूलार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से शेषत्व ज्ञान कराते हुये अपना तथा अपनी सारी

वस्तु का भगवान् में समर्पण यही 'नमाम्यहं' पद का अर्थ है ऐसा उपपादन करते हैं—नम्र हो जाने को नमन कहते हैं । वह नीचीभाव रूप में कहा गया है । परब्रह्म परमात्मा की अपेक्षा नीचीभाव हो जाना शेषत्व है । इस प्रकार अपने को शेष (नीचा या अप्रधान) समझ कर 'नमामि' इस पद से मन्त्रवेत्ता अपने को तथा आत्मीय पदार्थों को परमात्मा के लिए जिस क्रिया से समर्पण करता है वही नमामि पद का अर्थ है ॥ ८-९ ॥

मान्त्रवर्णिकैरुग्रादिपदैः रौद्रादिरसप्रतिपादनम्

क्रोधातिशयतो रौद्रो रस उग्र उदीरितः ।
उत्साहातिशयोत्थायी वीरो वीरपदोदितः ॥ १० ॥
चतुर्भिरद्भुतैः शब्दैर्महाविष्ण्वादिपूर्वकैः ।
भयातिशयहेतुत्वाद् भीषणेन भयानकः ॥ ११ ॥
रसं वदति शृङ्गारं मन्त्रभद्रपदं मुने ।
मृत्युमृत्युपदं चापि वदत्यद्भुतभीषणौ ॥ १२ ॥

मन्त्र में रहने वाले उग्रादिपदों से रौद्रादि रस का प्रतिपादन—उग्र का क्रोधातिशय अर्थ होने से वह रौद्र रस का प्रतिपादक है । वीर शब्द 'उत्साहातिशय' का बोध कराने से वीर रस कहा गया है । चार अद्भुत शब्द वाले महाविष्णुपूर्वक भीषण शब्द से भयातिशय हेतुत्व रूप अर्थ कहने के कारण 'भयानक' रस है । हे मुने ! मन्त्र में रहने वाला भद्रं पद शृङ्गार रस कहता है । 'मृत्युमृत्यु' यह पद अद्भुत तथा भयानक इन दो रसों को कहता है ॥ १०-१२ ॥

अहंपदस्य भगवच्छेषत्वेन रूपेणात्मस्वरूपनिष्कर्षकत्वम्

अहमित्यात्मनिष्कर्षो नन्तुर्भागवतात्मना ।

नमन करने वाले भागवतात्मा साधक के द्वारा अहं पद का निष्कर्ष उक्त है ॥ १३ ॥

उग्रादिपदाभिहितानां रौद्रादिरसानां विष्णुव्यवस्थाप्रदर्शनम्

उग्रः शत्रुधिया देवो वीरो देवगणेक्षया ॥ १३ ॥
महाविष्णुर्ज्वलंश्चैव सर्वतोमुख इत्यपि ।
नृसिंह इति चाश्चर्यो योगसिद्धजनेक्षया ॥ १४ ॥
भीषणो देव उद्दिष्टः क्षुद्ररक्षोगणेक्षया ।
आनन्दवलितापाङ्ग्या लक्ष्म्या भद्रो निरीक्षितः ॥ १५ ॥
ऋषीणां मृत्युमृत्युः स भीषणाश्चर्ययोगतः ।
क्रियाकारकसंसर्गजन्योऽर्थः स्थूल ईदृशः ॥ १६ ॥

उग्रादि पदों से अभिहित रौद्रादि रसों की विष्णु में व्यवस्था का वर्णन—वे देव अपने शत्रुओं के लिए उग्र हैं, देवगणों की दृष्टि से 'वीर' हैं । इसी प्रकार महाविष्णु, ज्वलन् तथा सर्वतोमुख ये पद भी देवगणों की दृष्टि की अपेक्षा से कहे गए हैं । योग सिद्धजनों की दृष्टि से आश्चर्य उत्पन्न करने के कारण नृसिंह हैं तथा क्षुद्र राक्षसगणों की दृष्टि से भीषण हैं ।

आनन्द से उपोद्वलित अपाङ्ग वाली लक्ष्मी से अवलोकित होने के कारण वह भद्र कहे गए हैं। ऋषियों की दृष्टि में भीषण तथा आश्चर्य युक्त होने के कारण वे मृत्युमृत्यु कहे गए हैं। इस प्रकार इस मन्त्र का क्रियाकारक जन्य स्थूलार्थ कहा गया ॥ १३-१६ ॥

सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

सूक्ष्ममर्थं निबोधेमं यः प्रातिपदिकाश्रयः।

सूक्ष्मार्थ निरूपण—हे नारद! अब आप प्रातिपदिक में रहने वाला सूक्ष्म अर्थ सुनिए ॥ १७ ॥

उग्रशब्दार्थनिरूपणम्

उद्गिरत्यखिलं विश्वमुद्गीर्णं ग्रसति स्वयम् ॥ १७ ॥

उग्र शब्दार्थ निरूपण—जो सारे विश्व को उत्पन्न करता है तथा उत्पन्न किये गए उसी विश्व को स्वयं निगल जाता है, यह उग्र शब्द का अर्थ है ॥ १७ ॥

वीरशब्दार्थनिरूपणम्

वीरयत्यखिलं भावं विविधं रमयत्यपि।

वीर शब्दार्थ निरूपण—जो समस्त पदार्थों को विशेष रूप से प्रेरणा प्रदान करता है तथा उसे विविध रूप से रमण कराता है वह वीर है ॥ १८ ॥

महच्छब्देन त्रिविधपरिच्छेदशून्यत्वस्य बोधनम्

कालदेशाद्यवच्छेदविरहात् स महान् स्मृतः ॥ १८ ॥

महाविष्णु शब्द के अन्तर्गत रहने वाले महत् शब्द से त्रिविधपरिच्छेद शून्यत्व का बोध—काल, देश तथा अवस्था द्वारा जिसका परिच्छेद सम्भव नहीं है वही महान् है। यह महत् शब्द का अर्थ हुआ ॥ १८ ॥

पुनर्महच्छब्दस्य नवधा निर्वचनप्रदर्शनम्

महीयतेर्मेहतेर्वा मुह्यतेरथवा मिहेः।
मनुतेः सजहातेर्वा मां जिहीतेऽथवा महान् ॥ १९ ॥
मात्यस्मिन्नथ वा विश्वं न जहात्यपि वै जगत्।

पुनः महत् शब्द का नव प्रकार से निर्वचन—'महीयते' इति महान्, मेहतीति महान्, मोहयातीति महान्, मेहतीति महान्, मनुते इति महान्, जहातीति महान्, माँ जिहीते इति महान्, माति विश्वमस्मिन्निति महान्, जगत् न जहातीति महान्, इस प्रकार के निर्वचनों में मंहे पूजायाम्' (भ्वादि), मिह सेचने (भ्वादि), मुह वैचित्र्ये (दिवादि), मनु अवबोधने (तनादि), ओहाक् त्यागे (जुहोत्यादि), ओहाङ् गतौ (जुहोत्यादि), माङ् माने (अदादि) इस प्रकार सात् धातुओं का प्रयोग है। किन्तु निर्वचन नव हैं तथापि मिह धातु तथा ओहाङ् धातु की तात्पर्यभेद से दो बार आवृत्ति की गई है इसलिए नव सङ्ख्या की पूर्त्ति हो गई ॥ १९-२० ॥

यथाक्रमं तेषामुपपादनम्

महीयते परे व्योम्नि महानिति निरुच्यते ॥ २० ॥
मेहतिर्दानकर्मायं महान् मेहत्यभीप्सितम् ।
मोहयत्यात्मचेष्टाभिरिति देवो महान् स्मृतः ॥ २१ ॥
स्वं मेहत्यप्सु वै वीर्यमण्डत्वेनेति वै महान् ।
मनुते नित्ययोगेन स्वेन ज्ञानात्मना महान् ॥ २२ ॥
जहाति विविधान् भावान् षड् भावा इति यान् विदुः ।
मेति लक्ष्मीर्मता देवी तां जिहीतेऽभिगच्छति ॥ २३ ॥
दिव्यं नित्यपरिष्वक्तं मिथुनं तन्महानतः ।
मात्यस्मिन्निखिलेनेदं कुण्डे बदरवज्जगत् ॥ २४ ॥
न जहाति बहिर्भूतस्तच्च देहे महानतः ।

यथाक्रम उनका उपपादन—१. जो पर व्योम में सर्वश्रेष्ठ है अथवा पूजित है इसलिए वह महान् है । २. मेहति अभीष्टं ददाति अर्थात् सबको अभीष्ट प्रदान करता है इसलिए वह महान् है । ३. मोहयतीति महान् अर्थात् जो अपनी चेष्टाओं से सबको मोहित करता है वह महान् है । ४. अण्डत्वेन स्वं वीर्यं अप्सु मेहतीति महान् अर्थात् जो अण्ड रूप से अपने वीर्य को जल में सिञ्चन करता है वह महान् है । ५. जो अपने में रहने वाले नित्य ज्ञान से सर्वदा उद्बुद्ध रहता है वह महान् है । ६. जो षड्भावों (जायते तिष्ठति विपरिणमते विवर्धते अपक्षीयते विनश्यति) का त्याग करता है वह महान् है । ७. मां लक्ष्मीं जहाति अधिगच्छतीति महान्' अर्थात् जो लक्ष्मी को प्राप्त करता है । अतः दोनों ही दिव्य है और नित्य मिथुन भाव से परस्पर समासक्त हैं इसलिए महान् है । ८. जिस प्रकार कुण्ड में बेर का फल अमा जाता है, उसी प्रकार सारा जगत् जिसमें अमा जाता है वह महान् है । ९. बाहर रह कर भी जो इसको नहीं त्यागता अतः वह इस शरीर में महान् है ॥ २०-२५ ॥

विष्णुशब्दार्थनिरूपणम्

विविनक्ति जगत्यस्मिन् सच्चासच्च विचेष्टते ॥ २५ ॥
वेवेष्टि निखिलान् भोगान् यच्छति प्राणिनां स्वयम् ।
आयत्तैः सकलैर्जीवैः प्रणौत्यन्तः स्वरात्मना ॥ २६ ॥
इति शब्दार्थतत्त्वज्ञा विष्णुं देवं प्रचक्षते ।

विष्णु शब्दार्थ निरूपण—विविनक्ति विचिर पृथग्भावे (रुधादि) जो सत् और असत् को सर्वथा पृथक् करता है अथवा जीव रूप से सरस्वाद चेष्टा करता वह विष्णु है । वेवेष्टीति विष्णु (वृष्लृ व्याप्तौ अर्थात् जो सर्वत्र) व्याप्त है अथवा जो प्राणियों को सब प्रकार का भोग स्वयं देता है वह विष्णु है । जो अपने अधीन रहने वाले जीवों से अन्तः स्वरों द्वारा स्तुत रहता है वह विष्णु है । शब्दार्थ के तत्त्वज्ञ लोगों ने इस प्रकार विष्णु पद का अर्थ किया है ॥ २५-२७ ॥

महाविष्णुपदसम्पिण्डितार्थनिरूपणम्

महान् विशति संसारे जायमानो यतो महान्॥ २७ ॥
महाविष्णुमतो धीरा देवमेनं प्रचक्षते।

'महाविष्णु' शब्द का सपिण्डित अर्थ—यतः महान् होकर भी संसार में जायमान रूप से प्रविष्ट होता है इसलिए वह देव महान् है। इसीलिए धीर लोग इन्हें महाविष्णु शब्द से अभिहित करते हैं॥ २७-२८ ॥

ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम्

हृदये योगिनां नित्यं सूरीणां परमे पदे॥ २८ ॥
वितानेषु च विप्राणां यतो ज्वलति वै स्वयम्।
सूर्याचन्द्रमसौ वह्निरिति तेजस्त्रयं परम्॥ २९ ॥
आविश्य ज्वलयत्यन्तरवतीर्णो ज्वलत्यपि।
ज्ञानात्मना स्वरूपेण ज्वलत्येको जगद् ग्रसन्॥ ३० ॥
इति ज्वलन्तमाहुस्तं सर्वतो हरिमेधसम्।

ज्वलच्छब्दार्थ निरूपण—योगियों के हृदयप्रदेश में, मुमुक्षुओं के परम पद में तथा ब्राह्मणों के यज्ञ मण्डप में जो स्वयं जलता रहता है, जो सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि इन तीनों तेजों में प्रवेश करता है तथा अवतीर्ण (अवतार लेकर) हो कर जलता है अथवा जगत् को कवलित कर अकेले ज्ञान स्वरूप से जलता है। इस प्रकार सर्वत्र जलने वाले और अपने आश्रितों के पापों को हरण करने वाले परमेश्वर को ज्वलत् कहते हैं॥ २८-३१ ॥

सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम्

मुखं शक्तिः समुद्दिष्टा सर्वतो यस्य सा स्थिता॥ ३१ ॥
सर्वतोमुखमाहुस्तं सर्वशक्तिं सनातनम्।

सर्वतोमुख शब्दार्थ निरूपण—मुख शक्ति को कहते हैं। अतः जिसकी शक्ति सर्वत्र स्थित है, उस सर्वशक्तिमान् सनातन परमात्मा को सर्वतोमुख कहा जाता है॥ ३१-३२ ॥

नृसिंहशब्दार्थनिरूपणम्

नराणां बन्धनं हन्ति हिनस्तीति नृसिंहता॥ ३२ ॥

नृसिंह शब्दार्थ निरूपण—जो मनुष्यों के बन्धन को विनष्ट करते हैं तथा उनका बन्धन काटते हैं। यही उनकी नृसिंहता है॥ ३२ ॥

भीषणशब्दार्थनिरूपणम्

भियं सनोति दुष्टानां भीषणस्तेन शब्द्यते।

भीषण शब्दार्थ निरूपण—दुष्टों को भय प्रदान करता है (षणुदाने)। इसलिए वह भीषण शब्द से कहा जाता है॥ ३३ ॥

भद्रशब्दार्थनिरूपणम्

भां ददाति रवौ भद्रां भावं द्रावयते सताम् ॥ ३३ ॥
भवं द्रावयते घोरं संसारं तापसन्ततम् ।

भद्र शब्दार्थ निरूपण—जो रवि में सर्वोत्कृष्ट प्रकाश प्रदान करता है, सज्जनों में भाव द्रवीभूत करता है तथा उन भक्तो के सर्वदा ताप उत्पन्न करने वाले घोर संसार एवं जन्म को सर्वथा दूर कर देता है वह भद्र है ॥ ३३-३४ ॥

मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम्

मृत्युरज्ञानमुद्दिष्टं मृत्युः प्राणापहारकः ॥ ३४ ॥
मृत्युः संसार उद्दिष्टस्तेषां मृत्युर्यतो हरिः ।

मृत्युमृत्यु शब्दार्थ निरूपण—अज्ञान का नाम मृत्यु है । प्राणों का अपहरण करने वाला मृत्यु है और संसार को भी मृत्यु कहा जाता है । इन तीनों प्रकार की मृत्युओं के भगवान् हरि स्वयं मृत्यु है । अतः उन्हें ही मृत्युमृत्यु कहा जाता है ॥ ३४-३५ ॥

प्रथममृत्युशब्दस्याज्ञानादित्रयपरत्वे निर्वचनप्रदर्शनम्

मतिं त्यजत्यनेनेति मृत्युरज्ञानमुच्यते ॥ ३५ ॥
मृतिं तनोति जन्तूनामिति मृत्युरिति स्थितिः ।
मृतिसन्तानरूपत्वान्मृत्युः संसार उच्यते ॥ ३६ ॥

प्रथम मृत्यु शब्द का अज्ञानादि तीनों अर्थों के प्रतिपादन के लिए उनका निर्वचन कथन—जिसके कारण लोग मतिभ्रष्ट हो जाते हैं वह मृत्यु है जिसे अज्ञान कहा जाता है । जो जन्तुओं को मारता है वह मृत्यु है । मृति सर्वदा सन्तान रूप है इसलिए संसार को मृत्यु कहते हैं ॥ ३५-३६ ॥

द्वितीयमृत्युशब्दस्य प्रथममृत्युशब्दोदिताज्ञानादित्रयनाशकत्वपरत्वम्

नाशकत्वमिहोद्दिष्टं मितमुत्तरमृत्युना ।

दूसरा मृत्यु शब्द प्रथम मृत्यु से कहे गए अज्ञान, मरण तथा संसार इन तीनों का विनाशक है ऐसा उपपादन—दूसरे मृत्यु शब्द से उक्त तीनों अर्थों का यहाँ विनाशकत्व कहा गया है ॥ ३७ ॥

अहंशब्दस्य चतुर्धार्थवर्णनम्

अं जिहीते हरिं याति स्वरूपेणेह तादृशः ॥ ३७ ॥
पूर्णानन्दस्वरूपो हि चेतनो निखिलो यतः ।
अहीनश्चाप्ययं सर्वैर्ज्ञानशक्त्यादिभिः स्वतः ॥ ३८ ॥
अह्वा वाप्यमितोऽयं स्यात् कालातीतो यतोऽखिलः ।
अह्नि वा माति जीवोऽयमहमर्थः स उच्यते ॥ ३९ ॥
अहः सङ्कर्षणो ज्ञेयस्तस्मिञ्जीवोऽखिलः स्थितः ।

अहं शब्द से चार प्रकार के अर्थों का उपपादन—अं जिहीते इस निर्वचन में अकार

पद वासुदेव का वाचक है जिसका अर्थ 'जिहीते ओहाक् मतौ' होता है जो स्वरूपतः हरि को प्राप्त करता है। अतः समस्त चेतन पूर्णानन्दस्वरूप है। इसलिए समस्त चेतन अहं का अर्थ है और दूसरा ज्ञानशक्त्यादि सभी गुणों से वह परिपूर्ण है इसलिए अहं है। सभी संसार काल के घेरे में है किन्तु परमात्मा कालातीत है, इसलिए वे ही अहं पद वाच्य हैं, अथवा यह जीव काल में समा जाता है इसलिए वह अहं है, अथवा सङ्कर्षण देव को अहं कहा जाता है। उसी में समष्टि रूप से सारे जीव रहते हैं इसलिए वे ही अहं हैं ॥ ३७-४० ॥

सांख्यमार्गेण मन्त्रार्थं प्रदर्शयितुमुग्रभीषणशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

उग्रभीषणशब्दाभ्यां प्रोच्यतेऽव्यक्तरूपता ॥ ४० ॥
उग्रमत्यन्तघोरं यद्भीषणं भयदायि च।
अव्यक्तं तत् परिज्ञेयं भगवद्रूपमेव हि ॥ ४१ ॥

सांख्य दृष्टि से मन्त्र में आये हुये उग्र तथा भीषण शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण— उग्र भीषण इन दोनों शब्दों से अव्यक्तरूपता का प्रतिपादन किया गया है। 'उग्र' अत्यन्त घोर एवं भीषण तथा भय देने वाला है। अतः उसे अव्यक्त कहा जाता है। वह अव्यक्त भगवत्स्वरूप ही है ॥ ४०-४१ ॥

ज्वलच्छब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

ज्वलन्तमिति शब्देन प्रोच्यते जीवरूपता।
चैतन्यं ज्वलनं प्रोक्तं तत्कर्ता चेतनो ज्वलन् ॥ ४२ ॥
ज्वलन्नित्युच्यते सोऽयमसमाप्तविदिक्रियः।
सर्वतः प्रकृतिं दृष्ट्वा दोषांश्चैव तदुद्भवान् ॥ ४३ ॥
विरक्तः सर्वथा तत्र यदा वेत्ति परं हरिम्।
तदा समाप्यते तस्य वेत्तुः सर्वा विदिक्रिया ॥ ४४ ॥
अतः प्रकृतिनिर्मग्नो बुध्यमानो य ईर्यते।
संसारी स ज्वलन् सोऽपि भगवानिति भण्यते ॥ ४५ ॥

ज्वलच्छब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—'ज्वलन्तम्' इस शब्द से जीवरूपता कही गई है। ज्वलन् चैतन्य को कहते हैं। जलते रहने के कारण चेतन ही उसका कर्त्ता है। जब तक जानने वाले के ज्ञान की समाप्ति नही हो जाती तब तक वह जलता रहता है। सब जगह प्रकृति का साम्राज्य देख कर तथा उससे उत्पन्न दोषों को देख कर जब जीव विरक्त हो तत्र-तत्र परमात्मा को जान लेता है। तब उसके ज्ञान की जिज्ञासा समाप्त हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रकृति में निमग्न पुरुष जब जागरुक होकर प्रबुद्ध होता है तब जलता हुआ भी वह संसारी जीव 'भगवान्' शब्द से कहा जाता है ॥ ४२-४५ ॥

वीरशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

विविधं प्रेरयत्येतच्चेतनाचेतनं जगत्।
यः कालो भगवद्रूपं वीरशब्देन स स्मृतः ॥ ४६ ॥

वीर शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—जो काल रूप से चेतना-चेतनात्मक सारे जगत्

को अनेक प्रकार से प्रेरित करता है तथा भगवत्स्वरूप है, वही काल वीर शब्द से कहा जाता है ॥ ४६ ॥

महाविष्णुशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

तत्तत्त्वत्रितयव्याप्तिर्विष्णुशब्देन भण्यते ।
व्याप्तौ तत्राप्यलिप्तत्वं तस्माच्चाधिकता च या ॥ ४७ ॥
महा महत्त्वं पूज्यत्वं महच्छब्देन वर्ण्यते ।

महाविष्णु शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—तत्त्व त्रितय में जो व्याप्त है विष्णु शब्द उसी को कहता है । व्याप्त होने पर भी जो उन तीनों तत्त्वों से सर्वथा निर्लिप्त रहता है और उससे (तीनो तत्त्वों) उसकी जो अधिकता है । वही महा महत्त्व है, पूज्यत्व है । इतना ही महाशब्द से वर्णन किया गया है ॥ ४७-४८ ॥

सर्वतोमुखशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

सर्वतोमुखशब्देन प्रोच्यते सर्वशक्तिता ॥ ४८ ॥
सर्वज्ञता च देवस्य सर्वकर्तृत्वमेव च ।

सर्वतोमुख का तात्पर्य निरूपण—'सर्वतोमुख' शब्द से देवाधिदेव विष्णु की सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता तथा सर्वकर्तृता विवक्षित है ॥ ४८-४९ ॥

भद्रशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

भद्रशब्देन देवस्य नित्यनिर्दोषतोच्यते ॥ ४९ ॥

भद्र शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—भद्र शब्द से श्रीविष्णु की नित्य निर्दोषता प्रतिपादित की गई है ॥ ४९ ॥

नृसिंहशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

तथा नृसिंहशब्देन पुरुषोत्तमतोच्यते ।

नृसिंह शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—नृसिंह शब्द से विष्णु की पुरुषोत्तमता कही गई है ॥ ५० ॥

मृत्युमृत्युशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

मोक्षप्रदत्वमेतस्य मृत्युमृत्युसमीरणात् ॥ ५० ॥

मृत्युमृत्यु शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—'मृत्युमृत्यु' इस शब्द के उच्चारण से विष्णु का मोक्षप्रदत्त्व निरूपण किया गया है ॥ ५० ॥

अहंशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

प्रसङ्ख्यानेन या सिद्धा सिद्धिः कालेन भूयसा ।
प्रकृत्युत्तरता साक्षात् साहंशब्देन वर्ण्यते ॥ ५१ ॥
हिनस्ति गच्छतीत्यादिः प्राकृती याखिला क्रिया ।
तत्कर्तृवाची हंशब्दस्तदन्योऽहंपदोदितः ॥ ५२ ॥

निरुपाध्यवमर्शोऽयं देहप्राणात्यये स्थितः ।
अहमित्यास्पदं याति स जीवो निरुपस्कृतः ॥ ५३ ॥

अहं शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—बहुत काल से प्रसङ्ख्यान (सांख्य शास्त्र) द्वारा 'अकार से लेकर हकार पर्यन्त वर्णों की अहं पद से गणना सिद्धि सिद्ध है, तथा पूर्व में प्रकृति, तदनन्तर महत्तत्व, तदनन्तर अहन्तत्त्व, इस प्रकार जिसमें प्रकृति से उत्तरता विद्यमान है वही 'अहं' शब्द से वर्णन किया गया है । हिनस्ति गच्छति इत्यादि जितनी भी क्रियायें हैं उनका कर्त्ता 'हं' है । उससे भिन्न अहं है । देह और प्राण के बिना स्थित रहने वाला जीव जब उपाधि से रहित हो जाता है तो वही अहं इस आस्पद (उपाधि) को प्राप्त कर लेता है ॥ ५१-५३ ॥

नमामिशब्दतात्पर्यार्थनिरूपणम्

प्रसङ्ख्यायेत्थमात्मानं प्रह्वीभवति यत् स्वयम् ।
नद्या इवाम्बुधौ देवे प्रह्वीभावो निमग्नता ॥ ५४ ॥
इति ते सांख्यमार्गस्थो मन्त्रोऽर्थः सूक्ष्म ईरितः ।
तत्प्रसङ्ख्यानतत्त्वज्ञा विशन्ति पुरुषोत्तमम् ।
योगमार्गस्थितं तस्य मत्तो रूपं निशामय ॥ ५५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणं नाम चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३५३३ ॥

* * *

नमामि शब्द का तात्पर्यार्थ निरूपण—मैं इस प्रकार (दीन हूँ, अज्ञ हूँ, अणु हूँ) अपने को बता कर जब जीव परमात्मा में इस प्रकार निमग्न हो आत्मसमर्पण कर देता है तब जिस प्रकार नदी अपने को समुद्र में लीन कर देती है उसी प्रकार यह प्रह्वीभाव रूप निमग्नता कहा जाता है । हे नारद ! हमने सांख्यमार्गानुसारी नारसिंह मन्त्र का अर्थ प्रतिपादन किया । इसी प्रकार प्रसङ्ख्यान के तत्त्वज्ञ पुरुष पुरुषोत्तम में प्रवेश करते हैं । अब इस मन्त्र का योग मार्गानुसारी अर्थ आप मुझसे सुनिए ॥ ५४-५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपण नामक चौवनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५४ ॥

* * *

अथ पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यानं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक बार भी ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पापसमूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन के तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

योगमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपणप्रतिज्ञा

अहिर्बुध्न्यः—

निर्ब्रुवन्ति यथा योगा मन्त्रमेतं विचक्षणाः ।
तथा वाच्यस्तव मुने तन्मे निगदतः शृणु ॥ १ ॥

योगमत के अनुसार मन्त्र के अर्थ निरूपण की प्रतिज्ञा—अहिर्बुध्न्य ने कहा—जिस प्रकार योगशास्त्र के विद्वान् इस मन्त्र की व्याख्या करते हैं, हे मुने ! वही मैं आपसे कह रहा हूँ आप सुनिए ॥ १ ॥

उग्रशब्दार्थनिरूपणम्

उद्गतः क्रुध इत्येवमुग्रः करणरोधनात् ।

उग्रशब्दार्थ निरूपण—समस्त ज्ञानेन्द्रियों को रोक कर उससे ऊपर होकर उत्पन्न होने वाला क्रोध ही उग्र शब्द से वाच्य है ॥ २ ॥

वीरशब्दार्थनिरूपणम्

विवृता येन विजिता ईरा देहस्थवायवः ॥ २ ॥
स वीर उदितो योगैस्तन्त्रविज्ञानपारगैः ।

वीरशब्दार्थ निरूपण—विवृता का अर्थ विजिता है और ईरा देहस्थ वायु को कहते हैं । इस प्रकार जिसने देहस्थ वायु को जीत लिया वही 'वीर' है ऐसा तन्त्र और योगशास्त्र के विद्वानों ने कहा है ॥ २-३ ॥

ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम्

जितेन्द्रियो जितश्वासो योऽन्तर्ज्वलति सर्वतः ॥ ३ ॥
अनिन्द्रियव्यवच्छेदात् सर्वतः प्रसृतो ज्वलन् ।

ज्वलच्छब्दार्थ निरूपण—जो इन्द्रियों को तथा श्वास को जीत कर सर्वत्र भीतर ही भीतर जलता रहता है । इन्द्रियों द्वारा जिसको रोकना सम्भव नहीं है । अत: सर्वत्र जलते हुये ही फैलता रहता है । वही ज्वलन् शब्द का अर्थ है ॥ ३-४ ॥

सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम्

सर्वतोमुख उद्दिष्टः सर्वज्ञानमयो हरिः ॥ ४ ॥

सर्वतोमुख शब्दार्थ निरूपण—सर्वज्ञानमय विष्णु को सर्वतोमुख कहा जाता है ॥ ४ ॥

भीषणशब्दार्थनिरूपणम्

भा सम्यग्ज्ञानमुद्दिष्टं तस्याः प्रेरणमीषणम् ।
भेषणो भीषणः प्रोक्तो भगवान् विश्वभावनः ॥ ५ ॥

भीषण शब्दार्थ निरूपण—भा पद से सम्यग्ज्ञान विवक्षित है उसको जो प्रेरित करता है वह ईषण है । 'भ' और 'ईषण' दोनों मिलाकर कहा जाने वाला शब्द भेषण है वही भीषण है । इस प्रकार विश्वभावना भगवान् ही भीषण शब्द से कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

महाविष्णुनृसिंहभद्रमृत्युमृत्युशब्दार्थस्य पूर्वोक्तत्वसूचनम्

महाविष्णुनृसिंहौ च मृत्युमृत्युश्च पूर्ववत् ।

महाविष्णु नृसिंह तथा मृत्यु शब्द का पूर्वोक्त अर्थ कथन—महाविष्णु नृसिंह तथा 'मृत्युमृत्यु' शब्द पूर्ववत् हैं (द्र० ५४.४७-५०) ॥ ६ ॥

संपिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

जितेन्द्रियसमीराद्यं जीवरूपं व्यवस्थितम् ॥ ६ ॥
व्यापिनं महनीयं च धियां सम्यक् प्रचोदकम् ।
संसारमोचकं चैव यं विदुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥
नमामि तमहं देवमिति योगानुशासनम् ।

सबको मिलाकर अर्थ निरूपण—जो इन्द्रियों तथा प्राणों को जीत कर जीव रूप से व्यवस्थित है तथा सर्वत्र व्याप्त रहने वाला, महनीय, बुद्धि का प्रेरक तथा संसार से मुक्त करने वाला है जिसे लोग पुरुषोत्तम कहते हैं उसी देव को हम नमस्कार करते हैं । यह योगानुशासन का अर्थ है ॥ ६-८ ॥

पाशुपतमतानुसारेण मन्त्रार्थनिरूपणे उग्रशब्दार्थनिरूपणम्

उग्रव्रतसमाराध्य उग्रशब्दने वर्ण्यते ॥ ८ ॥

पाशुपत मत के अनुसार मन्त्रार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से उग्र शब्द का अर्थ—जो उग्र व्रत द्वारा आराधनीय है वही उग्रशब्द से वर्णन किया गया है ॥ ८ ॥

वीरशब्दार्थनिरूपणम्

तत्पारयितृवन्द्यत्वं वीरशब्देन वर्ण्यते ।

वीरशब्दार्थ निरूपण—जो उन जीवों को पार करने के कारण बन्दनीय है वही वीर है ऐसा वीर शब्द का अर्थ है ॥ ९ ॥

सर्वतोमुखशब्दार्थनिरूपणम्

मलत्रयप्रागभावः सर्वतोमुखशब्दितः ॥ ९ ॥

सर्वतोमुखशब्दार्थ का निरूपण—जिनमें आणवादि मलत्रय का प्रागभाव हो वही 'सर्वतोमुख' शब्द का अर्थ है ॥ ९ ॥

ज्वलच्छब्दार्थनिरूपणम्

संविद्घनत्वमाद्यस्य ज्वलच्छब्देन वर्ण्यते ।

ज्वलच्छब्दार्थ निरूपण—आदिभूत महाविष्णु की ज्ञानघनता को ही ज्वलत् शब्द से कहा गया है ॥ १० ॥

भीषणशब्दार्थनिरूपणम्

अर्थपञ्चकरूपस्तु पाशो भीशब्ददर्शितः ॥ १० ॥
भियं स्यति द्यति स्पष्टं पाशं छिन्ते पशोरिति ।
पशुपाशच्छिदं वक्ति शब्दो भीषण इत्ययम् ॥ ११ ॥

भीषण शब्दार्थ निरूपण—अर्थपञ्चकरूप पाश यही 'भी' शब्द का अर्थ है जो भय का अन्त करता है । (षोऽन्त कर्मणि अथवा) जो भय को काट देता है । (दो अवखण्डने) अथवा पशु रूप जीव के पाश का छेदन करता है इसलिए यह भीषण शब्द 'पशुपाश को उच्छेद करने वाला' इस अर्थ को कहता है ॥ १०-११ ॥

मृत्युमृत्युशब्दार्थनिरूपणम्

शिवङ्करत्वमीशस्य मृत्युमृत्युपदोदितम् ।

मृत्युमृत्यु शब्दार्थ निरूपण—ईश्वर का कल्याणकरत्व यही 'मृत्युमृत्यु' पद से कहा गया है ॥ १२ ॥

पदान्तरार्थस्य पूर्वप्रदर्शितत्वसूचनम्

महाविष्णुर्नृसिंहश्च पूर्वमेव प्रदर्शितौ ॥ १२ ॥

अन्य पदों का पूर्वप्रदर्शित्व कथन—महाविष्णु तथा नृसिंह इन दो शब्दों का अर्थ पहले कह आये हैं (द्र० ५४.४७.५०) ॥ १२ ॥

सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

उग्रव्रतप्रियं नित्यमुग्रव्रतपरार्चितम् ।
मलत्रयापरामृष्टं चिद्घनं पाशभेदिनम् ॥ १३ ॥
शिवं वदन्ति यं विष्णुं महान्तं पुरुषोत्तमम् ।

नमाम्यहं तमित्येवमर्थः पाशुपते स्मृतः ॥ १४ ॥

समुदित मन्त्र का अर्थ निरूपण—जिन्हें उग्रव्रत प्रिय है, जो उग्र व्रत करने वालों से अर्चित है, जो तीनों प्रकार के आणवादि मलों से अस्पृष्ट हैं और चिद्घन तथा पाश का भेदन करने वाले हैं, जिन्हें कोई शिव कहता है कोई विष्णु कहता है। कोई महान्, तो कोई पुरुषोत्तम कहता है हम उसे नमस्कार करते हैं। यही पाशुपतों के मत में उक्त मन्त्र का अर्थ है ॥ १३-१४ ॥

त्रय्यन्तमतानुसार्यर्थस्य पूर्वनिरूपितत्वसूचनम्

त्रय्यन्तपदवीवेद्यः पूर्वमेव निरूपितः।

वेदान्त मत द्वारा वर्णित मन्त्रार्थ का पूर्वसूचन—वेदान्तवेद्य मन्त्रार्थ हम पहले ही कह आये हैं (द्र० ५४.१७.३९) ॥ १५ ॥

सात्त्वतमतेन मन्त्रार्थनिरूपणम्

अर्थं सात्त्वतसंवेद्यमप्रमत्तोऽवधारय ॥ १५ ॥

सात्त्वतमत के मतानुसार मन्त्रार्थ निरूपण—हे नारद! अब सात्त्वत मत से जानने योग्य इस मन्त्र का अर्थ सुनिए ॥ १५ ॥

उग्रशब्दस्य सङ्कर्षणाख्यव्यूहपरत्वम्

उद्गिरत्यमलं शास्त्रमुद्गीर्य रमयत्यपि।
गिरत्यन्ते च तच्छास्त्रमुग्रः सङ्कर्षणः स्मृतः ॥ १६ ॥

उग्र शब्द का अर्थ—जो सर्वथा दोषरहित शास्त्र का प्रतिपादन करता है तथा उत्पन्न कर उसे विकसित करता है, अन्त में पुनः उसे अपने में समेट लेता है इसलिए 'उग्र' पद से सङ्कर्षण को कहा गया है ॥ १६ ॥

वीरशब्दस्य प्रद्युम्नाख्यव्यूहपरत्वम्

विना कृत्वा प्रेरयति रजसा तमसा त्रयीम्।
वीरां करोति तां विद्यां वैद्यमानवसर्गयोः ॥ १७ ॥
वीरयत्यपि चात्मानं तमोमधुनिघातने।
व्यापारयति शास्त्रार्थानुष्ठाने कर्म निर्मलम् ॥ १८ ॥
अतो वीरं वदन्त्याद्यं प्रद्युम्नं पुरुषोत्तमम्।

वीर शब्द का प्रद्युम्न नामक व्यूह परत्व अर्थ—जो वेद का कर्त्ता न होकर भी रजो गुण और तमोगुण से उसे प्रेरित करता है तथा वैदिक सृष्टि (सूर्य, अग्नि, आदि) एवं मनु सृष्टि की विद्या को प्रसारित करता है। मधु राक्षस को मारने के लिए अपने को तमोगुण से युक्त करता है तथा शास्त्रार्थ के अनुष्ठान के लिए जो निर्मल कर्म का व्याख्यान करता है। इसीलिए बुद्धिमानों ने आद्य, पुरुषोत्तम प्रद्युम्न को 'वीर' कहा है ॥ १७-१९ ॥

महाविष्णुशब्दस्यानिरुद्धाख्यव्यूहपरत्वम्

महान् भवति चेष्टाभिरनिरुद्धश्च सर्वतः ॥ १९ ॥

एकत्रिचतुरीहाभिस्ते पूर्वें मितवृत्तयः ।
कार्यस्य च मितत्वेन तेषां शक्तिर्निरोधिता ॥ २० ॥
आम्नायन्तेऽनिरुद्धे तु चेष्टाः सङ्ख्यानवर्जिताः ।
कार्याण्यपरिमेयानि सृष्टिस्थित्यादिकानि तु ॥ २१ ॥
शक्तिस्तद्विषया या तु या व्याप्तिर्विष्णुता च सा ।
सा चानिरुद्धता तस्य तुर्यव्यूहस्य शार्ङ्गिणः ॥ २२ ॥
महाविष्णुस्ततः प्रोक्तः सोऽनिरुद्धो विचक्षणैः ।

महाविष्णु शब्द का अनिरुद्ध व्यूह परम अर्थ—'जो चेष्टाओं से महान् है तथा सर्वत्र अनिरुद्ध (अप्रतिहत) है । पूर्व में कहे गए तीनों व्यूह, एक तीन एवं चार चेष्टाओं से मितवृत्ति (स्वल्प चेष्टा वाले) हैं, उनका कार्य मित (स्वल्प) है इसलिए उनकी शक्ति निरोध करने वाली है । असङ्ख्य चेष्टायें निरोध न रहने पर और तद्विषयक शक्ति तथा सर्वत्र व्याप्ति यही विष्णुता है । यह सब उस चतुर्व्यूह वाले विष्णु की अनिरुद्धता है । इसलिए विचक्षण लोगों ने उन अनिरुद्ध को महाविष्णु कहा है ॥ १९-२३ ॥

ज्वलच्छब्दस्य रामकृष्णादिविभवपरत्वम्

विकासो ज्वलनं प्रोक्तं तस्य ब्रह्माण्डमध्यतः ॥ २३ ॥
यद्वदन्त्यवतारं तु वैभवं हरिमेधसः ।

ज्वलच्छब्द का राम कृष्णादि विभव परक अर्थ—विकास ही ज्वलन कहा जाता है । उसका ब्रह्माण्ड मध्य में अवतार धारण करना ही विकास है । जो विष्णु का वैभव (ऐश्वर्य) है ॥ २३-२४ ॥

सर्वतोमुखशब्देनावताराणां सौलभ्यकाष्ठाभूमिभूतनानायोनित्वस्य बोधनम्

सर्वतोमुखशब्देन नानायोनिनिवेशनम् ॥ २४ ॥

सर्वतोमुख शब्द से उसके अवतारों का सुलभता से नाना योनि प्रवेश रूप अर्थ का कथन—'सर्वतोमुख' शब्द से उसका नाना योनियों में प्रवेश कहा गया है ॥ २४ ॥

भद्रशब्दस्यावतारदशायामपि हेयसम्बन्धराहित्यपरत्वम्

भद्रत्वं तत्र तस्यापि ह्यजहत्स्वस्वभावता ।

भद्र शब्द से अवतार लेने पर भी वह हेय(दोष)सम्बन्धरहिंत है ऐसा कथन—अवतार लेने पर भी वह अपने स्वभाव का त्याग नहीं करता और न हेय (दोष) सम्बन्ध को ग्रहण करता है यही भद्रशब्द से कहा गया है ॥ २५ ॥

भीषणशब्दस्य मोक्षप्रदत्वपरत्वम्

भियः संसारबन्धस्य सानं भीषणता मता ॥ २५ ॥
सा सप्रकारविज्ञानमात्रलभ्योपदिश्यते ।

भीषण शब्द का मोक्षप्रदत्वरूप अर्थ कथन—संसार रूप बन्धन का उच्छेद कर देना यही भीषणता है । वह भीषणता विशेषण विशिष्ट विशेष्य के ज्ञान से ही सम्भव है ।

इसलिए संसार रूपबन्धन को काटने वाला मोक्ष यही उस भीषण शब्द का अर्थ हुआ ।

विमर्श—सानम्—'षोऽन्तकर्मणि' इति धातुः ॥ २५-२६ ॥

मृत्युमृत्युशब्देन भद्रशब्दोदितस्य हेयप्रतिभटत्वस्य बोधनम्

हेयप्रत्यर्थिता या सा ब्रह्मणः सार्वकालिकी ॥ २६ ॥
स्वाभाविकी च सा प्रोक्ता मृत्युमृत्युपदेन तु ।

'मृत्युमृत्यु' शब्द से भद्रादि शब्द द्वारा कहा गया हेय प्रतिभटत्व मृत्यु का शत्रु रूप अर्थ बोधन—उस परब्रह्म विष्णु में हेय (मृत्यु) की प्रत्यर्थिता (विनाशक शक्ति या शत्रुता) सार्वकालिक तथा स्वाभाविक है । यही अर्थ 'मृत्युमृत्यु' पद से कहा गया है ॥ २६-२८ ॥

नृसिंहशब्दस्य द्विविधव्याप्तिपरत्वम्

नृनात्मनोऽनुबध्यान्तर्हित्वैनान् परितोऽपि च ॥ २७ ॥
या स्थितिस्तस्य देवस्य पुरुषोत्तमताह्वया ।
सोक्ता नृसिंहशब्देन सैषा वाक्यार्थ उच्यते ॥ २८ ॥

नृसिंह शब्द की दो रूपों से व्याप्तता का कथन—मनुष्यों को अपने अन्तःप्रदेश में बोधन कर पुनः उसे अलग होकर जो उनके चारों ओर स्थित रहता है इस प्रकार भीतर तथा बाहर से व्याप्त होना यही उस देव की नृसिंह शब्द से पुरुषोत्तमता कही गई है ॥ २७-२८ ॥

सङ्कर्षणादिरूपेण व्यूह्यात्मानं त्रिधा स्थितः ।
तत्तदाश्रितकार्याय यो विभुः सर्वतोमुखः ॥ २९ ॥
नानाविभवरूपेण ज्वलत्यन्तर्भवोदरे ।
एवं ज्वलन् भवत्येव भद्रो भद्रतरस्तथा ॥ ३० ॥
एवं विज्ञातमात्रो यो भीषणो बन्धनाशकृत् ।
मृत्योर्हेयस्वरूपस्य मृत्युः प्रतिभटो यतः ॥ ३१ ॥
तमहं व्यूहविभवविज्ञानसुलभं नृणाम् ।
अन्तर्बहिरिदं व्याप्य तिष्ठन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ ३२ ॥
नृसिंहं करणैः सर्वैरात्मत्वेनानुसन्दधे ।
इति सात्त्वतसिद्धार्थो लेशतस्ते निदर्शितः ॥ ३३ ॥
सूक्ष्मो नानाविधोऽर्थो यः परमद्य निशामय ।

समूचे मन्त्र का वाक्यार्थ कथन—जो अपने को सङ्कर्षण प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इन तीन रूपों से व्यूह बन कर स्थित है । अपने आश्रित (भक्तों) के तत्तत कार्यों के लिए जो विभु (व्यापक) रूपेण स्थित है वही सर्वतोमुख है । जो अपने अनेक विभवों से अपने संसार रूप उदर के भीतर जलता रहता है यही ज्वलन का अर्थ है । इस प्रकार जलते हुये भी जो भद्रतर (अत्यन्त कल्याणकारी) है वही भद्र शब्द का अर्थ है । जो इस प्रकार से विज्ञात मात्र होकर संसार के बन्धन का उच्छेद कर देता है वही भीषण कहा जाता है ।

अतः मृत्यु सबका हेय है । कोई नहीं चाहता कि हमारी मृत्यु हो उस मृत्यु का वह प्रतिभट (विनाशक या शत्रु) मोक्ष स्वरूप है । इस प्रकार मृत्युमृत्यु शब्द से कहा जाने वाला, व्यूहविभव मनुष्यों के लिए ज्ञानसुलभ, अन्तर तथा बाहर सर्वत्र व्यापक रूप से रहने वाले पुरुषोत्तम नृसिंह को अपना समझे तभी ज्ञानेन्द्रियों से ध्यान कर रहा हूँ । इस प्रकार सात्त्वत सिद्धान्त अर्थ लेश रूपेण मैंने आपसे कहा । यहाँ तक इस मन्त्र के सूक्ष्म नाना अर्थों का निरूपण किया अब पर अर्थ को सुनिए ॥ २९-३४ ॥

परार्थवर्णनि प्रथममुग्रपदस्य सङ्कर्षणाख्यव्यूहपरत्वकथनम्, तदुपपादनञ्च

अशेषभुवनाधारः संसारगदनाशनः ॥ ३४ ॥
उद्दाम उदयो विष्णोः सङ्कर्षणसमाह्वयः ।
उग्रवर्णैः समुद्दिष्टो वैष्णवः प्रथमोदयः ॥ ३५ ॥

परार्थ वर्णन के प्रसङ्ग से प्रथम उग्र शब्द का सङ्कर्षण नामक व्यूह निरूपण— अशेष भुवनों का आधार (रकार द्र० १७.२५), संसार रूप रोग का विनाशक (गकार द्र० १७.१३), उद्दाम या उदय (उकार द्र० १७.६) विष्णु के सङ्कर्षण नामक व्यूह को कहा जाता है । अतः उग्र शब्द से यहाँ विष्णु का प्रथम व्यूह सङ्कर्षण कहा गया ।

विमर्श—नारसिंहानुष्टुभ मन्त्र का परार्थवर्णन का अर्थ—मन्त्र में रहने वाले प्रत्येक वर्ण का अप्रमेयादि भाव एवं सिद्धव्यूह विभव प्रदर्शन करते हैं—उक्त मन्त्र में ११ पद हैं जिसमें अन्तिम 'अहं' पद प्रथमान्त एवं कर्त्ता कारक हैं । १०वाँ नमः पद उत्तम पुरुष नमन रूप क्रिया का वाचक है । अवशिष्ट नव पद नमन क्रिया के कर्म हैं यह हम पहले कह आयें हैं । इसमें आदि के तीन पद उग्र, वीर तथा महाविष्णु ये तीन, व्यूह त्रय का उपपादन करते हैं । शेष ज्वलत् आदि छः पद पञ्चमाध्याय वर्णित पद्मनाभादि, पाताल शयनान्त ३९ अवतार के वाचक हैं । उसे 'परमद्य निशामय' (३३ श्लोक) से शब्दों का अप्रमेयादि भाव (द्र० १७४-२९) जो सभी वर्णों को मिलाकर एक सौ पचास की सङ्ख्या में कहा गया है—प्रारम्भकर इस अध्याय के अन्त तक उग्र, वीर एवं महाविष्णु इन तीन शब्दों का व्यूह-त्रय अर्थ प्रतिपादन करते हैं । शेष छः पदों का ३९ अवतार (जो पञ्चम अध्याय के ५०-५६ श्लोक तक कहे गए हैं) परक अर्थ विस्तृत होने के कारण अगले अध्याय में कहेंगे ॥ ३४-३५ ॥

तिलकालकवद्यस्मात् तत्र विश्वं प्रकाशते ।
दिव्यशास्त्रोपदेशेन गदं ध्वंसयते यतः ॥ ३६ ॥
उद्दामः सोऽप्रतिहतो विष्णोरुदय उज्ज्वलः ।
अत उग्रपदोद्दिष्टो देवः सङ्कर्षणः प्रभुः ॥ ३७ ॥

उग्र के अर्थ का उपपादन—यतः समस्त विश्व उसमें काले तिल के समान प्रकाशित रहता है, वह रकार जो दिव्य शास्त्रों के उपदेश द्वारा संसार रूप (रोग) का विनाश करता है, वह गकार तथा जो विष्णु का उद्दाम एवं उज्ज्वल उदय है, वह उकार है । इसलिए यहाँ वही उग्र पद द्वारा सङ्कर्षण प्रभु कहे गए हैं ।

विमर्श—यहाँ अर्थ र.ग.उ इस प्रकार संहार क्रम से कहा गया है ॥ ३६-३७ ॥

वीरपदेन प्रद्युम्नव्यूहस्य प्रतिपादनम्, तदुपपादनञ्च

अमृताधाररूपश्च मायावांश्च ततोऽनलः ।
प्रद्युम्नो वीरशब्देन गदितः पुष्करेक्षणः ॥ ३८ ॥

वीर पद से प्रद्युम्न रूप व्यूह का प्रतिपादन—अमृताधार (वकार द्र० १७.२६), तदनन्तर (ईकार द्र० १७.५), तदनन्तर मायावान् अनल (रकार द्र० १७.२५), इन तीनों (वर्णों) से कमल नेत्र प्रद्युम्न व्यूह कहे गए हैं ।

विमर्श—वीर में वकार ईकार, रेफ ये तीन वर्ण विभाग हैं ॥ ३८ ॥

अमृतं भगवद्धर्मस्तस्याधारः समाश्रयः ।

उस प्रद्युम्न व्यूह का उपपादन—अमृत भगवद्धर्म को कहते हैं उसके आधार (समाश्रय) अर्थात् प्रद्युम्न हैं, वही अमृताधार हैं । इस प्रकार दूसरे व्यूह प्रद्युम्न का उपपादन वीरशब्द से किया गया ॥ ३९ ॥

सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

सद्धर्मस्य ह्यधिष्ठाता प्रद्युम्नो धर्मसंश्रयः ॥ ३९ ॥
माया ज्ञानं यतो विद्यां सम्बोधयति मायया ।
दहत्यनलवच्चैव विद्यादोषं तमोमयम् ॥ ४० ॥
वीरवर्णैरतो देवः प्रद्युम्नः परिकीर्त्यते ।

समुदित वाक्यार्थ का निरूपण—अमृतरूप सद्धर्म के अधिष्ठाता प्रद्युम्न धर्म के आश्रय हैं यतः वह (वकार) एवं माया (ईकार) से माया अथवा ज्ञान का उपदेश करते हैं, जिससे विद्या उत्पन्न हुई है । अतः वह ज्ञान विद्या के दोषों को अनल के समान नाश करता है । इस प्रकार वीर शब्द से प्रद्युम्न का बोध होता है ॥ ३९-४१ ॥

महाविष्णुशब्देनानिरुद्धव्यूहस्य सङ्कीर्तनम्, तदुपपादनञ्च

कालः प्रधानमाधारस्तयोः प्राणः सदाभवत् ॥ ४१ ॥
गोपनश्च तयोर्नित्यं वृण्वानः सकला गतीः ।
एधयन् मानवं गर्भं तत्तत्संवत्सरैः क्रमात् ॥ ४२ ॥
अग्निरूपो जगत्यस्मिन् भास्करश्च स्वयं भवन् ।
भुवनाभयदश्चैव वैकुण्ठोऽविहतं जगत् ॥ ४३ ॥
शासिता स्वयमध्यक्षो महाविष्णुर्विवर्णितः ।

महाविष्णु शब्द से अनिरुद्ध व्यूह का सङ्कीर्तन—काल और प्रधान (मकार द्र० १७.२४) इन्हें सृष्टि का आधार कहा जाता है । उससे सदैव प्राण (हकार द्र० १७.२८) उत्पन्न हुआ है । वही प्राण सम्पूर्ण गतियों को (वृण्वानः वकार द्र० १७.२६) आच्छादित कर उनका गोपन (=आकार) करता है । जो उन-उन संवत्सरों से मानवगर्भ को बढ़ाते हुये (एधयन् इकार द्र० १७.७.५) भास्कर बन कर अग्नि रूप में प्रगट हुआ

है । जो (अग्निरूप: षकार द्र० १७.२७) सारे भुवनों को अभय प्रदान करता है (अभयद: णकार द्र० १७.१९) और जो बैकुण्ठ है (द्र० बैकुण्ठ: १७.१९) । जिससे जगत् निरन्तर स्थित है, जो जगत् का शासन करता है और स्वयं अध्यक्ष है णकार (द्र० १७.१९) । यही महाविष्णु पद के प्रत्येक वर्ण मकार, हकार-वकार, इकार, षकार तथा णु का अर्थ हुआ ॥ ४१-४४ ॥

पुष्करं कालरूपेण धत्ते नाभिसमुद्भवम् ॥ ४४ ॥
अन्तःस्थपुरुषं चैव प्रधानं तद्गतं दधत् ।
कालप्रधानशब्दाभ्यामभेदेनाभिधीयते ॥ ४५ ॥
प्राणयन् कालतः सांख्यकालजीवत्रयीत्रयम् ।
प्राणवर्णेन निर्दिष्टो गोपनो गोपनाख्यया ॥ ४६ ॥

इसका वर्ण सङ्केत की युक्ति से उपपादन—जो काल रूप (मकार) से अपनी नाभि में उत्पन्न होने वाले पुष्कर (कमल) तथा अन्तःस्थ पुरुष (ब्रह्मा) और उसमें होने वाले प्रधान (मकार के दूसरे अर्थ) को धारण करते हुये काल तथा प्रधान इन दो शब्दों से अभेद द्वारा कहा जाता है । जो ज्ञान, काल तथा जीव इन त्रयी के तीनों रूपों को काल रूप से अनुप्राणित करता हुआ प्राण वर्ण (ह) से कहा जाता है । गोपन (= आकार) वर्ण से जो सबका गोपन करता है ॥ ४४-४६ ॥

कार्याणि गतयः प्रोक्तास्ताश्च वृण्वंश्चिकीर्षया ।
उक्तो वरुणवर्णेन सा हि तस्यानिरुद्धता ॥ ४७ ॥
गर्भं कालस्थविद्यायां जीवमन्वष्टकात्मकम् ।
पुष्णन्नब्दसहस्रेण देव इद्धार्णवर्णितः ॥ ४८ ॥
अग्निसूर्यादिके चैव देवसर्गे हि वैद्यके ।
तत्तद्देवप्रवेशेन तत्तन्नाम दधत् स्वयम् ॥ ४९ ॥
अग्निभास्करवर्णेन स्वयं देव उदीर्यते ।

कार्य को गति कहा जाता है । उस गति को जो अपनी चिकीर्षा से (वृण्वन् वकार) आच्छादित करता है यही उसकी अनिरुद्धता है । यह वरुण (वकार द्र० १७.२६) शब्द का अर्थ है । जो कालस्थ विद्या में अन्वष्टक जीव रूप गर्भ को एक हजार वर्ष पर्यन्त पोषित करता है वही इद्ध वर्ण (इकार) का अर्थ है । अग्निसूर्यादि ये वैद्यक में देव सर्ग से कहे गए हैं, उसमें जो प्रकाश द्वारा प्रविष्ट हो कर उन-उन सत्ताओं को स्वयं धारण करता है । इस प्रकार अग्नि भास्कर वर्ण (षकार द्र० १७.२७) से स्वयं देव विष्णु कहे जाते हैं ॥ ४७-५० ॥

कालाद्यवनिपर्यन्तं चेतनाचेतनात्मकम् ॥ ५० ॥
भुवनार्णोदितं यत् तद् भुवनाङ्गविचित्रितम् ।
तस्य दुष्टनिबर्हेण यो ददात्यभयं सदा ॥ ५१ ॥
यश्चाविहत एवासीत् तत्तत्कार्यसमुद्यमे ।

अनुप्रविश्य भूतानि योऽध्यक्षः सन्नियच्छति ॥ ५२ ॥

काल से लेकर अवनिपर्यन्त यावत् चेतना-चेतनात्मक भुवन, जो शब्दों के वाच्य का विषय है तथा भुवनाङ्ग होने से विचित्र है, उस भुवन को, जो दुष्टों से रक्षा कर, अभय (णकार द्र० १७.३९) दान देता है, अथवा जो प्राणियों में प्रविष्ट होकर तत्तत्कार्य में अप्रतिहत है और अध्यक्ष (णकार १७.१९) बन कर उस भुवन का नियमन करता है ॥ ५०-५२ ॥

ऐषोऽभयदवैकुण्ठशास्तृवर्णेन वर्ण्यते ।
इति व्यूहाः समुद्दिष्टा उग्रादित्रितयेन तु ।
ज्वलदादिनिरूप्योऽर्थो ह्यतः परमुदीर्यते ॥ ५३ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३५८६ ॥

*

इतना णकार से कहे गए अभयद, बैकुण्ठ तथा शास्ता (अध्यक्ष) पद से अर्थ का निरूपण किया गया । यहाँ तक उग्र, वीर तथा महाविष्णु शब्दों से हमने तीनों व्यूहों का वर्णन किया । अब इसके बाद 'ज्वलन्तम्' आदि द्वितीयान्त पदों का परार्थ निरूपण कर रहे हैं ॥ ५३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थ निरूपण नामक पचपनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आतमज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५५ ॥

*

अथ षट्पञ्चाशोऽध्यायः

नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरा एक बार ध्यान करने से अनेक करोड़ों जन्मों के पाप समूहों को नष्ट कर देता है, हम उस सुदर्शन चक्र के दिव्य तेजोमय स्वरूप का ध्यान करते हैं ।

ज्वलदादिपदानां पद्मनाभाद्येकोनचत्वारिंशदवतारपरत्ववर्णनम्

अहिर्बुध्न्यः—

वैभवं देवताचक्रं ज्वलदाद्यर्णवर्णितम् ।
यथा तद्वर्ण्यते तैस्तैस्तथा तदवधारय ॥ १ ॥

'ज्वलन्तं' आदि पदों से पद्मनाभादि ३९ अवतारों का प्रतिपादन—अहिर्बुध्न्य ने कहा—हे नारद ! ज्वलदादि पदों से जिस प्रकार विभवात्मक देवताचक्र (द्र०५.५०-५६) का तत्तच्छास्त्रों द्वारा प्रतिपादन किया गया है, उसे सुनिए ॥ १ ॥

ज्वलत्पदविवक्षितेष्वेकादशस्ववतारेषु जकारस्य पद्मनाभाख्यप्रथमावतारपरत्वम्

अवतारो हि यो विष्णोः पद्मनाभो महोदयः ।
अजितः कुत्रचित् कैश्चित् सोऽजितार्णेन वर्ण्यते ॥ २ ॥

सर्वप्रथम 'ज्वलत्' इस शब्द से विवक्षित एकादश अवतारों में जकार द्वारा पद्मनाभ नामक प्रथमावतार का उपपादन—विष्णु का महान् अभ्युदय कारक जो पद्मनाभ अवतार है, जिसे कुछ लोग अजित भी कहते हैं वही अजित (जकार द्र० १७.१५) वर्ण से कहा गया है ।

विमर्श—'ज्वलन्तम्' इस पद में तत्तदवतारपरक वर्णों के विभाग का क्रम इस प्रकार है—जकार (१) वकार (२) वकारोत्तरवर्त्ती अकार (३) लकार (४) पुनः लकार (५) पुनः लकार (६) नकार (७) तकार (८) पुनः लकार (९) पुनः तकार (१०) अम्प्रत्ययवर्त्ती मकार (११) । इन ११ वर्णों से ११ अवतारों का वर्णन कहा गया है ॥ २ ॥

वकारस्य कान्तात्मामृतधारकाख्यविंशावतारपरत्वम्

अमृताधारवर्णेन कान्तात्मामृतधारकः ।

वकार से कान्तात्मक तथा अमृतधारक (द्र० ५.५३) नामक बीसवें अवतार का कथन—अमृताधार (वकार द्र० १७.२६) वर्ण से कान्तामृतधारक नामक बीसवें अवतार को कहा गया है ॥ ३ ॥

वकारोत्तराकारस्यैकाम्भोनिधिशाय्याख्यचतुर्दशावतारपरत्वम्

तत्रैवार्णवशायी च वरुणस्थाप्रमेयतः ॥ ३ ॥

वकारोत्तरवर्त्ती अकार से 'अम्भोनिधिशायी (द्र० ५.५२) नामक १४वें अवतार का कथन—वरुण (वकार) में रहने वाला अप्रमेय (अकार) अर्णवशायी नाम का अवतार का प्रतिपादन करता है ॥ ३ ॥

लकारस्य शक्त्यात्माख्यचतुर्थावतारपरत्वम्

धरेशेन तु शक्तीशो धरा शक्तिर्हि वैष्णवी ।

लकार से शक्ति (द्र० ५.५०) नामक चतुर्थ अवतार का कथन—धरेश (लकार द्र० १७.२५) वर्ण से शक्तीश अवतार कहा गया है उनकी वैष्णवी शक्ति ही धरा पद से अभिहित होती है ॥ ४ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन हरिकृष्णाख्यत्रयस्त्रिंश-चतुस्त्रिंशावतारद्वयपरत्वम्

विबुधो हरिरुद्दिष्टः कृष्णस्तु पुरुषेश्वरः ॥ ४ ॥
विबुधाख्येन वर्णेन वर्ण्यते पुरुषेश्वरः ।
तावुभौ कथितौ देवौ नरनारायणात्मकौ ॥ ५ ॥

वही लकार हरि और कृष्ण इन तैंतीसवें तथा चौतीसवें अवतार का प्रतिपादक है—विबुध (लकार द्र० १७.२५) से हरि अवतार और पुरुषेश्वर कृष्ण (द्र० ५.५५) अवतार कहे गए हैं। वही दोनों नर नारायण नाम से भी विख्यात हैं ॥ ४-५ ॥

नकारस्य धर्माख्यद्वादशावतारपरत्वम्

स्वर्गापवर्गयोः पन्था यो हि धर्मः सनातनः ।
स धरेशोत्तरेणैव पथा देव उदीर्यते ॥ ६ ॥

नकार से धर्म (द्र०५.५१) रूप दशम अवतार का कथन—स्वर्ग तथा अपवर्ग का जो सनातन सिद्ध मार्ग है वे धरेश अवतार नकार सहित अकार से कहे जाते हैं ॥ ६ ॥

तकारस्यानन्ताख्यतृतीयावतारपरत्वम्

ताललक्ष्मा हि भगवान् योऽनन्तः परिपठ्यते ।
स देवो धरणीधर्ता कथ्यते ताललक्ष्मणा ॥ ७ ॥

तकार से अनन्त (द्र० ५.५०) नामक तीसरे अवतार का कथन—ताललक्ष्मा

(तकार द्र० १७.१९) भगवान् अनन्त नाम से भी कहे जाते हैं। इस प्रकारताललक्ष्म (तकार) वर्ण से पृथ्वी धारण करने वाले अनन्त कहे जाते हैं ॥ ७ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन कूर्मविद्याधिदेवाख्यपञ्चदशषष्ठावतारद्वयपरत्वम्

लोकमालाः स्रजः प्रोक्ताः स्रग्धरः कूर्म उच्यते।
विराड् विद्योदिता सद्भिर्वैराजश्च तदीश्वरः ॥ ८ ॥
वैराजस्रग्धराख्येन तौ देवौ परिकीर्तितौ।

वही तकार कूर्म विद्याधिदेव नामक १५ वें तथा छठवें (द्र० ५.५२.५०) अवतार को भी कहता है ऐसा उपपादन—लोकमाला को स्रज् कहते हैं और उसे धारण करने वाला स्रग्धर कूर्म अवतार कहा जाता है यह तकार का प्रथम अर्थ है (द्र० १७.१९)। अब द्वितीय विराज अर्थ वाले (द्र० १७.१९) तकार का अर्थ कहते हैं—सज्जनों ने विराट् को विद्या कहा है और विराज उसका ईश्वर है। यही विराज तकार का दूसरा अर्थ है। इस प्रकार वैराज और स्रग्धर दो संज्ञाओं वाले तकार वर्ण से कूर्म और विद्याधिदेव अवतार कहा गया है ॥ ८-९ ॥

अम्प्रत्ययावयवयोरकारमकारयोः कालनेमिघ्नाख्यद्वाविंशावतारपरत्वम्

अप्रमेयनिगीर्णेन कालेन पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥
उच्यते कालनेमिघ्नो यः कालः स दुरासदः।

अम् प्रत्ययावयव अकारोत्तरवर्ती मकार द्वारा कालनेमिघ्न (द्र० ५.५३) नामक बाइसवें अवतार का प्रतिपादन—अप्रमेय अकार (द्र० १७.४) से संयुक्त काल वर्ण (मकार द्र० १७.२४) से (अम् प्रत्यय) कालनेमिघ्न नामक पुरुषोत्तम कहे गए हैं क्योंकि काल बड़ा दुर्द्धर्ष है तथा पुरुषोत्तम को छोड़ कर उस काल का और कोई वधकर्त्ता नहीं हो सकता ॥ ९-१० ॥

सर्वतोमुखशब्दविवक्षितेषु दशस्ववतारेसु सकारस्य पीयूषहरणाख्याष्टादशावतारपरत्वम्

अप्रमेयसमाक्रान्तममृताक्षरमुत्तमम् ॥ १० ॥
अमृताहरणं वक्ति पुरुषं पुष्करेक्षणम्।

सर्वतोमुख शब्द से विवक्षित दशावतारों में सकार द्वारा पीयूषहरण नामक अठारहवें (द्र० ५.५२) अवतार का प्रतिपादन—अप्रमेय अकार संयुक्त अमृताक्षर (सकार द्र० १७.२७) अमृत का आहरण करने वाले कमलनेत्र विष्णु को कहता है। यह सकार का प्रथम अर्थ है।

विमर्श—सर्वतोमुख शब्द में दश वर्ण का विभाग इस प्रकार किया गया है—(१) सकार, (२) पुनः सकार, (३) रेफ सहित वकार, (४) पुनः अकार शिरस्क वकार, (५) तकार, (६) ओकार, (७) पुनः ओकार, (८) पुनः मकार शिरस्क ओकार, (९) उकारपूर्वक मकार शिरस्क खकार (१०) पुनः खकार ॥ १०-११ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन श्रीपत्याख्यैकोनविंशावतारपरत्वम्

अप्रमेयसमाक्रान्ता सैव तृप्तिः सनातनी ॥ ११ ॥
श्रीपतिं वक्ति देवेशं श्रीः सा तृप्तिरुदीरिता।

पुनः उसी सकार से श्रीपति नामक (द्र० ५.५३) उन्नीसवें अवतार का कथन—अप्रमेय (अकार) से समाक्रान्त तृप्ति (सकार द्र० १७.२७) सनातनी है जो श्रीपति को कहती है क्योंकि श्री को ही तृप्ति कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

सरेफस्य वकारस्य वराहाख्यषोडशावतारपरत्वम्

अशेषभुवनाधारवराहसमुदायतः ॥ १२ ॥
अशेषभुवनाधारो वराहः परिगीयते ।

रेफ युक्त वकार से वराह नामक सोलहवें अवतार का कथन—अशेषभुवनाधार रेफ (द्र० १७.२५) उससे संयुक्त वराह वकार (द्र० १७२६) शब्द से अशेषभुवनाधार वराहावतार कहा गया है ॥ १२-१३ ॥

अकारशिरस्कस्य तस्यैव वकारस्य संज्ञान्तरमुखेन पातालशयनाख्यैकोनचत्वारिंशावतारपरत्वम्

अप्रमेयसमाक्रान्ताद्वरुणादेव चाक्षरात् ॥ १३ ॥
पातालशायी भगवान् देवदेवो निरुच्यते ।

अकार संयुक्त वकार द्वारा संज्ञान्तर से पातालशयन (द्र० ५.२६) नामक उन्तालिसवें अवतार का प्रतिपादन—अप्रमेय (अकार) से संयुक्त वरुण (वकार द्र० १७.२६) अक्षर से पातालशायी भगवान् विष्णु कहे गए हैं ॥ १३-१४ ॥

तकारस्य वागीश्वराख्यत्रयोदशावतारपरत्वम्

स्रग्वाक् प्रोक्ता मुनीन्द्रैः सा सृजती दधती जगत् ॥ १४ ॥
वागीशः स्रग्धरार्णेन द्वितीयेन निरुच्यते ।

तकार द्वारा वागीश्वर नामक (द्र० ५.२१) तेरहवें अवतार का प्रतिपादन—मुनीन्द्रों ने स्रग्धर पद का अर्थ वाणी किया है क्योंकि वही जगत् का सर्जन करती है और उसे धारण भी करती है इसलिए उसे धारण करने के कारण स्रग्धर (तकार द्र० १७.१९) वर्ण से वागीश नामक अवतार का प्रतिपादन है ॥ १४-१५ ॥

ओकारस्य त्रिविक्रमाख्यत्रिंशावतारपरत्वम्

यः स देवो बलेर्नेता पृथिवीं त्रिर्विचक्रमे ॥ १५ ॥
हरिर्विक्रमिणा तेन वर्णेन परिगीयते ।

ओकार द्वारा त्रिविक्रम नामक (द्र० ५.५५) तीसवें अवतार का प्रतिपादन—जो भगवान् बलि से पृथ्वी को ग्रहण करने के लिए तीन पद से उसे नापने वाले हैं वह हरिः विक्रमी (ओंकार द्र० ५.१०) वर्ण से कहे गए हैं ॥ १५-१६ ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन विश्वरूपाख्याष्टमावतारपरत्वम्

ओतो देवो हि यो विश्वं रूपेण स्वेन दीव्यता ॥ १६ ॥
विश्वरूपः स देवोऽसावोतदेवेन वर्ण्यते ।

उसी ओकार द्वारा दूसरी संज्ञा से विश्वरूप नामक (द्र० ५.५१) आठवें अवतार का

प्रतिपादन—जो देव अपने दिव्य स्वरूप से इस विश्व में ओतप्रोत हैं वही विश्वरूप देव ओतदेव (ओंकार वर्ण द्र० १७.१०) वर्ण से कहा गया है ॥ १६-१७ ॥

तस्यैव मकारशिरस्कस्य संज्ञान्तरमुखेन बडबावक्त्राख्यैकादशावतारपरत्वम्, तदुपपादनञ्च

ओदनेन समाक्रान्तो मर्दनो वर्ण उत्तरः ॥ १७ ॥
वक्त्यौर्वं बडवावक्त्रं देवदेवं जलाशनम् ।

मकार शिरस्क उसी ओकार वर्ण से संज्ञान्तर द्वारा बड़वा वक्त्र नामक (द्र० ५.५१) ग्यारहवें अवतार का कथन—ओदन (ओकार द्र० १७.१०) से समाक्रान्त उसके उत्तर में रहने वाले मर्दन (मकार द्र० १७.२४) वर्ण जल को पीने वाले देवाधिदेव बड़वावक्त्र और्व को कहते हैं ॥ १७-१८ ॥

ओदनं जलमुद्दिष्टमोदनस्य प्रसूर्यतः ॥ १८ ॥
जलं मृद्नन् स पानेन देव ओदनमर्दनः ।

और्व पद का उपपादन—ओदन पद जल का वाचक है वह जल सबका प्रसू (उत्पन्न करने वाला) है । उस जल को पीकर जो उसका विनाश करता है वही देव ओदन मर्दन (ओकार मकार पद) हैं ॥ १८-१९ ॥

उकारपूर्वकस्य मकारशिरस्कस्य खकारस्य वामनदेहाख्यैकोनत्रिंशावतारपरत्वम्, तदुपपादनञ्च

खर्वदेहो हि यो वर्णः सोद्दामोदयमर्दनः ॥ १९ ॥
वामनं वक्ति सुव्यक्तं याचितारं बलिं भुवम् ।

उकारपूर्वक मकार शिरस्क खकार (मुख) शब्द से वामन देह नामक (द्र० ५.२५) उन्तीसवें अवतार का प्रतिपादन—खर्वदेह (खकार द्र० १७.१२) तथा सोद्दाम उदय मर्दन (मु द्र० १७.२४) से कहा जाने वाला मुख शब्द स्पष्ट रूप से बलि से याचना करने वाले वामनदेह रूप अवतार का प्रतिपादक है ॥ १९-२० ॥

उद्दाममुदयं व्याप्तिं स हि मृद्नाति वामनः ॥ २० ॥

जिन्होंने बलि से याचना की थी उसका उपपादन—उद्दाम, उदय तथा व्याप्ति को कहता है वह वामन उसका विनाश करते हैं ॥ २० ॥

तस्यैव संज्ञान्तरमुखेन वेदविदाख्यसप्तत्रिंशावतारपरत्वम्

स एव वर्णो वेदात्मा वक्ति वेदविदं हरिम् ।

वही मुख शब्द संज्ञान्तर से 'वेदविद्' नामक तीसवें अवतार को कहता है इसका प्रतिपादन—वही वर्ण वेदात्मा वेदविद् (द्र० ५.५६) हरि को कहता है ॥ २१ ॥

नृसिंहशब्दविवक्षितेषु नवस्ववतारेषु नकारस्य नरनारायणाख्यैकत्रिंशद्द्वात्रिंशावतारद्वयपरत्वम्

नरो नारायणश्चैव नरनारायणाक्षरात् ॥ २१ ॥

नृसिंह शब्द से विवक्षित नव अवतारों में नकार का नरनारायण नामक (द्र० ५.५५) इकतीसवें एवं बत्तीसवें अवतार का प्रतिपादन करता है—नर नारायण नामक अक्षर (नकार द्र० १७.२१) से नर एवं नारायण दो अवतार कहे गए हैं।

विमर्श—नृसिंह शब्द के वर्णों के विभाग का क्रम इस प्रकार है—नकार, पुनः नकार, ऋकार, मकार-नकार ऋकार सकार। रूप वर्णचतुष्टय, इकार, पुनः इकार, ङकार, हकार, प्रत्ययावयव मकार इस प्रकार नृसिंह शब्दावयव नव वर्णों से नरनारायणादि अवतार नवक का कथन है ॥ २१ ॥

ऋकारस्य पारिजातहरणाख्यत्रयोविंशावतारपरत्वम्

सत्या यस्य स सत्योऽसौ पारिजातहरो महान्।
स सत्यार्णेन कथितः सत्यामङ्कस्थितां वहन्॥ २२ ॥

ऋकार से पारिजातहरण (द्र० ५.५३) नामक तेइसवें अवतार का प्रतिपादन—सत्या (सत्यभामा) के पति सत्य जिन्होंने सत्यभामा को अपनी गोद में लेकर पारिजात का हरण किया था। यहाँ वही पारिजात हरण सत्य नामक वर्ण (ऋकार द्र० १७.७) से कहे गए हैं ॥ २२ ॥

मकारनकारऋकारसकाररूपवर्णचतुष्टयसमुदायस्य राहुजिदाख्यैकविंशावतारपरत्वम्

खर्वदेहात् परो यो हि मर्दनः सहितः पथा।
अङ्कुशस्तत्परः सोम इति वर्णचतुष्टयात्॥ २३ ॥
सोमस्य चरतो मार्गाद्योऽङ्कुशो राहुरुच्यते।
तं मर्दयति यो देवो राहुजित् स निरुच्यते॥ २४ ॥

श्लोक के पूर्वार्ध में आये हुये 'मुखम्' शब्द के खकार के बाद माला मकार, नृसिंह शब्द के नकार, ऋकार तथा सकार इन वर्ण चतुष्टय से प्रतिपादित राहुजित् नामक (द्र० ५.५३) इक्कीसवें अवतार का प्रतिपादन—खर्वदेह (खकार), उससे परे रहने वाला मर्दन (मकार द्र० १७.२४) उसके सहित अङ्कुश वर्ण (ऋकार १७.७), उसके परे जो सोम वर्ण (सकार १७.२७) अर्थात् मकार नकार ऋकार और सकार इन चार वर्णों से चलते हुये चन्द्रमा के मार्ग में आ जाने वाले 'राहु' का जो चक्रधारी देव मर्दन करते हैं वही राहुजित् कहे गए हैं ॥ २३-२४ ॥

इकारस्य परशुरामश्रीरामाख्यपञ्चत्रिंशषट्त्रिंशावतारद्वयपरत्वम्

रामद्वयं समुद्दिष्टं रामवर्णेन नारद।

इकार से परशुराम एवं श्रीराम नामक (द्र० ५.५६) दो अवतारों का प्रतिपादन—हे नारद! रामवर्ण (द्र० इकार १७.५) से रामावतार एवं परशुरामावतार दोनों राम का प्रतिपादन है ॥ २५ ॥

ङकारस्य क्रोडात्माख्यदशमावतारपरत्वम्

एकदंष्ट्रेण भगवान् क्रोडात्मा परिगीयते॥ २५ ॥

ङकार द्वारा क्रोडात्मा नामक (द्र० ५.५१) दशम अवतार का प्रतिपादन—एक दंष्ट्र (ङकार द्र० १७.१४) से क्रोडात्मा नामक भगवान् कहे गए हैं ॥ २५ ॥

हकारस्य विहङ्गमाख्यनवमावतारपरत्वम्

सूर्येण यः सहायाति हंसरूपी जनार्दनः ।
विहङ्गमः स देवेशः सूर्यवर्णेन वर्ण्यते ॥ २६ ॥

'हकार' से विहङ्गम नामक नवें अवतार का कथन—हंस रूपी जनार्दन जो सूर्य (द्र० १७.२८) के साथ चलते हैं वही विहङ्गम देवेश हकार द्वारा कहे गए हैं ॥ २६ ॥

प्रत्ययावयवस्य मकारस्य कल्क्याख्याष्टात्रिंशावतारपरत्वम्

यो मर्दयति कल्क्याख्यो दस्यूंस्तिष्ययुगान्तजान् ।
सूर्योपरिस्थितेनैव मर्दनेन स गीयते ॥ २७ ॥

'नृसिंहम्' शब्द में अम् प्रत्ययावयव मकार से कल्की नामक (द्र० ५.५६) अड़तीसवें अवतार का प्रतिपादन—जो कल्कि अवतार कलियुग के अन्त में उत्पन्न होंगे वे दस्युओं का मर्द्दन करते हैं, वही सूर्य (हकार द्र० १७.२८) के ऊपर रहने वाले मर्द्दन (मकार द्र० १७.२४) से वर्णन किया गया है ॥ २७ ॥

भीषणशब्दविवक्षितेषु चतुर्ष्ववतारेषु भकारस्य ध्रुवाख्यद्वितीयावतारपरत्वम्

ध्रुवो देवः समुद्दिष्टो ध्रुवार्णेन महामुने ।

भीषण शब्द से विवक्षित चार अवतारों में भकार से ध्रुव (द्र० ५.५०) नामक द्वितीय अवतार का प्रतिपादन—भीषण पद में वर्ण विभाग इस प्रकार है—भकार, ईकार, षकार और णकार । इन चार वर्णों से क्रमशः ध्रुव, न्यग्रोधशायी नरसिंह एवं मधुसूदन इन चार अवतारों का प्रतिपादन किया गया है— हे महामुने ! ध्रुव अक्षर (भकार द्र० १७.२३) से ध्रुवदेव का प्रतिपादन है ॥ २८ ॥

ईकारस्य न्यग्रोधशायिसंज्ञकसप्तविंशावतारपरत्वम्

मायामयं समास्थाय न्यग्रोधदलमुज्ज्वलम् ॥ २८ ॥
यः शेते कान्तरूपेण स मायावर्णवर्णितः ।

ईकार से न्यग्रोधशायी नामक (द्र० ५.५४) सत्ताइसवें अवतार का प्रतिपादन—जो मायामय उज्ज्वल न्यग्रोध पर स्थित हो शयन करते हैं वे न्यग्रोधशायी भगवान् मायावर्ण (ईकार द्र० १७.५) से कहे गए हैं ॥ २८-२९ ॥

षकारस्य नरसिंहाख्यसप्तदशावतारपरत्वम्

नृसिंहो देवदेवस्तु नृसिंहार्णेन वर्ण्यते ॥ २९ ॥

षकार द्वारा नरसिंह नामक (द्र० ५.५२) सत्रहवें अवतार का प्रतिपादन—देवाधिदेव नृसिंह नृसिंह वर्ण (षकार द्र० १७.२७) से प्रतिपादन किये गए हैं ॥ २९ ॥

णकारस्य मधुसूदनाख्यपञ्चमावतारपरत्वम्

मधुं निहत्य यः पूर्वं प्रधानं मर्दनं विधेः ।

स्वबाहुबलमास्थाय विरिञ्चायाभयं ददौ ॥ ३० ॥
देवो ह्यभयदार्णेन स उक्तो मधुसूदनः ।

णकार द्वारा मधुसूदन नामक (द्र० ५.५०) पाँचवें अवतार का प्रतिपादन—जिन्होंने ब्रह्मदेव का मर्दन करने वाले प्रधान मधु नामक दैत्य को मार कर अपने बाहुबल से उन्हें अभयदान दिया वे ही मधुसूदन देव अभयवर्ण (द्र० णकार १७.१९) से कहे गए हैं ॥ ३०-३१ ॥

भद्रशब्दविवक्षितेषु त्रिष्ववतारेषु भकारस्य कपिलाख्य-सप्तमावतारपरत्वम्

सिद्धिं ददाति यो दिव्यां प्रसङ्ख्यानमयीं पराम् ॥ ३१ ॥
देवः सिद्धिप्रदार्णेन कपिलः स निगद्यते ।

भद्रशब्द से विवक्षित तीन अवतारों में भकार द्वारा कपिल नामक (द्र० ५.५१) सातवें अवतार का प्रतिपादन—जो सर्वोत्कृष्ट सांख्यतत्त्व प्रतिपादित तत्त्वों द्वारा सिद्धिप्रदान करते हैं । वही कपिल नामक देव सिद्धि नामक वर्ण (भकार द्र० १७.१९) से कहे गए हैं ।

विमर्श—भद्रशब्द में भकार, दकार और रेफ ये तीन वर्ण विभक्त रूप से कहे गए हैं । जिनसे क्रमशः कपिल, दत्तात्रेय और शान्तात्मा नामक तीन विष्णू के अवतार विवक्षित हैं ॥ ३१-३२ ॥

दकारस्य दत्तात्रेयाख्यषड्विंशावतारपरत्वम्

दत्तात्रेयस्तु भगवान् दत्तात्रेयार्णवर्णितः ॥ ३२ ॥

दकार से दत्तात्रेय नामक (द्र० ५.५४) छब्बीसवें अवतार का प्रतिपादन—दत्तात्रेय भगवान्, दत्तात्रेय वर्ण (दकार द्र० १७.२०) से वर्णित हैं ॥ ३२ ॥

रेफस्य शान्तात्माख्यपञ्चविंशावतारपरत्वम्

दोषकालानलत्वेन तद्वर्णेन स ईर्यते ।

रेफ से शान्तात्मा नामक (द्र० ५.५४) पच्चीसवें अवतार का प्रतिपादन—यतः शान्तात्मा, दोष और काल के लिए अग्नि है अतः अनल शब्द (रेफ द्र० १७.२५) से उन्हीं का प्रतिपादन हैं ॥ ३३ ॥

मृत्युमृत्युशब्दविवक्षितेऽवतारद्वये प्रथममृत्युशब्दस्यैकशृङ्गतनुसंज्ञक-मत्स्यापरपर्यायाऽष्टाविंशावतारपरत्वम्

कालः कालः समुद्दिष्टः प्रधानं प्रकृतिः परा ॥ ३३ ॥
ऋतधामा पुमांस्तत्स्थो वैराजश्च चतुर्गतिः ।
भुवनं च दधद् देहे यः शङ्खो मीन ईर्यते ॥ ३४ ॥
एकशृङ्गतनुर्देवो मृत्युवर्णैः स गद्यते ।

मृत्युमृत्यु शब्द से विवक्षित दो अवतारों में प्रथम मृत्यु शब्द से एक शृङ्गतनु संज्ञक (द्र० ५.५४) अट्ठाइसवें अवतार का प्रतिपादन—काल वर्ण (मकार) से काल कहा गया है और वही प्रधान अर्थात् परा प्रकृति है (द्र० १७.२४)। ऋतधामा (ऋकार द्र० १७.७) पुमान् एवं वैराज (तकार द्र० १७.१९) एवं चतुर्गति (अकार द्र० १७.२४) उसमें स्थित हैं और जो अपने देह में सारे भवन (उकार द्र० १७.६) को धारण किये हुये हैं जिसे शङ्ख या मीन कहते हैं ऐसा एकशृङ्ग तनु देव (=मीनावतार) प्रथम मृत्यु पद से विवक्षित है ॥ ३३-३५ ॥

द्वितीयमृत्युशब्दस्य लोकनाथाख्यचतुर्विंशावतारपरत्वम्

प्रधानः सत्यरूपश्च वैराजो राजयज्ञगत् ॥ ३५ ॥
चतुर्गतिर्देवदेवो लोकनाथो महाप्रभुः ।
मृत्युवर्णसमुद्दिष्टः पूर्वस्माद् भुवनादपि ॥ ३६ ॥
इति वर्णाश्रया रीतिः परा ते सम्प्रदर्शिता ।

द्वितीय मृत्यु शब्द से लोकनाथ नामक (द्र० ५.५४) चौबीसवें अवतार का उपपादन—प्रधान (मकार १७.२४), सत्यरूप (ऋकार द्र० १७.७), वैराज (तकार द्र० १७.१९) चतुर्गति (यकार द्र० १७.२४), जगत् भुवन (उकार द्र० १७.६) इस प्रकार मृत्यु शब्द से महाप्रभु लोकनाथ कहे गए हैं। इस प्रकार की रीति से इस मन्त्र के प्रत्येक वर्णों द्वारा परा रूप अर्थ का उपपादन किया गया ॥ ३५-३७ ॥

अध्यायशेषेण मन्त्रस्य महिमान्तरनिरूपणम्

शृणु मन्त्रस्य माहात्म्यं भूयोऽपि मुनिसत्तम ॥ ३७ ॥
पादशः प्रतिलोमोऽयं वैकुण्ठास्त्रं निगद्यते ।
अक्षरप्रतिलोमोऽयं स्मृतं नारायणास्त्रकम् ॥ ३८ ॥
स्वराणां प्रतिलोमो यः संहिताशब्दरूपवान् ।
नारसिंहमहास्त्रं तन्नखक्रकचसंज्ञितम् ॥ ३९ ॥
प्रमित्यपेतो वरुणः कालपावकसंस्थितः ।
अप्रमेयः पुनस्तादृक् तृतीयाक्षरमीरितम् ॥ ४० ॥
सूक्ष्मस्थः प्रथमः सूक्ष्मः संस्थितः कालपावकः ।
वरुणः सूक्ष्मयोर्द्वन्द्वं सप्तमाक्षरमीरितम् ॥ ४१ ॥
सूक्ष्मस्थो गोपनः पश्चाद्वरुणो भुवनाश्रयः ।
वनजादार इत्येतन्नारसिंहास्त्रमीरितम् ॥ ४२ ॥
नवाक्षरमिदं श्रेष्ठं तत्र यत् प्रतिलोमजम् ।
अस्त्रमक्षरशस्तत्तु नारसिंहं महादिकम् ॥ ४३ ॥
तत्र स्वरप्रातिलोम्यादस्त्रं त्वतिमहादिकम् ।
व्यापकः सामृताधारो गोपनो द्व्यक्षरं तु तत् ॥ ४४ ॥

तत्र स्वरप्रातिलोम्ये गोपनो गोपनः सताम् ।
सर्वत्र प्रातिलोम्येन यद्यदस्त्रमुदीरितम् ।
तत्र तत्रानुलोम्येन तत्तच्छान्तिरुदीरिता ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपणं नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३६३१ ॥

* * *

अध्याय के शेष श्लोकों से इस मन्त्र की महिमा का वर्णन—अब हे मुनिसत्तम ! आप इस मन्त्र के माहात्म्य को पुनः सुनिए । इसके पदों को विलोम करने से वह बैकुण्ठास्त्र हो जाता है और जब इसके अक्षरों को विलोम कर दिया जाता है तो यह नारायणास्त्र हो जाता है । स्वरों के प्रतिलोम कर देने पर उसकी संहिता से जो शव्दस्वरूप बनता है वह नख एवं क्रकच संज्ञा वाला नारसिंह महास्त्र हो जाता है ॥ ३७-३९ ॥

चार प्रकार वीर, ज्वलन्त, महाविष्णु और सर्वतोमुख इन से रहित कर विलोम करने पर यह मन्त्र कालपावक संज्ञा वाला हो जाता है ॥ ४० ॥

पुनः अप्रमेय तृतीय अक्षर कहा गया है । सूक्ष्मस्थ सूक्ष्म प्रथम कालपावक हैं और वरुण एवं सूक्ष्म का द्वन्द्व सप्तम अक्षर कहा गया है ॥ ४०-४१ ॥

सूक्ष्मस्थ, गोपन के बाद वरुण एवं भुवनाश्रय (वरजादार ?) ये नारसिंहास्त्र कहे गए हैं ॥ ४२ ॥

नव अक्षर का यह श्रेष्ठ मन्त्र है । व्यञ्जन से प्रतिलोमाक्षर महादिक आदि मन्त्र नारसिंहास्त्र है । इनमें भी जब स्वर प्रतिलोम मन्त्र होगा तब वह अतिमहादिक नारसिंहास्त्र होगा ॥ ४३-४४ ॥

व्यापक, अमृताधार, गोपन ये दो अक्षर हैं । इनका स्वर प्रतिलोम गोपन एवं गोपन है । अतः सर्वत्र जहाँ भी प्रतिलोम करके अस्त्र कहे गए हैं वहीं उनका अनुलोम करके प्रयोग करने से उनकी शान्ति कही गई है ॥ ४४-४५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के नारसिंहानुष्टुभमन्त्रार्थनिरूपण नामक छप्पनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५६ ॥

* * *

अथ सप्तपञ्चाशोऽध्यायः

ज्योतिश्चक्रमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापों को नष्ट करता है । उस सुदर्शन के दिव्य तेज का मैं ध्यान करता हूँ ।

प्रथमं गायत्र्यर्थप्रपञ्चने तच्छब्दस्य भगवत्सकल्परूपसुदर्शनपरत्वनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

यत्तु ज्योतिस्त्रयं पूर्वं ज्योतिश्चक्रे निदर्शितम् ।
सावित्रं नाम यज्ज्योतिस्तत् सावित्रीसमाह्वयम् ॥ १ ॥
तस्य व्याख्यामिमां सम्यग् गदतो मे निशामय ।
सङ्कल्पः कथितो यः स सुदर्शनसमाह्वयः ॥ २ ॥
या सा भूतिर्महाशक्तेर्वैष्णव्याः कोटिभागजा ।
शुद्धाशुद्धमयैर्भावैस्तनुते विस्तृणाति ताम् ॥ ३ ॥
प्रतिसञ्चरवेलायां तामयत्येव तां पुनः ।
तायते तत्र तत्रैव भूत्यंशे धारकात्मना ॥ ४ ॥
प्रमाणत्वेन भूयश्च तत्तदर्थतया पुनः ।
अतस्तदिति सङ्कल्पः प्रोच्यते वैष्णवः परः ॥ ५ ॥

सर्वप्रथम गायत्री के अर्थ निरूपण के प्रसङ्ग में तच्छब्द का भगवत्सङ्कल्प रूप सुदर्शन परत्व अर्थ निरूपण करते हैं । अहिर्बुध्न्य नामक रुद्र ने कहा—पूर्वाध्याय में (२३.४४-६९) ज्योतिश्चक्र के निरूपण के प्रसङ्ग में तीन ज्योति का निर्देश किया गया है । उसमें सावित्री नामक सावित्र ज्योति का सर्वप्रथम वर्णन किया गया है । अब मेरे द्वारा कही गई उसकी व्याख्या, हे नारद ! आप सुनिए । वह ज्योति सुदर्शन नामक विष्णु का सङ्कल्प कहा जाता है । जो विष्णु पत्नी महाशक्ति की करोड़ोंहवें अंश से उत्पन्न भूति कही जाती है । वह महाशक्ति अपने शुद्धाशुद्धमय भावों से उस सावित्री रूप ज्योति का विस्तार

करती है । (अय् गतौ, ताय् पालने, सन्तौध) पुनः प्रतिसञ्चार वेला में उसे अपने में मिला लेती है । फिर प्रयोजन वशात् उसे धारण कर पालन करती एवं बढ़ाती है इसीलिए उसे वैष्णव संकल्प कहा जाता है ॥ १-५ ॥

सवितृशब्दस्य जगत्कारणत्वभोगमोक्षप्रदत्वादिगुणविशिष्टपरमपुरुषपरत्वम्

प्रसौति सकलाश्चेष्टाः प्रसूते सकलं जगत् ।
अवतेर्गतिकान्त्यर्थात् तरतेर्दानकर्मणः ॥ ६ ॥
गतो ह्यवति सर्वत्र षड्भिः कान्तो गुणैः परः ।
भोगापवर्गयोर्दाता सवितेति निरुच्यते ॥ ७ ॥

अब सवितुः में सवित्र शब्द का जगत्कारणत्व, भोग एवं मोक्ष (षुञ प्रस-वैश्ययोः प्रसवौऽभ्यनुज्ञानम्) प्रदत्त्वादि गुण विशिष्ट परम पुरुष परमात्म स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं—स् जो प्राणियों की सारी चेष्टाओं को जानता है तथा सारे जगत् को उत्पन्न करता है । अव् धातु का अर्थ गति एवं कान्ति है । तृ धातु का अर्थ दान देना है । इसलिए जो सर्वत्र गमन करे तथा छओं गुणों से जो (द्र० २.५५-६२) सुन्दर हो, यह अवि शब्द का अर्थ हुआ । इस प्रकार भोग एवं मोक्ष के दाता सविता की निरुक्ति कही गई ॥ ६-७ ॥

वरेण्यशब्दस्योपास्यत्वपरत्वम्

वरैर्नेयं वरेण्यं तु वराः ख्यातार ईरिताः ।
वरणीयं वरेण्यं वा वरं नयति तत्परम् ॥ ८ ॥

अब वरेण्य शब्द का सर्वोपास्यत्व रूप अर्थ वर्णन करते हैं—जो वर अर्थात् श्रेष्ठ लोगों के द्वारा ग्रहण किया जाता है । लोक में विख्यात लोग वर कहे जाते हैं । इसलिए जो वरणीय है वही वरेण्य कहा जाता है अथवा जो सज्जनों को तत्पद की ओर आकृष्ट करता है वह वरेण्य है ॥ ८ ॥

भर्गःशब्दस्य तच्छब्दविवक्षितसुदर्शनगुणविशेषपरत्वम्

भर्गस्तेजः समाख्यातं प्रभावः कर्तृरूपता ।
भरतीदं जगत् कृत्स्नं सम्भरत्यपि चेश्वरान् ॥ ९ ॥
रमयत्यपि तत् सर्वं राति चार्थमभीप्सितम् ।
गमयत्यपि तन्नाशं स्यति बन्धमशेषतः ॥ १० ॥
भर्जयत्यखिलं कष्टं भ्रस्जतेऽनेहसं तथा ।
अतो भर्गः परं विष्णोः सङ्कल्पं विदुरद्भुतम् ॥ ११ ॥

अब भर्ग शब्द का तच्छब्द विवक्षित सुदर्शनगुण विशेष परत्व रूप अर्थ का प्रतिपादन करते हैं—'भर्ग' तेज, को कहते हैं और प्रभाव को कर्त्तृरूपता कहते हैं । भ शब्द का अर्थ है जो सारे संसार का पोषण करे और वह ईश्वर जो लोगों को परिपूर्ण करे । र् शब्द का अर्थ है जो सबको रमण करावे अर्थात् अभीष्ट अर्थ प्रदान करे । ग् शब्द का अर्थ है जो सबको नष्ट करे और सबके बन्धनों को काट देवे । समुदित भर्ग शब्द का अर्थ है जो

सबके कष्टों को भ्रष्ट अर्थात् विनष्ट करे और जो दिन को प्रकाशित करे । इसलिए विष्णु के अद्भुत सङ्कल्प को भर्ग कहा जाता है ॥ ९-११ ॥

देवशब्दस्य द्योतनत्वादिगुणविशिष्टपरमात्मपरत्वम्

द्योतनः सर्वभावानां द्योतमानः स्वयं सदा ।
अज्ञानमखिलं चान्यच्छोधयत्यखिलं जगत् ॥ १२ ॥
अतः सकलमेवेदं तत्रौतं मणिसूत्रवत् ।
इत ईरण ईड्यश्च वनितः सकलं वियत् ॥ १३ ॥
देव इत्युदितो विष्णुः परमात्मा सनातनः ।

देव शब्द का द्योतनत्वादि विशिष्ट परमात्मपरत्व अर्थ का निरूपण—जो सारे पदार्थों को प्रकाशित करे । स्वयं सर्वदा प्रकाशमान रहे । सारे संसार के अज्ञान को एवं सारे संसार को शुद्ध करे । यह सारी सृष्टि मणिसूत्र के समान जिसमें अनुस्यूत हो । इन् (इण् गतौ) जो सर्वत्र व्याप्त हो (ईर कम्पने प्रेरणे च) जो सबका प्रेरक हो । सबसे ईडय (पूज्य) हो । जो सारा (वन् शब्दे) आकाशमण्डल शब्दायमान करता हो, प्रविभक्त करता हो । इस प्रकार परमात्मा सनातन विष्णु को देव (= प्रकाशक) कहा जाता है ॥ १२-१४॥

धीमहीत्यस्योपासनात्मकज्ञानविशेषपरत्वम्

धीमहीत्यत्र धीर्ज्ञानं मननं भावनं तथा ॥ १४ ॥

अब 'धीमहि' शब्द का उपासनात्मक ज्ञानविशेषपरत्वरूप अर्थ कहते हैं—'धीमहि' शब्द में धी का अर्थ ज्ञान, मनन तथा भावना है ॥ १४ ॥

तृतीयपादार्थनिरूपणपूर्वकं गायत्र्याः सम्पिण्डितवाक्यार्थनिरूपणम्

धियो धीपूर्विकाश्चेष्टाः प्रेरणं तु प्रचोदनम् ।
यः सर्वशक्तिः सविता देवः संविन्मयश्च यः ॥ १५ ॥
यश्च सर्वविदीशानो धियस्तास्ताः प्रचोदयात् ।
सृष्टिस्थितिलयत्राणक्रियाकारणमव्ययम् ॥ १६ ॥
तस्य देवस्य सङ्कल्पं भर्गःसंज्ञमुपास्महे ।
गायन्तं त्रायमाणाया गायत्र्या अर्थ ईदृशः ॥ १७ ॥

अब गायत्री के तृतीय पाद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' का अर्थ निरूपण कर सम्पूर्ण गायत्री का मन्त्र का अर्थ निरूपण करते हैं—धियो का अर्थ धी पूर्वक चेष्टा करना है । 'प्रचोदयात्' का अर्थ प्रेरित करना है । जो सर्वशक्ति सम्पन्न सवितादेव हैं एवं जो ज्ञान स्वरूप हैं । जो सर्वज्ञ एवं सबके ईश्वर हैं वे हमारी उन-उन बुद्धियों को (अच्छे कार्य की ओर) प्रेरित करे । सृष्टि की स्थिति, प्रलय एवं त्राण रूप क्रिया के जो अविनाशी कारण हैं । उन देव के सङ्कल्प को जिसे भर्ग कहा जाता है उसकी हमलोग उपासना करते हैं वह गायत्री स्तुति गान करने वाले की रक्षा करती है । इस प्रकार यह गायत्री का अर्थ हुआ ॥ १५-१७ ॥

संक्षेपतो गायत्रीमहिमवर्णनम्

सन्ध्ययोरुभयोर्युक्तो ब्राह्मण्यं लभते परम् ।
बहिः सहस्रमभ्यस्ता मासमात्रेण साधिनः ॥ १८ ॥
त्रायते महतः पापात् सर्वस्मादपि चांहसः ।
ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥ १९ ॥
त्रिपदा चेयमित्येतत् त्रितयं पावनं परम् ।

संक्षेप में गायत्री की महिमा का वर्णन—जो दोनों सन्ध्या काल में गायत्री की उपासना करता है वह ब्राह्मण्य को प्राप्त करता है । एक महीने पर्यन्त गाँव के बाहर एक सहस्र बार निरन्तर प्रति दिन जप करने वाले ॐकार पूर्वक अव्यय तीन महाव्याहृतियों (ॐभूर्भुवःसुवः) से युक्त त्रिपदा गायत्री कही गई है क्योंकि इसके तीनों पाद अत्यन्त पवित्र हैं ॥ १८-२० ॥

व्याहृतित्रयस्वरूपनिरूपणपूर्वकं संग्रहेण तदर्थप्रकाशनम्

या सत्ता सर्वभूतानां विष्णुशक्तिः परावरा ॥ २० ॥
सा भूरिति समाख्याता भवतीदं जगत् स्वयम् ।
भूत्वशक्तिं समास्थाय यावतीदं जगत् स्वयम् ॥ २१ ॥
सा भुवः कथिता सद्भिरवन्ती भावितं जगत् ।
वसीयो भोगमोक्षाख्यं सूते या सततं सताम् ॥ २२ ॥
सा सुवः कथिता सद्भिर्व्याहृतिर्वाङ्मयी ततः ।

व्याहृतियों के स्वरूप का निर्णय करते हुये उनका एक-एक रूप में अर्थ प्रकाशन—जो सभी प्राणियों की सत्ता है और जो सर्वोत्कृष्ट विष्णु शक्ति है उसे 'भू' कहते हैं । यह भू जगत् अपने आप उत्पन्न होता है । भूत्व शक्ति आश्रय लेकर यह जगत् स्वयं जितना है उसे सज्जनों ने 'भुवः' कहा है क्योंकि वह जो भावी जगत् की रक्षा करती है । 'वसीय' का अर्थ है भोग और मोक्ष । जो सज्जनों के लिए उस भोग एवं मोक्ष को उत्पन्न करे उसे सज्जनों ने 'सुवः' कहा है । इसीलिए उसे वाङ्मयी व्याहृति कहा गया है ॥ २०-२३ ॥

गायत्त्रीमन्त्रनिगूढानां ब्रह्मशिरःप्रभृतीनामस्त्राणां दिङ्मात्रप्रदर्शनम्

पादशो ब्रह्मदण्डास्त्रं प्रतिलोमस्तदित्यृचः ॥ २३ ॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम पदशः परिगीयते ।
वर्णशो ब्राह्ममस्त्रं स्यात् तत्स्वरप्रतिलोमजम् ॥ २४ ॥
सुब्रह्मास्त्रमिति प्रोक्तं सर्वास्त्रविनिबर्हणम् ।

गायत्री मन्त्र में दिये हुये 'ब्रह्मशिर' प्रभूति अस्त्रों का दिङ्मात्र प्रदर्शन—'तदादि तीन ऋचाओं के पाद को प्रतिलोम कर (उलटा) उच्चारण करने से ब्रह्मदण्डास्त्र होता है । गायत्री मन्त्र में आये हुये प्रत्येक पदों को प्रतिलोमपूर्वक उच्चारण करने से ब्रह्मशिर नामक

अस्त्र होता है । स्वरों को प्रतिलोम कर उच्चारण करने से सुब्रह्मास्त्र कहा जाता है, जो सभी प्रकार के अस्त्रों का संहार कर्ता है ॥ २३-२५ ॥

आनन्दो वरुणस्तद्वान्वरुणः स चतुर्गतिः ॥ २५ ॥
साप्रमेयस्तृतीयः स्याच्छङ्खस्थो व्यापकस्तथा ।
सानन्दो वरुणश्चैव साप्रमेयश्चतुर्गतिः ॥ २६ ॥
शङ्खद्वयं सदा देवमस्त्रं सप्ताक्षरं परम् ।
अतिब्राह्मं समुद्दिष्टमस्य स्वरविलोमजम् ॥ २७ ॥
आनन्दः केवलस्तत्तु दिव्यमेकाक्षरं स्मृतम् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्या इयती दर्शिता भिदा ॥ २८ ॥

आनन्द आकार (द्र० १७.४) और वरुण वकार (द्र० १७.२६) तद्वान् वो वरुण वकार (द्र० १७.२६) स चतुर्गतिः यकार से युक्त (द्र० १७.२४) और साप्रमेय अकार से युक्त (द्र० १७.४) य्व शङ्खस्थ मकार (द्र० १७.२४) वरुण वकार (द्र० १७.४) इस प्रकार य सानन्द आकारयुक्त (द्र० १७.४) वरुण वकार (द्र० १७.२६) वा साप्रमेय अकार से युक्त (द्र० १७.४) चतुर्गतिः (यकार द्र० १७.२४) य और दो शङ्ख य और य, इस प्रकार सात अक्षर का देवास्त्र है । केवल आनन्द आकार तो दिव्य एकाक्षर मन्त्र है । इस प्रकार तदित्यादि सावित्री ऋचा का भेदपूर्वक प्रतिपादन किया गया ॥ २५-२८ ॥

'जातवेदसे' इति त्रिष्टुभोऽर्थनिरूपणे जातवेदःशब्दस्य सोमशब्दस्य चार्थवर्णनम्

जातवेदस इत्यस्यास्त्रिष्टुभोऽर्थं निशामय ।
जातजातं हि यो वेत्ति भूते भूतेऽखिलं सदा ॥ २९ ॥
जातं स्वभावसंसिद्धं विज्ञानं तस्य सर्वदा ।
वेदः सत्ता महाशक्तिरानन्दस्पन्दलक्षणा ॥ ३० ॥
प्रादुर्भूता सदा यस्य सा देवी जगतां गतिः ।
वेदो विचारणं प्रोक्तं विचारो विविधा क्रिया ॥ ३१ ॥
प्रादुर्भूता क्रिया यस्य विष्णोः सा सर्वकर्तृता ।
सर्वज्ञः सर्वशक्तिश्च सर्वकृत् पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥
जातवेदाः समुद्दिष्ट आत्मा सोमः समीरितः ।
स ह्यविद्यावशात् सर्वयोनिस्थः सूयते सदा ॥ ३३ ॥

'जातवेदस' इस त्रिष्टुभ छन्द वाले मन्त्र के निरूपण में 'जातवेद' शब्द का तथा सोम शब्द का अर्थ वर्णन—'जातवेदस' इस त्रिष्टुभ छन्द वाले मन्त्र का अर्थ सुनिए । जो प्राणियों के हृदय में उत्पन्न होने वाले विचारों को भली प्रकार से जानता है जिसका इस प्रकार विज्ञान स्वभाव सिद्ध है उसे जात कहते हैं और वेद का अर्थ सत्ता है । महाशक्ति आनन्द और स्पन्द उसके लक्षण हैं । वह सत्तात्मिका जगत् को गति प्रदान करने वाली

देवी जिससे प्रादुर्भूत है। वही वेद है जिसको विचार कहते हैं। अनेक प्रकार की क्रिया को विचार कहते हैं। ऐसी क्रिया जिस विष्णु से प्रादुर्भूत है वही सब की कर्त्री है। भगवान् पुरुषोत्तम ही एक मात्र सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सब के कर्त्ता हैं। उन्हीं को 'जातवेदाः' कहा जाता है। सोम शब्द का अर्थ आत्मा कहा गया है। वही सोम रूप आत्मा अविद्या के वश में होकर सभी योनियों में सर्वदा पैदा होता रहता है॥ २९-३३॥

सुनवामेति पदस्य बद्धात्मनि भगवच्छेषत्वयोग्यतापादनपरत्वम्

योग्यतापादनं तस्य प्रोच्यतेऽत्र सुनोतिना।

'सुनवाम' इस पद से माया युक्त जीव में भगवच्छेषत्व की योग्यता है। अर्थात् वह भगवत्स्वरूप हो सकता है—इस प्रकार यहाँ सुनोति पद से जीव में भगवत्स्वरूप के प्राप्ति की योग्यता कही गई॥ ३४॥

योग्यतापादनस्य प्रकृत्यात्मविवेकरूपतां वक्तुं विवक्षितार्थस्य सोमपदगम्ये दृष्टान्ते शिक्षणम्

पृथक्कारो हि सोमस्य स्वरसस्य सुनोतिजः॥ ३४॥
रसीभूतेन सोमेन यागः कर्तुं स शक्यते।
उपमागर्भ एवायं वाक्यार्थः पूर्वपादजः॥ ३५॥

जिस प्रकार सोम का रस सोम से अलग किया जाता है वही सुनोतिजः शब्द का अर्थ है—जिस प्रकार सोम से रस निकालने पर उस रस से यज्ञ करना सम्भव हैं। इसी प्रकार के उपमागर्भ द्वारा यह वाक्यार्थ कहा गया है। इस प्रकार पूर्व पाद का अर्थ मात्र इतना ही है॥ ३४-३५॥

दृष्टान्ते शिक्षितस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम्

सोमं यथाभिषुण्वन्ति ह्यध्वरे जातवेदसे।
दित्समानस्तथात्मानमृषिः स्वं परमात्मने॥ ३६॥
देहेन्द्रियमनः प्राणधीगुणेभ्यः स्वरूपतः।
विविनक्ति प्रसङ्ख्यानैः साम्यवैषम्यहेतुजैः॥ ३७॥

दृष्टान्त में कहे गए अर्थ को दाष्टान्तिक में उपपादन करते हैं—जिस प्रकार यज्ञ में जातवेदा (अग्नि) के लिए सोम की आहुति देते हैं। इसी प्रकार ऋषि भी परमात्मा के लिए देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि, गुण एवं स्वरूप से अपनी आत्मा उसे प्रदान कर देवे और साम्य वैषम्य हेतुओं से उत्पन्न होने वाले प्रसङ्ख्यानों से अपने को दूर रखे॥ ३६-३७॥

यथोक्तात्महविर्याजिनः स्वेन रूपेणाभिनिष्पत्तिरूपो गुणाष्टकाविर्भावः फलम्

एवं विविच्य दत्त्वास्मै स्वात्मानं जातवेदसे।
तत्स्थः स तन्मना भूत्वा स्वेनाथो संविवित्सते॥ ३८॥

इस प्रकार की हवि से यज्ञ करने वाले याज्ञिक अपने रूप से अभिनिष्पत्तिरूप गुणाष्टकाविर्भाव फल प्राप्त करते हैं—ऐसी विवेचना कर जब ऋषि जातवेदाः स्वरूप परमात्मा को अपनी सोम रूप आत्मा प्रदान कर देता है। तब वह परमात्मा में स्थित हो जाता है और तन्मना होकर स्वयं उसको जानने की इच्छा करता है ॥ ३८ ॥

भङ्ग्यन्तरेण नमःशब्दार्थस्यैवात्र प्रथमपादे विवक्षितत्वसूचनम्

नमःशब्दार्थ एवायं प्रकारान्तरदर्शितः।

इस मन्त्र के प्रथम पाद में भङ्ग्यन्तर से नमः शब्द का ही विवक्षित्व प्रदर्शन—प्रकारान्तर से नमः शब्दार्थ ही इस मन्त्र का विवक्षित अर्थ है ॥ ३९ ॥

द्वितीयपादेन परमपुरुषस्य स्वप्राप्तिप्रतिबन्धकप्रकृतिसम्बन्धरूपबन्धनिवर्तकत्वप्रदर्शनम्

अर्थं द्वितीयपादस्य प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ ३९ ॥
अरातीयान् स तु प्रोक्तो यो ह्यरातिवदाचरेत्।
स च बन्धः समाख्यातो मिथ्याज्ञाननिबन्धनः ॥ ४० ॥
तस्य वेदः स्मृता सत्ता गुणासक्तिरनादिका।
स्वीकर्तुं स सुतं सोमं जातवेदाः सनातनः ॥ ४१ ॥
तत्प्रतिद्वन्द्विनीं बन्धसत्तां निदहतु स्वयम्।

मन्त्र के द्वितीय पाद से परम पुरुष को अपने द्वारा प्राप्त होने में प्रतिबन्धक प्रकृति सम्बन्धरूप बन्ध का निवर्त्तकत्व प्रदर्शन—अब इस मन्त्र के द्वितीय पाद का अर्थ मैं कह रहा हूँ उसे सुनिए—अरातीयान् उसे कहते हैं जो अराति (शत्रु) के समान आचरण करे। ऐसा शत्रु मिथ्याज्ञान से बँधा हुआ माया का बन्धन ही है। उस माया बन्धन का अनादि काल से गुणासक्ति रूप सत्ता ही वेद कहा जाता है। इसलिए वह सनातन जातवेदाः (अग्नि) सोम सुत् रूप सत्ता को स्वीकार करने के लिए उसकी प्रतिद्वन्द्विनी बन्ध सत्ता को स्वयं जला दे ॥ ३९-४२ ॥

उत्तरार्धे सदृष्टान्तं पूर्वोक्तार्थोपपादनम्

बद्ध्वा स नितरां सत्तां गुणसङ्गस्वरूपिणीम् ॥ ४२ ॥
हेयतत्त्वानि दुर्गाणि पारयत्यखिलानि नः।

उत्तरार्ध में दृष्टान्तपूर्वक पूर्वोक्त अर्थ का उपपादन करते हैं—वह अग्नि रूप परमात्मा गुणसङ्ग स्वरूपिणी उस सत्ता को बाँधकर समस्त हेय तत्त्व रूप एवं समस्त पापों के दुर्ग से हमें पार कर देवे ॥ ४२-४३ ॥

उत्तरार्धगतस्याग्निशब्दस्य परमपुरुषपरत्वसमर्थनम्

जातवेदाः स चात्रापि ह्यग्निशब्देन वर्ण्यते ॥ ४३ ॥

उत्तरार्ध में आये हुये अग्नि शब्द का परमपुरुषपरत्व रूप अर्थ का निरूपण—

यहाँ पर ऋचा के उत्तरार्ध में आये अग्नि शब्द से जातवेदा का ही वर्णन किया गया है ॥ ४३ ॥

अङ्गीकारं समीपं स्वमागतं निखिलं जगत् ।
नयत्यात्मानमित्येवमग्निशब्दो निरुच्यते ॥ ४४ ॥
स्वात्मोपसर्पिणं जीवं नेताग्निः स्वं परं पदम् ।
जातवेदाः स दुर्गाणि पारयत्यखिलानि नः ॥ ४५ ॥

अग्नि शब्द में 'अ' शब्द का निर्वचन—अपने समीप में आये अखिल जगत् को अङ्गीकार करना यह अ शब्द का अर्थ है और जो अपने को उसके पास पहुँचावे । यही अग्नि शब्द का निर्वचन है ॥ ४४ ॥

अब उपर्युक्त शब्द का अर्थ इस प्रकार होगा नेता अग्नि अपने पास में आने वाले जीव को स्वयं परं पद तक पहुँचा देते हैं । ऐसे वह जातवेदा अग्नि हम लोगों को दुर्गति रूप दुःख से पार कर देवें ॥ ४५ ॥

दृष्टान्तपरस्य चतुर्थपादस्य वाक्यार्थवर्णनम्

अत्र नावेति दृष्टान्तः सिन्धुर्नाम महोदधिः ।
तं यथा नाविको नावा नौस्थितं पारयेन्नरम् ॥ ४६ ॥
दुरितादिपदद्वन्द्वात् पारणे दुरितात्ययः ।
दुरितं गदितं दौःस्थ्यं वातवर्षादिसम्भवम् ॥ ४७ ॥
अतीत्यतीत्य दुरिता दुरितानीति वर्ण्यते ।
दुरितं वातवर्षाद्यं परिहृत्य यथाखिलम् ॥ ४८ ॥

अब दृष्टान्त परक मन्त्र के चतुर्थपाद के वाक्यार्थ का निरूपण करते हैं—यहाँ पर नाव का दृष्टान्त है । सिन्धु को महोदधि कहते हैं । जिस प्रकार उस समुद्र से नाविक नाव पर बैठे हुये आदमी को पार कर देता है । दुरितादि पदों के द्वन्द्व से यहाँ वात वर्षादिजन्य दुःस्थिति को दुरित कहा जाता है । एक दुःख के बीत जाने पर दूसरे तीसरे इत्यादि दुःस्थिति को दुरितानि इस बहुवचन द्वारा प्रतिपादित किया गया है ॥ ४६-४८ ॥

तस्यार्थस्य दार्ष्टान्तिके उपपादनम्

नाविकः पारयेन्नावा सागरं नौस्थितं नरम् ।
एवं स भगवानग्निर्जातवेदा हरिः स्वयम् ॥ ४९ ॥
दुरितं क्लेशसङ्घातमपवर्गविघातकम् ।
सर्वं परिहरन् दुर्गं पारयेत् तत्त्वपद्धतिम् ॥ ५० ॥

अब इसी अर्थ को दार्ष्टान्तिक में उपपादन करते हैं—जिस प्रकार नाविक नाव पर स्थित हुए मनुष्य को वात वर्षादि रूप समस्त उपद्रवों से बचा कर समुद्र से पार कर देता है उसी प्रकार जातवेदा स्वयं भगवान् विष्णु अपवर्ग (मोक्ष) में विघातक दुरित

(क्लेश समूह) से बचाते हुये हमें आवागमन रूप दुर्ग (क्लेश) से सीधे-सीधे पार कर देवें ॥ ४९-५० ॥

अत्र नावेति दृष्टान्तादुपायस्थानमेव तु ।
नरेण कृत्यमन्यत्तु नाविकस्येव तद्धरेः ॥ ५१ ॥

यहाँ नावा इस दृष्टान्त के द्वारा मन्त्र में सूचित किया गया है कि पार जाने वाले मनुष्य को मात्र उपाय ही करना चाहिए । शेष स्वयं श्रीहरि नाविक की तरह आपत्ति से बचा लेंगे ॥ ५१ ॥

अस्मिन् मन्त्रे निगूढानां पावकाद्यस्त्राणां संक्षेपतः स्वरूपसूचनम्

पादशः प्रतिलोमः स पावकास्त्रं निगद्यते ।
पादशो जातवेदःस्थमाग्नेयं वर्णशस्तु तत् ॥ ५२ ॥
स्वरशः प्रतिलोमोऽयमत्याग्नेयं निगद्यते ।
चतुर्गतिः साप्रमेयः सोदयोऽथ चतुर्गतिः ॥ ५३ ॥
सूक्ष्मद्वयं साप्रमेयं साप्रमेयश्चतुर्गतिः ।
चतुर्गतिः साप्रमेयो वराहः शङ्ख एव च ॥ ५४ ॥
अप्रमेयश्च पिण्डस्थं त्रयमेकीकृतं स्मरेत् ।
चतुर्गतिः साप्रमेयः सादिदेवश्चतुर्गतिः ॥ ५५ ॥
उत्तरार्धविलोमोऽयमथ पूर्वार्धजं शृणु ।

इस मन्त्र में छिपे हुये पावकादि अस्त्रों का संक्षेप में वर्णन—इस मन्त्र के पाद का विलोम किये जाने पर पावकास्त्र हो जाता है । जातवेदस्थ पदों का विलोम करने से, अथवा वर्णों का विलोम करने से आग्नेयास्त्र हो जाता है । स्वरों का प्रतिलोम करने से वही अत्याग्नेय हो जाता है । चतुर्गति यकार (द्र० १७.२४) साप्रमेय अकार के सहित (१७.४५), इस प्रकार य, सादय उकार के सहित (द्र० १७.६) साप्रमेयम् अकार के संहित (द्र० १७.४) य्य, साप्रमेय अकार के सहित (द्र० १७.४) य । चतुर्गति यकार (द्र० १७.२४) साप्रमेय अकार के सहित (द्र० १७.४) य, वराह व (द्र० १७.२६) शङ्ख यकार (द्र० १७.२४) पिण्डस्थ अप्रमेय अकार इस प्रकार वय और अ को अर्थात् तीनों को एकाकार कर देने से व्यय हुआ । चतुर्गति यकार साप्रमेय अकार के सहित य, सादिदेव (आकार) के सहित (द्र० १७.४) इस प्रकार या । इतना तो उत्तरार्ध का विलोम हुआ । अब पूर्वार्ध का विलोम सुनिए ॥ ५२-५५ ॥

आनन्दः केवलः सूक्ष्मद्वययुक् चाप्रमेयतः ॥ ५६ ॥
चतुर्गतिः साप्रमेयो वराहः शङ्ख एव च ।
अप्रमेयश्च पिण्डस्थं त्रयमेकीकृतं स्मरेत् ॥ ५७ ॥
चतुर्गतिः सादिदेवः सानन्दो वरुणस्तथा ।
चतुर्गतिः सादिदेव इति पूर्वार्धजा स्थितिः ॥ ५८ ॥

हनद्वयं वर्म सास्त्रमग्निजाया तथान्ततः ।
स्वरशः प्रतिलोमोऽयं स्मृतं पञ्चदशाक्षरम् ॥ ५९ ॥
हनाद्यष्टाक्षरं चान्ते यः स्वरः प्रतिलोमजः ।
त्र्यक्षरः स तु विज्ञेयो द्विवर्णश्चोर्ध्वभाग्भवेत् ॥ ६० ॥
एकार्णश्चैव पूर्वार्धे तयो रूपे पुनः शृणु ।
अप्रमेयोऽथ सानन्दो वरुणो द्व्यक्षरो मनुः ॥ ६१ ॥
आनन्द एकः पूर्वार्धे संहत्या यत् त्रिवर्णकम् ।
तस्यापि प्रतिलोमोऽयमानन्दः केवलः स्मृतः ॥ ६२ ॥
प्रतिलोमाविमौ सर्वशान्तिस्वस्त्ययनात्मकौ ।
इत्येषा त्रिष्टुभो रीतिर्लेशतस्ते निदर्शिता ॥ ६३ ॥

पूर्वार्ध का विलोम—चतुर्गति (य), साप्रमेय अकार के सहित (य), वराह (व), शङ्ख (य), अप्रमेय (अ) तीनों का एकीकृत पिण्ड (व्य), चतुर्गति य, सादिदेव आकार के सहित (या), आनन्द के साथ वरुण व (वा), चतुर्गति (यकार), आदिदेव (आकार) के साथ या इस प्रकार पूर्वार्ध का विलोम हुआ ॥ ५६-५८ ॥

हन द्वयम्, दो बार हन हन, सास्त्रं वर्म हुं फट्, अन्त में अग्निजाया (स्वाहा) । इस प्रकार स्वर के अनुसार किया गया यह प्रतिलोम १५ अक्षरों का हुआ । जिसके अन्त में हन आदि आठ अक्षर लगाये गए हों ऐसा प्रतिलोमज स्वर तीन अक्षरों का जानना चाहिए। दो वर्ण वाला प्रतिलोम तो ऊर्ध्वभाग् होता है । पूर्वार्ध में एक अक्षर का ही विलोम है—अब उनके रूपों को पुनः सुनिए । अप्रमेय (अकार), आनन्द (आकार) के साथ वरुण (वा) यह दो अक्षर का मन्त्र है । पूर्वार्ध में एक मात्र आनन्द (आ) यह एकाक्षर है । पूर्वोक्त दोनों अक्षर वाले मन्त्र को और एक अक्षर वाले मन्त्र को जोड़ देने से यह मन्त्र तीन वर्ण का हो जाता है । इसका भी प्रतिलोम केवल आनन्द (आकार) ही कहा गया है । ये दोनों प्रकार के प्रतिलोम मन्त्र सब प्रकार की शान्ति तथा सब प्रकार का कल्याण करने वाले हैं । इस प्रकार 'जातवेदसे' इत्यादि त्रिष्टुभ मन्त्र की विधि लेश मात्र प्रदर्शित की गई ॥ ५९-६३ ॥

'त्रियम्बकम्' इत्यनुष्टुभोऽर्थवर्णने त्रियम्बकशब्दस्य ज्ञानशक्तिक्रियान्वितपरमपुरुषपरत्वकथनम्

अधुनानुष्टुभो रीतिं शृणु त्वं पावनीं पराम् ।
इच्छा ज्ञप्तिः क्रिया चेति तिस्रो लोकस्य मातरः ॥ ६४ ॥
तिस्रस्तु यस्य विद्यन्ते जगद्धाविन्य ऊर्जिताः ।
त्र्यम्बकः स तु विज्ञेयो ज्ञानशक्तिक्रियान्वितः ॥ ६५ ॥

'त्रियम्बकम्' इस अनुष्टुप् के अर्थ के वर्णन के प्रसङ्ग में त्रियम्बक शब्द का ज्ञान, शक्ति एवं क्रिया से अन्वित परमपुरुषत्व का प्रदर्शन—अब अनुष्टुप् मन्त्र की परम पावनी रीति को आप मुझसे सुनिए । इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया ये तीन लोक की मातायें हैं ।

जिसके पास जगत् को उत्पन्न करने वाली अत्यन्त ओजस्विनी ये तीन महाशक्तियाँ हैं, ऐसा ज्ञान, शक्ति एवं क्रिया से युक्त परमात्मा 'त्र्यम्बक' पद से वाच्य है ॥ ६४-६५ ॥

यजामहे इति पदार्थनिरूपणम्

यजतिर्द्रव्यसंत्यागः काञ्चिदुद्दिश्य देवताम् ।

'यजामहे' इस पद के अर्थ का निरूपण—किसी देवता को उद्देश्य कर द्रव्य को त्याग करना यही 'यजति' पद का अर्थ है ॥ ६६ ॥

सुगन्धिशब्दार्थनिरूपणम्

शोभनो यस्य गन्धोऽस्ति स सुगन्धिरितीर्यते ॥ ६६ ॥
शोभनं सूचयन् सर्वः सुगन्धिरिरिति शब्द्यते ।
यः सुष्ठु सर्वतत्त्वानि गन्धयत्यात्मतेजसा ॥ ६७ ॥
गन्धयत्यनुवेधेन स्वस्वरूपीकरोति यः ।
गन्धादीनि पृथिव्यादिभूतान्येवाखिलानि च ॥ ६८ ॥
शोभनं यस्य तिष्ठन्ति वशे देवस्य शासितुः ।
स सुगन्धिः समाख्यातो ज्ञानात्मा सर्वविद्वशी ॥ ६९ ॥

सुगन्धि शब्द का अर्थ निरूपण—जिसकी सुगन्ध अत्यन्त शोभन हो वह सुगन्धि कहा जाता है, अथवा जो सर्व शक्तिमान होकर सबका भला करने वाला हो उसे भी सुगन्धि शब्द से कहा जाता है, अथवा जो अपने तेज से सारे तत्त्वों को भली प्रकार सुगन्धित करता है वह सुगन्धि है, अथवा जो अनुविद्ध होकर सबको सगुन्धित बना देता है और उसे अपने स्वरूप में मिला लेता है वह सुगन्धि है, अथवा गन्धादि से युक्त पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत जिस शास्ता (= शासक) के वश में रहने से भली-भाँति अपना-अपना काम करते हैं वह ज्ञानात्मा, सर्ववेत्ता एवं वशी प्रभु सुगन्धि पद से वाच्य है ॥ ६६-६९ ॥

पुष्टिवर्धनशब्दार्थनिरूपणम्

पुष्टिर्भूतिः समाख्याता या सा सदसदात्मिका ।
शक्तिर्विष्णुमयी विष्णोः स तां वर्धयति स्वयम् ॥ ७० ॥
सङ्कल्पेन समुद्भाव्य वितत्य विविधात्मना ।
सन्धार्य सन्नियम्याथ प्रतिसंहरते च ताम् ॥ ७१ ॥
ततोऽसौ भगवान् विष्णुः कथ्यते पुष्टिवर्धनः ।

पुष्टिवर्धन शब्द के अर्थ का निरूपण—पुष्टि भूति को कहते हैं । वह सदसदात्मिका है और विष्णु की विष्णुमयी शक्ति है । वे उस पुष्टि को स्वयं बढ़ाते हैं । सङ्कल्प से उसे उत्पन्न करते हैं । अनेक प्रकार से उसे विस्तृत करते हैं । पुनः उसे धारण एवं नियन्त्रित कर उसका प्रतिसंहार भी करते हैं । इसलिए भगवान् विष्णु को पुष्टिवर्धन कहा जाता है ॥ ७०-७२ ॥

वाक्यार्थवर्णनमुखेन पूर्वार्धस्य भगवति स्वात्महविः-समर्पणपरत्वप्रदर्शनम्

इच्छाज्ञानक्रियाकारं शोभनाख्यं जगत्प्रियम् ॥ ७२ ॥
स्वाकारज्ञापितैश्वर्यं शुद्धं संविन्मयं परम् ।
ईशानं सर्वलोकानां पुरुषं पुष्करेक्षणम् ॥ ७३ ॥
देवतां स्वां समुद्दिश्य स्वात्माख्यद्रव्यमुत्तमम् ।
यजाम इति मन्त्रस्य पूर्वभागार्थ ईदृशः ॥ ७४ ॥

वाक्यार्थ वर्णन के व्याज से पूर्वार्ध का भगवान् में अपनी आत्मा रूप हवि का समर्पण परत्व प्रदर्शन—इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया रूप आकार वाले, शोभन, जगत्प्रिय, अपने आकार से अपने ऐश्वर्य को प्रगट करने वाले, शुद्ध विज्ञानमय परब्रह्म, सर्वलोक के ईश्वर, पुष्करेक्षण उस पुरुष को, अपने देवता को उद्देश्य कर अपने आत्मा रूप उत्तम द्रव्य का त्याग करना ही 'यजामहे' पद का अर्थ है । इस प्रकार पूर्वार्ध का अर्थ सम्पन्न होता है ॥ ७२-७४ ॥

उत्तरार्धस्य वाक्यार्थनिरूपणम्

निरुक्तो मृत्युशब्दोऽत्र मृत्युमृत्युनिरूपणे ।
स्वात्मस्वात्मीयसंन्यासी देवेऽद्य परमात्मनि ॥ ७५ ॥
मृत्योर्मुच्येय संसारान्नानादुःखमहोदधेः ।
उर्वारुकं यथा पक्वमक्लेशेन स्वबन्धनात् ॥ ७६ ॥
मुच्यते मृत्युतस्तद्वदहं मुच्येय बन्धनात् ।

उत्तरार्ध के वाक्यार्थ का निरूपण—'मृत्युमृत्यु' निरूपण के प्रसङ्ग में देव परमात्मा के विषय में मृत्यु शब्द का निर्वचन कर दिया गया है (द्र० ५४.३४) । अपनी आत्मा और अपनी आत्मा के सम्बन्धियों का उस परमात्मा में त्याग करने वाले हम अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण संसार रूपी महोदधि रूप मृत्यु से इस प्रकार मुक्त हो जावें जिस प्रकार पकी हुई ककड़ी का फल अपने आप बन्धन से मुक्त हो जाता है अर्थात् उसी प्रकार हम भी मृत्यु रूप बन्धन से स्वयं अपने आप मुक्त हो जावें ॥ ७५-७७ ॥

संन्यासे स्थैर्यमाशास्ते कृतेऽस्मिन् मा:मृतादिति ॥ ७७ ॥
अमृताद् ब्रह्मणस्तस्माद्यस्मै मां दत्तवानहम् ।
जातुचिन्मा स्म मुच्येय क्षेमीभावो भवेन्मम ॥ ७८ ॥

सबके सन्यास (त्याग) में ही स्थिरता आती है । उसका (त्याग) कर देने पर 'मा मृताद्' अर्थात् अमृतरूप ब्रह्म से, जिसे मैंने स्वयं अपने को समर्पित किया है उससे, मैं कभी भी मुक्त न होऊँ । हमारा वह परब्रह्म कल्याण करें ॥ ७७-७८ ॥

प्रपत्तुर्ब्रह्मसाधर्म्यापत्तिलक्षणस्य फलस्य तात्पर्यगत्या मन्त्रे विवक्षितत्वप्रदर्शनम्

इत्यर्थोऽनुष्टुभः प्रोक्तो ब्रह्मभावमयः शुभः ।

ज्योतिस्त्रयं निरुक्तं तु तदिदं छन्दसां त्रयम् ॥ ७९ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां ज्योतिश्चक्रमन्त्रार्थ-निरूपणं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३७१० ॥

* * *

भगवान् के शरण में जाने वाले शरणागत को ब्रह्मसाधर्म्यापत्ति लक्षणरूप फल प्राप्त होता है। इसी तात्पर्य का मन्त्र के विवक्षितार्थ रूप में प्रदर्शन—इस प्रकार अनुष्टुप् छन्द वाले 'त्र्यम्बकम्' इत्यादि मन्त्र का कल्याणकारी ब्रह्मभावमय अर्थ कहा गया और तीन छन्दों में कहे गए तीन ज्योतिः स्वरूप मन्त्रों के अर्थ का निर्वचन भी किया गया ॥ ७९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के ज्योतिश्चक्र-मन्त्रार्थनिरूपण नामक सत्तावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५७ ॥

* * *

अथाष्टपञ्चाशोऽध्यायः

पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र का अरे का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के करोड़ों पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं, हम उस सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

अहिर्बुध्न्यः—

दशहोता चतुर्होता पञ्चहोता तथैव च ।
षड्ढोता सप्तहोता च पञ्च होतार ईरिताः ॥ १ ॥
विश्वं सिसृक्षतो विष्णोर्यत् तज्ज्ञानमयं तपः ।
होतृभिः क्रतुरूपेण स सङ्कल्पो निरूप्यते ॥ २ ॥
अद्याप्यवदधानोऽयं योगी तत्तन्निरूपणम् ।
तांस्तान्निर्वर्तयत्येव क्रतून् ज्ञानमयाञ्छुभान् ॥ ३ ॥

अहिर्बुध्न्य ने कहा—दश होता, चतुर्होता, पञ्चहोता उसी प्रकार षड्ढोता एवं सप्त होता इस प्रकार पञ्च होताओं की सङ्ख्या हम पहले कह आये हैं । विश्व की सिसृक्षा करने वाले विष्णु का जो ज्ञानमय तप था, होताओं ने उसे क्रतु के रूप से सङ्कल्पित किया । अब उसी सङ्कल्प का निरूपण करते हैं । आज भी योगी जन उन-उन तपों का ध्यान करते हुये उन-उन कल्याणकारी ज्ञानमय तथा उन-उन क्रतुओं का सम्पादन करते हैं ॥ १-३ ॥

दशहोत्रादिपदविवक्षितमन्त्रविशेषसूचनम्

चित्तिः स्रुग्दशहोतायमग्निहोत्रस्य कारणम् ।
पृथिवीत्यादिको होता चतुर्होता निगद्यते ॥ ४ ॥
दर्शस्य पूर्णमासस्य निदानं स द्वयोरपि ।
अग्निर्होता पञ्चहोता चातुर्मास्योद्भवस्तु सः ॥ ५ ॥
सूर्यं ते स च वाग्घोता पशुबन्धस्य कारणम् ।
षड्ढोताराविमौ वेदे निर्णीतौ मुनिसत्तमैः ॥ ६ ॥

(महाहविः सप्तहोता ज्योतिष्टोमस्य कारणम् ।)

दशहोत्रादि पद से विवक्षित मन्त्र विशेष का निर्देश—चित्ति स्रुवा, दशहोता ये अग्निहोत्र के कारण हैं। पृथ्वी इत्यादि जिसमें होता हों उसे चतुर्होता कहा जाता है। वह चतुर्होतृत्व रूप मन्त्र दर्श और पूर्णमास दोनों यागों में कारण है। जहाँ अग्नि होता हों उसे पञ्चहोता कहते हैं। वह चातुर्मास्य से उत्पन्न हुआ है। 'सूर्यं ते और वह 'वाग्घोता' ये दोनों ही वेद में षड्ढोता कहे जाते हैं। जो पशुबन्ध के कारण हैं और वह महाहवि सप्तहोता कहा जाता है एवं जो ज्योतिष्टोम का कारण है ॥ ४-६ ॥

अथोक्तानां मन्त्राणामर्थवर्णनप्रतिज्ञा

अथार्थो दशहोत्रादेर्वर्ण्यते शृणु नारद ॥ ७ ॥

ऊपर कहे गए मन्त्रों का अर्थ निरूपण—हे नारद ! अब दशहोत्रादि मन्त्रों के अर्थ का वर्णन करता हूँ। आप उन्हें सुनिए ॥ ७ ॥

प्रथमं दशहोतृमन्त्रार्थनिरूपणे चित्त्यादिपदार्थप्रदर्शनम्

चित्तिर्नाम स्मृता बुद्धिर्व्यवसायस्य कारणम् ।
अहङ्कारस्तु चित्तं स्यादभिमानस्य कारणम् ॥ ८ ॥
मनो नामेन्द्रियं हेतुः स सङ्कल्पविकल्पयोः ।
वाङ् नाम व्याहृता वाणी एवमस्त्वितिरूपिणी ॥ ९ ॥
आधीतं नाम वाग्वृत्तिर्यदध्ययनमुच्यते ।
केतो ज्ञानमिति प्रोक्तमुच्चार्यस्यावधारणम् ॥ १० ॥
विज्ञातं यत् तदुच्चार्यमवधारणगोचरम् ।
यत् तद्वागिन्द्रियं प्रोक्तं तद्व्यङ्ग्या या सरस्वती ॥ ११ ॥
सा वाक् तां सुब्रुवन् पाति यः स वाक्पतिरुच्यते ।
उच्चारणप्रवृत्तेर्यः प्रयत्नो हेतुरुच्यते ॥ १२ ॥
स प्राणः साम तत् प्रोक्तं यदुच्चारणसौष्ठवम् ।

दशहोतृत्वादिमात्र के निरूपण के प्रसङ्ग में सर्वप्रथम चित्यादि पद के अर्थ का निरूपण—चित्ति बुद्धि को कहते हैं जो समस्त व्यवसायों (चेष्टाओं) का कारण है। चित्त अहङ्कार को कहा जाता है जो अभिमान का कारण है। मन एक प्रकार की इन्द्रिय को कहा जाता है जो सङ्कल्प एवं विकल्प का कारण है। उच्चारण की जाने वाली वाणी का नाम वाक् है। जो 'एवमस्तु' इस रूप वाली है। आधीत एक प्रकार के वाग्व्यापार का नाम है जिसे अध्ययन भी कहते हैं। केतो ज्ञान को कहा जाता है जो उच्चरित शब्द का ठीक-ठीक निश्चय रूप कहा जाता है। पूर्व में निश्चित किये गए एवं विज्ञात शब्द को प्रत्यक्ष करने के लिए जहाँ से उच्चारण किया जावे वह वागिन्द्रिय है। सरस्वती उसी से प्रगट होती है। ऐसी वाणी को ठीक-ठीक बोलते हुये जो उसका पालन करता है उसे 'वाक्पति' कहा जाता है। उच्चारण में प्रवृत्त करने वाले हेतु को प्रयत्न कहा जाता है। प्राण साम को कहते हैं। जिसकी कृपा से उच्चारण में सहायता मिलती है ॥ ८-१३ ॥

दशहोत्रादिसमाख्यानिमित्तप्रदर्शनम्

दशहोत्रादिहोत्राख्या यागोपकरणाभिधा ॥ १३ ॥

दशहोत्रादि समाख्या का निमित्त प्रदर्शन—दशहोत्रादि जो होता के नाम है उसे योगोपकरण भी कहा जाता है ॥ १३ ॥

क्रियाभूतिविभेदेन भगवच्छक्तेर्द्वैविध्यम्

एकान्तिनो जगद्विष्णोः कुर्वतः शक्तिशालिनः ।
या शक्तिर्वैष्णवी देवी सर्वभावानुगामिनी ॥ १४ ॥
तदेकांशः क्रिया नाम कृत्योपकरणं हरेः ।
तदेकांशो विभूत्याख्यो लक्ष्यतेऽत्र जगत्तया ॥ १५ ॥

क्रिया और शक्ति के भेद से भगवान् की शक्ति के दो प्रकार—क्रिया काल में एकमात्र शक्तिशाली भगवान् विष्णु की जो शक्ति है उसे वैष्णवी देवी कहते हैं जो सभी भावों में व्याप्त होकर अवस्थित है । उस देवी के एक अंश को क्रिया कहते हैं जो विष्णु के क्रिया रूप उपकरण को कहा जाता है और उसका एक अंश विभूति कहा जाता है । उस विभूति पद से यह जगत् लक्षित है ॥ १४-१५ ॥

क्रियायाः सङ्कल्परूपत्वं कृत्योपकरणत्वं च

सङ्कल्पः प्रोच्यते विष्णोः कृत्योपकरणं क्रिया ।

क्रिया की सङ्कल्पता एवं कृत्योपकरणता—उसी क्रिया को विष्णु का सङ्कल्प कहते हैं और कृत्योपकरण भी ॥ १६ ॥

सङ्कल्पस्य च निश्चयात्मकमित्यादिरूपत्वम्

एवमस्त्विति वाक्यान्तो मित्यादिः स च कथ्यते ॥ १६ ॥
बुद्ध्यहङ्कारमनसां वृत्तिः शब्दे विवक्ष्यते ।
त्रिरूपामितिरुद्दिष्टा ते स्तब्धोत्र शब्दितम् ॥ १७ ॥

निश्चयादि किये हुये कार्य को सङ्कल्प कहने का निरूपण—'एवमस्तु' इस प्रकार के वाक्य को मिति कहते हैं । बुद्धि, अहङ्कार तथा मन की जिस वृत्ति को शब्द के द्वारा कहा जाय उसे सङ्कल्प कहते हैं । यह मिति तीन प्रकार की कही गई है ॥ १६-१७ ॥

चित्त्यादिवाक्योक्तस्रुगादिपदार्थनिरूपणम्

बुद्ध्यादिमितिपर्यन्तं वृत्तिमद्वृत्तिरूपकम् ।
यज्ञे जगद्विधानाख्ये वितते हरिमेधसः ॥ १८ ॥
स्रुक्तयाज्यतया चोपवक्तृत्वेनाग्निभावतः ।
उपवक्ता स्मृतो ब्रह्मानुज्ञा प्रवचनं स्मृतम् ॥ १९ ॥
उच्चार्यत्वेन विज्ञातः शब्दोऽग्निरिति कथ्यते ।
उच्चारणं यदाधीतं तद्बर्हिरिति गीयते ॥ २० ॥
तस्य हेतुः प्रयत्नो यः प्राणः स हविरुच्यते ।

वाग् व्याहृता तु वेदिः स्याद्धर्ता होतेति गीयते ॥ २१ ॥
उच्चारणस्य साम्यं यत् साम सोऽध्वर्युरुच्यते ।

चित्यादि वाक्योक्त स्रुगादि पदों के अर्थ का निरूपण—उस जगद्विधान नामक विष्णुयज्ञ के प्रारम्भ किये जाने पर बुद्धि से मिति पर्यन्त (द्र० ५८.८-१६) वृत्तिमान् एवं वृत्ति (द्र० ५८.१७) स्रुक् एवं आज्य हुये, ब्रह्मा उपवक्ता हुये और उनका प्रवचन अनुज्ञा हुआ । उच्चार्यत्वेन विज्ञात शब्द अग्नि हुआ । अध्ययन में जो उच्चारण हुआ वह 'बर्हि' हुआ । उच्चारण का हेतुभूत जो प्रयत्न हुआ उसी की प्राण या हवि संज्ञा हुई । बोली गई वाणी वेदी हुई । उसको धारण करने वाला होता कहा गया । उच्चारण की समता साम हुई जिसे अध्वर्यु कहा गया ॥ १८-२२ ॥

विमर्श—जिस प्रकार लौकिक यज्ञ में स्रुवा, आज्य, उपवक्ता, अग्नि, बर्हि, हवि, वेदी, होता और अध्वर्यु की आवश्यकता होती है उसी प्रकार यहाँ जगद्विधान नामक उक्त वैष्णव यज्ञ में रूपक के द्वारा यज्ञोपकरण प्रस्तुत किया गया है ॥ १८-२२ ॥

यथोक्तस्य जगद्विधानाख्यस्य वैष्णवयज्ञस्य ज्ञेयत्वविधिः

इत्थं जगद्विधानाख्यो दशोपकरणान्वितः ॥ २२ ॥
यो यज्ञो वैष्णवो वृत्तस्तमद्यत्वे विचिन्तयेत् ।
वाक्यं समुच्चरन् किञ्चिल्लौकिकं वैदिकं तु वा ॥ २३ ॥
वैष्णवं भावमासाद्य मन्त्रं चेमं विचिन्तयेत् ।

इस जगद्विधान नामक आध्यात्मिक वैष्णव यज्ञ का ज्ञान अवश्य करना चाहिए, इसका प्रतिपादन—इस प्रकार दशोपकरण से युक्त जो जगद्विधात्र नामक वैष्णव यज्ञ सम्पन्न किया गया उसका ध्यान इस समय भी करना चाहिए । उस ध्यानकाल में लौकिक एवं वैदिक वाक्यों का स्मरण करते हुये विष्णुमय हो इन मन्त्रों का उच्चारण भी करते रहना चाहिए ॥ २२-२४ ॥

तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन ग्रहभागस्यात्महविःसमर्पणपरत्वस्फुटीकरणम्

वाचस्पते विधे नामन्निति तस्यार्थ उच्यते ॥ २४ ॥
वाङ् नाम वैष्णवी शक्तिः शब्दब्रह्ममयी परा ।
वाचस्पतिस्तत्पतिः स्याद् विदधातीति वै विधिः ॥ २५ ॥
नामयत्यखिलं स्वस्मिन्निति नामाग्निरुच्यते ।
विधेम भगवन्नाम प्रह्वीभावापराभिधम् ॥ २६ ॥
त्वं चास्माकं विधेः कुर्या नाम प्रवणचित्तताम् ।
एतदेव पुनर्वक्ति मुनिः स्वात्मसमर्पणम् ॥ २७ ॥

तात्पर्यनिरूपण के व्याज से किये जाने वाले ग्रहभाग का आत्महवि समर्पण-परत्व—'वाचस्पते विधे' (नाम) यह उसका अर्थ हुआ । 'वाचस्पति' शब्द का अर्थ—वैष्णवी शक्ति को वाग् कहते हैं । जो शब्द ब्रह्ममयी एवं परा है उस विष्णुमयी वाग् शक्ति

के जो पति (= स्वामी) वही वाचस्पति कहे जाते हैं । विधिशब्द का अर्थ—जो सबको धारण करे वह विधि है । नाम शब्द का अर्थ—जो सबको अपने में नवा दें वह नाम है । उसे अग्नि कहा जाता है । विधेम का अर्थ भगवान् के नाम में नम्रीभूत हो जाना है । आप हमारे विधि को अपने नाम ग्रहण में प्रवणचित्त बनाओ । मुनि इसी को बारम्बार कहे तब उसी को स्वात्मसमर्पण कहा जाता है ॥ २४-२७ ॥

भगवत एवात्महविःसमर्पणजन्यफलभागित्वनिरूपणम्

वाचस्पतिः स पूर्वोक्तः सोमं सोमरसोपमम् ।
पिबत्वात्मरसं स्वस्मै मया हुतमिवाध्वरे ॥ २८ ॥

भगवान् में ही आत्मसमर्पण से पुरुष का तज्जन्यफल का भागी होना—वाचस्पति का अर्थ पूर्व में कहा गया है । वह वाचस्पति इस सोम को मेरे द्वारा अपने लिए समर्पित किये गए आत्मरस को इस प्रकार पान करे जिस प्रकार यज्ञ में सोमरस का पान देवगण करते है ॥ २८ ॥

स्वरूपनिरूपकशेषत्वपारतन्त्र्यानुगुणवृत्तिप्रार्थना

पीत्वा चास्मासु नृम्णं यत् स्वमाधादादधातु तत् ।
मननीयं नृभिर्नृम्णं तदनुग्रहरूपकम् ॥ २९ ॥

स्वरूप निरूपकशेषत्व के पारतन्त्र्य होने से अनुगुण अनुग्रह की प्रार्थना—हे प्रभो! उस सोमरस रूप आत्महवि को पान कर आप हममें उस नृम्ण का आधान करिए । मनुष्य जिसकी चाह करे उसका नाम नृम्ण है । वैसा मनुष्य का अभीष्ट भगवदनुग्रह रूप ही जानना चाहिए ॥ २९ ॥

आत्महविःसमर्पणस्य स्वार्थत्वशङ्काव्युदासः

स्वाहेति स्वात्मसंन्यासः स्वाहुतं तद्भवेदिति ।

आत्महविः के समर्पण में स्वार्थ की शङ्का का निराकरण—स्वाहा का अर्थ स्वात्मसन्यास है । जो 'इदं न मम' 'यह मेरा नहीं है' इस आत्म समर्पण से ही किया जा सकता है ॥ ३० ॥

चतुर्होतृमन्त्रेऽपि पूर्वोक्तस्यैव यज्ञस्य भङ्ग्यन्तरेण विवक्षितत्वनिरूपणम्

अयमेव च यज्ञोऽत्र चतुर्होतृतयेष्यते ॥ ३० ॥

चतुर्होत्र मन्त्र में पूर्वोक्त यज्ञ का प्रकारान्तर से निरूपण—यहाँ पर 'चतुर्होतृ' पद से यही यज्ञ विवक्षित है ॥ ३० ॥

पृथिवीद्युरुद्रशब्दानां प्रकृतिपुरुषकालपरत्वप्रदर्शनम्

जगत्प्रथनरूपा सा पृथिवी प्रकृतिः स्मृता ।
पुरुषो द्यौरिति प्रोक्तो द्योतते स स्वया चिता ॥ ३१ ॥
रुणद्धि प्रलये तौ द्वौ द्रावयत्युदयेऽपि च ।
रुद्र इत्युदितः कालः संयोजकवियोजकः ॥ ३२ ॥

पृथ्वी द्यु रुद्र शब्दों का प्रकृति, पुरुष और काल परत्व अर्थ प्रदर्शन—जगत् को धारण करने से पृथ्वी है। वह 'पृथ्वी' प्रकृतिरूपा कही गई है। यतः वह स्वकीय ज्ञान से द्योतित होता है। इसलिए पुरुष को 'द्यौ' कहते हैं। उन दोनों को जो प्रलय काल में रोकता है एवं उदय काल में प्रगट करता है। इसलिए रुद्र काल को कहते हैं। वह रुद्र संयोगकर्त्ता और वियोगकर्त्ता दोनों है॥ ३१-३२॥

बृहस्पतिशब्दस्य श्रियःपतित्वपुरस्कारेण भगवत्परत्वम्

बृहत् सा शक्तिरुद्दिष्टा यतो बृंहयतेऽखिलम्।
बृहस्पतिः पतिस्तस्या देवदेवो जनार्दनः॥ ३३॥

बृहस्पति शब्द का पहले श्रियःपतित्व पुनः भगवत्परत्व रूप अर्थ वर्णन—बृहत् शब्द से उस शक्ति का निर्देश है जो समस्त जगत् को बढ़ाती है। उस महाशक्ति के पति को बृहस्पति कहा जाता है। इस प्रकार बृहस्पति शब्द का देवाधिदेव जनार्दन रूप अर्थ हुआ॥ ३३॥

ग्रहभागार्थनिरूपणे वाचोवीर्यशब्दस्य भगवत्कर्तृक-सृष्ट्युद्यमपरत्वप्रदर्शनम्

वाचो वीर्यं भवेत् प्राणो विष्णोः सृष्ट्युद्यमः परः।

सम्भृततमशब्देन सृष्ट्युद्यमस्य सर्वार्थविषयकत्वविवक्षा

तत्सम्भृततमं चैव सर्वार्थविषयत्वतः॥ ३४॥

ग्रहभागार्थ निरूपण के प्रसङ्ग से वाचोवीर्यशब्द का भगवत्कर्तृक सृष्टि उद्यम-परत्व—वाचो वीर्य प्राण को कहते हैं। जो विष्णु के सृष्टि में सर्वातिशय उद्यम रूप कहा जाता है॥ ३४॥

सम्भृततम शब्द का सृष्टि के उद्यम के लिए सर्वविषयकत्व अर्थात् सर्वविषय के निर्माण की इच्छा—सम्भृततम उसे कहते हैं जिसमें सर्वार्थविषयत्व हो॥ ३४॥

पूर्वोक्तस्य प्राणस्यैवात्रापि हविष्ट्वविवक्षा

प्राणो हविरिति न्यायात् प्राणो हविरिहेष्यते।

पूर्वोक्त प्राण की हवि रूप में विवक्षा—'प्राणो हविः' इस श्रुति से प्राण हवि को कहते हैं॥ ३५॥

मन्त्रशेषस्य दास्यमहारसरूपसुखप्रार्थनापरत्वप्रदर्शनम्

आयक्ष्यसे पूज्यसेऽद्य यस्त्वं वाचस्पतिः स्वयम्॥ ३५॥
अतोऽस्मै यजमानाय वार्यं वर्यं सुवः सुखम्।
आकस्त्वमाकुरुष्वाद्य सोमं पिबति पूर्ववत्॥ ३६॥

शेष मन्त्र का दास्य महारस रूप सुखप्रार्थना परत्व रूप अर्थ का वर्णन—यतः वाचस्पति रूप आप स्वयं पूजा को प्राप्त कर रहे हो। अतः इस यजमान को (वार्यम्

वर्यम् सुवः) सुख आकस्वत्वम्, अर्थात् प्राप्त कराओ, क्योंकि यह पूर्ववत् सोमदान कर रहा है ।। ३५-३६ ।।

मन्त्रचरमवाक्यस्य प्रतिबन्धनिवृत्तिप्रार्थनापरत्वम्

इरां ददतमिन्द्रं मामिन्द्रियायाद्यशक्तये ।
ब्रह्माप्तिहेतुभूतायै स योग्यं जनयत्वजः ।। ३७ ।।

मन्त्र का चरम (अन्तिम) वाक्य का प्रतिबन्धक निवृत्ति रूप प्रार्थना परक होना—हे अज ! ब्रह्म प्राप्ति की हेतुभूत इरा देने वाले मुझको इन्द्रिय एवं आद्यशक्ति के लिए योग्य बनाइये ।। ३७ ।।

पञ्चहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

चतुर्होतायमुद्दिष्टः- पञ्चहोता निगद्यते ।
अग्निर्निरुदितः पूर्वं स होता परिगीयते ।। ३८ ।।
ज्ञानप्राणावश्विनौ द्वावश्नुवाते यतो जगत् ।
अध्वर्युः प्रतिप्रस्थाता द्वावध्वर्यू प्रकीर्तितौ ।। ३९ ।।
त्वष्टा सङ्कल्प उद्दिष्टस्त्वष्टृकार्यं यतोऽखिलम् ।
मित्रो मैत्री समुद्दिष्टा करुणा हरिमेधसः ।। ४० ।।

पञ्चहोतृमन्त्रार्थ निरूपण—यहाँ तक चतुर्होता का अर्थ कहा गया । अब पञ्चहोता मन्त्र का अर्थ कहते हैं । सर्वप्रथम अग्नि उत्पन्न हुआ, जो होता रूप कहा जाता है । ज्ञान और प्राण ये दोनों अश्विनी हैं, जिनसे यह सारा जगत् व्याप्त है । प्रतिप्रस्थाता को अध्वर्यू कहते हैं उक्त दोनों अध्वर्यू पद से वाच्य हैं । जिस प्रकार सङ्कल्प द्वारा सारा कार्य किया जाता है उसी प्रकार यह सारा जगत् त्वष्टा का कार्य है । अतः त्वष्टा को सङ्कल्प कहा जाता है । मित्र-मैत्री को कहते हैं जो विष्णु यज्ञ की करुणा है ।। ३८-४० ।।

ग्रहभागस्यात्मयागसाधनत्वेन विनियोगः

सोम इत्यादिमन्त्रोऽयं यजने तस्य शिष्यते ।

ग्रहभाग अर्थात् मन्त्र के उत्तरभाग का आत्मसाधन होने से विनियोगत्व—सोम इत्यादि यह मन्त्र यज्ञ के विनियोग रूप में कहा गया है ।। ४१ ।।

तत्र षष्ठ्यन्तयोः प्रथमान्तयोश्च सोमशुक्रपदयोरर्थविवेकः

षष्ठ्यन्तौ सोमशुक्रौ द्वौ लतासाराभिधायिनौ ।। ४१ ।।
इतरावात्मवचनौ पुरोगा हेतुरुच्यते ।

वहाँ षष्ठयन्त तथा प्रथमान्त रूप में इस प्रकार दो बार पढ़े हुये सोम शुक्र पदों का अर्थ विवेचन—षष्ठयन्त सोम और शुक्र दोनों ही (सोमरूप) लता के सार तत्त्व के वाचक हैं और प्रथमान्त सोम शुक्र पद आत्मा के वाचक हैं जो पुरोगा अग्रगामी हेतु कहे जाते हैं ।। ४१-४२ ।।

प्रथमान्तसोमपदविवक्षितस्य जीवस्य षष्ठ्यन्तसोमपदविवक्षितात् लतासारादुत्तमत्वम्, तदुपपादनञ्च

जीवः सोमस्य सोमोऽयं पुरोगाः सेमतोऽपि यत् ॥ ४२ ॥
सोमो ह्यभिष्टुतो यादृक् प्रीणयेत् पुरुषोत्तमम् ।
आत्मयागहुतो जीवो न तादृक् किंत्वतोऽधिकः ॥ ४३ ॥

प्रथमान्त सोमपद से विवक्षित जीव षष्ठ्यन्त सोमपद से विवक्षित लतासार की अपेक्षा अधिक उत्तम होने का कथन—जीव सोम का भी सोम है । यह पुरोगाः है क्योंकि यह आगे-आगे जाने वाला है । सोम लता आहुति देने पर जिस प्रकार भगवान् पुरुषोत्तम को प्रसन्न करता है उसी प्रकार जीव अपने आत्मा की आहुति प्रदान करने पर क्या प्रसन्न नहीं करता किन्तु उससे भी अधिक प्रसन्न करता है ॥ ४२-४३ ॥

मर्त्यो ह्यभिष्टुतः सोमो यस्त्वमर्त्यो हि चिन्मयः ।

हवन की जाने वाली सोमलता मरणशील है । किन्तु हवन किया जाने वाला चिन्मय आत्मा चिन्मय है इसलिए यह अधिक श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥

शुक्रशब्दस्य जीवपरत्वे प्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम्

शुक्र इत्यतिसारत्वाज्जगद्बीजतयापि च ॥ ४४ ॥
आख्या जीवस्य तत्रापि योजनैषा पुरोदिता ।

शुक्र शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त जीव होने का उपपादन—अत्यन्त सारयुक्त होने के कारण एवं जगद् का बीज होने के कारण शुक्र जीव की आख्या है । यह योजना हम पहले भी प्रदर्शित कर चुके हैं ॥ ४४-४५ ॥

इन्द्रशब्देन भगवतः सम्बोधनम्

इन्द्रेत्यपि च सम्बोधो देवस्य हरिमेधसः ॥ ४५ ॥

इन्द्र शब्द से भगवान् का सम्बोधन—मन्त्र से इस प्रकार का सम्बोधन भगवान् विष्णु के लिए किया गया है ॥ ४५ ॥

वातापिशब्दस्य व्याप्तिपूर्वकभगवन्निष्ठक्रियाशक्तिवैशिष्ट्यपरत्वम्

वातापीत्युच्यते व्यापी वातेन क्रियया स्वया ।
जगद्धातुः क्रिया सृष्टिरतर्क्या व्याप्तिपूर्विका ॥ ४६ ॥
तस्या अविषयो नास्ति भावः कोऽपि कथञ्चन ।

वातापी शब्द की व्याप्तिपूर्वक भगवन्निष्ठ क्रियाशक्तिविशिष्टपरता—जो अपनी वात रूप क्रिया के द्वारा सर्वत्र व्याप्त हो उसे वातापी कहा जाता है । जगद्धाता भगवान् की क्रिया सृष्टि अतर्क्य तो है ही सर्वत्र व्याप्त भी है और कोई भी पदार्थ उसकी क्रिया का कथञ्चिदपि अविषय नहीं है ॥ ४६-४७ ॥

हवनश्रुत्पदस्य स्वविषयकाह्वानश्रवणरसिकत्वपरत्वम्

हवनश्रुत् समाख्यातः शृण्वन्नाह्वानमादरात् ॥ ४७ ॥

हवनश्रुत्पद का स्वविषयक आह्वान सुनने में रसिकत्व का उपपादन—हवनश्रुत् उसे कहते हैं जो अपने को बुलाये जाने पर आदरपूर्वक उसे सुने ॥ ४७ ॥

श्राता इत्यादिवाक्यद्वयस्य तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन सर्वेष्वप्यात्मसु भगवद्गुणकृतदास्यप्रतिपादकत्वप्रदर्शनम्

हे इन्द्र परमेशान कर्तस्ते हवनश्रुतः ।
श्राताः श्रिता गुणैः सोमा आत्मानस्त इमे वयम् ॥ ४८ ॥
स्वाहा स्वाहुतमस्त्वेतत् तदिदं परमं हविः ।

श्राता इत्यादि दो वाक्यों का तात्पर्य कहने के व्याज से सभी आत्माओं में भगवान् के गुण के कारण उनमें दास्यभाव होने का प्रतिपादन—हे इन्द्र ! हे परमेशान ! हे कर्त्तः आपका हवन श्रुत यह नाम है । हम आपके श्राता अर्थात् आपके गुणों से आपके आश्रित हैं । सोमा अर्थात् आपकी आत्मा हम हैं । इसलिए परम हवि रूप इस आत्मा की आहुति आप में हो ॥ ४८-४९ ॥

अथ षड्ढोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

उद्दिष्टः पञ्चहोतायं षड्ढोताद्य निगद्यते ॥ ४९ ॥
यजमानं पशुं भूतं वक्त्यात्मानं हविष्कृतम् ।
देहेन्द्रियैः समं विष्णुं प्राप्ताद्य सहविष्कृतम् ॥ ५० ॥
सूते च रमते चैव यजते चैव कथ्यते ।
सूर्यो विष्णुं विशत्वेनं चक्षुर्विज्ञानकारणम् ॥ ५१ ॥
वातो गतिमतः संज्ञा गतिर्व्याप्तिरुदीरिता ।
द्योतमानस्तथा स द्यौर्देवो विज्ञानसारथिः ॥ ५२ ॥
अन्तः समीक्षमाणः सन्नन्तरिक्षमुदीर्यते ।
सर्वान् सङ्गमयन् प्राणैर्यज्ञ इज्यतयापि च ॥ ५३ ॥
पृथिवी वैष्णवी शक्तिः प्रथमाना स्वतेजसा ।
पञ्चात्मावयवः प्राणः पृष्ठं मूर्धाङ्गमुच्यते ॥ ५४ ॥
आत्मान्तःकरणं प्रोक्तमनाद्यन्तस्थितानि च ।
शरीराण्यथ बाह्याङ्गान्यथो ग्रह उदीर्यते ॥ ५५ ॥

षड्ढोतृमन्त्र के अर्थ का निरूपण—यहाँ तक पञ्चहोता का अर्थ निरूपण किया गया, अब षड्ढोता का अर्थ निरूपण करते हैं । यजमान पशुभूत अपनी आत्मा को हवि रूप में मानता है । वह अपने देह, इन्द्रिय एवं मन के साथ विष्णु को अपनी हवि प्रदान कर उनके साथ उत्पन्न होता है । रमण करता है, यज्ञ करता है और बात करता है । सूर्य चक्षुविज्ञान के कारण उस विष्णु में प्रवेश करे । गतिमान् यह 'वायु की संज्ञा है । गति का अर्थ व्याप्ति है यह हम पहले कह आये हैं । जो द्योतमान हो वह द्यौः है । विज्ञान जिसका सारथी है वह देव है । जो सबको अन्तरात्मा में रह कर देखता है वह अन्तरिक्ष है । सभी को प्राण के साथ मिलाने वाला एवं सबका ईज्य होने के कारण यज्ञ कहा

जाता है । अपने तेज से पृथित होने के कारण पृथिवी वैष्णवी शक्ति कही जाती है । आत्मा के अवयव पञ्चप्राण, पृष्ठ, शिर, आत्मा, अन्तःकरण, अनाद्यन्तः स्थित शरीर—ये बाह्याङ्ग कहे जाते हैं ॥ ४९-५५ ॥

वाचस्पतिः समुद्दिष्टः शक्तिर्वाग् वैष्णवी क्रिया ।
सैव प्रोक्ता जुहूः प्राणो होत्राहुतिरुदीर्यते ॥ ५६ ॥
नानादेहादिरूपेण वृद्धा देवा उदीरितः ।
एरयस्व प्रेरयस्व प्रेरणं त्वेरणं मतम् ॥ ५७ ॥

ग्रह (उत्तरभाग) का अर्थ—वाचस्पति शब्द का अर्थ पहले कह दिया गया है । वैष्णवी वाग् शक्ति है और क्रिया जुहूः कही जाती है । प्राणरूप होता के द्वारा जिसकी आहुति दी जावे वह प्राण है । अनेक प्रकार के देह से बढ़े हुये देव कहे जाते हैं । एरयस्व का अर्थ प्रेरणा प्रदान करिए । क्योंकि ईरण का अर्थ प्रेरण होता है ॥ ५६-५७ ॥

अपरस्य षड्ढोतृमन्त्रस्यार्थनिरूपणम्

अथापरस्य षड्ढोतुर्निर्णयं शृणु नारद ।
दीक्षा मानससङ्कल्पो वागवस्था तु वाक् स्मृता ॥ ५८ ॥
आपो दयार्द्रता विष्णोर्मन इच्छा निगद्यते ।
तपो विज्ञानमुद्दिष्टं पोता त्वभिगरा मतः ॥ ५९ ॥

दूसरे षड्होतृ मन्त्र के अर्थ का निरूपण—अब हे नारद ! दूसरे षड्होतृ मन्त्र के अर्थ को आप सुनिए । मानस सङ्कल्प का नाम दीक्षा है । वाणी की अवस्था को वाग् कहते हैं । विष्णु की दयार्द्रता आप (जल) है । मन इच्छा को कहते हैं । विज्ञान को तप कहा जाता है और पोता अभिगर है ॥ ५८-५९ ॥

सप्तहोतृमन्त्रार्थनिरूपणम्

महाहविरिति प्रोक्तः सप्तहोता मनीषिभिः ।
मनो हविरिति प्रोक्तं मनो हविरिहोच्यते ॥ ६० ॥
महाविषयता तस्य महत्त्वं परिगीयते ।
यत्नो हविरिति प्रोक्तं प्राणो हविरिहोच्यते ॥ ६१ ॥
सत्यता त्वविपर्यासः सन्ततोद्युक्तता तथा ।
पाजस्तेज इह प्रोक्तो नित्यताच्युततास्य तु ॥ ६२ ॥

सप्नहोतृ मन्त्रार्थ का निरूपण—मनीषियों ने महा हवि को सप्तहोता कहा है । मन को हवि कहा जाता है । इसलिए यहाँ मन को हवि कहा गया है । उसकी महाविषयता है । इसलिए उसके महत्त्व का गान होता है । प्रयत्न को हवि कहा गया है । इसलिए यहाँ प्राण भी हवि कहा गया है । जिसमें फेर बदल न हो उसे सत्यता कहते हैं । सन्तत लगे रहने का नाम उद्युक्तता एवं उद्योग है । पाज तेज को कहते हैं । कभी च्युत न होने के कारण उसे नित्य कहा जाता है ॥ ६०-६२ ॥

मनो मतिरिह प्रोक्ता तस्याः पूर्ववदच्युतिः ।
अनाधृष्याप्रधृष्यौ च शक्त्यैश्वर्यनिरूपकौ ॥ ६३ ॥
पोता च मैत्रावरुणः स्मृतावभिगराविह ।
अनायासविषयत्वादयास्य इति वर्ण्यते ॥ ६४ ॥

मन मति को कहा जाता है । वह मति पूर्ववत् विष्णु से च्युत न हो उनमें नित्य लगी रहे । अनाधृष्य और अप्रधृष्य पद शक्ति एवं ऐश्वर्य के निरूपक हैं । पोता एवं मैत्रावरण को अभिगर नाम से भी स्मरण किया गया है । अयास्य का अर्थ अनायास विषयत्व वर्णित किया गया है ॥ ६३-६४ ॥

ग्रहभागार्थनिरूपणम्

हरति स्वीकरोतीह पूजां हृदिति वर्ण्यते ।
दैव्यस्तन्तुरिति प्रोक्ता शिष्याचार्यपरम्परा ॥ ६५ ॥
मनुष्यस्तन्तुरित्युक्ता सत्सन्तानसमृद्धिता ।
द्यावापृथिव्यौ पितरौ पितरौ श्रीतदीश्वरौ ।
व्याख्यातो होतृवर्गोऽयमिति ते लेशतो मुने ॥ ६६ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां पञ्चहोतृमन्त्रार्थ-
निरूपणं नाम अष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३७७६ ॥

* * *

मन्त्र के ग्रहभाग (उत्तरभाग) का अर्थ—जो पूजा को स्वीकार करे उसे हृत् कहा जाता है । शिष्य और आचार्य की परम्परा दैव्य तन्तु कही गई है और सत्सन्तानसमृद्धि को मनुष्य तन्तु कहा गया है । द्यावा पृथ्वी पिता माता हैं । महालक्ष्मी और विष्णु माता पिता हैं । हे मुने ! इस प्रकार लेश मात्र हमने होतृवर्ग का व्याख्यान किया ॥ ६५-६६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के पञ्चहोतृ-
मन्त्रार्थ निरूपण नामक अट्ठावनवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५८ ॥

* * *

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषसूक्तश्रीसूक्तवाराहमन्त्रार्थनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के करोड़ों पापों का समूह नष्ट हो जाता है हम उन सुदर्शन देव के दिव्य तेज का ध्यान करते हैं ।

ब्रह्मचक्रान्तर्गतसम्भारादिमन्त्रार्थनिरूपणे कारणनिरूपणम्

अहिर्बुध्न्यः—

सम्भारा देवपत्न्यश्च दक्षिणा हृदयानि च ।
रुद्रा ब्रह्माणि चेत्येतन्निगदेन निरूप्यते ॥ १ ॥

अब पूर्वोक्त ब्रह्मचक्र के भीतर रहने वाले सम्भार, देव पत्नियों, दक्षिणा, हृदय, रुद्र एवं ब्रह्मरूप मन्त्रों के व्याख्यान का यद्यपि अवसर प्राप्त है तथापि बुद्धिमानों के लिए इन सभी का अर्थबोध भी सम्भव है अर्थात् ग्रन्थ विस्तार के भय से यहाँ उसका व्याख्यान करना उचित नहीं है । ऐसा ग्रन्थकार का आशय है ॥ १ ॥

पुरुषसूक्तश्रीसूक्तयोरर्थं निरूपयितुं जगद्धिताय परमपुरुषाल्लक्ष्म्याश्च तयोराविर्भावकथनम्

सूक्तं तु पौरुषं पुंसः परस्मादुत्थितं पुरा ।
जगद्धिताय लक्ष्म्याश्च श्रीसूक्तं तत् समुद्गतम् ॥ २ ॥

अब पुरुषसूक्त तथा श्रीसूक्त इन दोनों सूक्तों के अर्थ का निरूपण करने के लिए संसार के कल्याण की इच्छा से उन दोनों सूक्तों की उत्पत्तिक्रमेण विष्णु और लक्ष्मी से होने का विवेचन—पूर्वकाल में पुरुष सूक्त की उत्पत्ति परब्रह्म परमात्मा से तथा जगत् के कल्याण के लिए श्रीसूक्त की उत्पत्ति महालक्ष्मी से हुई है ॥ २ ॥

पुरुषसूक्तस्य ऋक्सङ्ख्यायां मतभेदप्रदर्शनम्

नानाभेदप्रपाठं तत् पौरुषं सूक्तमुच्यते ।
ऋचश्चतस्रः केचित्तु पञ्च षट् सप्त चापरे ॥ ३ ॥

ऋचः षोडश चाप्यन्ये तथाष्टादश चापरे ।
अधीयते तु पुंसूक्तं प्रतिशाखं तु भेदतः ॥ ४ ॥

पुरुष सूक्त की ऋचाओं के विषय में शाखानुसार भिन्न-भिन्न मतभेद का निरूपण—यह पुरुषसूक्त अनेक प्रकार के मतों से युक्त है । कोई इसमें चार ही ऋचायें बतलाते हैं । कोई पाँच, कोई छः और कोई सात ऋचायें ही मानते हैं । कोई सोलह ऋचायें तथा कोई अन्य अट्ठारह ऋचायें मानते हैं इस प्रकार शाखा के भेद होने से लोग इसे भिन्न-भिन्न रूपों में मानते हैं ॥ ३-४ ॥

पुरुषसूक्तप्रतिपाद्यप्रमेयप्रदर्शनम्

समस्तजगदुत्पत्तिहेतुः स्वर्गापवर्गदः ।
पौरुषो मानुषो यज्ञः सूक्तेऽस्मिन् प्रतिपाद्यते ॥ ५ ॥

पुरुष सूक्त में प्रतिपाद्य प्रमेय विषय का प्रदर्शन—इस सूक्त में संसार की उत्पत्ति का मूल एवं स्वर्ग तथा मोक्ष देने से पुरुष-यज्ञ या मानुष-यज्ञ का प्रतिपादन किया गया है ॥ ५ ॥

आद्यानां चतसृणामृचां वासुदेवादिचातुरात्म्यस्वरूपविवेचकत्वम्

तत्राद्याभिश्चतसृभिश्चातुरात्म्यं विविच्यते ।

अब इस सूक्त की आदि की चार ऋचाओं से वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप चातुरात्म्य परब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हैं ॥ ६ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमि ꣳ सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।

तत्राद्यमन्त्रस्य लक्ष्मीपतित्वपरिष्कृतवासुदेवाख्यप्रथमव्यूहप्रतिपादकत्वम्

यः परः पुण्डरीकाक्षः परमात्मा सनातनः ॥ ६ ॥
या च सा जगतां योनिर्लक्ष्मीस्तद्धर्मधर्मिणी ।
भगवान् वासुदेवोऽसावाद्यया प्रतिपाद्यते ॥ ७ ॥

जो परात्पर पुण्डरीकाक्ष सनातन परमात्मा हैं और सारे संसार की सृष्टि की कारणभूता महालक्ष्मी, जिन विष्णु की धर्मपत्नी हैं वही भगवान् वासुदेव इस प्रथम ऋचा से प्रतिपादित किये गए हैं ॥ ६-७ ॥

मन्त्रस्य प्रतिपदमर्थं वर्णयितुं सहस्रशीर्षशब्दस्य श्रियः पतित्वपरत्वप्रदर्शनम्

सहस्रा सहगा यस्य सहभावमुपेयुषी ।
श्रीर्नाम परमा शक्तिः पूर्णषाड्गुण्यविग्रहा ॥ ८ ॥
निःसक्तासक्तको यश्च नित्यं सन् सकलाश्रयः ।
सहस्रशीर्ष इत्येवं भगवान् परिगीयते ॥ ९ ॥

'सहस्रशीर्षा' इस सूक्त के प्रत्येक पद का अर्थ वर्णन करने के लिए 'सहस्रशीर्षा' इस पद का श्रियःपतित्व रूप अर्थ प्रदर्शन—जिनकी सहस्रों सङ्ख्या वाली

सहगामिनी एवं उनके प्रत्येक कार्य में सहयोग देने वाली, पूर्ण और ऐश्वर्यादि समस्त षड्गुणों से सम्पन्न विग्रह वाली, श्री नाम की जो परमा शक्ति है, जो निरासक्त तथा आसक्ति वाले हैं और जो नित्य होकर भी सारे जगत् के आश्रय हैं उन्हीं भगवान् को सहस्रशीर्ष कहा जाता है ॥ ८-९ ॥

पुरुषशब्दस्यावाप्तसमस्तकामत्वपरत्वम्

पूर्णत्वात् पुरुषो नित्यं पृणातेः पूरणार्थकात् ।

प्रथम ऋचा के 'पुरुष' पद का 'समस्त कामनाओं से परिपूर्ण' होने का प्रतिपादन— 'पीञ्' धातु के पूरणार्थक होने से जो समस्त कामनाओं से परिपूर्ण है वही पुरुष है ॥ १० ॥

'सहस्राक्ष'शब्दस्य सहस्रत्वगुणविशिष्टबद्धात्मवैशिष्ट्यपरत्वम्

अश्नोतेरथवाश्नातेरक्षोऽजेरञ्चतेरुत ॥ १० ॥
अक्षः पुरुष उद्दिष्टो यः प्रकृत्याश्रितो विभुः ।

सहस्राक्ष पद का सहस्रत्वगुणविशिष्टबद्ध होने से विशिष्टार्थ का प्रतिपादन—इसमें सहस्र शब्द का अर्थ प्रथम कह आये हैं केवल 'अक्ष' शब्द का अर्थ प्रतिपादित करते हैं। अश्नोति (सर्वत्र व्याप्त) अश्नाति (सबको खा जाने वाला) अजति (सर्वत्र गमनशील) अथवा अञ्चति (व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु) से अक्ष शब्द की निष्पत्ति हुई है। जो 'पुरुष' रूप अर्थ का वाचक है। इस प्रकार प्रकृति जिसके अधीन है वह व्यापक विभु अक्षपद से वाच्य है ॥ १०-११ ॥

सहस्रपाच्छब्दस्य सहस्रत्वगुणविशिष्टप्रकृतिवैशिष्ट्यपरत्वम्

पद्यतेः परिणामार्थात् पादित्येष निरुच्यते ॥ ११ ॥
पादिति प्रकृतिः प्रोक्ता सा नित्यपरिणामिनी ।

'सहस्रपाद' शब्द के 'सहस्रत्वगुणविशिष्ट प्रकृतिविशिष्ट' इस अर्थ का प्रतिपादन— पद धातु का अर्थ परिणाम होता है इसलिए 'पद्यते' इस व्युत्पत्ति से 'पाद्' शब्द की निष्पत्ति हुई। नित्य परिणामिनी होने से प्रकृति को पाद् कहा जाता है ॥ ११-१२ ॥

प्रकृतिपुरुषयोः सहस्रशब्दप्रवृत्तिनिमित्तप्रदर्शनम्

षण्णां गुणानां मध्ये या शक्तिः सा हस्र उच्यते ॥ १२ ॥
प्रधानपुरुषौ तस्याः सृतौ सर्गे सनातनौ ।
तामेवापि श्रितावन्ते तौ सहस्रावतः स्मृतौ ॥ १३ ॥

प्रकृति एवं पुरुष रूप अर्थ में सहस्र शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त प्रदर्शित करना—छओं गुणों ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य के मध्य रहने वाली जो शक्ति है उसे 'साहस्र' कहा जाता है। उस शक्ति का सर्वदा सृष्टि में प्रधान और पुरुष ही आश्रय हैं। इसी प्रकार प्रकृति तथा पुरुष ये दोनों भी उसी शक्ति के आश्रित हैं। इसलिए प्रकृति और प्रधान को सहस्रवान् कहा जाता है ॥ १२-१३ ॥

वासुदेवस्य प्रकृतिपुरुषवैशिष्ट्यनिगमनम्

सहस्रपुरुषाव्यक्तः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

भगवान् वासुदेव का ही प्रकृति और पुरुष से विशिष्ट उभय अर्थ के प्रतिपादकत्व का कथन—इस प्रकार भगवान् वासुदेव ही सहस्रपुरुष, अव्यक्त, सहस्राक्ष एवं सहस्रपाद हैं ॥ १४ ॥

उत्तरार्धस्य तात्पर्यार्थनिरूपणमुखेन कारणगतापरिच्छिन्नत्वगुणपरत्वप्रदर्शनम्

स भूमिं विश्वतो वृत्वेत्येतेनैव निरूप्यते ॥ १४ ॥
यदतीत्य सृतं विश्वं नानासत्तात्मनः स्थितिः ।
कार्ये हि कारणेयत्ता पयसो दधिसम्भवे ॥ १५ ॥
कार्यं सत्सन्ततौ क्वापि कार्येयत्तैव कारणे ।
मधूच्छिष्टमये पिण्डे यथाकारवियोगिनी ॥ १६ ॥
नैवं भगवतः सर्गे प्रतिसर्गेऽपि वा सति ।
कार्येयत्तात्वमस्तीति स भूमिमिति वर्ण्यते ॥ १७ ॥
भगवत्यार्जितानीति शुद्धाशुद्धमयानि च ।
भूमिं जगदुपादानं भूमिशक्तिरिहोच्यते ॥ १८ ॥
शुद्धाशुद्धविभागो यः कालपुंप्रकृतिस्थितिः ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा विष्टभ्य स्वेन तेजसा ॥ १९ ॥
स्वसङ्कल्पस्वरूपेण प्रभवाप्ययवेलयोः ।
अत्यतिष्ठदतीत्यैव स्थितो भूयो दशाङ्गुलम् ॥ २० ॥
दशाङ्गुलिभिरानन्त्यं कारणस्योपदिश्यते ।

'पुरुषसूक्त' की प्रथम ऋचा के उत्तरार्ध का तात्पर्य निरूपण करते हुये उसके कारण में रहने वाला अपरिच्छिन्नगुणपरत्व प्रदर्शित करना—'उत्तरार्ध' की 'स भूमिं विश्वतो वृत्वा' इस ऋचा से यह निरूपण करते हैं कि जो विश्व का अतिक्रमण करके नाना सत्तात्मक नाम रूपों से व्याप्त है (द्र० ४.५६) । कारण की इयत्ता कार्य में ही देखी जाती है जैसे दूध रूप कारण की इयत्ता दधि की उत्पत्ति में है । कार्य तो कारण से ही उत्पन्न होता है इसलिए कहीं-कहीं कारण में भी कार्य की इयत्ता होती है । जैसे 'मधूच्छिष्टमय-पिण्ड' में मधु का आकार लुप्त हो जाता है । किंतु सृष्टि की उत्पत्ति अथवा प्रलय रूप कार्य में कारणरूप भगवान् के विषय में यह नियम लागू नहीं होता अर्थात् उस कारण रूप परमात्मा की इयत्ता उसके कार्य में नहीं होती इसलिए भूमि को व्याप्त कर वह स्थित है ऐसा कहते हैं । (द्र० २.२५,२८,४३,४४) । जितनी भी शुद्धाशुद्धमयी (द्र० ६.६.७) विभूतियाँ हैं वे भगवान् से ही उत्पन्न हुई हैं । भूमि ही इस जगत् का उपादान कारण है, इसलिए उसे भूमि शक्ति कहते हैं । वह परमात्मा शुद्धाशुद्ध के विभाग कर्त्ता भगवान् की स्फूर्त्ति रूपा व्यूहविभवात्मिका भूति शुद्धमयी तथा तन्मूलक सृष्टि शुद्धेतरा अशुद्धमयी शक्ति है (द्र० ६.६.७) जिसमें काल पुरुष और प्रकृति की स्थिति है और जो अपने तेज से पृथ्वी को

स्थिर कर उसमें चारों ओर से व्याप्त है । वह केवल उसमें ही मात्र व्याप्त नहीं है बल्कि सृष्टि के जन्म एवं प्रलय काल की वेला में वह अपने सङ्कल्प स्वरूप से उसका अतिक्रमण कर उसके ऊपर भी दश अङ्गुल व्याप्त होकर स्थित है । इस प्रकार यहाँ 'दशाङ्गुल' शब्द से कारण की अनन्तता सिद्ध की गई है । यहाँ तक वासुदेवात्मक प्रथमव्यूह का व्याख्यान कहा गया ॥ १४-२१ ॥

द्वितीयमन्त्रस्य सङ्कर्षणाख्यद्वितीयव्यूहपरत्वप्रतिपादनम्

अथ सङ्कर्षणावस्था जगद्धेतुर्निरूप्यते ॥ २१ ॥
यदिदं दृश्यते विश्वं भूतभव्यात्मरूपकम् ।
इदं पुरुष एवादौ सिसृक्षायामभूत् किल ॥ २२ ॥

दूसरे मन्त्र का सङ्कर्षण नामक द्वितीय व्यूह के रूप में प्रतिपादन—अब सङ्कर्षणावस्था रूप जगत् के हेतु का निरूपण करते हैं । यह भूतभव्यात्मक जो विश्व दिखाई पड़ रहा है वह पूर्व में सृष्टि की सिसृक्षा काल में पुरुष रूप ही था ॥ २१-२२ ॥

मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्य सङ्कर्षणपरत्वोपपादनम्

पुरुषः स्यन्दति व्यक्तं सम्यग्विज्ञानयोजनात् ।
अतः पुरुष इत्येवं सङ्कर्षण उदीर्यते ॥ २३ ॥

मन्त्र में आये हुये 'पुरुष' शब्द का सङ्कर्षणपरत्व प्रतिपादन—सम्यग्विज्ञान से युक्त किये जाने के कारण ही स्पष्ट रूप से पुरुष गतिशील होता है । इसलिए यहाँ आये हुये पुरुष शब्द का अर्थ सङ्कर्षण किया गया है ॥ २३ ॥

उत्तरार्धेन सङ्कर्षणस्य ज्ञानोपदेष्टृत्वनिबन्धनमोक्षप्रदत्वप्रतिपादनम्

तिलकालकवद् विश्वं बिभ्रच्चिदचिदात्मकम् ।
सङ्कर्षण उदेति स्म स एवं पुनरुच्यते ॥ २४ ॥

तृतीय मन्त्र के उत्तरार्ध से द्वितीय व्यूह सङ्कर्षण का ज्ञानोपदेष्टृत्व निबन्धन मोक्षप्रदायकत्व वर्णन—जो काले तिल के समान सारे चिदचिदात्मक विश्व को धारण करते हुये सङ्कर्षण रूप से उदीयमान है ॥ २४ ॥

उतामृतत्वस्येशान इति तस्यार्थ उच्यते ।
अन्नेन भोग्यभूतेन प्रकृतिप्राकृतात्मना ॥ २५ ॥
कालसङ्कलितेनैव नानाकारविधाजुषा ।
अचिदंशेन जीवात्मा यश्चिदंशोऽधिरोहति ॥ २६ ॥
स्वस्यासम्बन्धपूर्वं यः पूर्वसङ्गवशादिह ।
तस्य सद्गुणसंसर्गान्नानाबन्धक्षये सति ॥ २७ ॥
अमृतत्वं स्वरूपाविर्भावमोक्षापराह्वयम् ।
तस्य सङ्कर्षणो देव ईशानो ज्ञानदेशनात् ॥ २८ ॥

'उतामृतत्वस्येशान' इस मन्त्र का अर्थ कथन—काल द्वारा सङ्कलित अनेक प्रकार

के आकार वाले प्रकृति प्राकृतात्मक भोग्यभूत अन्न के अचिदंश से जो चिदंश जीवात्मा वृद्धि को प्राप्त करता है और जो असङ्ग आत्मा पूर्व में सङ्ग के वशीभूत हो जाता है। पुनः सद्गुण के संसर्ग से जब उसके बन्धन विनष्ट हो जाते हैं, तब वह अमृतत्वस्वरूप को प्राप्त कर लेता है, जिसकी दूसरी संज्ञा मोक्ष भी है। उसका कारण ज्ञानोपदेष्टृत्व होने के कारण ईशान है। जिन्हें सङ्कर्षण देव कहा जाता है॥ २५-२८॥

तृतीयमन्त्रस्य प्रद्युम्नाख्यतृतीयव्यूहपरत्वप्रतिपादनम्

संसारानलसन्तप्तचेतनानुजिघृक्षया ।
सङ्कर्षणोदयो विष्णुरुच्यतेऽथ तृतीयया ॥ २९ ॥
एतावानस्य महिमा विष्णोः सङ्कर्षणात्मनः ।
यदयं धृतवान् विश्वं समुन्मीलनमादिमम् ॥ ३० ॥
ज्यायानतोऽपि पुरुषः प्रद्युम्न उपकारतः ।

तृतीय मन्त्र का प्रद्युम्न नामक तृतीय व्यूह रूप के अर्थ में प्रतिपादन—इस प्रकार संसार रूप अग्नि से जलते हुये जीवों पर (ज्ञान द्वारा मोक्ष प्रदान करने के लिए) दया करने के लिए सङ्कर्षण देव का उदय प्रतिपादित किया गया। इसलिए 'एतावानस्य महिमा' इस तृतीय ऋचा से सङ्कर्षणात्मक विष्णु की इतनी महिमा प्रतिपादित की गई कि इन्होंने ही पूर्व में समुन्मीलित सृष्टि को धारण किया है। किन्तु उपकार के कारण प्रद्युम्न रूप पुरुष इससे भी अधिक हैं॥ २९-३१॥

मन्त्रगतेन पुरुषशब्देन प्रद्युम्नस्य ज्यायस्त्वोपपादनम्

पुरू प्रकृतिपुंरूपौ पुरुषः सृजतीति यत् ॥ ३१ ॥
विश्वोपकारचेष्टाभिर्ज्यायस्त्वं तस्य वर्ण्यते ।

मन्त्र में 'ततो ज्यायांश्च पुरुषः' इसमें पुरुष शब्द के द्वारा प्रद्युम्न के श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन—यतः यह पुरुष अपने विश्व के उपकार की चेष्टाओं से प्रकृति और पुरुष का ही सृजन करता है इसलिए सङ्कर्षण की अपेक्षा उसका ज्यायस्त्व वर्णन किया गया है॥ ३१-३२॥

चतुर्थमन्त्रस्यानिरुद्धाख्यचतुर्थव्यूहपरत्वप्रतिपादनम्

ऋचा तुरीयया सूक्ते त्रिपादूर्ध्व उदैदिति ॥ ३२ ॥
देवोऽपरिमितेहः सन्निरुद्धो निरूप्यते ।

चतुर्थ मन्त्र का अनिरुद्ध नामक चतुर्थव्यूहपरत्व प्रतिपादन—अब पुरुषसूक्त में 'त्रिपादूर्ध्व उदैत्' इस चौथी ऋचा से अपरिमित सङ्कल्पों वाले अनिरुद्ध का निरूपण किया गया है॥ ३२-३३॥

मन्त्रगतस्य पुरुषशब्दस्यानिरुद्धपरत्वोपपादनम्

पुरा सीदति कार्याणि कारयन् प्राणिनोऽखिलान् ॥ ३३ ॥
फलानि पुरुषेभ्यश्च सनोति क्रिययार्चितः ।

ततः पुरुष इत्येवमनिरुद्धोऽभिधीयते ॥ ३४ ॥

चौथी ऋचा में आये हुये पुरुष शब्द का अनिरुद्ध परक उपपादन—जो कार्य को कराता हुआ समस्त प्राणियों को दुःख देता है और क्रियापूर्वक अर्चना करने से पुरुष को उत्तम फल प्रदान करता है । इसलिए वही पुरुष (प्राणियों को दुःख-सुख प्रदान करने में स्वतन्त्र होने के कारण) अनिरुद्ध कहा जाता है ॥ ३३-३४ ॥

पुरि सन् सन् पुरीवायं पुरादूर्ध्वमुदैत् परात् ।
तदवस्थेन नाघ्रातमित्यर्थोऽयमिहोच्यते ॥ ३५ ॥
पादोऽस्यैकांश एवेह चेतनाचेतनात्मकः ।
अन्तर्यामितया व्याप्तिस्तत्तन्नियमनेच्छया ॥ ३६ ॥
एतदेव व्यनक्तीह ततो विष्वङ्ङिति त्वृचा ।
विष्वक् समन्ततो भूत्वा व्यक्रामत् प्राविशद् बहु ॥ ३७ ॥
साशनानशने प्रोक्ते चेतनाचेतने उभे ।
तस्माद् विराडिति प्रोक्ता विराड् विद्या पराह्वया ॥ ३८ ॥
हिरण्यगर्भो विश्वात्मा स पूरुष इहोच्यते ।

पुर में अथवा पुरी के समान यह अन्य पुरों की अपेक्षा ऊपर रहता है । उसको वैसा रहने से वह आघ्रात नहीं होता इसलिए ऐसा अर्थ किया गया है । चेतना-चेतनात्मक जगत् को नियन्त्रित करने के लिए वह अन्तर्यामी रूप से भी व्याप्त रहता है । इसलिए 'ततो विष्वङ्' इस ऋचा से यही बात स्पष्ट की गई है । 'विष्वक्' अर्थात् चारों तरफ से उत्पन्न होकर 'व्यक्रामत' अर्थात् अनेक प्रकार से प्रविष्ट है । 'साशनानशने उभे' इस पद से चेतनाचेतनात्मक जगत् कहा गया है इसलिए वह विराट् है । परा विद्या को ही विराट् कहा जाता है । हिरण्यगर्भ विश्वात्मा ही पुरुष पद से कहा जाता है ॥ ३५-३९ ॥

अवशिष्टानां चतुर्दशमन्त्राणामर्थस्य लोकतो ज्ञेयत्वकथनपूर्वकं पुरुषसूक्तार्थनिगमनम्

शेषं तु लोकतः सिद्धमित्ययं सूक्त ईदृशः ॥ ३९ ॥

यहाँ तक चार ऋचाओं के अर्थ का प्रतिपादन किया गया । अवशिष्ट चौदह मन्त्र लोक से भी जाने जा सकते हैं । इसी बात को आगे के श्लोक से कहते हैं—शेष सूक्त का अर्थ लोक सिद्ध है । यहाँ तक पुरुष सूक्त का अर्थ प्रतिपादित किया गया ॥ ३९ ॥

तत्रान्तरे विस्तरेण निरूपितस्य श्रीसूक्तार्थस्यातिसंक्षेपेण सूचनम्

हिरण्यवर्णां श्रीसूक्तं कृतोऽन्यत्रास्य विस्तरः ।
वर्णो वरयते रूपं वर्णो वर उदीरितः ॥ ४० ॥
हितश्च रमणीयश्च यस्या वर्ण इति स्थितिः ।
हिरण्यवर्णा सा देवी श्रीशक्तिः परमामृता ॥ ४१ ॥
तदेतत् सूक्तमित्युक्तं मिथुनं परचिह्नितम् ।

आदावन्योन्यमिश्रत्वादन्योन्यप्रतिपादकम् ॥ ४२ ॥

अन्य तन्त्रो में विस्तारपूर्वक निरूपित श्रीसूक्त के अर्थ का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन—'हिरण्यवर्णाम्' इत्यादि श्रीसूक्त का अन्य: ॰ लक्ष्मीतन्त्र) वर्णन किया गया है जो रूप को वरण करे उसका नाम वर्ण है । अथवा वर्ण शब्द वर का वाचक है । इसलिए हितकारी और मनोहर जिसका वर्ण हो वही हिरण्यवर्णा है । इसलिए इन दोनों ही सूक्तों का दिङ्मात्र निर्देश किया गया । दोनों ही दोनों में मिले हुये हैं और दोनों ही एक दूसरे के प्रतिपादक हैं ॥ ४०-४२ ॥

नियमपूर्वकं यथोक्तसूक्तद्वयनिष्ठस्य मोक्षप्राप्तिः फलम्

नियतो नियताहारो निरतो नियतेन्द्रियः ।
भजन् सूक्तद्वयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४३ ॥

नियमपूर्वक ऊपर कहे गए दोनों सूक्त में निष्ठा रखकर उसका पाठ करने से मोक्ष प्राप्ति रूप फल निरूपण—नियमपूर्वक रहकर नियत आहार करते हुये इन्द्रियों को वश में करने वाला पुरुष निष्ठापूर्वक इन दोनों सूक्तों का पाठ करे तो वह विष्णुपद को प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

वराहमन्त्रे स्थूलार्थस्य लोकतो ज्ञेयत्वकथनम्

वाराहो नाम यो मन्त्रो ह्यत्यनुष्टुबितीरितः ।
तस्य सांसर्गिकी मुद्रा विदिता लोकतस्तव ॥ ४४ ॥

वराहमन्त्र में स्थूल अर्थ का ज्ञान लोक से हो जाता है इस बात का प्रतिपादन—वराह नामक मन्त्र जिसका अनुष्टुप् छन्द है उसकी सांसर्गिकी मुद्रा तो आपको लोक से भी ज्ञात हो गई है ॥ ४४ ॥

तस्यैव संक्षेपतः सूक्ष्मार्थनिरूपणम्

अस्य प्रतिपदार्थो यो मत्तस्तं त्वं निशामय ।
वराहादावभिव्यक्तं यस्य रूपं सनातनम् ॥ ४५ ॥
वराहरूपो भगवान् वसुधाहरणोद्यतः ।
संसारो रात्रिरुद्दिष्टो मोक्षो वरमहः स्मृतः ॥ ४६ ॥
वराहरूप उद्दिष्टो वरस्याह्नो निरूपणात् ।

उस वराहमन्त्र का सूक्ष्मार्थ निरूपण—अब इसके प्रत्येक पाद का अर्थ आप मुझसे सुनिए । सर्वप्रथम जिसका सनातन रूप वराहादि में अभिव्यक्त हुआ । वसुधा का उद्धार करने के लिए उद्यत वहीं भगवान् वराह रूप वाले हैं । यह संसार प्राणियों की रात्रि है और मोक्ष वरमहः (श्रेष्ठ दिन) कहा जाता है । इसलिए वरस्य अह्नः (मोक्षरूप श्रेष्ठ दिन के) निरूपण करने के कारण यह मन्त्र भी वराह रूप कहा जाता है ॥ ४५-४७ ॥

तस्यैव परार्थनिरूपणम्

अशेषभुवनाधारो गोपनश्चैव सर्वदा ॥ ४७ ॥

प्रज्ञानामपि चाधारो रक्षोदैत्यदवानलः ।
पवित्रः सर्वलोकानामप्रमेयः सनातनः ॥ ४८ ॥
परमात्मा वराहोऽभूदित्थं स पर ईरितः ।
दिगियं दर्शिता सम्यगेषा मन्त्रान्तरे गतिः ॥ ४९ ॥
न्यायेनानेन मन्त्राणां गतिं पिण्डं निरूपय ।

अब उसी के परार्थ का निरूपण—वह भगवान् का रूप समस्त विश्व का आधार है और सर्वदा जगत् की रक्षा करने वाला है । सबकी बुद्धि का आधार तो है ही, राक्षस तथा दैत्यों को भस्म करने के लिए वनाग्नि स्वरूप है । पवित्र, सारे लोकों से अप्रमेय एवं सनातन परमात्मा वराह रूप में अवतीर्ण हुए हैं इसलिए वे ही 'पर' शब्द से कहे जाते हैं । यह व्याख्या मैंने दिङ्मात्र प्रदर्शित की है । इसी प्रकार मन्त्रों के अन्य शब्दों को तथा अन्य मन्त्रों की गति तथा स्वरूप जानना चाहिए ॥ ४७-५० ॥

शास्त्रार्थमुपसंहर्तुं संक्षेपतः सुदर्शनगतिनिरूपणम्

भूयश्च शृणु संक्षेपात् सुदर्शनगतिं प्रति ॥ ५० ॥
निमिषच्चोन्मिषच्चैव चरं चाचरमेव च ।
दिव्यं च प्राकृतं चैव सूक्ष्मं च स्थूलमेव च ॥ ५१ ॥
ह्रस्वं दीर्घं च यत् किञ्चिदीशितव्यमथेश्वरम् ।
विज्ञानं यदविज्ञानं सुखं वा यदि वासुखम् ॥ ५२ ॥
इति द्वन्द्वपदाद्यैर्यद् वस्तु किञ्चिद् विकल्प्यते ।
सुदर्शनसमुन्मेषं तत्तद् विद्धि मुनीश्वर ॥ ५३ ॥

इस शास्त्र का उपसंहार करने के लिए सुदर्शन की गति का निरूपण—अब सुदर्शन की गति के विषय में संक्षेप से सुनिए । यह समस्त जड़ चेतन, चर-अचर, दिव्य प्राकृत, सूक्ष्म स्थूल, छोटा-बड़ा, राजा-प्रजा, विज्ञान-अविज्ञान, सुख-दुःख जो भी वस्तु द्वन्द्व पद से विकल्प के रूप में (सद्सद्) के रूप में व्यवहृत होती है, हे मुनीश्वर ! उन-उन सभी वस्तुओं को सुदर्शन का उन्मेष समझना चाहिए ॥ ५०-५३ ॥

शास्त्रार्थसंक्षेपः

लेशतो भगवानुक्तः स्वरूपगुणवैभवैः ।
तद्धर्मधर्मिणी शक्तिस्तस्य तत्त्वेन वर्णिता ॥ ५४ ॥
तस्या अत्यल्प उन्मेषो भूतिर्भाव्या त ईरिता ।
शुद्धाशुद्धमयी व्यक्तिस्तस्यास्तत्त्वेन वर्णिता ॥ ५५ ॥
भावकश्चापि शक्त्यंशः सङ्कल्पो वैष्णवः परः ।
रूपतो वर्णितः सम्यक् सुदर्शनपराह्वयः ॥ ५६ ॥
देशकालादिका व्याप्तिस्तस्य तत्त्वेन वर्णिता ।
प्राणक्रिया बलं तेजः सङ्कल्पो वैष्णवं यशः ॥ ५७ ॥
सुदर्शनं परोद्योगः प्राणो विष्णुसमुद्यमः ।

अव्याहतो महायोगो योगात्मा योग भावनः ॥ ५८ ॥
इत्यादिभिर्महाशब्दैस्तत्तदर्णविगाहिभिः ।
क्रियाशक्तिः परा विष्णोः शास्त्रे शास्त्रे निगद्यते ॥ ५९ ॥
यथा कारणतां याति यथैवाधारतामपि ।
यथा प्रमाणतां याति यथा याति तदर्थताम् ॥ ६० ॥
यथा याति विधायाभिस्तत्तदर्थाधिकारिताम् ।
निष्कलेन स्वरूपेण तथा दिव्योऽभवद्विधिः ॥ ६१ ॥
यथा च मध्यमं रूपं यन्त्रं तदुभयात्मकम् ।
सकलं यच्च तद्रूपं शस्त्रास्त्रमयमुज्ज्वलम् ॥ ६२ ॥
दिव्याः सौदर्शना व्यूहा वैश्वरूप्यं च तन्महत् ।
राज्ञोऽपि विजयः सर्वो रोदसीविजयस्तथा ॥ ६३ ॥

इस शास्त्र के समस्त विषयों का संक्षिप्त रूप से कथन—इस शास्त्र में विष्णु के स्वरूप, गुण एवं वैभव का संक्षेप में वर्णन किया गया है । उनके धर्म से धर्मिणी महाशक्ति का भी तत्त्वतः वर्णन किया गया है । उस विष्णुशक्ति के अत्यल्प (५.१-१४) उन्मेष, भाव्या विभूति (द्र० ७.६८) तथा शुद्धाशुद्धमयी रूप में उसकी अभिव्यक्ति का वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ में विष्णु के उत्कृष्ट सङ्कल्प स्वरूप भावक नाम के शक्त्यंश, जिसे सुदर्शन भी कहा जाता है, उनके स्वरूप का तथा देश काल में उनकी व्याप्ति का वर्णन किया गया है । उनकी प्राणक्रिया, बल, तेज, विष्णु का सङ्कल्प, विष्णु का यश, सुदर्शन का उद्योग, विष्णु का समुद्यम, अव्याहत महायोग, योगात्मा इत्यादि तत्तद्वर्णों से कहे जाने वाले महाशब्दों से वर्णन किया है । प्रत्येक शास्त्र में जिस प्रकार विष्णु की क्रिया शक्ति, कारणता, आधारता, प्रमाणता और तत्तदर्थता को प्राप्त होती है और जिस प्रकार इनके अनुष्ठान से लोग पुरुषार्थ चतुष्टय के अधिकारी बनते हैं, अपने निष्कल स्वरूप से जिस प्रकार परमात्मा का अवतार होता है । जिस प्रकार उनका सुदर्शन का मध्यम रूप मन्त्र है और यन्त्र उभयात्मक है, जिस प्रकार से शस्त्रास्त्रयुक्त उनका उज्ज्वल रूप है । जिस प्रकार सुदर्शन व्यूह है तथा जिस प्रकार उनकी विश्वरूपता है । इस यन्त्र के प्रभाव से जिस प्रकार राजा की विजय होती है एवं द्यावा पृथ्वी की विजय होती है, इसके समस्त विषयों का वर्णन यहाँ किया गया है ॥ ५४-६३ ॥

कृत्स्नो योगविधिश्चैव न्यासयोगविधिस्तथा ।
नानोपद्रवशान्तिश्च व्यवस्था योगगोचरा ॥ ६४ ॥
ब्रह्मास्त्रादिस्वरूपं च तत्तन्मन्त्रविधिस्तथा ।
महाभिषेचनविधिरस्त्रयोगविधिस्तथा ॥ ६५ ॥
ध्वजादिमन्त्रयोगाश्च सेतिहासविनिश्चयाः ।
स्थूलसूक्ष्मपरात्मानो दिव्यमन्त्रविनिश्चयाः ॥ ६६ ॥
इति ते निखिलेनार्था दर्शितास्ते मुनीश्वर ।
निधाय हृदये तत्त्वं स्वस्थो भव निरामयः ॥ ६७ ॥

योगविधियों का, न्यास योग की विधि, सुदर्शन के प्रभाव से नाना प्रकार के उपद्रव की शान्ति, योगशास्त्र में कही गई योगाङ्गों की व्यवस्था, ब्रह्मास्त्रादि का स्वरूप, उन-उन मन्त्रों की विधि, यन्त्र के महाभिषेचन की विधि, अस्त्र योग विधि, इतिहास के साथ ध्वजादि मन्त्र योग, स्थूल, सूक्ष्म तथा परभेद से दिव्य मन्त्रों का विनिश्चय आदि सभी अर्थ इस ग्रन्थ में, हे मुनीश्वर ! मैंने आपसे कहा । अतः आप इस ग्रन्थ को अच्छी तरह हृदय में धारण कर स्वस्थ तथा निरामय हो जाइए ॥ ६४-६७ ॥

व्याकृताः संशयाः सर्वे नारदर्षे मनःस्थिताः ।
करामलकवच्चैव दिव्या सौदर्शनी गतिः ॥ ६८ ॥
आदर्शनस्वरूपेण गुणैः सफलवैभवैः ।
संहितेयं समाख्याता नानाशास्त्रावगाहिनी ॥ ६९ ॥

हे महामुने श्रीनारद ! मैंने इस ग्रन्थ के द्वारा आपके सभी संशयों को निराकृत कर दिया है । इसके अनुष्ठान से करामलकवद् सुदर्शन की गति भी आपको प्रत्यक्ष हो जायगी। दर्पण के सामने अपने स्वच्छ रूप से, गुण सं, फल से तथा वैभव से युक्त यह अहिर्बुध्न्यसंहिता जिसमें नाना प्रकार के शास्त्रों का अवगाहन है उसे मैंने आपसे कहा ॥ ६८-६९ ॥

एतत्संहितोपदेशानर्हजनपरिगणनम्

पञ्चरात्रमयी दिव्या सांख्ययोगादिसंमिता ।
संहितेयं महागुह्या नानामन्त्रमयी परा ॥ ७० ॥
नावासुदेवभक्ताय त्वया देया कथञ्चन ।
नास्तिके भिन्नमर्यादे कृतघ्नेऽनृतवादके ॥ ७१ ॥
निःस्वाध्यायवषट्कारे देवब्राह्मणदूषके ।
ब्रह्मचर्यव्रतभ्रष्टे पञ्चयज्ञपराङ्मुखे ॥ ७२ ॥
दूषणेऽपि च वेदानां ब्राह्मणे मन्त्रवर्जिते ।

इस संहिता के उपदेश के लिए अनधिकारी व्यक्ति की गणना—सांख्ययोगादि के समान यह पञ्चरात्रमयी अहिर्बुध्न्यसंहिता परम गोपनीय है । यह नानामन्त्रमयी है और परा है। जो वासुदेव की भक्ति नहीं करता उसे इस संहिता का उपदेश नहीं करना चाहिए । नास्तिक को, मर्यादा (शास्त्र सेतुरूप) का उल्लङ्घन करने वाले को, कृतघ्न को, झूठ बोलने वाले को, स्वाध्याय तथा वषट्कार न करने वाले को, देवता तथा ब्राह्मण की निन्दा करने वाले को, ब्रह्मचर्य व्रत से भ्रष्ट, पञ्चयज्ञ से पराङ्मुख, वेद को दूषित करने वाले, अतएव मन्त्र वर्जित ब्राह्मण को भी इस संहिता का उपदेश नहीं करना चाहिए ॥ ७०-७३ ॥

योग्याधिकारिपरिगणनम्

वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमेधिनि ॥ ७३ ॥
ब्रह्मचारिणि वा सम्यग् गुरुस्वाध्यायतत्परे ।

वनस्थे वा व्रतोपेते भिक्षौ वा तत्त्ववित्परे ॥ ७४ ॥
कर्मणा मनसा वाचा भक्ते देवे जनार्दने ।
पञ्चरात्रप्रिये नित्यं वेदविद्यासुनिष्ठिते ॥ ७५ ॥
वक्तव्येयं परा विद्या सर्ववेदान्तबृंहणी ।

अनर्ह व्यक्ति कह कर संहितोपदेश के लिए योग्य अधिकारी का निरूपण—जो वेदविद्याव्रत में स्नान कर चुका हो, श्रोत्रिय एवं गृहस्थ हो अथवा ब्रह्मचारी हो, जिसने गुरु से स्वाध्याय किया हो, वानप्रस्थ हो अथवा तत्त्ववेत्ता सन्यासी हो, जो कर्मणा मनसा वाचा भगवान् जनार्दन में भक्ति रखता हो, जो पञ्चरात्र नामक ग्रन्थ में भक्ति रखने वाला हो, वेद विद्या में निष्ठा रखने वाला हो उसी को सर्ववेदान्तबृंहणी इस पराविद्या का उपदेश करना चाहिए ॥ ७३-७६ ॥

मङ्गलाचरणव्याजेन शास्त्रप्रमेयसारानुवादपूर्वकं शास्त्रसमापनम्

समस्तजगदुत्पत्तिस्थितिसंहारहेतवे ।
सुदर्शनाभिधानायै नमः शक्त्यै क्रियात्मने ॥ ७६ ॥

नारदः—

अज्ञानतिमिरध्वंसभास्करायादिवेधसे ।
शिवङ्कराय भूतानां नमः शान्ताय तेजसे ॥ ७७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां पुरुषसूक्तश्रीसूक्तवाराह-मन्त्रार्थनिरूपणं नाम एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

॥ आदितः श्लोकाः ३८५३ ॥

* * *

अब मङ्गलाचरण के व्याज से शास्त्र के प्रमेयभूत सार का अनुवाद करते हुये इस शास्त्र की समाप्ति करते हैं—सारे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के हेतु भगवान् की सुदर्शन नामक क्रियाशक्ति को नमस्कार है । श्रीनारद ने कहा—अज्ञान रूपी तिमिर को ध्वंस करने के लिए भास्कररूप एवं प्राणियों का कल्याण करने वाले परमशान्त स्वरूप आदि वेधा महाविष्णु को नमस्कार है ॥ ७६-७७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के पुरुषसूक्त-श्रीसूक्तवराहमन्त्रार्थ निरूपण नामक उनसठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ५९ ॥

* * *

अथ षष्टितमोऽध्यायः

शास्त्रवैभवनिरूपणम्

ध्यातं सकृद्भवानेककोट्यघौघं हरत्यरम् ।
सुदर्शनस्य तद् दिव्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥

जिस सुदर्शन चक्र के अरा का ध्यान करने पर जन्म जन्मान्तर के अनेक करोड़ों पापों का विनाश कर देता है, उन सुदर्शन देव के दिव्य तेज का मैं ध्यान करता हूँ ।

भारद्वाजं प्रति दुर्वाससा वृत्तानुवादव्याजेनापेक्षितयावदर्थ-प्रतिपादकत्वरूपशास्त्रवैभवप्रपञ्चनम्

दुर्वासाः—

इत्येतन्नारदायादौ पृष्टः प्रोवाच शङ्करः ।
रहस्यं भगवज्ज्ञानं ज्ञानानामुत्तमं महत् ॥ १ ॥

दुर्वासा और भरद्वाज में परस्पर हुये संवाद के अनुवाद के व्याज से ग्रन्थकार इस ग्रन्थ में प्रतिपादित अहिर्बुध्न्य तथा श्रीनारद में हुये समस्त संवाद की सूची रूप शास्त्रवैभव को प्रपञ्चित करने का उपक्रम करते हैं—दुर्वासा ने कहा—हे महामुने ! भरद्वाज ! इस प्रकार सर्वप्रथम महर्षि श्रीनारद द्वारा पूछे जाने पर भगवान् विष्णु के विषय में सभी ज्ञानों में उत्तम तथा रहस्यपूर्ण ज्ञान को शङ्कर ने कहा ॥ १ ॥

शास्त्रस्यास्य प्राधान्येन जगज्जन्मादिकारणभूतब्रह्मस्वरूपरूपगुणविभवादि-प्रतिपादनपूर्वकं परदेवतानिष्कर्षकत्वम्

स्थित्युत्पत्तिप्रलयकृद् भूतानां यत्र चिन्त्यते ।
स विष्णुश्चिन्त्यते यत्र स्वरूपगुणवैभवैः ॥ २ ॥

जगत् के जन्मादि कारणभूत परब्रह्म स्वरूप, गुण तथा ऐश्वर्य का प्रतिपादन करने से इस शास्त्र द्वारा प्राधान्येन विष्णु का ही परदेवतात्व कथन—इस ग्रन्थ में प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले भगवान् विष्णु के स्वरूप, गुण तथा ऐश्वर्य का प्रतिपादन किया गया है ॥ २ ॥

प्राधान्येन भगवदिच्छाशक्तिभूतलक्ष्मीस्वरूपरूपगुणविभवादिप्रतिपादकत्वम्

यत्र सा शक्तिसङ्ख्याता विष्णोस्तद्धर्मधर्मिणी ।
शीतरश्मेरिव ज्योत्स्ना भावाभावानुगामिनी ॥ ३ ॥
अनन्या चान्यरूपा च ज्ञानानन्दक्रियामयी ।
महाविभूतिसंस्थाना निर्विकारा निरञ्जना ॥ ४ ॥
निःसक्तासक्तसन्मात्रा पूर्णा रिक्ता ऋतम्भरा ।
प्रत्यस्तमितभेदा सा समुन्मीलितभेदिनी ॥ ५ ॥
षडध्वविषयातीता षडध्वविषयात्मिका ।
निमेषोन्मेषरूपा सा भावाभावस्वलक्षणा ॥ ६ ॥
चिन्त्यते यत्र सा लक्ष्मीः स्वरूपगुणवैभवैः ।
भाव्यभावकरूपा सा शक्तिः शक्तिद्वयाभिधा ॥ ७ ॥
चिन्त्यते यत्र विस्पष्टं स्वरूपगुणवैभवैः ।
शुद्धाशुद्धस्वरूपा सा विष्णुशक्तिर्जगन्मयी ॥ ८ ॥
भूतिर्विचिन्त्यते यत्र भाव्यका यत्र वर्तते ।

इस शास्त्र में विष्णु की इच्छाशक्तिभूता महालक्ष्मी के स्वरूप, गुण तथा ऐश्वर्य का निरूपण—इस ग्रन्थ में विष्णु की शक्ति महालक्ष्मी का वर्णन है जो चन्द्रमा में रहने वाली चन्द्रिका के समान भावाभाव दोनों अवस्थाओं में उनका अनुगमन करने वाली महान् पतिव्रता हैं। यह महालक्ष्मी विष्णु से अभिन्न होते हुये भी भिन्न रूपा हैं। यह ज्ञान, आनन्द तथा क्रियामयी हैं। यह महाविभूति स्वरूपा, निर्विकारा एवं निरञ्जना हैं। अनासक्त होते हुये भी आसक्त रहने वाली है। सन्मात्रा, पूर्णा, रिक्ता एवं ऋतम्भरा हैं। यद्यपि समस्त प्रपञ्च का भेद उनमें अस्त हो जाता है जब कि सारे भेद उन्हीं से प्रगट होते हैं। वे षडध्व विषय से परे होने पर भी षडध्वविषयात्मिका हैं। निमेष (द्र० ४.७) एवं उन्मेष रूपा हैं (द्र० ३.२९) भावाभावा-स्वलक्षणा है। (द्र० ३.५) इस प्रकार की महालक्ष्मी का स्वरूप गुण एवं वैभव इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। उस महाशक्ति के भाव्यभावक रूप दो भेदों का भी इस ग्रन्थ में वर्णन है (७.६६-६८)। इस ग्रन्थ में जगन्मयी विष्णुशक्ति, जो शुद्धाशुद्धस्वरूपा है (द्र० ७.६९-७०), उनके स्वरूप, गुण तथा वैभव का वर्णन है। इतना ही नहीं उनकी भाव्यकाभूति (द्र० ७.६६) का भी चिन्तन प्रतिपादित है ॥ ३-९ ॥

तथा प्राधान्येन भगवत्क्रियाशक्तिभूतसुदर्शनस्वरूपादिप्रतिपादकत्वम्

उत्प्रेक्षारूपिणी शक्तिः सुदर्शनपराह्वया ॥ ९ ॥
सा पङ्कजा जगद्धातुर्भाविका यत्र चिन्त्यते ।
यत्र कारणरूपत्वं क्रियाशक्तेर्विचिन्त्यते ॥ १० ॥
साकारताकारता च शुद्धाशुद्धविभेदिता ।
चिन्त्यते यत्र विस्पष्टं विष्णुशक्तेः क्रियात्मनः ॥ ११ ॥

प्रमाणरूपता यत्र त्रिविधा परिचिन्त्यते ।
मर्यादास्त्रौघशस्त्रौघशास्त्रौघपरिभेदिता ॥ १२ ॥
पुरुषार्थात्मता शक्तेस्तथा तदधिकारिता ।
जगद्रक्षणरूपत्वं मन्त्रयन्त्रास्त्रविस्तृतम् ॥ १३ ॥
इति सौदर्शनं रूपं निष्कलं यत्र चिन्त्यते ।
नानाव्यूहसमुद्भेदं नानासंस्थानशोभितम् ॥ १४ ॥
चिन्त्यते सकलं रूपं यत्र सौदर्शनं महत् ।
जगद्रक्षणविध्वंससृजिशालि महोदयम् ॥ १५ ॥
सुदर्शनाङ्गसम्भूतमस्त्रजातमशेषतः ।
स्वरूपशब्दविक्रान्तैर्निपुणं यत्र चिन्त्यते ॥ १६ ॥

इसी प्रकार प्राधान्येन भगवत्क्रियाशक्तिभूत सुदर्शन के स्वरूपादि का भी यह ग्रन्थ प्रतिपादन करता है—भगवान् की उत्प्रेक्षारूपिणी शक्ति जिसका दूसरा नाम सुदर्शन है वही ब्रह्मदेव की पङ्कजा शक्ति है । जहाँ से विष्णु का सङ्कल्प सुदर्शन रूप में, जिसे भावक कहते हैं, स्थित है (द्र० ७.६६, १६.३१-३२) और उसे वहीं उसकी क्रियाशक्ति की कारणरूपता भी कही गई है । इस ग्रन्थ में स्पष्टरूप से विष्णु की क्रियाशक्ति का शुद्धाशुद्ध भेद वाली साकारता का भी वर्णन है (द्र० ५-७ अध्याय) । इस ग्रन्थ में मर्यादास्त्रौघ, शस्त्रौघ तथा शास्त्रौघ तीन भेदों से युक्त प्रमाणरूपता का भी वर्णन है (द्र० १०.४०-४२) । शक्ति की पुरुषार्थात्मता तथा उसकी अधिकारिता का भी वर्णन है (द्र० १४-१५ अध्याय) । इतना ही नहीं जगद्रक्षणरूप मन्त्र, यन्त्र तथा अस्त्र का भी विस्तार रूप से वर्णन है । (द्र० १४-१५ अध्यायपर्यन्त) नाना प्रकार के व्यूह भेदों से युक्त नाना प्रकार के संस्थानों से सुशोभित सुदर्शन के सकल और निष्कल रूप का भी इस ग्रन्थ में वर्णन है । ये सभी जगद् की रक्षा, विनाश तथा उत्पत्ति से युक्त एवं महान् अभ्युदय देने वाले हैं । प्रधानतया सुदर्शन के शरीर से उत्पन्न होने वाले समस्त अस्त्र समूहों का स्वरूप तथा पराक्रम का इस ग्रन्थ में वर्णन है (द्र० ३०.२१-४०) ॥ ९-१६ ॥

सांख्ययोगाद्यर्थप्रतिपादकत्वरूपवैभवान्तरसूचनम्

सांख्ययोगविधिर्यत्र कार्त्स्न्येन परिचिन्त्यते ।
विविधा मन्त्रयोगाश्च मन्त्राश्च विधयोऽखिलाः ॥ १७ ॥
नानासामर्थ्यभेदाश्च सेतिहासप्रविस्तराः ।
आत्मन्यासविधिश्चैव विधीनामुत्तमो विधिः ॥ १८ ॥
मन्त्रार्था विविधाश्चैव स्थूलसूक्ष्मपरात्मकाः ।
चिन्त्यन्ते यत्र विस्पष्टं विष्णुसङ्कल्पजृम्भिताः ॥ १९ ॥

यह ग्रन्थ सांख्ययोगादि के अर्थ का प्रतिपादकत्वस्वरूप अन्य वैभव का भी सूचक है—इस ग्रन्थ में सांख्य तथा योग की विधियों का पूर्णतया वर्णन है । (द्र० ३१.३२ अध्याय) अनेक प्रकार के मन्त्रयोग और उनकी अनेक प्रकार की विधियों का भी इस ग्रन्थ

में वर्णन हैं। इतिहास के विस्तार के साथ उन मन्त्रों के अनेक प्रकार के सामर्थ्यों के भेद इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। सभी विधियों में उत्तम आत्मन्यास की विधि का इस ग्रन्थ में वर्णन है (द्र० ३७ अध्याय)। इस ग्रन्थ में विष्णु सङ्कल्प से उत्पन्न होने वाले स्थूल, सूक्ष्म तथा पर भेद वाले अनेक मन्त्रों के अर्थ का भी वर्णन किया गया है ॥ १७-१९ ॥

एतच्छास्त्राधिकारिनिरूपणम्

तदेतदुपशान्तेन शान्तेन गुरुसेविना।
अध्येयं तन्त्रसाराख्यमाहिर्बुध्न्यं हि शासनम् ॥ २० ॥

इस शास्त्र के अधिकारी का निरूपण—यह अहिर्बुध्न्य के द्वारा प्रतिपादित तन्त्रसार नामक शास्त्र गुरु की सेवा करने वाले, शान्तचिन्त एवं शान्तात्मा पुरुष को ही पढ़ना चाहिए ॥ २० ॥

अनधिकारिनिर्देशापूर्वकं तेभ्यः शास्त्रप्रदाननिषेधः

नाश्रोत्रियाय नाज्ञाय नाप्रातःस्नायिने तथा।
न शठाय न दृप्ताय न कूटविधिसेविने ॥ २१ ॥
नानन्तेवासिने चैव नासंवत्सरवासिने।
नैव देयं कृतघ्नाय नासूयानलशायिने ॥ २२ ॥

इस शास्त्र के अनधिकारी का निर्देश कर उन्हें इस शास्त्र को पढ़ाने का निषेध करते हुये ग्रन्थकार का निर्देश—यह ग्रन्थ अश्रोत्रिय को, मूर्ख को एवं जो प्रातःकाल में स्नान न करे उसे नहीं पढ़ाना चाहिए। शठ को अहङ्कारी को झूठ बोलने वाले को भी नहीं पढ़ाना चाहिए। जो अपना (आत्मीय) छात्र न हो, जो एक संवत्सर पर्यन्त अपने यहाँ निवास न करे, जो कृतघ्न हो तथा दूसरों की ईर्ष्या से जलने वाला हो उसे यह शास्त्र नहीं पढ़ाना चाहिए ॥ २१-२२ ॥

योग्याधिकारिनिर्देशपूर्वकं तेभ्यः शास्त्रप्रदानाभ्यनुज्ञा

सुपुत्राय सुशिष्याय सर्वस्वप्राणदायिने।
गुह्यगोपनशीलाय शास्त्रार्थस्थापकाय च ॥ २३ ॥
ऊहापोहसुदक्षाय मन्त्रवत् संस्कृताय च।
देयमेतत् त्रिवर्णाय नित्यमध्यात्मशालिने ॥ २४ ॥

योग्य अधिकारी का निरूपण करते हुये उन्हें शास्त्र प्रदान की अभ्यनुज्ञा—आज्ञाकारी सुपुत्र एवं सुशिष्य, सर्वस्व एवं प्राण भी दे देने वाले, गुप्त रखने वाले, शास्त्र की रक्षा करने वाले, शास्त्र के अर्थ का सदैव प्रचार करने वाले, ऊहापोह में निपुण, मन्त्र के द्वारा सुसंस्कृत ऐसे अध्यात्मवेत्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य साधक को ही इस शास्त्र का दान करना चाहिए ॥ २३-२४ ॥

शास्त्रवैभवनिगमनम्

षष्ट्यध्यायैः समुद्दिष्टा संहिता सेयमुत्तमा।

यां ज्ञात्वा पुरुषः शश्वत् सर्वज्ञत्वमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥
परा च मध्यमा चैव ये हि ते संहिते स्मृते ।
तदर्थः सकलोऽप्यत्र संक्षेपेण प्रदर्शितः ॥ २६ ॥

शास्त्र-वैभव का उपसंहार—यह वही उत्तम संहिता साठ अध्यायों में कही गई है जिसको जान लेने पर पुरुष सर्वज्ञता प्राप्त कर लेता है । परा और मध्यमा नाम की जो दो संहितायें हैं, उन दोनों संहिताओं का सभी अर्थ इसमें संक्षेप रूप से प्रदर्शित किया गया है ॥ २५-२६ ॥

ग्रन्थसमापनम्

नमः शिवाय शान्ताय नारदाय महर्षये ।
नमः सुदर्शनायाथ विष्णोः सङ्कल्परूपिणे ॥ २७ ॥

॥ इति श्रीपाञ्चरात्रे तन्त्ररहस्ये अहिर्बुध्न्यसंहितायां शास्त्रवैभव-
निरूपणं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥
॥ आदितः श्लोकाः ३८८० ॥
॥ समाप्ता चेयमहिर्बुध्न्यसंहिता ॥

* * *

ग्रन्थ समापन—शान्तस्वरूप शिव को नमस्कार है । महर्षि श्रीनारद को नमस्कार है तथा विष्णु के सङ्कल्प स्वरूप सुदर्शन को भी नमस्कार है ॥ २७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीपाञ्चरात्र आगम के तन्त्ररहस्य में अहिर्बुध्न्यसंहिता के शास्त्र-
वैभव निरूपण नामक साठवें अध्याय की शैवागमावतार महाकवि
पं० रामकुबेर मालवीय के द्वितीय आत्मज डॉ० सुधाकर
मालवीय कृत हिन्दी पूर्ण हुई ॥ ६० ॥

* * *

सुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रम्

(अहिर्बुध्न्यसंहितापरिशिष्टं)

प्रणम्य शिरसा देवं नारायणमशेषगम् ।
रमावक्षोजकस्तूरीपङ्कमुद्रितवक्षसम् ॥ १ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः पाराशर्यस्तपोधनः ।
हिताय सर्वजगतां नारदं मुनिमब्रवीत् ॥ २ ॥
ज्ञानविद्याविशेषज्ञं कर्पूरधवलाकृतिम् ।
वीणावादनसन्तुष्टमानसं मरुतां परम् ॥ ३ ॥
हिरण्यगर्भसम्भूतं हिरण्याक्षादिसेवितम् ।
पुण्यराशिं पुराणज्ञं पावनीकृतदिक्तटम् ॥ ४ ॥

व्यास उवाच—

देवर्षे नारद श्रीमन् साक्षाद् ब्रह्माङ्गसम्भव ।
भवानशेषविद्यानां पारगस्तपसां निधिः ॥ ५ ॥
वेदान्तपारगः सर्वशास्त्रार्थप्रतिभोज्ज्वलः ।
परब्रह्मणि निष्णातः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ ६ ॥
जगद्धिताय जनितः साक्षादेव चतुर्मुखात् ।
हन्यन्ते भवता दैत्या दैत्यारिभुजविक्रमैः ॥ ७ ॥
कालोऽनुग्रहकर्ता त्वं त्रैलोक्यं त्वद्वशेऽनघ ।
मनुष्या ऋषयो देवास्त्वया जीवन्ति सत्तम ॥ ८ ॥
कर्तृत्वे लोककार्याणां वरत्वे परिनिष्ठित ।
पृच्छामि त्वामशेषज्ञं निदानं सर्वसम्पदाम् ॥ ९ ॥
सर्वसंसारनिर्मुक्तं चिद्घनं शान्तमानसम् ।
यः सर्वलोकहितकृद्यं प्रशंसन्ति योगिनः ॥ १० ॥
इदं चराचरं विश्वं धृतं येन महामुने ।
स्पृहयन्ति च यत्प्रीत्या यस्मै ब्रह्मादिदेवताः ॥ ११ ॥

निर्माणस्थितिसंहारा यतो विश्वस्य सत्तम।
यस्य प्रसादाद् ब्रह्माद्या लभन्ते वाञ्छितं फलम्॥ १२ ॥
दारिद्र्यनाशो जायेत यस्मिन् श्रुतिपथं गते।
विवक्षितार्थनिर्वाहा मुखान्निःसरतीह गीः॥ १३ ॥
नृपाणां राज्यहीनानां येन राज्यं भविष्यति।
अपुत्रः पुत्रवान् येन वन्ध्या पुत्रवती भवेत्॥ १४ ॥
शत्रूणामचिरान्नाशो ज्ञानं ज्ञानैषिणामपि।
चातुर्वर्गफलं यस्य क्षणाद् भवति सुव्रत॥ १५ ॥
भूतप्रेतपिशाचाद्या यक्षराक्षसपन्नगाः।
भूतज्वरादिरोगाश्च यस्य स्मरणमात्रतः॥ १६ ॥
मुच्यन्ते मुनिशार्दूल येनाखिलजगद्भुतम्।
तदेतदिति निश्चित्य सर्वशास्त्रविशारद॥ १७ ॥
सर्वलोकहितार्थाय ब्रूहि मे सकलं गुरो।
इत्युक्तस्तेन मुनिना व्यासेनामिततेजसा॥ १८ ॥
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा सादरं नारदो मुनिः।
नमस्कृत्य जगन्मूलं लक्ष्मीकान्तं परात् परम्॥ १९ ॥
उवाच परमप्रीतः करुणामृतधारया।
आप्याययन् मुनीन् सर्वान् व्यासादीन्ब्रह्मतत्परान्॥ २० ॥

नारदः—

बहिरन्तस्तमश्छेदि ज्योतिर्वन्दे सुदर्शनम्।
येनाव्याहतसङ्कल्पं यस्तु लक्ष्मीधरं विदुः॥ २१ ॥

विनियोग—ॐ अस्य श्रीसुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रमहामन्त्रस्य अहिर्बुध्न्यो भगवानृषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीसुदर्शनमहाविष्णुर्देवता, रं बीजम्; हुं शक्तिः, फट् कीलकम्, 'रां रीं रूं रैं रौं रः' इति मन्त्रः, श्रीसुदर्शनप्रसादसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

कराङ्गन्यासः—ॐ रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ रीं तर्जनीभ्यां नमः,
ॐ रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ रैं अनामिकाभ्यां नमः,
ॐ रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः—ॐ रां ज्ञानाय हृदयाय नमः, ॐ रीं ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा,
ॐ रूं शक्त्यै शिखायै वषट्, ॐ रैं बलाय कवचाय हुं,
ॐ रौं वीर्यायास्त्राय फट्, ॐ रः तेजसे नेत्राभ्यां वौषट्।

अथ दिग्बन्धः—ॐ ठं ठं पूर्वां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं आग्नेयीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं याम्यां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,

ॐ ठं ठं नैर्ऋतीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं वारुणीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं वायवीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं कौबेरीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं ऐशानीं दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं ऊर्ध्वां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं अधरां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा,
ॐ ठं ठं सर्वां दिशं चक्रेण बध्नामि नमश्चक्राय हुं फट् स्वाहा ।

इति दिग्बन्धः ।

सुदर्शनस्य ध्यानम्

कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तं,
रक्ताक्षं पिङ्गकेशं रिपुकुलभयदं भीमदंष्ट्राट्टहासम् ।
शङ्खं चक्रं गदाब्जं पृथुतरमुसलं चापपाशाङ्कुशादीन्,
बिभ्राणं दोर्भिराद्यं मनसि मुररिपोर्भावये चक्रराजम् ॥ १ ॥

शङ्खं चक्रं गदाब्जं शरमसिमिषुधिं चापपाशाङ्कुशादीन्,
बिभ्राणं वज्रखेटं हलमुसललसत्कुन्तमत्युग्रदंष्ट्रम् ।
ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं ज्वलदनलनिभं हारकेयूरभूषं,
ध्यायेत् षट्कोणसंस्थं सकलरिपुजनप्राणसंहारचक्रम् ॥ २ ॥

ककारादीनि षोडश नामानि

कल्याणगुणसम्पन्नः कल्याणवसनोज्ज्वलः ।
कल्याणाचलगम्भीरः कल्याणजनरञ्जकः ॥ १ ॥
कल्याणदोषनाशश्च कल्याणरुचिराङ्गकः ।
कल्याणाङ्गदसम्पन्नः कल्याणाकारसन्निभः ॥ २ ॥
करालवदनोऽत्रासी करालाङ्गोऽभयङ्करः ।
करालतनुजोद्दामः करालतनुभेदकः ॥ ३ ॥
करञ्जवनमध्यस्थः करञ्जदधिभोजनः ।
करञ्जासुरसंहर्ता करञ्जमधुराङ्गकः ॥ ४ ॥

खकारादीनि दश

खञ्जनानन्दजनकः खञ्जनाहारभूषितः ।
खञ्जनायुधभृद् दिव्यखञ्जनाखण्डगर्वहृत् ॥ ५ ॥
खरान्तकः खररुचिः खरदुःखैरसेवितः ।
खरान्तकः खरोदारः खरासुरविभञ्जनः ॥ ६ ॥

गकारादीनि द्वादश

गोपालो गोपतिर्गोप्ता गोपस्त्रीनाथरञ्जकः ।
गोजारुणतनुर्गोजो गोजारतिकृतोत्सवः ॥ ७ ॥
गम्भीरनाभिर्गम्भीरो गम्भीरार्थसमन्वितः ।
गम्भीरवैद्यमरुतो गम्भीरगुणभूषितः ॥ ८ ॥

घकारादीन्येकादश

घनरावो घनरुचिर्घनगम्भीरनिस्वनः ।
घनाघनौघनाशी च घनसन्तानदायकः ॥ ९ ॥
घनरोचिर्घनचरो घनचन्दनचर्चितः ।
घनहेतिर्घनभुजो घनोऽखिलसुरार्चितः ॥ १० ॥

ङकारादीनि चत्वारि

ङकारावधिविभवो ङकारो मुनिसम्मतः ।
ङकारवीतसहितो ङकाराकारभूषितः ॥ ११ ॥

चकारादीनि षट्पञ्चाशत्

चक्रराजश्चक्रपतिश्चक्राधीशः सुचक्रभूः ।
चक्रसेव्यश्चक्रधरश्चक्रभूषणभूषितः ॥ १२ ॥
चक्रराजरुचिश्चक्रश्चक्रपालनतत्परः ।
चक्रधृच्चक्रवरदश्चक्रभूषणभूषितः ॥ १३ ॥
सुचक्रधीः सुचक्राख्यः सुचक्रगुणभूषितः ।
विचक्रश्चक्रनिरतश्चक्रसम्पन्नवैभवः ॥ १४ ॥
चक्रदोश्चक्रदश्चक्रश्चक्रराजपराक्रमः ।
चक्रनादश्चक्रचरश्चक्रगश्चक्रपाशकृत् ॥ १५ ॥
चक्रव्यापी चक्रगुरुश्चक्रहारी विचक्रभृत् ।
चक्राङ्गश्चक्रमहितश्चक्रवाकगुणाकरः ॥ १६ ॥
आचक्रश्चक्रधर्मज्ञश्चक्रकश्चक्रमर्दनः ।
आचक्रनियमश्चक्रः सर्वपापविधूननः ॥ १७ ॥
चक्रज्वालश्चक्रधरश्चक्रपालितविग्रहः ।
चक्रवर्ती चक्रदायी चक्रकारी मदापहः ॥ १८ ॥
चक्रकोटिमहानादश्चक्रकोटिसमप्रभः ।
चक्रराजावनचरश्चक्रराजान्तरोज्ज्वलः ॥ १९ ॥
चञ्चलारातिदमनश्चञ्चलस्वान्तरोमकृत् ।
चञ्चलो मानसोल्लासी चञ्चलाचलभासुरः ॥ २० ॥
चञ्चलारातिनिरतश्चञ्चलाधिकचञ्चलः ।

छकारादीनि नव

छाययाखिलतापघ्नश्छायामदविभञ्जनः ॥ २१ ॥
छायाप्रियोऽधिकरुचिश्छायावृक्षसमाश्रयः ।
छायान्वितश्छायायार्च्यश्छायाधिकसुखप्रदः ॥ २२ ॥
छायाम्बरपरीधानश्छायात्मजनमुञ्छितः ।

जकारादीनि षोडश

जलजाक्षीप्रियकरो जलजानन्ददायकः ॥ २३ ॥
जलजासिद्धिरुचिरो जलजालसमो भरः ।
जलजालापसंस्तुत्यो जलजाताय मोदकृत् ॥ २४ ॥
जलजाहारचतुरो जलजाराधनोत्सुकः ।
जनकस्तुतिसन्तुष्टो जनकाराधिताधिकः ॥ २५ ॥
जनकामोदनपरो जनकानन्ददायकः ।
जनकाध्यानसन्तुष्टहृदयो जनकार्चितः ॥ २६ ॥
जनकानन्दजननो जनकृद्धृदयाम्बुजः ।

झकारादीनि चत्वारि

झञ्झामारुतवेगाढ्यो झञ्झामारुतसङ्गरः ॥ २७ ॥
झञ्झामारुतसंरावो झञ्झामारुतविक्रमः ।

ञकारादिनी द्वे

ञकाराम्बुजमध्यस्थो ञकारकृतसन्निधिः ॥ २८ ॥

टकारादीनि नव

टङ्कधारी टङ्कवपुष्टङ्कसंहारकारकः ।
टङ्कच्छिन्नसुवर्णाभष्टङ्कारधनुरुज्ज्वलः ॥ २९ ॥
टङ्कारागिनसमाकारष्टङ्काररवमेदुरः ।
टङ्कारकीर्तिभरितष्टङ्कारानन्दवर्धनः ॥ ३० ॥

डकारादीन्येकोनविंशतिः

डम्भसंहतिसंहर्ता डम्भसन्ततिवर्धनः ।
डम्भधृग् डम्भहृदयो डम्भदण्डनतत्परः ॥ ३१ ॥
डिम्भधृग् डिम्भकृड्डिम्भो डिम्भसूदनतत्परः ।
डिम्भपापहरो डिम्भसम्भावितपदाम्बुजः ॥ ३२ ॥
डिम्भरोद्यत्कटम्बाजो डमरुध्यानतत्परः ।
डमरूद्भवसंहर्ता डमरूद्भवनन्दनः ॥ ३३ ॥
डाडिमीवनमध्यस्थो डाडिमीकुसुमप्रियः ।
डाडिमीफलसन्तुष्टो डाडिमीफलवर्जितः ॥ ३४ ॥

ढकारादीन्यष्टौ

ढक्कामनोहरवपुर्ढक्कारवविराजितः ।
ढक्कवाद्येषु निरतो ढक्काधारणतत्परः ॥ ३५ ॥
ढकारबीजसम्पन्नो ढकाराक्षरमेदुरः ।
ढकारमध्यसदनो ढकारविहितान्त्रकः ॥ ३६ ॥

णकारादीनि चत्वारि

णकारबीजवसतिर्णकारवसनोज्ज्वलः ।
णकारातिगभीराङ्गो णकाराराधनप्रियः ॥ ३७ ॥

तकारादीनि चतुर्दश

तरलाक्षीमहाहर्ता तारकासुरहृत्तरिः ।
तरलोज्ज्वलहाराढ्यस्तरलस्वान्तरञ्जकः ॥ ३८ ॥
तारकासुरसंसेव्यस्तारकासुरमानितः ।
तुरङ्गवदनस्तोत्रसन्तुष्टहृदयाम्बुजः ॥ ३९ ॥
तुरङ्गवदनः श्रीमांस्तुरङ्गवदनस्तुतः ।
तमःपटलसंछन्नस्तमःसन्ततिमर्दनः ॥ ४० ॥
तमोनुदो जलशयस्तमःसंवर्धनो हरः ।

थकारादीनि चत्वारि

थवर्णमध्यसंवासी थवर्णवरभूषितः ॥ ४१ ॥
थवर्णबीजसम्पन्नस्थवर्णरुचिरालयः ।

दकारादीनि दश

दरभृद् दरसाराक्षो दरहृद् दरवञ्चकः ॥ ४२ ॥
दरफुल्लाम्बुजरुचिर्दरचक्रविराजितः ।
दधिसंग्रहणव्यग्रो दधिपाण्डरकीर्तिभृत् ॥ ४३ ॥
दध्यन्नपूजनरतो दधिवामनमोदकृत् ।

धकारादीनि चतुर्विंशतिः

धन्वी धनप्रियो धन्यो धनाधिपसमञ्चितः ॥ ४४ ॥
धरो धरावनरतो धनधान्यसमृद्धिदः ।
धनञ्जयो धनाध्यक्षो धनदो धनवर्जितः ॥ ४५ ॥
धनग्रहणसम्पन्नो धनसम्मतमानसः ।
धनराजवनासक्तो धनराजयशोभरः ॥ ४६ ॥
धनराजमदाहर्ता धनराजसमीडितः ।
धर्मकृद्धर्मभृद्धर्मी धर्मनन्दनसन्नुतः ॥ ४७ ॥

धर्मराजो धनासक्तो धर्मज्ञाकल्पितस्तुतिः ।

नकारादीनि षोडश

नरराजावनायत्तो नरराजाय निर्भरः ॥ ४८ ॥
नरराजस्तुतगुणो नरराजसमुज्ज्वलः ।
नवतामरसोदारो नवतामरसेक्षणः ॥ ४९ ॥
नवतामरसाहारो नवतामरसारुणः ।
नवसौवर्णवसनो नवनाथदयापरः ॥ ५० ॥
नवनाथस्तुतनदो नवनाथसमाकृतिः ।
नालिकानेत्रमहितो नालिकावलिराजितः ॥ ५१ ॥
नालिकागतिमध्यस्थो नालिकासनसेवितः ।

पकारादीन्यष्टादश

पुण्डरीकाक्षरुचिरः पुण्डरीकमदापहः ॥ ५२ ॥
पुण्डरीकमुनिस्तुत्यः पुण्डरीकसुहृद्द्युतिः ।
पुण्डरीकप्रभारम्यः पुण्डरीकनिभाननः ॥ ५३ ॥
पुण्डरीकाक्षसन्मानः पुण्डरीकदयापरः ।
परः परागतिवपुः परानन्दः परात् परः ॥ ५४ ॥
परमानन्दजनकः परमान्नाधिकप्रियः ।
पुष्कराक्षकरोदारः पुष्कराक्षः शिवङ्करः ॥ ५५ ॥
पुष्करव्रातसहितः पुष्कराखसंयुतः ।

अथ फकारादीनि नव

फट्कारतः स्तूयमानः फट्काराक्षरमध्यगः ॥ ५६ ॥
फट्कारध्वस्तदनुजः फट्कारासनसङ्गतः ।
फलाहारः स्तुतफलः फलपूजाकृतोत्सवः ॥ ५७ ॥
फलदानरतोऽत्यन्तफलसम्पूर्णमानसः ।

बकारादीनि षोडश

बलस्तुतिर्बलाधारो बलभद्रप्रियङ्करः ॥ ५८ ॥
बलवान् बलहारी च बलयुग्वैरिभञ्जनः ।
बलदाता बलधरो बलराजितविग्रहः ॥ ५९ ॥
बलालो बलकरो बलासुरनिषूदनः ।
बलरक्षणनिष्णातो बलसम्मोददायकः ॥ ६० ॥
बलसम्पूर्णहृदयो बलसंहारदीक्षितः ।

भकारादीनि चतुर्विंशतिः

भवस्तुतो भवपतिर्भवसन्तानदायकः ॥ ६१ ॥

भवध्वंसी भवहरो भवस्तम्भनतत्परः ।
भवरक्षणनिष्णातो भवसन्तोषकारकः ॥ ६२ ॥
भवसागरसंछेत्ता भवसिन्धुसुखप्रदः ।
भद्रदो भद्रहृदयो भद्रकार्यसमाश्रितः ॥ ६३ ॥
भद्रश्रीचर्चिततनुर्भद्रश्रीदानदीक्षितः ।
भद्रपादप्रियो भद्रो ह्यभद्रवनभञ्जनः ॥ ६४ ॥
भद्रश्रीगानसरसो भद्रमण्डलमण्डितः ।
भरद्वाजस्तुतपदो भरद्वाजसमाश्रितः ॥ ६५ ॥
भरद्वाजाश्रमरतो भरद्वाजदयाकरः ।

मकारादीनि त्रिपञ्चाशत्

मसारनीलरुचिरो मसारचरणोज्ज्वलः ॥ ६६ ॥
मसारसारसत्कार्यो मसारांशुकभूषितः ।
माकन्दवनसञ्चारी माकन्दजनरञ्जकः ॥ ६७ ॥
माकन्दानन्दमन्दारो माकन्दानन्दबन्धुरः ।
मण्डलो मण्डलाधीशो मण्डलात्मा सुमण्डलः ॥ ६८ ॥
मण्डलेशो मण्डलान्तमण्डलार्चितमण्डलः ।
मण्डलावननिष्णातो मण्डलावरणी घनः ॥ ६९ ॥
मण्डलस्थो मण्डलाग्र्यो मण्डलाभरणाङ्कितः ।
मधुदानवसंहर्ता मधुमञ्जुलवाग्भरः ॥ ७० ॥
मधुदानाधिकरतो मधुमङ्गलवैभवः ।
मधुजेता मधुकरो मधुरो मधुराधिपः ॥ ७१ ॥
मधुवारणसंहर्ता मधुसन्तानकारकः ।
मधुमासातिरुचिरो मधुमासविराजितः ॥ ७२ ॥
मधुपुष्टो मधुतनुर्मधुगो मधुसंवरः ।
मधुरो मधुराकारो मधुराम्बरभूषितः ॥ ७३ ॥
मधुरानगरीनाथो मधुरासुरभञ्जनः ।
मधुराहारनिरतो मधुराह्लाददक्षिणः ॥ ७४ ॥
मधुराम्भोजनयनो मधुराधिपसङ्गतः ।
मधुरानन्दचतुरो मधुरारातिसङ्गतः ॥ ७५ ॥
मधुराभरणोल्लासी मधुराङ्गदभूषितः ।
मृगराजवनीसक्तो मृगमण्डलमण्डितः ॥ ७६ ॥
मृगादरो मृगपतिर्मृगारातिविदारणः ।

यकारादीनि दश

यज्ञप्रियो यज्ञवपुर्यज्ञसम्प्रीतमानसः ॥ ७७ ॥

यज्ञसन्ताननिरतो यज्ञसम्भारसम्भ्रमः ।
यज्ञयज्ञो यज्ञपदो यज्ञसम्पादनोत्सुकः ॥ ७८ ॥
यज्ञशालाकृतावासो यज्ञसम्भावितान्नकः ।

रेफादीनि विंशतिः

रसेन्द्रो रससम्पन्नो रसराजो रसोत्सुकः ॥ ७९ ॥
रसान्वितो रसधरो रसचेलो रसाकरः ।
रसजेता रसश्रेष्ठो रसराजाभिरञ्जितः ॥ ८० ॥
रसतत्त्वसमासक्तो रसदारपराक्रमः ।
रसराजो रसधरो रसेशो रसवल्लभः ॥ ८१ ॥
रसनेता रसावासो रसोत्करविराजितः ।

लकारादीन्यष्टौ

लवङ्गपुष्पसन्तुष्टो लवङ्गकुसुमोचितः ॥ ८२ ॥
लवङ्गवनमध्यस्थो लवङ्गकुसुमोत्सुकः ।
लतावलिसमायुक्तो लतारससमर्चितः ॥ ८३ ॥
लताभिरामतनुभृल्लतातिलकभूषितः ।

वकारादीनि सप्तदश

वीरस्तुतपदाम्भोजो विराजगमनोत्सुकः ॥ ८४ ॥
विराजपत्रमध्यस्थो विराजरससेवितः ।
वरदो वरसम्पन्नो वरो वरसमुन्नतः ॥ ८५ ॥
वरस्तुतिर्वर्धमानो वरधृद् वरसम्भवः ।
वरदानरतो वर्यो वरदानसमुत्सुकः ॥ ८६ ॥
वरदानार्द्रहृदयो वरवारणसंयुतः ।

शकारादीनि पञ्चविंशतिः

शारदास्तुतपादाब्जः शारदाम्भोजकीर्तिभृत् ॥ ८७ ॥
शारदाम्भोजनयनः शारदाध्यक्षसेवितः ।
शारदापीठवसतिः शारदाधिपसन्नुतः ॥ ८८ ॥
शादावासदमनः शारदावासभासुरः ।
शतक्रतुस्तूयमानः शतक्रतुपराक्रमः ॥ ८९ ॥
शतक्रतुसमैश्वर्यः शतक्रतुमदापहः ।
शरचापधरः श्रीमान् शरसम्भववैभवः ॥ ९० ॥
शरपाण्डरकीर्तिश्रीः शरत्सारसलोचनः ।
शरसङ्गमसम्पन्नः शरमण्डलमण्डितः ॥ ९१ ॥
शरातिगः शरधरः शरलालनलालसः ।

शरोद्भवसमाकारः शरयुद्धविशारदः ॥ ९२ ॥
शरवृन्दावनरतिः शरसम्मतविक्रमः ।

षकारादीनि षोडश

षट्पदः षट्पदाकारः षट्पदावलिसेवितः ॥ ९३ ॥
षट्पदाकारमधुरः षट्पदी षट्पदोद्धतः ।
षडङ्गवेदविनुतः षडङ्गपदमेदुरः ॥ ९४ ॥
षट्पद्मकवितावासः षड्बिन्दुरचितद्युतिः ।
षड्बिन्दुमध्यवसतिः षड्बिन्दुविशदीकृतः ॥ ९५ ॥
षडाम्नायस्तूयमानः षडाम्नायान्तरस्थितः ।
षट्छक्तिमङ्गलवृतः षट्चक्रकृतशेखरः ॥ ९६ ॥

सकारादीनि विंशतिः

सारसारसरक्ताङ्गः सारसारसलोचनः ।
सारदीप्तिः सारतनुः सारसाक्षकरप्रियः ॥ ९७ ॥
सारदीपी सारकृपः सारसावनकृज्ज्वलः ।
सारङ्गसारदमनः सारकल्पितकुण्डलः ॥ ९८ ॥
सारसारण्यवसतिः सारसारवमेदुरः ।
सारगानप्रियः सारः सारसारसुपण्डितः ॥ ९९ ॥
सद्रक्षकः सदामोदी सदानन्ददेशिकः ।
सद्वैद्यवन्द्यचरणः सद्वैद्योज्ज्वलमानसः ॥ १०० ॥

हकारादीनि चतुःषष्टिः

हरिजेता हरिरथो हरिसेवापरायणः ।
हरिवर्णो हरिचरो हरिगो हरिवत्सलः ॥ १०१ ॥
हरिद्रो हरिसंस्तोता हरिध्यानपरायणः ।
हरकल्पान्तसंहर्ता हरिसारसमुज्ज्वलः ॥ १०२ ॥
हरिचन्दनलिप्ताङ्गो हरिमानससम्मतः ।
हरिकारुण्यनिरतो हंसमोचनलालसः ॥ १०३ ॥
हरिपुत्राभयकरो हरिपुत्रसमञ्चितः ।
हरिधारणसांनिध्यो हरिसम्मोददायकः ॥ १०४ ॥
हेतिराजो हेतिधरो हेतिनायकसंस्तुतः ।
हेतिर्हरिर्हेतिवपुर्हेतिहा हेतिवर्धनः ॥ १०५ ॥
हेतिहन्ता हेतियुद्धकरो हेतिविभूषणः ।
हेतिदाता हेतिपरो हेतिमार्गप्रवर्तकः ॥ १०६ ॥
हेतिसन्ततिसम्पूर्णो हेतिमण्डलमण्डितः ।

हेतिदानपरः सर्वहेत्युग्रपरिभूषितः ॥ १०७ ॥
हंसरूपी हंसगतिर्हंससन्नुतवैभवः ।
हंसमार्गरतो हंसरक्षको हंसनायकः ॥ १०८ ॥
हंसदृग्गोचरतनुर्हंससङ्गीततोषितः ।
हंसजेता हंसपतिर्हंसगो हंसवाहनः ॥ १०९ ॥
हंसजो हंसगमनो हंसराजसुपूजितः ।
हंसवेगो हंसधरो हंससुन्दरविग्रहः ॥ ११० ॥
हंसवत् सुन्दरतनुर्हंससङ्गतमानसः ।
हंसस्वरूपसारज्ञो हंससन्नतमानसः ॥ १११ ॥
हंससंस्तुतसामर्थ्यो हरिरक्षणतत्परः ।
हंससंस्तुतमाहात्म्यो हरपुत्रपराक्रमः ॥ ११२ ॥

क्षकारादीनि द्वादश नामानि

क्षीरार्णवसमुद्भूतः क्षीरसम्भवभावितः ।
क्षीराब्धिनाथसंयुक्तः क्षीरकीर्तिविभासुरः ॥ ११३ ॥
क्षणदारवसंहर्ता क्षणदारवसम्मतः ।
क्षणदाधीशसंयुक्तः क्षणदानकृतोत्सवः ॥ ११४ ॥
क्षीराभिषेकसन्तुष्टः क्षीरपानाभिलाषुकः ।
क्षीराज्यभोजनासक्तः क्षीरसम्भववर्णकः ॥ ११५ ॥

फलश्रुतिः

इत्येतत् कथितं दिव्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ ११६ ॥
सर्वसौभाग्यजनकं सर्वमङ्गलकारकम् ।
सर्वदारिद्र्यशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ ११७ ॥
सर्वशान्तिकरं गुह्यं सर्वरोगनिवारणम् ।
अतिबन्धग्रहहरं सर्वदुःखनिवारकम् ॥ ११८ ॥
नाम्नां सहस्रं दिव्यानां चक्रराजस्य सत्पतेः ।
नामानि हेतिराजस्य ये पठन्तीह मानवाः ।
तेषां भवन्ति सकलाः सम्पदो नात्र संशयः ॥ ११९ ॥

॥ इत्यहिर्बुध्न्यसंहितायां तन्त्ररहस्ये व्यासनारदसंवादे
श्रीसुदर्शनसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

* * *

पारिभाषिक शब्द कोष

अनुतारा — श्रीं (अहि०सं० ५१.६४)।

आगम — सृष्टि, प्रलय, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्मसाधन और ध्यानयोग—इन सात विषयों का प्रतिपादक तथा कर्म, उपासना और ज्ञान की प्राप्ति के उपायों का कथन करने वाले शास्त्र ग्रन्थ। निगम (वेद) से विभिन्न ग्रन्थों को आगम ग्रन्थ कहते हैं। शैव, शाक्त और पाञ्चरात्र आगम वेद बाह्य किन्तु वेदानुकूल होने से वैदिक माने जाते हैं। बौद्ध जैनादि आगम इसी दृष्टि से अवैदिक कहे गए हैं।

ऐश्वर्य — स्वातन्त्र्यपरिबृंहित जगत्कर्तृत्व।

चतुरक्षरी कूट — स् अ ह् अ = सह (अहि०सं० १८.९-१५)।

जितन्ता मन्त्र — (अहि०सं० ५३.८५) सम्पूर्ण श्लोक मन्त्र लक्ष्मी तन्त्र २४.६९ में प्राप्त है—

जितं·ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥

ज्ञान — स्वप्रकाश और नित्य सर्वापगाही गुण को 'ज्ञान' कहते हैं।

तार — ॐ।

तारा — ह्रीं (अहि०सं० ५१.६०)।

त्र्यक्षरी कूट — स् र् आ = स्रा (अहि०सं० १८.९-१५)।

दशाक्षरी कूट — स् अ ह् अ स् स् र् आ र् अ = सहस्रार (अहि०सं० १८.९-१५)।

धी — एक (अहि०सं० १६.९७)।

पाञ्चरात्रागम — पाञ्चरात्रागम के विषय—ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या।

बल — जगत् के निर्माण में श्रमाभाव नारायण का बल है।

रस — छ: (अहि०सं० १६.९७)।

वीर्य — विकाराराहित्य, निर्विकार ब्रह्म में जगदुपादान कारण होने पर भी किसी भी प्रकार के विकार का उदय न होना।

व्यूह — षाड्गुण्य में से दो-दो गुणों की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की सृष्टि।

षाड्गुण्य — १. ज्ञान, २. शक्ति, ३. ऐश्वर्य, ४. बल, ५. वीर्य एवं ६. तेज।

शक्ति [redacted] जगत् का उपादान कारण।